: 302, 'Krishna-Kunj', Plot No.30, Navyug CHS Ltd., V. L Mehta Marg, Vile Parle(w), Mumbai–400056
Phone No. : (022) 2613 0820. **Website:** www.vitragvani.com **Email:** vitragva@vsnl.com

"Bodhi Samadhi Nidhan" has been published by us & the PDF version of the same has been put on our website www.vitragvani.com

We have taken due care, while preparing the same. However, if you find any typographical error, you may kindly inform us on info@Vitragvani.com

By "Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust"
(Shri Shantilal Ratilal Shah-Parivar, Mumbai)

www.vitragvani.com

परमात्मने नमः।

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं. 31

बोधि समाधि निधान

जैन कथा संग्रह (सचित्र)

गुजराती संकलनकार :
नागरदास बी. मोदी
उमेदराय बी. मोदी
जितेन्द्र ना. मोदी
(सम्पादक परिवार, आत्मधर्म गुजराती)

हिन्दी अनुवाद व सम्पादन :
देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

प्रकाशक :
श्री सूरजबेन अमुलखभाई सेठ स्मृति ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

छह आवृत्तियाँ - 21,000 (सन् 2001 से 2006 तक)

सातवीं आवृत्ति -

(श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंच कल्याणक -
मङ्गलायतन विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के अवसर पर)

विक्रय मूल्य - 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.)
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापू नगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर कुन्दकुन्द कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

उपोद्घात

जिनके पुनीत प्रताप से यह विषम पंचम काल भी धर्मकाल में परिवर्तित हो गया, जिनकी मूसलधार उपदेश-वर्षा से बहती हुई अध्यात्म-गंगा के अमृत झरनों द्वारा पंचम काल के अन्त तक इस भरतक्षेत्र में अध्यात्म की हरियाली आत्मर्थियों के लिए हरित रहनेवाली है, उन अध्यात्मयुग सर्जनहार उपकारमूर्ति स्वानुभवविभूषित करुणासिन्धु पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने मुख्यरूप से तो, जिसकी प्राप्ति बिना जीव, बोधिरूप-सम्यग्ज्ञानरूप परिणमित नहीं हुआ - ऐसा द्रव्यदृष्टि का ही मार्ग प्रकाशित किया है और साथ ही उस बोधि बीज के अनुकूल ऐसी समाधि वैराग्य की भूमि के लिए पुराणों के सैंकड़ों प्रसंगों को मिला-मिलाकर वर्णन करते-करते उन पुराण प्रसंगों द्वारा हेय-उपादेयपने की सिद्धि करते रहते थे। उनके मूल उपदेश का संकलन तो 'द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर पर्यायदृष्टि विनश्वर' द्वारा पूर्व में प्रकाशित किया ही जा चुका है परन्तु आपश्री के प्रवचनों में बारम्बार पुराण प्रसंग सुनते हुए एक भावना रहा करती थी कि बहु भाग पुराण तो हिन्दी में ही उपलब्ध होने से तथा विशाल ग्रन्थरूप होने से सामान्य जन समुदाय के लिए उनका वाचन सुलभ न होने से, आचार्यों के महान पुराणों में से कुछ समाधि-वैराग्य प्रेरक प्रसंग तथा कुछ पुरुषार्थ-प्रेरक प्रसंगों को गुजराती में संकलन करके प्रकाशित करना चाहिए। फलस्वरूप इन 52 कथाओं का संकलन **'बोधि-समाधि-निधान'** प्रकाशित करने का प्रसंग बनने पर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

सर्वज्ञदेव की दिव्यधनि में चार अनुयोगों का उपदेश होता है। उसमें प्रथम अनुयोग का नाम प्रथमानुयोग है। अन्य प्रकार से कहें तो द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग और करणानुयोग में जो वर्णन है, उसकी 'साक्षी' यह प्रथमानुयोग है। इस कारण प्रथमानुयोग के अभ्यास से इन तीनों अनुयोगों का भाव-भासन सरल बनता है।

इस जैन कथा संग्रह की कथायें पढ़ने पर समझ में आयेगा कि :-

- जीवों के भूतकाल और भविष्यकाल के निश्चित परिणामों को जानकर, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रिय अफर सिद्धांत, 'क्रमबद्धपर्याय' की यथार्थ श्रद्धा द्वारा स्वभावसन्मुख हुआ जाता है।

www.vitragvani.com

- साक्षात् सर्वज्ञदेव की वाणी सुनने पर भी जीव होनहार को फेर अथवा टाल नहीं सकता; होनेवाले संयोग-वियोगादि को पहले से ही जान लेने पर भी उसमें फेरफार नहीं कर सकता-यह श्रेणिक राजा, श्रीकृष्ण आदि के उदय और मरण प्रसंग की स्थिति से स्पष्ट समझ में आता है। इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्री योग्यता, पर्याय के परिणमन की स्वतन्त्रता और क्रमबद्धपर्याय के उपदेश द्वारा अकर्त्ता ज्ञायकस्वभाव की सन्मुखता का जो मार्ग बतला गये हैं, उसका इन कथाओं के द्वारा भाव-भासनपूर्वक दृढ़ श्रद्धान होता है।
- धर्म के क्षेत्र में आकर भी जीव स्थूल मान-सम्मान की अपेक्षा से विराधना में अनुमोदना भी कर बैठे तो उसके फल में चिरकाल तक भयंकर अधोगति प्राप्त करता है। इन प्रसंगों को पढ़ते हुए जीव को अनजाने से भी विराधना में न जुड़ जाने की सावधानी रहती है।
- संसारी जीवों के पापमय परिणाम होने पर भी, पूज्य गुरुदेवश्री उनकी क्षणिकता बताकर, स्वभाव में संसार की गन्ध भी नहीं है - ऐसा समझाते थे - यह बात इन कथाओं से दृढ़ होती है।
- पूज्य गुरुदेवश्री ने मुख्यरूप से द्रव्यदृष्टि का उपदेश देते हुए कहा कि पाप-पुण्य के परिणाम, जीव को होने पर भी वे सब पानी में तेल की बूँद की तरह ऊपर रहते होने से वे आत्मस्वभाव में प्रवेश नहीं पाते; इस कारण जब जीव, आत्मस्वभाव के समीप जाता है, तब शीघ्र मोक्ष पाता है। यह बात इन कथाओं को पढ़कर समझी जा सकती है।
- जीव के परिणाम और उनका निमित्तपना पाकर आश्चर्यकारी रीति से परिणमते कुदरत के प्रसंग पढ़ते हुए, जीव यदि पाप करे तो नकादि के तीव्र दु:ख पाता है और पुण्य करे तो स्वर्गादिक का सुख पाता है; वीतरागता करे तो मोक्ष पाता है-इस प्रकार जीव के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है, जीव की भावना न फले-ऐसा नहीं होता, यह बात अच्छी तरह समझी जा सकती है।
- एक जीव दूसरे जीव के ऊपर क्रोधादि करता है तो वे क्रोधादि के संस्कार भव-भव तक रहते हैं; इस प्रकार एक जीव दूसरे जीव के प्रति रागादि करता है तो उसके संस्कार भी भव-भव तक नहीं छूटते; वैसे ही कुदेव-कुशास्त्र-कुधर्म के सेवन से नरक-निगोद में चिरकाल भ्रमण करके फिर मनुष्य होने पर कुधर्म के संस्कार पुन: जागृत हो जाते हैं - ये सब प्रसंग पढ़कर जीव को वीतराग धर्म की आराधना की विशेष भावना जागृत होता है।
- विश्व के प्रत्येक पदार्थ की व्यवस्थित व्यवस्था, उपादान-निमित्त और निश्चय-व्यवहार का स्वरूप जानने से तत्त्वश्रद्धा दृढ़ होती है।

www.vitragvani.com

- जीव को रौद्रध्यानरूप तीव्र कषाय के परिणाम होने पर भी वे आत्मस्वभाव को किंचित् भी हानि नहीं कर सकते तथा जीव अति मंदकषाय के परिणाम करे तो भी उससे आत्मस्वभाव को किंचित् लाभ नहीं हो सकता। ये सब परिणाम वायु के वेग के समान क्षणिक होने से आत्मस्वभाव को किंचित् लाभ-हानि नहीं कर सकते - ऐसी महिमावंत आत्मस्वभाव की दृढ़ता द्वारा स्वसन्मुखता का पुरुषार्थ उदित होता है।
- मोक्षगामी महापुरुषों का भूतकाल का जीवन महाघोर पापमय होने पर भी, जब वे पवित्र जैनधर्म को पाते हैं, तब परिणाम पवित्र होने से उत्कृष्ट प्रकार के पुण्योदयपूर्वक मोक्ष प्राप्त करते हैं। यह जानने से पाप-पुण्य की तुच्छता समझ में आने से अन्तर्मुखता के प्रयत्न को बल मिलता है।
- पुण्य का निमित्त पाकर पुद्गल स्वयं स्वतंत्ररूप से अक्षीणऋद्धि आदि ऋद्धिरूप से, कल्पवृक्षरूप से, रत्नवृष्टिरूप से, समवसरण रचना आदि अनेक प्रकार से परिणमते हैं। इन प्रसंगों द्वारा अजीवतत्त्व की स्वतन्त्रता समझी जा सकती है।
- पाप करनेवाले बड़े राजा भी मरकर नरकादि में जाते हैं और पुण्य करनेवाले पशु भी मरकर क्षण में स्वर्गादि में जाते हैं। इस प्रकार यह सब भवावली संसार नाटक के क्षणिक स्वांगमात्र होने से शाश्वत चैतन्य प्रभु की महिमा समझी जा सकती है।
- रामचन्द्र जी, लक्ष्मण, सीता, रावण, आदि के पूर्व के कितने ही भवों का वर्णन पढ़ने पर किसी जीव के प्रति बैरभाव करने से कितने भवों तक वह बैरभाव प्रवर्तता है- यह समझने से जीव अत्यन्त ही वैराग्यपूर्वक ऐसे भावों से सचेत रहता है।
- श्रीकृष्ण, सुदर्शन सेठ, श्रीरामचन्द्रजी, सती सीता, अञ्जना, चन्दना आदि महापुरुषों को भी पूर्व में बाँधी हुई असाता के उदयकाल में कोई सहायक नहीं बनता। यह बात समझ में आने पर जीव को असाता के उदय में समाधान-शान्ति रखकर आत्म-आराधना करने का बोध प्राप्त होता है।
- इन कथाओं को वांचने से स्वभावसन्मुखता की खुमारी तो जागृत होती ही है परन्तु साथ-साथ महापुरुषों के बाह्य आचरण में उत्कृष्ट प्रकार की प्रमाणिकता, न्याय-नीति; प्राण जाने पर भी धर्म की विराधना में किंचित् भी अनुमोदना न होने देना, रात्रि भोजन त्याग इत्यादि प्रसंग पढ़ने से मुमुक्षुओं को अपने परिणाम की सँभाल लेने की महत्ता ख्याल में आती है।
- जीवों का मन बन्दर की तरह अत्यन्त चंचल होता है और चंचलता-चपलता संसार की

www.vitragvani.com

जनक होती है। इस मनरूपी बन्दर की चपलता को शान्त करने के लिए पूर्व में हो गये महापुरुषों की भवाजली का वांचन अत्यन्त हितरूप है – ऐसा अनुभव होता है।

- चतुर्थ काल में साक्षात् सर्वज्ञदेव से धर्मात्मा स्वयं भी महापुरुषों के भवों का वर्णन पूछते थे क्योंकि महापुरुषों की पूर्व की महाघोर पापमय और उत्कृष्ट पुण्यमय भवावली सुनकर धर्मात्मा को भी संसार के प्रति उदासीनतापूर्वक पुरुषार्थ की वृद्धि होती थी।

इन कथाओं–पुराण प्रसंगों को वांचन से पुरुषार्थ को और वैराग्य की भावना को अत्यन्त बल मिलता है; इसलिए ही समन्तभद्र जैसे समर्थ आचार्यों ने भी कथाओं को बोधि और समाधि का निधान कहा है।

इन कथाओं के वांचन द्वारा पूज्य गुरुदेव द्वरा प्ररूपित अध्यात्म के मार्मिक सिद्धान्तों का सरलतापूर्वक भावभासन होओ तथा इस दुर्लभ मनुष्य भव में बोधि–समाधि की उपलब्धि होओ और इस प्रकार पूज्य बहिनश्री आदि धर्मात्माओं का सत्समागम चरितार्थपने को प्राप्त होओ – ऐसी भावना के साथ इन गुजराती कथाओं का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत है।

संकलनकार

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

सम्पादकीय

प्रथमानुयोग की अनेक प्रेरक कथाओं के संकलनस्वरूप 'बोधि समाधि निधान' का सम्पादित हिन्दी संस्करण समस्त तत्त्वप्रेमी समाज को समर्पित करते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। वर्तमान शताब्दी में आध्यात्मिक सत्पुरुष जीवनशिल्पी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक उपदेशों को परिपुष्ट करनेवाली ये प्रेरक कथाएँ समस्त साधर्मियों द्वारा बारम्बार अनुशीलन करने योग्य है।

जिनेन्द्र परमात्मा की दिव्यवाणी चार अनुयोगों में विभक्त है, जिनमें से प्रथमानुयोग में संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल और महन्त पुरुषों की आत्मसाधनामयी परिणति का परिज्ञान कराते हुए जीवों को धर्ममार्ग में लगाया जाता है। प्रथमानुयोग में वर्णित भव-भवान्तरों का कथन जहाँ आत्मा की नित्यता को प्रतिबिम्बित करता है, वहीं पूर्व भवों में तीव्र पापभाव करके दुर्गतियों में परिभ्रमण करनेवाला जीव भी, स्वभाव के लक्ष्य से विभावपरिणति का परित्याग करके शाश्वत् परमपद को प्राप्त करता है - यह तथ्य इस बात का परिचायक है कि पाप और पुण्य की विकारी वृत्तियों के समय भी निज सामान्य चैतन्यसत्ता में उन वृत्तियों का प्रवेश नहीं है और वे सभी विकारी वृत्तियाँ मात्र क्षणवर्ती होने से निश्चित ही विनष्ट होने योग्य है - इस परम सत्य का परिचय कराता है।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी भी अपने आध्यात्मिक प्रवचनों में यदाकदा महापुरुषों के जीवन चरित्रों को आधार बनाकर द्रव्यदृष्टि का माहात्म्य बतलाते थे। उनके प्रवचनों के प्रभाव से मुमुक्षु समाज में प्रथमानुयोग के अध्ययन की रुचि भी वृद्धिगत हुई है, जिसका परिणाम प्रस्तुत 'बोधि समाधि निधान' ग्रन्थ का संकलन है। प्रस्तुत संकलन में 27 पुराणों के आधार पर 52 पौराणिक कथाओं का संकलन किया गया है। जो सर्व प्रथम गुजराती में प्रकाशित होकर, अब तक हिन्दी में छह आवृत्तियों के रूप में 21,000 की संख्या में प्रकाशित होकर जन-जन तक पहुँच चुका है। यह प्रस्तुत संकलन पूर्व प्रकाशित हिन्दी संकलन का पुनः सम्पादितरूप है।

इस नवीन सम्पादित संकलन में प्रत्येक कथा का भाव स्पष्ट करने के लिए प्रसंगानुसार

www.vitragvani.com

रेखाचित्रों का प्रयोग किया गया है। सम्पूर्ण संकलन को भाषा की दृष्टि से दोबारा सम्पादित किया गया है। साथ ही प्रसंगानुसार आवश्यक तत्त्वबोधक वचनामृतों का प्रयोग कर उसे आध्यात्मिक दृष्टि से ग्राह्य बनाने का प्रयास किया है। पूर्व संकलन में समागत कथाओं के नामों में आवश्यक परिवर्तन किया गया है तथा लम्बे-लम्बे पैराग्राफ को छोटा-छोटा करके पाठकों के लिए सहज ग्राह्य बनाने का प्रयास किया है।

इस कथा संग्रह में जिन पौराणिक कथाओं का संकलन समायोजित किया गया है, उन सभी ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। महापुरुषों के प्रति भक्ति उत्पन्न करने में कारणभूत अध्यात्ममूर्ति स्वानुभवविभूषित पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रति भी इस अवसर पर हार्दिक विनयांजलि समर्पित करता हूँ।

इस संकलन के गुजराती संकलनकार श्री नागरदास वी. मोदी, श्री उम्मेदराय वी. मोदी, श्री जितेन्द्र एन. मोदी - सम्पादक परिवार गुजराती आत्मधर्म सोनगढ़ के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादन एवं अनुवाद का अवसर प्रदान करने के लिए प्रकाशक परिवार के प्रति भी हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करते हुए बारम्बार ऐसे अवसरों की प्राप्ति की भावना भाता हूँ।

सभी जीव प्रस्तुत ग्रन्थ में समागत पुराण प्रसंगों को पढ़कर अपने जीवन में बोधि समाधि की भावना दृढ़ करते हुए सम्यक् बोधि-समाधि को प्राप्त करें - इसी भावना के साथ।

देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला भीलवाड़ा (राज)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अनुक्रमणिका

1.	पतित से पावन	1
2.	देखो, संसार की विचित्रता!	12
3.	चमत्कार चैतन्य का	20
4.	विराधक बना आराधक	27
5.	मत करो पाप का अनुमोदन	41
6.	पापी से परमात्मा	54
7.	वज्रबाहुकुमार का वैराग्य	58
8.	देशभूषण और कुलभूषण की भवावली	63
9.	निधान मिल गया	74
10.	वीतरागी मुनि नागकुमार	80
11.	सियार चला मुक्ति के मार्ग	84
12.	मुक्ति-साधक धन्यकुमार	88
13.	श्रीराम, लक्ष्मण, सीता आदि के पूर्व भव	109
14.	काम विजयी : सेठ सुदर्शन	123
15.	शालिसिक्य मच्छ के भावों की कथा	133
16.	मोह से मुक्ति की ओर	134
17.	करनी का फल	142
18.	वाली मुनिराज	149
19.	अनुमोदना का उत्तम फल	160
20.	देखो, देखो! विराधना का फल	166
21.	प्रद्युम्नकुमार की कथा	170
22.	देखो, परिणामों की विचित्रता!	184
23.	भरत और त्रेलोक्यमण्डन हाथी की भवावली	187
24.	जल से भिन्न कमल है	197
25.	वीतरागी सन्तों की अकारण करुणा	202
26.	महावीर प्रभु का वैराग्य और पुरुषार्थ प्रेरक कथा	212

www.vitragvani.com

27.	सत्मार्ग का प्रेरक ही सच्चा मित्र	224
28.	राजा दण्डक की कथा	231
29.	वैरभाव दु:खदायी भव-भव	237
30.	चिलातपुत्र	240
31.	उपसर्गजयी कार्तिकेय मुनि	244
32.	मत करो किसी से बैर	248
33.	राजा कीचक और द्रौपदी की भवावली	250
34.	लोभ : पाप का बाप	254
35.	अभयदान का फल	257
36.	शूरवीर सुकौशल मुनिराज की कथा	261
37.	धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि!	268
38.	गुरुदत्त मुनि	274
39.	सीताजी को मिथ्या आक्षेप क्यों?	277
40.	महासती चन्दना पर विपत्तियाँ क्यों?	280
41.	दृढ़शीलवन्त अनन्तमती	283
42.	कसौटी धर्म श्रद्धा की	292
43.	विरक्त चक्रवर्ती श्रीपाल	298
44.	भाव परिवर्तन	303
45.	अंजन बना निरंजन	313
46.	परिग्रह से भयभीत एक परिवार की कथा	318
47.	क्षण भर में बदले परिणाम	320
48.	धिक-धिक जग की स्वारथवृत्ति	327
49.	जिन-प्रतिमा के अनादर का भयंकर फल	332
50.	नाटक में एक जीव के दो स्वांग	336
51.	सुभोम चक्रवर्ती की कथा	345
52.	रात्रि भोजन-त्याग का प्रभाव	347
53.	64 ऋद्धियों का स्वरूप	348

ॐ

परमात्मने नमः

बोधि-समाधि-निधान

(पौराणिक जैन कथाओं का संकलन)

भाग - 1

1 गौतम गणधर का जीवन चरित्र
पतित से पावन

राजगृही नगरी में भगवान महावीर के मौसा राजा श्रेणिक राज्य करते थे। उनमें समुद्र जैसी गम्भीरता, चन्द्रमा के समान सुन्दरता, पर्वत के समान निश्चलता और बृहस्पति के समान बुद्धिमता आदि अनेक निर्मल गुण थे।

एक बार अनेक देशों में बिहार करते हुए अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीरस्वामी विपुलाचल पर्वत के मस्तक पर समवसरणसहित आकर विराजमान हुए। महाराज श्रेणिक को भगवान के पधारने के समाचार मिलते ही वे तुरन्त परिवारसहित समवसरण में गये और भगवान को वन्दन-नमस्कारादि करके धर्म का उपदेश सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। उन्होंने भगवान को हाथ जोड़कर, नमस्कार करके पूछा - 'हे प्रभो! यह गौतमस्वामी कौन है? किस पर्याय से आकर यहाँ जन्म लिया है और इनको किस धर्म के प्रभाव से अनेक लब्धियाँ प्राप्त हुई हैं? कृपा करके यह सब बातें विस्तार से बतलाने का अनुग्रह करें।'

www.vitragvani.com

राजा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर में भगवान जिनेन्द्रदेव की दिव्यध्वनि में गौतमस्वामी के जीवनचरित्र सम्बन्धी जो वर्णन आया, वह इस प्रकार है –

❖ ❖ ❖

इस भरतक्षेत्र में अनेक नगरों से सुशोभित एक अवन्ति नामक देश है। उस देश के राजा का नाम महीचन्द था। एक दिन इस नगरी के उपवन में अङ्गभूषण नाम महामुनिराज पधारे। मुनिराज का आगमन जानकर, राजा महीचन्द अपने रनवास और नगरजनों को साथ लेकर मुनिराज के दर्शन करने के लिए उपवन में गया। उपवन में मुनिराज के दर्शन, पूजन, वन्दन, स्तुति करके, उन मुनिराज के धर्मवृद्धिरूप आशीर्वाद को प्राप्त करके, उनके समीप बैठ गया। उस वन में मुनिराज से धर्मामृत पान करने के लिए विशाल जन समुदाय एकत्रित हुआ था। वहाँ किसी क्षुद्र की तीन कुरूपा कन्याएँ भी शीघ्रता से आकर बैठ गयीं।

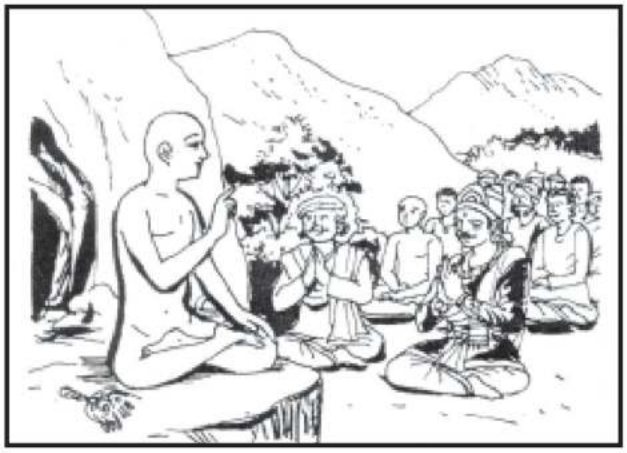

मुनिराज ने अपने धर्मोपदेश में पुण्य, पाप और धर्म तथा उनके फल का विस्तारपूर्वक उपदेश देते हुए कहा – 'हे भव्य प्राणियों! यह आत्मा, ज्ञान और आनन्द का पिण्ड है। स्वभाव से ही सदा शुद्ध एवं पर के सम्बन्ध से रहित चैतन्यमूर्ति है। अपने चैतन्यस्वरूप का विस्मरण करके एवं संयोगरूप में प्राप्त शरीर, स्त्री, पुत्र, धनादिक परद्रव्यों में अपनत्व करके ही संसार की चारों गतियों में परिभ्रमण कर रहा है।

यह अज्ञानी आत्मा कभी परलक्ष्य से पापभाव करके नरक, तिर्यञ्चगति का तो कभी पुण्यभाव करके मनुष्य अथवा देवगति का पात्र बनता है, किन्तु अपने आत्मस्वरूप की श्रद्धा–ज्ञान–चारित्ररूप रत्नत्रय बोधि के अभाव में संसार से परिमुक्त होकर शाश्वत् सिद्धपद को प्राप्त नहीं कर पा रहा है।

हे जीवों! यदि तुम्हें संसार परिभ्रमण का अभाव इष्ट हो तो अपने देह–देवालय में

www.vitragvani.com

विराजमान निज चैतन्य भगवान आत्मा में अपने उपयोग को लगाओ। अपने को जानो, पहिचानो, अपने में ही जम जाओ-रम जाओ – यही सुखी होने का एकमात्र उपाय है।'

मुनिराजश्री के मुखरूपी चन्द्रमा से झरते उपदेशरूपी अमृत का पान करके राजा महीचन्द बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसी जनसमुदाय के बीच क्षुद्र की कन्याएँ भी बैठी थीं, उन पर राजा की नजर पड़ी। उनको देखते ही राजा के नेत्र प्रफुल्लित हो गये, मुख और मन आनन्दित हो गये। यद्यपि वे कन्याएँ दुष्टस्वभावी थी, दीन थी, तीव्र दुःखों से दुःखी थी, काली थी, दयारहित थी, माता-पिता, भाई-बन्धुओं से रहित थीं, फिर भी 'इन्हें देखनेमात्र से मुझे प्रसन्नता क्यों हुई?' – ऐसा भाव उत्पन्न होने पर राजा ने तुरन्त ही मुनिराज से पूछा – 'हे प्रभो! इन क्षुद्र कन्याओं को देखकर मेरे हृदय में अत्यन्त प्रेम क्यों उत्पन्न हो रहा है?'

मुनिराज ने कहा 'हे भव्य! इनके साथ तुम्हारा पूर्व भव का सम्बन्ध था, उसे मैं कहता हूँ, तू ध्यान देकर सुन!'

❖ ❖ ❖

इस भरतक्षेत्र में काशी नामक महाविशाल देश है। जो तीर्थङ्कर परमदेव के पञ्च कल्याणकों सहित अनेक प्रकार की शोभा से सुशोभित है। इस काशी देश में बनारस नामक एक नगर है। उसमें विश्वलोचन नामक राजा राज्य करता था। उस राजा के विशालाक्षी नामक रानी थी, वह इन्द्राणी, रतिदेवी, नागश्री अथवा देवांगनाओं के समान सुन्दर थी। राजा विश्वलोचन को वह रानी अत्यन्त प्रिय थी।

एक दिन रानी विशालाक्षी प्रसन्नता से अपनी चामरी और रङ्गिका नामक दो दासियों के साथ राजमहल के झरोखे में खड़ी हुई थी। राजमार्ग में नाच, गान आदि से सुशोभित एक नाटक चल रहा था, जो समस्त प्रजाजनों के मन को मोहित कर रहा था। उस नाटक को देखते ही रानी विशालाक्षी का मन चञ्चल हो गया। वह अपने हृदय में विचार करने लगी – 'अरे! इस राज्यसुख से मुझे क्या लाभ है? मैं तो एक अपराधी की तरह जेलखाने में बँधी पड़ी हूँ। संसार में वे ही स्त्रियाँ धन्य है, जो अपनी इच्छानुसार जहाँ-तहाँ घूमती हैं, परन्तु मुझे पूर्व पापकर्मोदय से इच्छानुसार घूमने-फिरने का सुख प्राप्त नहीं

www.vitragvani.com

हुआ; अत: अब मैं इच्छानुसार घूमने-फिरनेरूप संसार का फल शीघ्र और सदा के लिए चाहती हूँ। इस विषय में लज्जा मेरा क्या करेगी ?'

इस प्रकार विचार करके रानी ने छल-कपट में अत्यन्त चतुर अपनी दो दासियों को बुलाकर कहा - 'हे दासियों! इच्छानुसार घूमने-फिरने के सुख से तो मनुष्यभव सफल होता है और वह काम-भोग को देनेवाला है। अत: अपने को शीघ्र ही यहाँ से निकलकर इच्छानुसार घूमना-फिरना चाहिए।'

रानी की बात सुनकर दासियाँ कहने लगीं - 'हे स्वामिनी! यह आपने बहुत उत्तम विचार किया है। संसार में मनुष्यजन्म का फल यही है।'

तत्पश्चात् कामवासना से पीड़ित, अन्ध और दुष्ट हृदयवाली, कुलाचाररहित, कुबुद्धि की धारक रानी अपने पापकर्मोदय से उन दोनों दासियों के साथ घर से निकलने का उपाय करने लगी।

झूठ बोलना, दुर्बुद्धि होना, कुटिल हृदय, छल-कपट करना और मूर्खता - यह स्त्रियों के स्वाभाविक गुण हैं। ये सब गुण, रानी में विद्यमान थे ही; अत: रात्रि होते ही उसने रुई भरकर एक स्त्री का पुतला बनाया और उसे वस्त्र तथा गहनों से सुसज्जित करके पूरा-पूरा स्वयं के रूप जैसा बनाकर पलङ्ग पर सुला दिया।

रानी ने द्वारपाल आदि सेवकों को भी वस्त्राभूषण, धन आदि देकर अपने वश में कर लिया। तत्पश्चात् पूर्वकृत पापकर्मोदय से रानी ने दोनों दासियों को साथ लेकर किसी देवी की पूजा के बहाने अर्धरात्रि के समय राजमहल का परित्याग कर दिया। उन सबने सुन्दर वस्त्राभूषण और राज के चिह्नों को त्यागकर, भगवे वस्त्र पहिनकर योगिन का रूप धारण किया। राज्य में मिलनेवाला भोजन तो छूट ही गया, अत: भूख शान्त करने के लिए वे तीनों वृक्ष के फल खाकर अपनी क्षुधा शान्त करने लगीं।

❖ ❖ ❖

जब रात्रि के समय राजा विश्वलोचन अपनी प्रिय रानी के महल में गया, तब रानी को शृङ्गारयुक्तदशा में पलङ्ग पर सोया हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, परन्तु रानी के द्वारा आदर-सत्कार न देखकर विचार करने लगा कि रानी को क्या हुआ ? इसके शरीर में

www.vitragvani.com

कोई रोग हुआ है या अन्य कोई बात है ? इसी चिन्ता में व्याकुल राजा ने पलङ्ग पर बैठकर रानी का स्पर्श किया, तब उसे ज्ञात हुआ कि यह तो रानी का पुतला है। 'रानी का किसी पापी ने हरण कर लिया है' – ऐसा समझकर राजा बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। सेवकों द्वारा शीतोपचार से होश में आने पर राजा, रानी का गुणगान करने लगा –

'हे चन्द्रवती! तू कहाँ गयी ? तेरी रक्षा करनेवाली दोनों दासियाँ कहाँ गयी ? इस महल में तो कोई आ भी नहीं सकता, फिर भी तेरा किस उपाय से हरण कर गया ? या फिर कुल –आचार से रहित दुष्ट तू स्वयं ही नष्ट हो गयी ? **नीच मनुष्यों की सङ्गति से सज्जन भी नष्ट हो जाते हैं।** स्त्री जैसी अन्दर से होती है, वैसी बाहर से नहीं दिखती है और जैसी बाहर से दिखती है, वैसा कार्य नहीं करती है। स्त्रियों के चरित्र को भला कौन जान सकता है ? अहा! समस्त गुणों को धारण करनेवाली रानी अपने दस वर्ष के पुत्र और पटरानी पद को छोड़कर कैसे चली गयी ?' इस प्रकार रानी के वियोग में बहुत समय तक दु:खी होकर राजा मर गया।

राजा के मरणोपरान्त मन्त्री आदि ने उसके पुत्र को राजगद्दी पर बिठाया।

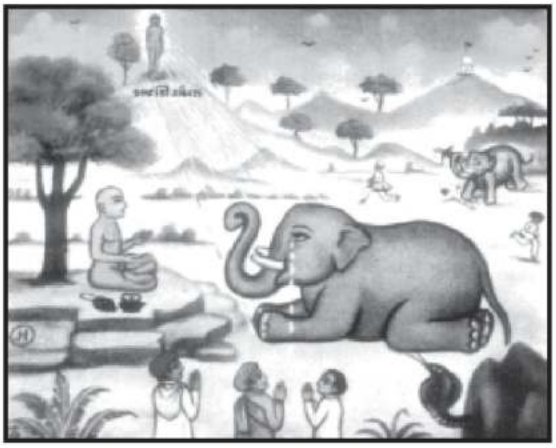

वह राजा का जीव मरकर विशालकाय हाथी हुआ। उसके पुण्योदय से उस वन में एक अवधिज्ञानी मुनिराज पधारे। मुनि ने हाथी को धर्मोपदेश देते हुए कहा – 'हे गजराज! तू ज्ञान और आनन्द का पिण्ड शुद्धात्मा है। यह हाथी का शरीर तो अनन्त पुद्गल परमाणुओं का पिण्ड है, इसके साथ तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। अत: इस शरीर के प्रति एकत्वबुद्धि का परित्याग करके निज चैतन्यसत्ता को देख! सम्यक्त्व को ग्रहण कर! श्रावक के व्रत ग्रहण कर।'

मुनिराजश्री के मुखरूपी चन्द्र से झरते अमृत का सेवन करके हाथी ने श्रावक के व्रत धारण किये और अन्त समय में समाधिमरणपूर्वक मरकर पहले स्वर्ग में देव हुआ।

www.vitragvani.com

स्वर्ग के सुख भोगकर, वहाँ से च्युत होकर तू महीचन्द नाम का उत्तम राजा हुआ है। पूर्व भव के स्नेह से तुझे इन कन्याओं को देखकर अनुराग उत्पन्न हुआ है। हे भव्य! आगे चलकर तेरी मुक्ति होगी।

हे राजा महीचन्द! अब तू इन तीन स्त्रियों की कथा सुन। यह तीनों स्त्रियाँ अपनी इच्छानुसार बहुत प्रसन्नता से अनेक देशों में भ्रमण करने लगी। इन तीनों जोगिनों के साथ अन्य अनेक जोगिनें थी, जो भीख माँग-माँगकर पेट भरती थी। ये जोगिनें हमेशा प्रमाद करनेवाली मदिरा पीती और शरीर को पुष्ट रखने के लिए माँस का भक्षण करती थी। अनेक जीवों से भरे हुए महापाप को उत्पन्न करनेवाले पाँच उदम्बर फलों का सेवन करती थी। तीनों स्त्रियाँ, कामसेवन की इच्छा से प्रसन्न होकर उत्तम अथवा नीच जो मिले, उस पुरुष का सेवन करती थी। लोगों के सामने गीत गाती थी और विचित्र बातें करती थी कि हमको जोग (योग) धारण किये हुए सौ वर्ष बीत चुके हैं।

एक दिन धर्माचार्य नाम के मुनिराज, आहार के लिए ईर्यापथ शुद्धिपूर्वक गमन कर रहे थे। ऐसे श्रेष्ठ मुनि को देखकर तीनों स्त्रियाँ लाल-लाल आँखें करके कहने लगी - 'अरे नग्न घूमनेवाले! हम उज्जैनी नगरी के दयालु राजा के पास धन लेने जा रही थी, किन्तु न जाने किस पाप के उदय से तू हमारे सामने आ गया? तू दुराचारी है। क्या तूने अपनी लज्जा बेच दी है कि स्त्रियों के सामने भी तू नग्न घूमता है? हे मूर्ख योगी! तूने हमारा अपशकुन किया है, इसलिए अब हमारे कार्य की सिद्धि नहीं होगी। अभी तो दिन है, परन्तु इस अपशकुन का फल हम तुझे रात्रि में देंगी।

इस प्रकार इन स्त्रियों के दुष्ट वचन सुनकर भी मुनिराज ने क्रोध नहीं किया। **जैसे, पानी से भरी हुई पृथ्वी पर अग्नि कुछ नहीं कर सकती; उसी प्रकार क्षमाधारी पुरुष के लिए दुष्ट वचन भी कुछ नहीं कर सकता। जिस प्रकार पत्थर का मध्य भाग पानी से कभी नरम नहीं होता, उसी प्रकार योगीश्वरों का निर्मल हृदय, क्रोधाग्नि से कभी नहीं जलता।**

तत्पश्चात् वे तीनों स्त्रियाँ रात्रि के समय मुनिराज के समीप गयीं और क्रोधित होकर अनेक प्रकार के उपद्रव करने लगी। एक तो मुनिराज के समीप आकर रोने लगी;

www.vitragvani.com

दूसरी काम-वासना से पीड़ित होकर मुनि के शरीर से लिपट गयी और तीसरी ने धुआँ करके मुनिराज को बहुत कष्ट दिया। तत्पश्चात् कामज्वर से पीड़ित वे तीनों स्त्रियाँ अनेक प्रकार के कटाक्ष करती हुई मुनिराज के समक्ष नग्न होकर नृत्य करने लगी और पत्थर, लकड़ी, मुक्का, लात, जूता आदि से उन्हें मारने लगीं। उन दुष्टात्माओं ने मुनिराज को बाँध लिया, तथापि मुनिराज चलायमान नहीं हुए। सत्य ही है – क्या प्रलयकाल की वायु से महान मेरुपर्वत चलायमान होता है ?

उस समय इन उदयजन्य बाह्य उपसर्ग की विषम परिस्थिति से अत्यन्त निरपेक्ष रहकर वे मुनिराज अपने हृदय में बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन करने लगे। संसाररूपी समुद्र में डूबे हुए प्राणियों को पार उतारने के लिए अनुप्रेक्षा ही नाव के समान है।

प्रात:काल होने पर इन उपद्रवों को व्यर्थ समझकर तथा मार्ग में आते-जाते लोगों के डर से तीनों स्त्रियाँ भाग गयीं। उन्होंने मुनिराज पर घोर उपसर्ग किया, वह अत्यन्त दु:खदायी था। इस पापकर्म के उदय से तीनों स्त्रियों को कोढ़ हो गया। सभी लोग उनकी निन्दा करने लगे। तीनों स्त्रियाँ कोढ़ के रोग से हमेशा महा दु:खी रहती थी। आयु समाप्त होने पर रौद्रध्यानपूर्वक मरकर तीनों स्त्रियाँ पाँचवें नरक में उत्पन्न हुई और नरक के असहनीय दु:खों को भोगने लगी। नरक की आयु पूर्ण होने पर तीनों ने एक समान ही कर्मबन्ध किया होने से तीनों जीव क्रमश: बिल्ली, सुअरी, कुत्ती और मुर्गी की योनियों में उत्पन्न हुए, वहाँ भी वे जीवों की हिंसा करती, आपस में लड़ती-झगड़ती, घर-घर फिरती और मनुष्यों को मारकर खाती रही।

अन्त में आयु पूर्ण होने पर तीनों मुर्गियाँ बहुत ही दु:खी होकर मरकर धर्मस्थानों से सुशोभित अवन्तिदेश के बगल में हल्के लोगों की बस्ती में किसी एक परिवार में कन्याएँ हुई। इनके गर्भ में आते ही धनादि नष्ट हो गया, जन्म होते ही माता मर गयी। तीनों में एक

www.vitragvani.com

कानी, एक लंगड़ी और एक काली थी। वे मुनियों पर घोर उपसर्ग के पाप से हमेशा दु:खी रहा करती थी। इनके शरीर, अङ्ग-उपाङ्ग बेडोल थे। रोग की दुर्गन्ध से नगर में जाते ही सम्पूर्ण नगर में अत्यन्त दुर्गन्ध फैल जाती थी। तीनों कन्याएँ तीव्र भूख-प्यास से पीड़ित थी। दुराचार करने में हमेशा तत्पर ऐसी ये तीनों कन्याएँ विदेश पर्यटन के लिए निकली थी। रास्ते में सदा आपस में लड़ती-झगड़ती अनेक नगरों में भ्रमण करती, माँगती, खाती अनुक्रम से इन नगर में आई है। यद्यपि इनके शरीर अत्यन्त ही मलिन है, तथापि इन्होंने प्रसन्नचित्त होकर मुनिराज के पास आकर वन्दन किया है। जिस प्रकार बादलों की गर्जना सुनकर मयूर प्रसन्न होता है, उसी प्रकार मुनिराज के मुख से अपना भूतकाल सुनकर तीनों कन्याएँ पश्चातापपूर्वक प्रसन्न हुई हैं।

तत्पश्चात् संसार के दु:खों से भयभीत ये तीनों कन्याएँ, मुनिराज को भक्ति से नमस्कार एवं स्तुति करके प्रार्थना करने लगी – 'हे प्रभो! हे स्वामिन्!! इस संसाररूप अपार समुद्र में डूबे हुए समस्त प्राणियों को पार लगाने के लिए आप जहाज के समान हैं। पूर्व भव में हमने जो घोर पाप किया था, कृपा करके उसके नाश का कोई उपाय बताओ।'

मुनिराज उन कन्याओं के शुभ वचन सुनकर तथा उन्हें निकट भव्य समझकर मीठी वाणी से कहने लगे – 'हे पुत्रियों! आत्मा तो सदा काल सुख सम्पन्न ही है परन्तु इस जीव ने अनादि काल से पर में सुख की कल्पना कर रखी है। अपने निज सुख की उसे आज तक उपलब्धि नहीं हुई; अत: तुम अब पर से सुख की चाह मिटाकर अपने सुख को ही उपलब्ध करने हेतु लब्धिविधान करो, अर्थात् क्षयोपशम, विशुद्धिलब्धिपूर्वक देशनालब्धि द्वारा प्रायोग्यलब्धि में प्रवेश कर करणलब्धि द्वारा मिथ्यात्व का नाश कर सम्यक्त्व प्राप्त करो। सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावक के व्रत अङ्गीकार करो। यह व्रत कर्मरूपी शत्रुओं को नाश करनेवाला है और संसाररूपी समुद्र से पार उतारनेवाला है।'

उन कन्याओं ने मुनिराज के उपदेशानुसार श्रावकों की मदद से तत्त्वज्ञान का अभ्यास कर भेदविज्ञान की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित करके मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय को मिटानेवाली लब्धि (करणलब्धि) प्राप्त की। इस प्रकार लब्धिविधान व्रत का उद्यापन कर, श्रावकों के व्रत धारण किये, शीलव्रत धारण किया और अन्त समय में

www.vitragvani.com

समाधिमरण को धारण करके मृत्यु को प्राप्त हुईं। यहाँ से पाँचवें स्वर्ग में जाकर स्त्रीलिङ्ग का छेद करके प्रभावशाली देव हुईं और स्वर्ग में उत्तम प्रकार के भोग भोगे।

❖ ❖ ❖

इस भरतक्षेत्र में मगधदेश में ब्राह्मण नाम का नगर है। उसमें एक शाण्डिल्य नाम का धनी गुणवान ब्राह्मण था। उसकी स्थंडिला नाम की रूपवती, सौभाग्यशाली स्त्री थी। स्वर्ग में जो बड़ा देव (रानी का जीव) था, वह आकर उनके यहाँ गौतम नाम का पुत्र हुआ और दूसरा देव भी स्थंडिला के ही गार्ग्य नाम का पुत्र हुआ; तीसरा देव भी उसी ब्राह्मण की दूसरी पत्नी के उदर से भार्गव नाम का पुत्र हुआ। जैसे, कुन्ती के पुत्र पाण्डवों के बीच परस्पर अत्यन्त प्रेम था, इसी प्रकार इन तीनों भाईयों में अत्यन्त प्रेम था। तीनों भाईयों ने ब्राह्मणों की समस्त क्रिया पढ़ ली थी। तीनों में गौतम सबसे बड़ा था, वह समस्त शास्त्रों का ज्ञानवान था। गौतम ब्रह्मशाला में पाँच सौ शिष्यों का सुविख्यात उपाध्याय था।

❖ ❖ ❖

उसी समय भगवान महावीरस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवों ने आकर समवसरण की रचना की। भगवान सिंहासन पर विराजमान हुए, परन्तु छियासठ दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरी। यह देखकर सौधर्म इन्द्र ने अवधिज्ञान से देखा कि यदि गौतम यहाँ जा जाए तो भगवान की दिव्यध्वनि खिरेगी। यह विचार करके इन्द्र ने स्वयं ही एक अतिशय वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया और लकड़ी के सहारे धीमें-धीमें चलते हुए गौतम के समीप आया और बोला – 'हे विद्वान्! संसार में अपना पेट भरनेवाले तो बहुत हैं, परन्तु इस काव्य का अर्थ करनेवाले इस पृथ्वी पर कोई विरल पुरुष होंगे? मेरे गुरु इस समय आत्मध्यान में लीन है; अत: अभी मुझे कुछ नहीं बता सकते; इसलिए मैं इस काव्य का अर्थ समझने के लिए आपके पास आया हूँ।'

उसके उत्तर में गौतम ने कहा – 'हे ब्राह्मण! तुम अपने काव्य का बहुत अभिमान करते हो। यदि मैं इस काव्य का अर्थ कर दूँ तो तुम मुझे क्या दोगे?'

वृद्ध ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र ने कहा – 'यदि तुम मेरे काव्य का अर्थ कर दोगे तो मैं सबके सामने तुम्हारा शिष्य बन जाऊँगा और यदि तुम अर्थ नहीं बता सको तो अपने समस्त अभिमानी शिष्यों और दोनों भाईयों के साथ आकर मेरे गुरु के शिष्य बन जाओ।'

www.vitragvani.com

गौतम ने कहा – 'हाँ, मुझे यह बात स्वीकार है।'

इन्द्र ने गौतम से काव्यरूप में पूछा – 'द्रव्य कितने हैं ? तत्त्व कितने ? अस्तिकाय कितने हैं ? धर्म के कितने भेद हैं ? श्रुतज्ञान के अङ्ग कितने है ?'

ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र का काव्य सुनकर गौतम थोड़ा दु:खी हुआ और मन में विचार करने लगा कि इस काव्य का क्या अर्थ कहूँ ? फिर गौतम ने विचारकर वृद्ध ब्राह्मण से कहा कि 'चलूँ ! तेरे गुरु से विवाद करुँ।' इस प्रकार कहकर सब इन्द्र के साथ चलने लगे। मार्ग में गौतम ने विचार किया कि जब मैं इस वृद्ध के प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका, तब इसके गुरु तो महान विद्वान होंगे, उनको उत्तर मैं किस प्रकार दूँगा ?

इन्द्र, गौतम को अपने गुरु के पास समवसरण में ले जाकर सन्तुष्ट हुआ। जिसने अपनी शोभा द्वारा तीनों लोकों में आश्चर्य उत्पन्न किया है – ऐसे मानस्तम्भ को देखकर गौतम ने अपना सब अभिमान त्याग दिया। उन्होंने मन में विचार किया कि जिस गुरु के सम्पूर्ण पृथ्वी में आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली इतनी विभूति है, क्या वे मुझसे पराजित हो सकते हैं ? बिल्कुल नहीं।

तत्पश्चात् आगे जाकर वीर प्रभु के दर्शन करके गौतम अनेक प्रकार से स्तुति करने लगे तथा पाँच सौ शिष्यों और दोनों भाईयों के साथ जिनेश्वरी दीक्षा अङ्गीकार कर ली। वीरनाथ भगवान के समवसरण में चार ज्ञान से सुशोभित ऐसे गौतम (इन्द्रभूति) अग्निभूति, वायुभूति आदि ग्यारह गणधर हुए और वीरनाथ की दिव्यध्वनि खिरने लगी।

तपश्चरण करते–करते एक दिन गौतम मुनिराज एकान्त प्रासुक स्थान में विराजमान होंगे और निश्चल ध्यान में लीन होकर त्रेसठ प्रकृतियों को नष्ट करके कार्तिक बुद अमावस्या के दिन सायंकाल केवलज्ञान प्राप्त करके तेरहवें गुणस्थान में विराजमान होंगे।

❖ ❖ ❖

अहो ! गौतम स्वामी का जीव पहले विश्वलोचन महाराज की पटरानी होकर दुराचारी, विषय लम्पटी, माँसभक्षी, मुनिनिन्दक, मुनिहिंसक, रौद्रध्यानी, नरकगामी हुआ और नरक में से निकलकर बिल्ली, सुअरी, कुत्ती, मुर्गी, और कानी, लंगड़ी, कुबड़ी क्षुद्र कन्या हुई; भीख माँगती–माँगती मुनिराज के दर्शन और उपदेश से व्रतादि धारण करके

www.vitragvani.com

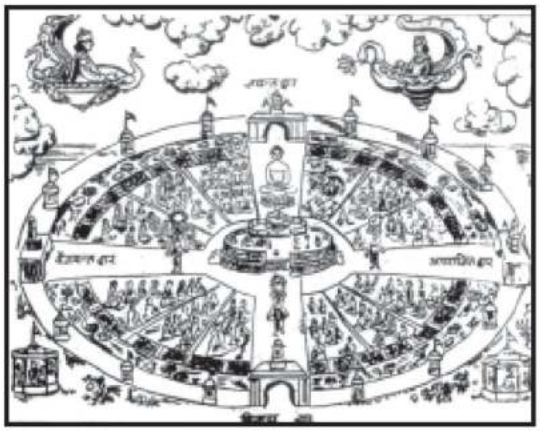

समाधिमरणपूर्वक स्त्रीलिङ्ग का छेद करके पाँचवे स्वर्ग में उत्तम देव हुआ और वहाँ से आकर ब्राह्मण कुल में पैदा होकर वेद-वेदान्त में पारङ्गत हुआ; तत्पश्चात् इन्द्र के माध्यम से समवसरण में गया, मानस्तम्भ को देखकर मान गलित हुआ तथा दीक्षा अङ्गीकार करके चार ज्ञान प्रगट करके अन्तर्मुहूर्त में बारह अङ्ग चौदह पूर्व की रचना करनेवाले गणधर पद को प्राप्त किया, आगे क्रमशः केवलज्ञान प्रगट करेंगे।

हे श्रेणिक! इस प्रकार गौतम गणधर के अशुभ-शुभ और शुद्धपरिणाम तथा उसका फल तुझे बताया। जो भव्य जीव, आत्मा की शुद्धता को जानते हैं और उसका विश्वास करते हैं, आनन्द की अनुभूति में लीन रहते हैं, वे जीव, संसार भ्रमण से छूटकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

(- गौतमस्वामी चरित्र से)

प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनि का भावलिङ्ग

अहा! मुनिदशा कैसी होती है? उसका विचार तो करो! छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले वे मुनि, स्वरूप में गुप्त हो गये होते हैं। **प्रचुर स्वसम्वेदन ही मुनि का भावलिङ्ग है और शरीर की नग्नता-वस्त्रपात्ररहित निर्ग्रन्थदशा, वह उनका द्रव्यलिङ्ग है।** उनको अपवाद-व्रतादि का शुभराग आता है, किन्तु वस्त्रग्रहण का अथवा अधःकर्म तथा औद्देशिक आहार लेने का भाव नहीं होता।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, जिणसासणं सव्वं, २१४, पृष्ठ १३०

2 देखो, संसार की विचित्रता!

बलभद्र, बासुदेव और उनके मोक्षगामी तीन युगल बन्धुओं की वैराग्य प्रेरक कथा

वासुदेव, भगवान नेमिनाथ के पिता राजा समुद्रविजय के छोटे भाई थे। एक बार उन्होंने अपनी सहधर्मिणी देवकी के साथ चारणऋद्धिधारी अवधिज्ञानी मुनिराज श्रीअतिमुक्तस्वामी को भक्तिभावपूर्वक वन्दन करके / नमस्कार करके, देवकी के होनेवाले पुत्रों की कंस के द्वारा मृत्यु सम्बन्धी शङ्का का समाधान करने के लिए पूछा। उसके उत्तर में मुनिराज ने कहा – हे भव्य! देवकी के होनेवाले पुत्रों की मृत्यु कंस के द्वारा नहीं होगी। मैं इस सम्बन्ध में जो सत्य है, वह कहता हूँ, उसे तुम ध्यान देकर सुनो!

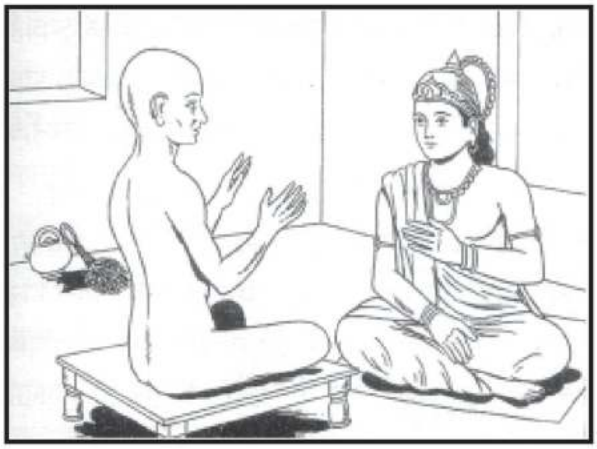

देवकी का सातवाँ पुत्र नौवें नारायण के रूप में जन्म लेगा, और वह तीन खण्ड के राज्य का स्वामी होगा। उससे बड़े छह भाई तद्भव मोक्षगामी होंगे। उनकी मृत्यु कंस के द्वारा नहीं होगी; इसलिए तुम चिन्ता मत करो। सात पुत्र तो देवकी के होंगे और एक पुत्र रोहिणी के होगा, जो कि बलभद्र होगा। मैं इन सबके पूर्व भव तुम्हें कहता हूँ, वह तुम सुनो। उनके पूर्व भव का वृत्तान्त तुम्हारे मन को आनन्दकारी होने के साथ-साथ वैराग्य एवं आत्महित की प्रेरणा देनेवाला भी है।

❖ ❖ ❖

www.vitragvani.com

बहुत समय पूर्व इस मथुरा नगरी में राजा सूरसेन राज्य करते थे। उनके राज्य में एक भानु नाम का सेठ बारह करोड़ द्रव्य का स्वामी था। उसकी पत्नी का नाम यमुना था। उसके सुभानु आदि सात पुत्र थे। भानु सेठ को संसार से वैराग्य होने पर वह अभयनन्दि मुनिराज के समीप दीक्षा लेकर मुनि हो गये और सेठानी यमुना भी जिनदत्ता आर्यिका के समीप आर्यिका हो गयी।

भानु सेठ के दीक्षित होने के पश्चात् उसके सुभानु आदि सातों पुत्र, जुआ और वैश्यागमन आदि के व्यसनी हो जाने से पिता द्वारा प्रदत्त समस्त द्रव्य नष्ट हो गया। द्रव्य नष्ट हो जाने से सातों भाई चोरी करने के लिए उज्जैनी नगर में गये। सुभानु का सबसे छोटा भाई सूरसेन था। उसे महाकाल नामक श्मशान में कुल, सन्तान की रक्षा के लिए रखकर सुभानु आदि छह भाई चोरी करने के लिए नगरी में गये और छोटे भाई सूरसेन से कह गये कि यदि चोरी करते हुए हम मर जाएँ तो तू यहाँ से भाग जाना और यदि हम सकुशल वापस आ गये तो चोरी करने से जो द्रव्य आयेगा, उसमें से तुझे बराबर का हिस्सा देंगे। ऐसा कहकर छहों भाई चोरी करने चले गये और सातवाँ छोटा भाई सूरसेन श्मशान में बैठ गया। उसी समय संसार की विचित्रता का दर्शक एक प्रसङ्ग बना –

❖ ❖ ❖

उज्जैनी नगरी का राजा वृषभध्वज था। उसके राज्य में दृष्टिमुष्टि नाम का महायोद्धा था, उसकी पत्नी का नाम वप्रश्री था। उनके वज्रमुष्टि नाम का पुत्र था, जिसका विवाह राजा विमलचन्द्र की मङ्गी नाम की पुत्री के साथ हुआ था। मङ्गी अपने पति वज्रमुष्टि को बहुत प्रिय थी। मङ्गी अपनी सास की सेवा में प्रमादी थी, इस कारण उसकी सास का चित्त कलुषित रहता था; अत: सास ऐसा उपाय सोचती थी कि किसी प्रकार मेरा पुत्र अपनी पत्नी मङ्गी से विरक्त हो जाए अथवा मङ्गी मर जाए।

एक बार बसन्तऋतु के उत्सव में वज्रमुष्टि वन में क्रीड़ा करने गया, तब उपयुक्त अवसर जानकर मङ्गी की सास ने घड़े में सर्प रखकर कपटपूर्वक मङ्गी से कहा – 'हे बहू! इस घड़े में मोती की माला है, तू उसे निकालकर पहिन।'

मङ्गी ने मोती की माला लेने के लिए ज्यों ही घड़े में हाथ डाला तो तुरन्त उसे सर्प

www.vitragvani.com

ने डस लिया, जिससे वह मूर्च्छित हो गयी। उसकी सास ने सेवकों को आज्ञा दी कि मङ्गी को श्माशान में डाल आओ। सेवक आज्ञानुसार मङ्गी को महाकाल श्मशान में डाल आया। तत्पश्चात् रात्रि में मङ्गी का पति वज्रमुष्टि घर आया और अपनी प्राणप्रिया मङ्गी को सर्प डसने आदि के समाचार जानकर अत्यन्त दु:खी हुआ। वह तुरन्त एक हाथ में नङ्गी तलवार और एक हाथ में दीपक लेकर महाकाल श्मशान में मङ्गी को खोजने चल पड़ा।

महाकाल श्मशान में उस रात्रि वरधर्म नाम के मुनिराज प्रतिमायोग धारण करके विराजमान थे, उन्हें देखकर वज्रमुष्टि अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा की तथा नमस्कार करके कहने लगा – 'हे पूज्यपाद! यदि मेरी प्रिया मुझे मिल जाए तो मैं सहस्रदल कमल पुष्प से आपकी पूजा करूँगा।'

अरे रे! जगत् के अज्ञानीजनों के अज्ञान को धिक्कार है!! वे मुक्तिप्रदाता वीतरागी सन्त से भी विषय-कषायों की प्राप्ति की ही अपेक्षा रखते हैं।

वज्रमुष्टि को खोजते-खोजते अपनी पत्नी मिल गयी; अत: वह उसे मूर्च्छित अवस्था में उठाकर मुनिराज के चरणों के समीप ले गया। मुनिराज, ऋद्धिधारक थे, उनके प्रभाव से मङ्गी निर्विष हो गयी। वज्रमुष्टि अपनी स्त्री को निर्विष जानकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे मुनिराज के समीप बैठाकर वह सुदर्शन नामक सरोवर में से सहस्रदल कमल लेने के लिए चला गया; साथ ही मङ्गी से कह गया कि जहाँ तक मैं नही आऊँ, वहाँ तक तुम मुनिराज के समीप ही बैठना।

मङ्गी, मुनिराज के समीप बैठी है और उसका पति सहस्रदस कमल लेने के लिए सरोवर की तरफ गया है। इस श्मशान में रहा हुआ चोर सूरसेन, जो कि चोरों का सातवाँ भाई है वह, वज्रमुष्टि का मङ्गी पर अधिक स्नेह देखकर मन में विचारने लगा कि पति को तो पत्नी के प्रति प्रीति में कमी नहीं है, परन्तु पत्नी को पति के प्रति कैसी प्रीति है, यह तो जरा देखूँ – ऐसा विचारकर उसकी परीक्षा लेने के लिए उसने अपना रूप उस स्त्री को बताया। महारूपवान सूरसेन चोर मीठे वचनों से उसके साथ बातचीन करने लगा।

मङ्गी, सूरसेन चोर का रूप देखकर और मीठे वचन सुनकर कामाग्नि से विह्वल होकर कहने लगी – 'हे देव! कृपा करके मुझे अङ्गीकार करो।'

www.vitragvani.com

तब सूरसेन चोर ने कहा – 'हे भद्रे! तेरा पति महा बलवान योद्धा है, इस कारण मैं उससे डरता हूँ।'

तब वह स्त्री बोली कि 'हे नाथ! तुम भय मत करो। मैं अपने पति को तलवार से मार दूँगी।'

मङ्गी की ऐसी निष्ठुरतायुक्त बात सुनकर सूरसेन ने कहा – 'यदि तुम अपने पति को मार दोगी तो मैं तुम्हें अङ्गीकार करूँगा।' – ऐसा कहकर वह चोर उस स्त्री का कार्य देखने के लिए छिपकर बैठ गया।

मङ्गी का पति वज्रमुष्टि, सरोवर में से कमल लाकर मुनिराज को चढ़ाकर नमस्कार कर रहा था, तभी मङ्गी पीछे से अपने पति को तलवार से मारने जा रही थी, उस समय तुरन्त ही चोर सूरसेन ने उस स्त्री का हाथ पकड़कर वज्रमुष्टि को बचा लिया और स्वयं छिप गया। इस प्रसङ्ग को देखकर सूरसेन का चित्त संसार से विरक्त हो गया। मङ्गी अपना दोष छिपाने के लिए मूर्च्छा खाकर गिर पड़ी। यह देखकर वज्रमुष्टि ने कहा – 'हे प्रिये! तू डर कैसे गयी? यहाँ भय का कोई कारण नहीं है। ऐसा कहकर, धैर्य बँधाकर, मुनिराज को वन्दन करके, पत्नी को साथ लेकर वह अपने घर चला गया।

❖ ❖ ❖

सूरसेन चोर के जो छह भाई चोरी करने नगर में गये थे, वे चोरी करके बहुत-सा द्रव्य लाये और उसके सात भाग करके अपने छोटे भाई सूरसेन से कहा – 'हे भाई! तू अपना भाग ले ले।'

सूरसेन ने अपना भाग नहीं लिया और कहा – 'संसारी जीव, स्त्री-पुत्रादिक के लिए धन उपार्जित करता है, परन्तु स्त्री की चेष्टा तो मैंने अभी-अभी प्रत्यक्ष देखी है।' बड़े भाई सुभानु आदि ने पूछा कि 'हे बन्धु! तूने क्या देखा है?' उत्तर में सूरसेन ने वज्रमुष्टि और मङ्गी का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। संसार की स्वार्थवृत्ति का जघन्यतमरूप सुनकर सातों भाई संसार में विरक्त हो गये। आत्मकल्याण की भावना से वे सभी वरधर्म मुनि के समीप जिनदीक्षा अङ्गीकार करके मुनि हो गये।

कितने ही दिनों के पश्चात् वे सातों मुनि, गुरु के साथ उज्जैनी आये। वज्रमुष्टि ने उन्हें देखा और उनको कम उम्र में वैराग्य होने का कारणभूत अपनी स्त्री का वृतान्त सुनकर

www.vitragvani.com

वह भी संसार से विरक्त होकर मुनि हो गया। सूरसेन आदि सातों भाईयों की स्त्रियाँ भी अपनी पति को संसार से विरक्त जानकर जिनदत्ता आर्यिका के समीप दीक्षित होकर आर्यिका हो गयी थीं, वे भी एक बार उज्जैन नगरी में आईं। मङ्गी भी उनके वैराग्य का वृत्तान्त जानकर संसार का निन्द्य समझकर अपने दुष्चरित्र की निन्दा करती हुई, गृहत्याग करके आर्यिका हो गयी। ये सभी महातप करके प्रथम स्वर्ग में एक सागर की आयुवाले देव हुए।

❖ ❖ ❖

धातकीखण्ड के भरतक्षेत्र में नित्यलोक नामक नगर में चित्रचूल राजा की मनोहारी रानी के सातों भाईयों में से बड़ा भाई सुभानु का जीव प्रथम स्वर्ग में आकर चित्राङ्गद नामक पुत्र हुआ और छहों भाई भी उन्हीं माता-पिता के यहाँ तीन युगल पुत्र हुए। इस प्रकार यहाँ भी सातों भाईयों ने भाईरूप से ही जन्म लिया। सातों भाई महारूपवान एवं समस्त विद्याओं के पारगामी, मनुष्यों के शिरोमणि हुए।

❖ ❖ ❖

मेघपुर नामक नगर का राजा धनञ्जय था, उसकी धनश्री नाम की रूपवान पुत्री पृथ्वी में प्रसिद्ध थी। उसके विवाह हेतु आयोजित स्वयंवर में समस्त विद्याधरकुमार आये थे। कन्या धनश्री ने अपने मामा के पुत्र हरिवाहन के गले में वरमाला पहिनाई, इसे देखकर समस्त राजा क्रोधयुक्त हो गये। वे कहने लगे – 'यदि धनश्री को हरिवाहन को ही वरमाला पहनानी थी तो हम सबको किसलिए बुलाया गया?' इस प्रकार क्रोध से कन्या के लिए वे सभी राजा परस्पर लड़ने लगे और उस युद्ध में अनेक सामन्तों का नाश हुआ।

इस प्रसङ्ग को देखकर राजा चित्रचूल के सातों राजकुमारों ने विषयों को पाप का कारण जानकर, विरक्त होकर भूतानन्द केवली के समीप मुनिव्रत धारण किया और सातों भाई, स्वरूप-आराधना करके चौथे स्वर्ग में सात सागर की आयुवाले देव हुए। स्वर्ग का सुख भोगकर, वहाँ से चयकर चित्राङ्गद नाम का बड़ा भाई भरतक्षेत्र के हस्तिनापुर में सेठ श्रीतवाहन की पत्नी बन्धुमति के शंख नाम का पुत्र हुआ और छोटे छह भाईयों ने भी उसी नगरी के राजा गङ्गदेव की रानी नन्दियशा के तीन युगल पुत्रों के रूप में जन्म लिया।

रानी नन्दियशा के चौथे गर्भ धारण में सातवाँ पुत्र निर्नामिक आया, वह आगामी

www.vitragvani.com

जन्म में होनहार कृष्ण है। वह माता नन्दियशा का पूर्व भव का विरोधी था; अत: वह गर्भ में आया तभी से राजा को रानी अरुचिकर हो गयी; इस कारण (उसने) पुत्र को जन्मते ही छोड़ दिया। उस पुत्र का पालन रेवती नामक धाय ने किया। जब वह बड़ा हुआ, तब श्रेष्ठीपुत्र शंख के और इस निर्नामिक के स्नेह बढ़ गया, क्योंकि शंख तो होनहार बलभद्र और निर्नामिक होनहार कृष्ण नारायण है।

एक दिन निर्नामिक, शंख के साथ मनोहर नामक उद्यान में गया। वहाँ निर्नामिक के छहों भाई भोजन कर रहे थे, उन्हें शंख ने कहा – 'यह तुम्हारा छोटा भाई है, इसे क्यों नहीं बुलाते ?' शंख के यह वचन सुनकर छहों बड़े भाईयों ने निर्नामिक को बुलाया और प्रेमपूर्वक साथ में भोजन कराने लगे। माता नन्दियशा ने यह सब देख लिया और क्रोध में आकर उसने निर्नामिक को लात मारकर उठा दिया, इससे निर्नामिक को बहुत दु:ख हुआ और शंख भी खेदखिन्न हुआ। वह निर्नामिक को लेकर द्रुमसेन नामक अवधिज्ञानी मुनिराज के पास गया और उनसे निर्नामिक के पूर्व भव के सम्बन्ध में पूछा।

❖ ❖ ❖

मुनिराज ने निर्नामिक के पूर्व भव के विषय में बताते हुए कहा – गिरिनार नाम के नगर का राजा चित्ररथ राज्य करता था। वह कुबुद्धियों के सङ्ग माँसाहारी हो गया। उसके अमृत-रसायन नाम का रसोइया था, वह माँस की रसोई बनाने की विधि में प्रवीण था; इस कारण राजा ने उस पर प्रसन्न होकर दस गाँव भेंट कर दिये थे।

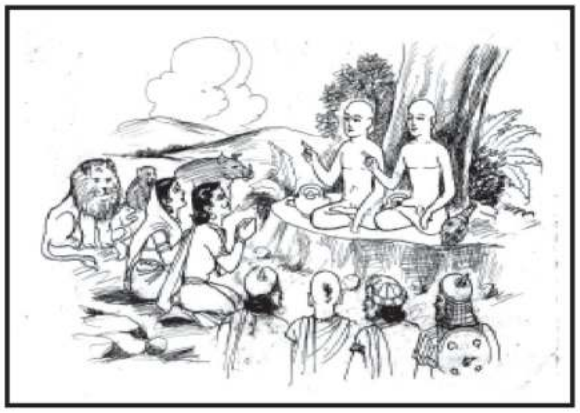

एक दिन राजा ने सुधर्म नामक मुनि से धर्म श्रवण करके, माँस के दोष जानकर, अपनी निन्दा करके अपने मेघरथ नाम के पुत्र को राज्य देकर तीन सौ राजाओं के साथ मुनि हो गया। मेघरथ, श्रावकव्रतों का धारक था। उसने 'रसोइया ने मेरे पिता को अभक्ष्य भोजन कराया है' – ऐसा जानकर, क्रोधित होकर दिये हुए दस गाँवों में से नौ गाँव

www.vitragvani.com

वापस छीन लिये। इससे रसोईया ने मुनि के प्रति वैरभाव कर लिया कि मुनि ने मेरी आजीविका हर ली है।

इसलिए उसने बनावटी पक्का श्रावक बनकर मुनि को विषमय कड़बी तुम्बी का आहार दिया। फलत: मुनि, समाधिमरण करके अपराजित विमान में बत्तीस सारग की स्थितिवाले अहमिन्द्र हुए और रसोईया मरकर तीसरे नरक गया। वहाँ तीन सागर तक नरक के तीव्र दु:ख भोगकर, वहाँ से निकल कर तिर्यञ्चगतिरूप वन में बहुत भ्रमण करके, मलय नाम के देश के पलाश गाँव में यक्षदत्त के यहाँ यक्षलिक नाम का पुत्र हुआ।

एक बार यक्षलिक, माल की गाड़ी भरकर अपने छोटे भाई के साथ जा रहा था। रास्ते में एक सर्पिणी थी। छोटे भाई के बारम्बार मना करने पर भी बड़े भाई यक्षलिक ने सर्पिणी के ऊपर गाड़ी चला दी, जिससे उसकी देह छूट गयी और वह महादु:ख से अकामनिर्जरा करके मरण को प्राप्त हुई और वहाँ से श्वेताविक नाम की नगरी में वासव राजा की रानी वसुन्दरी के नन्दियशा नाम की पुत्री हुई, जिसका विवाह राजा गङ्गदेव से हुआ है।

कितने ही दिन पश्चात् यक्षलिक मरकर रानी नन्दियशा के निर्नामिक नाम का पुत्र हुआ – इस कारण पूर्व भव के विरोध से नन्दियशा, पुत्र निर्नामिक के प्रति द्वेष रखती है।

मुनिराज के द्वारा यह कथा सुनकर राजा गङ्गदेव आदि सब संसार से विरक्त हो गये, उन्होंने अपने देवनन्दि पुत्र को राज्यादि सौंपकर, दो सौ राजाओं के साथ मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली। साथ ही उनके छहों पुत्र और निर्नामिक तथा श्रेष्ठीपुत्र शंखादि भी मुनि हुए। रानी नन्दियशा, रेवती धाय और बन्धुमति सेठानी भी आर्यिका हो गयी।

निर्नामिक मुनि ने उग्र तप करके नारायण पद का निदान किया और वह तप के प्रभाव से समाधिमरण करके स्वर्ग में गया। कितने ही समय पश्चात् स्वर्ग से चयकर रेवती धाय का जीव भद्रलपुर में सुदृष्टि नामक सेठ की अलङ्का नामक स्त्री हुई; रानी नन्दियशा का जीव देवकी हुई और गङ्ग आदि पूर्व भव के छहों पुत्र स्वर्ग से आकर इस भव में भी देवकी के तीन युगल पुत्र होंगे और वे तद्भव मोक्षागामी, गुण के समुद्र होंगे। अलङ्का नामक सेठानी के तीन मृतक युगल पुत्र होंगे। इन्द्र की आज्ञा से देव, अलङ्का के यहाँ

www.vitragvani.com

देवकी के तीन युगल पुत्र को ले जाएगा और अलङ्का के मृतक तीन युगल पुत्र यहाँ लायेगा। तेरे पुत्र भद्रलपुर में सुदृष्टि सेठ के घर अलङ्का सेठानी के यहाँ युवा होंगे और नेमीनाथ जिनेश्वर के शिष्य होकर वे तीनों युगल मुनि तेरे घर भिक्षा / आहार के लिये आयेंगे। उनके प्रति तुझे पुत्रवत् स्नेह उत्पन्न होगा। वे छहों महामुनि उग्र तप करके कर्मों का अभाव करके उसी भव में सिद्धिधाम पधारेंगे। सात चोर भाईयों में से बड़ा भाई सुभानु-श्रेष्ठीपुत्र शंख, रोहिणी का पुत्र बलभद्र होगा और माँस भक्षक, मुनिहिंसक रसोईया, अर्थात् निर्नामिक का जीव, देवकी का सातवाँ पुत्र श्रीकृष्ण नारायण होगा।

इस प्रकार वासुदेव अपने तीन युगल पुत्रों, बलदेव, वासुदेव और देवकी के पूर्व भव का सम्बन्ध आदि अतिमुक्तक मुनि के द्वारा सुनकर परम हर्षित होकर मुनिराज को बारम्बार वन्दन और स्तुति करके अपने घर गये।

अहो! आश्चर्य है कि सप्त व्यसनों के व्यसनी सात चोर भाई, स्त्री-चरित्र का निमित्त पाकर मुनिराज के धर्मोपदेश द्वारा आत्मोन्नति के मार्ग में प्रयाण करते हैं। अहो! देखो तो सही! पूर्व भव में सङ्कल्पपूर्वक नागिन को गाड़ी के नीचे दबाकर मार देनेवाला श्रीकृष्ण का जीव मरकर उसी नागिन के जीव / रानी के गर्भ से पुत्र होकर जन्मा। क्रोध से जिस नागिन के जीव को मारा, वही माता बनी और वही जो पूर्व भव में मुनिराज को कड़वी तुम्बी का आहार कराकर मुनि हिंसा करनेवाला माँसभक्षी रसोइया था, वह कृष्ण का जीव भविष्य में तीर्थङ्कर होगा।

परम पूज्य गुरुदेवश्री फरमाते हैं कि पूर्व का महापापी जीव भी अनन्त शक्ति से परिपूर्ण ज्ञायकस्वभाव की महिमा लाकर स्वभावसन्मुख दृष्टि करके भगवान बन जाता है।

(- श्री हरिवंशपुराण के आधार से सार-संक्षेप)

3 जयकुमार सुलोचना का जीवन प्रसङ्ग
चमत्कार चैतन्य का

हस्तिनापुर के महाराजा सोमप्रभ का पुत्र जयकुमार, भरत चक्रवर्ती का धर्मी और शूरवीर सेनापति था। एक दिन जयकुमार अपनी रानी सुलोचना के साथ परिवारजनोंसहित महल की छत पर बैठा हुआ था। उन्होंने ऊपर आकाश में उड़ते हुए एक कबूतर-कबूतरी को देखा, जिसे देखते ही जयकुमार के मुख से – 'हा! प्रभावती तू कहाँ है ?' यह शब्द निकले और उसे मूर्च्छा आ गयी, जिससे वह बेहोश हो गया।

सुलोचना को भी उन कबूतर-कबूतरी को देखते ही जातिस्मरणज्ञान हुआ और वह भी – 'हा! मेरा रतिकर कहाँ है ?' इन शब्दों को बोलकर मूर्च्छित हो गयी। जब वे दोनों होश में आये, तब अपने पति की आज्ञा मानकर, रानी सुलोचना ने अपने पूर्व भवों का वर्णन परिवारजनों के सामने इस प्रकार किया –

❖ ❖ ❖

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्पकलावती नाम का देश है। उसमें मृणालवती नगरी के राजा सुकेतु थे। उस नगरी में रतिवर्मा नाम का सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम कनकश्री और पुत्र का नाम भवदेव था। भवदेव, चरित्रहीन था। उसी नगरी में श्रीदत्त नाम का सेठ रहता था, उसकी पत्नी का नाम विमलश्री और पुत्री का नाम रतिवेगा था। अशोकदेव नाम का एक तीसरा सेठ भी वहाँ रहता था, उसकी पत्नी का नाम जिनदत्ता और पुत्र का नाम सुकान्त था। सुकान्त हमेशा धर्मकार्यों में रचा-पचा रहता था। भवदेव के माता-पिता ने रतिवेगा के माता-पिता के समक्ष भवदेव के साथ रतिवेगा के विवाह का प्रस्ताव रखा, जिसके फलस्वरूप दोनों पक्ष सहमत हुए।

www.vitragvani.com

एक बार भवदेव धन कमाने की इच्छा से परदेश जा रहा था। उस समय उसने अपने श्वसुर श्रीदत्त सेठ से कहा – 'हे तात! मैं बारह वर्ष तक वापस नहीं जाऊँ तो तुम रतिवेगा का विवाह अन्यत्र कर सकते हो।' कर्मसंयोग से हुआ भी ऐसा ही। अत: बारह वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् श्रीदत्त सेठ ने रतिवेगा का विवाह अशोक सेठ के पुत्र सुकान्त के साथ विधिपूर्वक कर दिया। तत्पश्चात् जब भवदेव परदेश से वापस आया और उसने सारा वृतान्त सुना तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ, उसने सुकान्त और रतिवेगा को मार डालने का निर्णय लिया।

यह बात जानकर भय के मारे सुकान्त और रतिवेगा वन में चले गये। वहाँ एक सुन्दर सरोवर था। उस सरोवर पर शक्तिषेण नाम का राजा ठहरा हुआ था। वे दोनों शक्तिषेण की शरण में पहुँच गये और निर्भय होकर रहने लगे। उन दोनों के महान पुण्योदय से वहाँ भी एक चारणऋद्धिधारक मुनिराज आहार के लिए पधारे। राजा शक्तिषेण ने प्रसन्नचित्त से नवधाभक्तिपूर्वक मुनिराज को आहार दिया तथा पूजा-भक्तिपूर्वक उनका सम्मान किया। इस विधि को देखकर दोनों दम्पति अत्यन्त हर्षित हुए और अनित्यादि बारह भावनाओं का चिन्तवन करते-करते, मन में दयाभाव धारण करके वहीं अपना समय व्यतीत करने लगे।

एक बार अवसर मिलते ही दुष्ट भवदेव ने वहाँ आकर दोंनो दम्पतियों को जलाकर मार डाला और राजा शक्तिषेण के सुभटों ने दुष्ट भवदेव को मार डाला। इसलिए कहावत है कि जो दूसरों के लिए कुआँ खोदता है, उसके लिए पहले से ही कुआँ तैयार रहता है।

❖ ❖ ❖

पूर्व विदेह की पुण्डरीकिणी नगरी में प्रजापाल नाम का राजा राज्य करता था और वहाँ एक कुबेरमित्र नाम का सेठ भी रहता था। उस सेठ की बत्तीस स्त्रियों में धनवती नाम की सेठानी सबसे मुख्य थी। इस सेठ के घर सुकान्त का जीव, रतिकर नाम का कबूतर और रतिवेगा का जीव, रतिसेना नाम की कबूतरी हुई। यह दोनों कबूतर-कबूतरी सेठ के घर में आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे।

एक बार ऋद्धिधारी मुनिराज आकाशमार्ग से गमन करते हुए सेठ के यहाँ आहार

www.vitragvani.com

के लिए पधारे। उन्हें देखकर सेठ –सेठानी के हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ। उन्होंने शुद्धभाव से मुनिराज का पड़गाहन करके, नवधाभक्तिपूर्वक आहारदान दिया। उस समय कबूतर–कबूतरी के जीव ने भी भक्तिभाव से मुनिराज के चरण कमलों के दर्शन किये ओर पंख फैलाकर चरणों का स्पर्श किया। मुनिराज के दर्शनमात्र से ही दोनों को अपनी पूर्व भव का जातिस्मरणज्ञान हो गया और उन्होंने आहारदान की बहुत अनुमोदना की, जिसके प्रभाव से उनके महान पुण्य का बन्ध हुआ।

एक बार वे दोनों कबूतर–कबूतरी, दाना चुगने के लिए दूसरे गाँव में गये। वहाँ पर उनके पूर्व भव का शत्रु भवदेव का जीव मरकर बिल्ली हुआ था, वह क्रोधावेश से इन दोनों को मारकर खा गया। इसलिए ज्ञानियों का कहना है कि कभी भी किसी के साथ वैरभाव मत करो, यह वैरभाव ही भव–भवान्तर में जीव को दु:ख देनेवाला है।

❖ ❖ ❖

विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में गङ्गाधर देश की शींखली नामक सुन्दर नगरी का राजा आदित्यगति और रानी शशिप्रभा थे। रतिकर नाम का कबूतर (सुकान्त का जीव) मरकर उन राजा–रानी का हिरण्यवर्मा नाम का पुत्र हुआ। विजयार्द्ध की उत्तर श्रेणी के गौरी देश के भोगपुर नाम की नगरी के विद्याधर राजा वायुधर की स्वर्णप्रभा नाम की रानी थी। उसके गर्भ से वह रतिसेना नाम की कबूतरी (रतिवेगा का जीव) प्रभावती नाम की पुत्री हुई। युवावस्था होने पर प्रभावती का विवाह हिरण्यवर्मा के साथ हुआ। योनानुयोग अमुक दिनों के पश्चात् प्रभावती ने एक कबूतर के जोड़े को उड़ते देखा और उसे देखते ही प्रभावती को अपने पूर्व भव की याद आ गयी। तत्पश्चात् एक दिन प्रभावती और हिरण्यवर्मा ने एक चारण ऋद्धिधारी मुनि के समीप जाकर अपने पूर्व भव का वृतान्त सुना। जिसे सुनकर अपने पूर्व भव सम्बन्धी ज्ञान होने पर उन दम्पति में अत्यन्त गाढ़ी प्रीति हो गयी।

❖ ❖ ❖

www.vitragvani.com

किसी समय किसी वैराग्य प्रसङ्ग को प्राप्त करके हिरण्यवर्मा, संसार-शरीर और भोगों से विरक्त हो गया और अपने पुत्र को राज्य सौंपकर स्वयं ने जिनदीक्षा धारण कर ली। अपने पति को दीक्षित होते देखकर प्रभावती ने भी गुणवती आर्यिका के समीप आर्यिका व्रत धारण कर लिये।

कुछ दिनों के बाद गुणवती आर्यिका के साथ प्रभावती ने वहाँ से विहार किया और विहार करते-करते पुण्डरिकिणी नगरी में आ पहुँची। वहाँ प्रभावती को देखकर धनवती सेठानी ने गुणवती आर्यिका से पूछा – 'हे माता! यह कौन है, जिसे देखकर मेरे हृदय में स्नेह उत्पन्न हो रहा है? और इसका कारण क्या है? – वह मुझे बताओ।'

सेठानी के वचन सुनकर स्वयं प्रभावती ने कहा – 'हे देवी! क्या तुम्हें अपने घर में रहनेवाले कबूतर युगल याद नहीं? याद करो, मैं तुम्हारे घर में रतिसेना नाम की कबूतरी थी।'

यह बात सुनकर सेठानी को बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसने पूछा कि रतिकर कबूतर कहाँ है? उत्तर में प्रभावती ने कहा – 'वह भी मरकर विद्याधरों का राजा हिरण्यवर्मा हुआ है, परन्तु अब मुनिदीक्षा धारण करके विहार करते-करते इस नगरी में आये हैं। सेठानी ने मुनि के पास जाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और तत्पश्चात् प्रभावती के उपदेश से सेठानी भी आर्यिका हो गयी।'

एक बार मुनिराज हिरण्यवर्मा ने सात दिन तक श्मशान में प्रतिमा आसन से योग धारण किया। वहाँ दुष्ट बिलाड़ा (भवदेव का जीव) विद्युतचोर ने सेठानी की दासी के मुँह से इन मुनिराज के पूर्व भवों का वृतान्त सुना था, इसलिए विभङ्गावधि से मुनिराज को श्मशान में ध्यानस्थ जानकर वह विद्युतचोर वहाँ आया और मुनिराज हिरण्यवर्मा व अर्यिका प्रभावती को जलती चिता में एक साथ फेंक दिया। उस समय वे दोनों अग्नि के तीव्र ताप के परीषह से शुद्ध और समताभावों से प्राण त्यागकर अपने पुण्य-प्रताप से स्वर्ग

www.vitragvani.com

में ऊँची जाति के देव हुए। जब राजा को इस दुष्कृत्य का पता चला तो राजा ने विद्युतचोर को मार डालने की आज्ञा दे दी। दोनों देव-देवी ने अवधिज्ञान से राजा का यह विचार जानकर, राजा को समझाया और शान्त कर दिया।

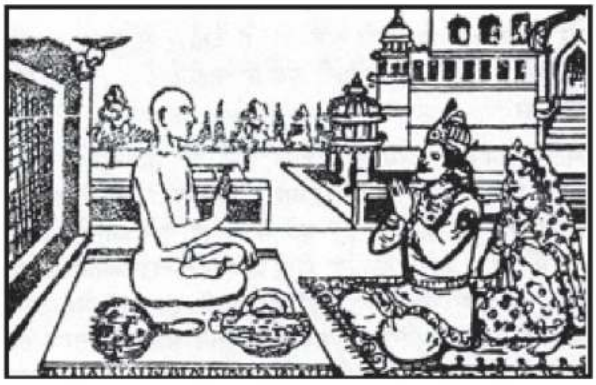

कुछ समय व्यतीत होने पर एक बार वे दोनों देव-देवी फिर से वहाँ आये और उन्होंने महामुनि भीम को देखकर नमस्कार किया, उनसे धर्मोपदेश सुना। तत्पश्चात् देव ने कहा – 'हे स्वामिन! आपके इस छोटी उम्र में दीक्षा लेने का कारण क्या है ?'

उसके उत्तर में मुनिराज ने कहा – 'मैं इस पुण्डरीकिणी नगरी में एक दरिद्र कुल में जन्मा था। मेरा नाम भीम है। एक बार अवसर मिलने पर मैंने एक मुनिराज से धर्म का उपदेश सुना। उस समय मुझे जातिस्मरण ज्ञान हो गया था। जिससे मुझे अपनी पूर्व भव की सब बातों का पता चल गया। मैं विचार करने लगा कि –

● मैं अपने पहले भव में भवदेव नाम का वैश्य पुत्र था, उस भव में मैंने रतिवेगा और सुकान्त को मार दिया।

● तत्पश्चात् जब वे मरकर कबूतर-कबूतरी हुए, तब मैं बिल्ली बनकर पूर्व भव के द्वेषवश उन्हें मार दिया।

● तत्पश्चात् वे हिरण्यवर्मा और प्रभावती हुए, तब मैं विद्युतचोर बना और जब वे दोनों मुनि-आर्यिका के वेश में थे, तब मैंने उन्हें जलती हुई चिता में जला दिया। इस महापाप के कारण महादु:खों का स्थान जो नरक है, वहाँ मैं गया और अनेक प्रकार के भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि के महान कष्ट सहन करने पड़े। नरक में से निकलकर मुझे संसारचक्र में जो चक्कर लगाने पड़े, उससे मेरा आत्मा इतना संक्लेशित हो गया कि उसका शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। उसी समय मैं विरक्त होकर दिगम्बर साधु हो गया।'

www.vitragvani.com

इस विचित्र कथा को सुनकर इस देवयुगल को बहुत आश्चर्य हुआ और उन्हें अवधिज्ञान द्वारा समस्त बातें स्पष्टरूप से ज्ञात हो गयीं – 'हे प्रभु! जिनको आपने पहले कितनी ही बार मारा है, वे दोनों हम ही हैं' – ऐसा कहकर उन्होंने भीममुनि की वन्दना की और दोनों स्वर्ग में वापस चले गये। वहाँ महामुनि भीम ने बारह भावनाओं का चिन्तवन करके, कठिन तपश्चर्या करके केवलज्ञान प्राप्त किया और घाति-अघाति कर्मों का नाश करके मोक्षपद प्राप्त किया।

अहा! देखो, भव-भव में बैर के परिणाम धारण करके मनुष्य जीव को मारा, कबूतर के जीव को मारा और मुनि-आर्यिका को जिन्दा जला दिया – ऐसे पापी भवदेव के जीव ने भी क्षणभर में संसार के दु:ख से विरक्त होकर द्रव्यदृष्टि के बल से आत्मध्यान लगाकर, इन जयकुमार और सुलोचना के जीव के पूर्व ही, भीम महामुनि होकर मोक्ष प्राप्त कर लिया। अहा! वस्तुस्वरूप की अगाध महिमा का क्या कहना! भव-भव में अन्य जीवों को मारनेवाला, स्वयं उनके पूर्व मोक्ष चला गया। यह सब निर्दोष त्रिकाली चैतन्य सामान्य स्वभाव के आश्रय का ही प्रताप है।

❖ ❖ ❖

इस सम्पूर्ण वृतान्त का समापन करते हुए सुलोचना अपने स्वामी / पति जयकुमार को याद दिलाती है – हे नाथ! उस समय हम महामुनि भीम की वन्दना करके स्वर्ग में चले गये थे और स्वर्ग के सुख भोगकर, स्वर्ग से चयकर आप राजा सोमप्रभ के पुत्र कुमार जयदेव हुए और मैं राजा अकम्पन की पुत्री सुलोचना हुई हूँ। यही कारण है कि कबूतरों के जोड़े को देखकर अपने को जातिस्मरणज्ञान भी हो गया है। इस प्रकार अपने पूर्व भवों की कथा सुनकर वे दम्पति और उनके परिवारजन अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

❖ ❖ ❖

एक बार अनेक राजाओं द्वारा पूजित राजा जयकुमार का चित्त संसार की क्षणभङ्गुरता की तरफ गया और इतना वैराग्यचित्त हो गया कि उन्होंने संसार को एकदम अनित्य समझकर जिनदीक्षा धारण करने का निर्णय कर लिया। अपने निर्णयानुसार वे श्री आदिनाथस्वामी के समवसरण में पहुँचे। भगवान के श्रीमुख से धर्म श्रवण करते-करते, संसार शरीर और भोगों से विरक्त होकर दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली तथा थोड़े ही दिनों

www.vitragvani.com

में आदिनाथस्वामी के बहत्तरवें (72 वें) गणधर बनकर घातिकर्मों का नाश करके, केवलज्ञानी बन गये। सुलोचना भी आर्यिका व्रत धारणकर स्वर्ग में गयी और वहाँ से आकर मनुष्य होकर मुक्ति प्राप्त करेगी।

इस कथा से हमें यह बोध प्राप्त होता है कि एक समय के पापपरिणाम से पूर्णत: आत्मतत्त्व पापी नहीं हो जाता। पापपरिणाम के काल में भी निज शुद्ध चैतन्यसत्ता तो पाप के अभावस्वभावरूप विद्यमान है। उस शुद्ध चैतन्यसत्ता का अवलम्बन लेनेवाला जीव, पर्याय में पवित्रता प्रगट कर परमात्मा बन सकता है। इसलिए पात्र आत्मार्थी जीवों को स्वयं को एवं पर को भी पर्यायदृष्टि से देखने की आदत का परित्याग करके सबको द्रव्यस्वभाव से ही देखने की आदत डालना चाहिए। सम्यग्दर्शन एवं वीतरागता की प्राप्ति का यही एकमात्र उपाय है।●● *(- आदिपुराण भाग 2 में से)*

जङ्गल में भी मुनिराज परम सुखी

किसी को ऐसा लगे कि जङ्गल में मुनिराज को अकेले कैसे अच्छा लगता होगा? **अरे भाई! जङ्गल के बीच निजानन्द में झूलते मुनिराज तो परम सुखी हैं; जगत के राग-द्वेष का शोरगुल वहाँ नहीं है।** किसी परवस्तु के साथ आत्मा का मिलन ही नहीं है, इसलिए पर के सम्बन्ध बिना आत्मा स्वयमेव अकेला आप अपने में परम सुखी है। पर के सम्बन्ध में आत्मा को सुख हो –ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने ऐसे आत्मा का अनुभव करते हैं और उसी को उपादेय मानते हैं। *- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, गुरुदेवश्री के वचनामृत, १७६, पृष्ठ १०९*

4 उअशोक-रोहिणी की कथा
विराधक बना आराधक

एक बार विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर प्रभु का समवसरण आया, उसमें महावीर प्रभु गणधरों के साथ विराजमान थे। यह समाचार भगवान महावीर के मौसा राजा श्रेणिक को प्राप्त होते ही वे तुरन्त समवसरण में गये और भगवान महावीर को नमस्कार-स्तुति आदि करके वासूपूज्य भगवान के गणधर अमृताश्रव का (अशोक का) चरित्र जानने की अभिलाषा व्यक्त की और उत्सुकतापूर्वक भगवान का उत्तर सुनने लगे।

भगवान कहते हैं कि - हे राजन्! इस देश में हस्तिनापुर नाम का सुन्दर नगर है। उसमें बीतशोक नाम का महागुणवान राजा राज्य करता था। उसकी विद्युतप्रभा नाम की सुन्दर और गुणवान रानी थी। इन दोनों के अशोक नामक गुणवान पुत्र था।

उसी समय चम्पा नाम की एक नगरी थी। उसके राजा का नाम मधवा था। उसकी श्रीमती नाम की रानी थी। उनके आठ पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्री का नाम रोहिणी था। रोहिणी गुणवान और रूपवती युवती थी। एक बार वह अष्टाह्निका पर्व में उपवास करके, उत्साह से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके, जिनधर्मी साधुओं को नमस्कार करके सभाभवन में बैठे हुए माता-पिता आदि के समीप आई। पिता ने स्नेहवश पुत्री रोहिणी को गोद में बिठाया। पिता, पुत्री को युवा हुई देखकर विचारने लगा कि 'इस रूपवान कन्या को इसी के समान रूपवान किस वर को प्रदान करूँ?'

राजा ने अपने मन्त्रियों को बुलाया और जब कन्या के लिए वर खोजने के विषय में चर्चा की, तब मन्त्री ने कहा - 'हे राजन! इस सुन्दर कन्या को इसके

www.vitragvani.com

योग्य वर शोधने के लिए स्वयंवर मण्डप का अयोजन करके कन्या की पसन्द के योग्य वर से उसका विवाह करना उचित होगा।' यह बात राजा को रुचिकर प्रतीत हुई; अत: देश-विदेश के राजकुमारों को आमन्त्रण भेजे गये। अनेक राजकुमार चम्पानगरी में आ पहुँचे। उनके लिए उचित आसन और खान-पान की व्यवस्था की गयी, साथ ही मणिमय सिंहासन संग्रहीत कर सभामण्डप तैयार किया गया।

सभी राजकुमार सभामण्डप में आकर अपने-अपने आसन स्थान पर विराजमान हो गये। रोहिणी भी बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित होकर अपनी दासियोंसहित सभामण्डप में आ पहुँची। रोहिणी का रूप देखते ही, 'मानो साक्षात् इन्द्राणी हो' - ऐसा लगने से समस्त राजकुमार उसे उत्सुकता से टकटकी लगाकर देख रहे थे। दासी एक-एक राजकुमार का परिचय देती हुई आगे बढ़ती जा रही थी किन्तु रोहिणी का मन किसी राजकुमार पर नहीं ठहरता था। आगे बढ़ती हुए दासी ने कहा -

'हे स्वामिनी! यह बीतशोक राजा का पुत्र अशोक है, जो समस्त गुणों का सागर है। इसका रूप सहज ही कामदेव को पराजित करनेवाला है, मानो किसी देव अथवा विद्याधर जैसा रूप है।' रोहिणी ने कुमार अशोक के रूप-गुण से प्रभावित होकर तुरन्त ही अशोककुमार को वरमाला पहना दी।

रोहिणी के पिता ने अशोककुमार के साथ उसका विवाह निश्चित कर दिया और अशोककुमार ने जिनेन्द्र भगवान की महामह पूजा करके, मङ्गल मुहूर्त में राजकुमारी के साथ विवाह किया। तत्पश्चात् कितने ही समय तक अपने श्वसुर के यहाँ ही रहे।

कुछ समय पश्चात् अशोक-रोहिणी ने अपने हस्तिनापुर नगर में आकर माता-पिता आदि परिवारजनों को प्रणाम किया। एक दिन पिता बीतशोक को उल्कापात देखकर वैराग्य भावना जागृत हुई। उन्होंने पुत्र अशोक को राजगद्दी पर बैठाकर जिनदीक्षा अङ्गीकार कर ली और उग्र तप करके कर्म नाश कर मुक्तावस्था को प्राप्त किया। पिता के दीक्षित होने पर अशोककुमार को हुआ शोक कुछ दिनों में दूर हुआ और उसने भले प्रकार राज्यभार सम्भाल लिया।

❖ ❖ ❖

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

कालान्तर में रोहिणी के सुन्दर आठ पुत्र और चार पुत्रियाँ हुई। उनमें से सबसे छोटे पुत्र का नाम लोकपाल था। एक बार अशोक-रोहिणी अपने समस्त पुत्र-पुत्रियों के साथ राजमहल की छत पर बैठे हुए, मीठी-मीठी आनन्दकारी बातें कर रहे थे। इतने में रोहिणी ने नीचे गली में देखा कि अनेक स्त्रियाँ बालों को बिखेरकर घेरा बनाकर छाती कूटती हुई रुदन कर रही थी, आक्रन्द कर रही थी। यह देखकर रोहिणी को आश्चर्य हुआ कि यह किस प्रकार का नाटक-गान-तान है? मुझे तो बहत्तर कलाओं का ज्ञान है परन्तु उनमें तो मैंने ऐसा नाटक-गान-तान देखा नहीं है; इस कारण उसने विस्मयतापूर्वक दासी से पूछा - 'हे भद्रे! यह किस प्रकार का नाटक अथवा गान-तान है?'

दासी ने रोहिणी का भोलापन देखकर कहा - 'पुत्री! यह नाटक अथवा गान-तान नहीं, परन्तु कुछ दु:खी जीव, दु:ख और शोक मना रहे हैं।'

रोहिणी फिर पूछती है - 'दु:ख और शोक क्या वस्तु है?'

रोहिणी का ऐसा प्रश्न सुनकर गुस्से में आकर दासी बोली - 'हे सुन्दरी! तुझे उन्माद हुआ है। सत्य है, पाण्डित्य और ऐश्वर्य ऐसा ही होता है। अरे! क्या तुझे लोकातिशयी सौभाग्य है कि तू दु:ख और शोक क्या है - यह भी नहीं जानती और स्वर व भाषा को अलंकृत कर नाटक-नाटक बक रही है। क्या तुम इसी क्षण इस धरती पर जन्म ले रही हो?'

दासी बसन्ततिलका की क्रोधपूर्ण बात सुनकर रोहिणी कहने लगी - 'हे भद्रे! तू मुझ पर क्रोध न कर, मेरे लिए आज भी यह प्रसङ्ग अदृष्ट और अश्रुत है; इसी कारण मैंने आपसे प्रश्न किया है, इसमें अहङ्कार की कोई बात नहीं है।'

तब दासी कहती है - 'हे वत्स! यह नाटक, प्रयोग अथवा सङ्गीत स्वर नहीं है परन्तु इष्ट बन्धु की मृत्यु से रोनेवाले को जो दु:ख होता है, उसे शोक कहते हैं।'

रोहिणी फिर से पूछती है - 'हे भद्रे! मैं रुदन का अर्थ भी नहीं जानती; अत: रुदन का क्या अर्थ है, यह बता।'

रोहिणी का यह प्रश्न पूरा होते ही राजा अशोक ने कहा कि 'शोक से जो

www.vitragvani.com

रुदन होता है, उसका अर्थ मैं तुझे बताता हूँ' – ऐसा कहकर उसने छोटे लोकपालकुमार को रोहिणी के हाथ से खींचकर छत से नीचे डाला, तब रोहिणी को बहुत ही दु:ख और शोक हुआ। कुमार लोकपाल को तो देवियों ने आकर फूल की तरह झेल लिया और अभिषेक आदि से लोकपाल का सम्मान करके देवियाँ चली गयीं।

❖ ❖ ❖

एक बार हस्तिनापुर में रूपकुमम और स्वर्णकुमम नामक दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों का शुभागमन हुआ। मुनियों के आगमन से अत्यन्त हर्षित वनपाल ने राजा को यह शुभ समाचार दिये। समाचार सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने परिवारसहित वन में जाकर भक्तिपूर्वक मुनिराज की वन्दना की। तत्पश्चात् अवधिज्ञानी रूपकुमम मुनिराज से विनयपूर्वक प्रश्न किया – 'हे महाराज! मैंने और मेरी रानी रोहिणी ने पूर्व भव में प्राणियों पर दया करनेवाले किस प्रकार के उत्तम धर्म का सेवन किया था, वह कृपा करके बतलाओ।'

उत्तर स्वरूप मुनिराज ने कहा 'हे भव्य! इस हस्तिनापुर में पहले वसुपाल नाम का राजा था, उसकी रानी का नाम वसुमति था, उसका भाई धनमित्र था जो कि राजसेठ था, उसके पूतिगन्धा नामक एक कन्या थी। पूतिगन्धा के शरीर में से मरे हुए कोढ़ी कुत्ते के शरीर की दुर्गन्ध जैसी भीषण दुर्गन्ध निकलती थी, इस कारण आकाश भी दुर्गन्धमय हो जाता था।

उसी नगर में एक वसुमित्र नाम का धनवान सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम वसुमति था। उन दोनों के श्रीषेण नाम का पुत्र था, वह सप्त व्यसनी, महापापी था। एक बार उसको चोरी करते हुए कोतवाल ने पकड़ लिया और उसे मजबूत

www.vitragvani.com

साँकल में बाँधकर नगर में घूमा रहा था। उसी समय पूतिगन्धा के पिता ने श्रीषेण से कहा कि – 'यदि तुम मेरी पुत्री के साथ विवाह करो तो मैं तुम्हें इन बन्धन से छुड़ा दूँगा।'

मार के भय से त्रसित श्रीषेण ने कहा – 'हे मामा! यदि तुम मुझे छुड़ाओगे तो मैं तुम्हारी पुत्री के साथ विवाह करुँगा।'

पूतिगन्धा के पिता ने राजा से प्रार्थना करके श्रीषेण को बन्धनमुक्त करा दिया और पूतिगन्धा से उसका विवाह कर दिया। विवाहोपरान्त पूतिगन्धा की उसकी दुर्गन्ध के कारण वह एक रात्रि भी उसके साथ नहीं रह सका; इस कारण प्रात:काल होते ही उसे छोड़कर चल दिया। इस घटना से व्यथित हुई पूतिगन्धा दीन-हीन होकर पिता के घर में अपने दिन व्यतीत करने लगी।

एक बार पिहितास्रव नामक चारणऋद्धिधारक मुनिराज संघसहित नगरी में पधारे। उनके आगमन के समाचार मिलते ही राजा आदि सब मुनि-वन्दना करने के लिए वन में गये। उनके साथ पूतिगन्धा भी अपने माता-पिता के साथ मुनि वन्दना के लिए गयी। पूतिगन्धा ने मुनिराज की वन्दना करके उपदेश सुनने के पश्चात् विनय से प्रश्न किया – 'हे प्रभु! मुझे अपने पूर्व भव का वह वृत्तान्त बताओ, जिसके कारण में पूतिगन्धा होकर महान दु:ख भोग रही हूँ।'

मुनिराज महान वैराग्य को उत्पन्न करनेवाली पूतिगन्धा के पूर्व भव की बात बताते हुए कहने लगे – 'हे पुत्री! मैं तुझे दुर्गन्धमयी शरीर की प्राप्ति का कारण बताता हूँ, तू उसे ध्यान देकर सुन!

❖ ❖ ❖

भरतक्षेत्र में सौराष्ट्र नाम के देश में गिरनार नाम का एक नगर था। उसके राजा का नाम भूपाल था और वह विशुद्ध सम्यग्दृष्टि था। उस राजा के राज्य में एक गङ्गदत्त नाम का सेठ था, उसकी पत्नी का नाम सिन्धुमति था। सिन्धुमति को अपने रूप-यौवन-विलास आदि का बहुत गर्व था।

एक बार अनेक महिनों के उपवासी समाधिगुप्त मुनिराज पारणा के लिए निकले

www.vitragvani.com

थे। उस समय राजा के साथ वन में जा रहे गङ्गदत्त सेठ ने मुनि को अपने घर की तरफ आते देखकर अपनी पत्नी से कहा – 'हे प्रिये! मुनिराज आहार के लिये पधार रहे हैं, तुम उन्हें विधिपूर्वक आहार देने के बाद वन में आ जाना।'

पति के कहने से सिन्धुमति वापिस तो लौट गयी, परन्तु उसे मन ही मन बहुत ही क्रोध आ गया। वह मुनिराज का पड़गाहन करके अपने घर में गयी और भैंस के लिए बनाये हुए खूब मीठा आदि डाले हुए खाने के साथ कड़वी तुम्बी मिलाकर देने को तैयार हुई। उसकी दासी द्वारा बहुत रोके जाने पर भी उसने क्रोध से मुनिराज को वह आहार दे दिया। मुनिराज ने हमेशा के लिए आहार का प्रत्याख्यान लेकर, समाधिमरणपूर्वक आराधनाओं का आराधन करके देवपर्याय को धारण किया।

जब राजा वन में से वापस आये और उन्हें ज्ञात हुआ कि गङ्गदत्त की पत्नी सिन्धुमति ने कड़वी तुम्बी का आहार देकर मुनिराज की हत्या की है तो उन्होंने क्रोधित होकर सिन्धुमति का सिर मुण्डवाकर गधे पर बैठाकर उस दुराचारिणी को मारते-मारते समस्त नगरजनों को दिखाने के लिए नगर में घुमाया। तत्पश्चात् पापोदय से सिन्धुमति को उदम्बर कोढ़ हो गया और सातवें दिन वह मरकर छठवें नरक में बाईस सागर की आयुष्य की धारक नारकी हुई। तत्पश्चात् सिंहनी होकर सातों नरकों में परिभ्रमण किया। वहाँ से निकलकर दो बार तिर्यञ्चगति में कुत्ती हुई, सूकरी हुई, सियालनी हुई, चुहिया हुई, हथिनी हुई, गधी हुई और फिर वैश्या होकर, इस भव में दु:खों से परिपूर्ण दुर्गन्ध शरीरवाली और परिवारजनों से निन्दनीय तू पूतिगन्धा हुई है।'

मुनिराज के मुख से पूर्व भव की कथा सुनकर पूतिगन्धा का मन संसार में अतिविरक्त हो गया और उसने मुनिराज से पूछा – 'भगवान! आप कृपा करके बताओ कि मैं पूर्व में किये हुए पापकर्मों से किस पुण्य कार्य से छूटूँगी?'

पूतिगन्धा की विनती सुनकर करुणासागर मुनिराज ने कहा –'बेटा! यदि तू वास्तव में संसार के दु:खों से छूटना चाहती हो और सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के

www.vitragvani.com

प्रति प्रीति चाहती हो तो रोहिणी नक्षत्र में उपवास कर! इससे तू फिर से दु:खों को प्राप्त नहीं करेगी।'

तत्पश्चात् मुनिराज ने उसे रोहिणी नक्षत्र में उपवास की विधि बताई, तद्नुसार स्वीकार करते हुए भक्तिरस से प्रसन्न होती पूतिगन्धा की आँखों में आँसू आ गये।

पूतिगन्धा ने पुन: पूछा – 'भगवान! मेरी ही तरह अन्य किसी ने रोहिणी व्रत का अनुष्ठान किया हो तो कृपा करके कहो।'

उत्तर में मुनिराज ने कहा – 'हे पुत्री! समस्त दु:खों को दूर करनेवाले इस व्रत का विधान पूतिगन्धकुमार ने बहुत ही उत्साह से पालन किया है, उसकी कथा इस प्रकार है –

❖ ❖ ❖

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में शटकपुर नाम के देश के सिंहपुर नागर में सिंहसेन राजा के पुत्र पूतिगन्धकुमार को तेरी तरह ही शरीर में बहुत दुर्गन्ध निकलती थी।

एक बार विमलवाहन मुनिराज को केवलज्ञान प्रगट होने पर देवतागण आकाशमार्ग के केवलज्ञान कल्याणक का उत्सव मनाने जा रहे थे। उस समय पूतिगन्धकुमार राजभवन के शिखर पर बैठे थे। उन्होंने प्रभा से शोभित देवकुमारों को जाते देखा और देखते ही मूर्च्छित हो गये। जब चन्दन आदि शीतोपचार करने से उनकी मूर्च्छा दूर हुई तो उन्हें तुरन्त ही जातिस्मरण हो गया और वे अपने पिता के साथ केवली भगवान के दर्शन करने गये।

दोनों पिता-पुत्र केवली भगवान का भक्ति से दर्शन-पूजनादि करके उपदेश सुनने बैठ गये। उपदेश पूर्ण होने पर सिंहसेन महाराज ने भक्तिपूर्वक जिनराज से मनोगत बात पूछी – 'हे प्रभो! मेरा पुत्र किस कारण पूतिगन्ध हुआ और मूर्च्छित होकर सचेत होकर यहाँ आया; यह सब वृतान्त कृपा करके कहो?'

www.vitragvani.com

राजा के प्रश्न के उत्तर में जिनराज ने कहा – 'हे राजन्! तेरे पुत्र ने पूर्व भव में मुनिराज की हत्या की थी, उस पापोदय के कारण यह अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए तुम्हारे यहाँ पूतिगन्ध हुआ है और आकाश में जाते हुए देवकुमारों को देखकर इसे जातिस्मरणज्ञान होने से नरक की वेदना का स्मरण होने पर अत्यन्त भयभीत होकर मूर्च्छित हुआ था।

सिंहसेन राजा ने जिनराज से पूछा – 'हे देव! पूर्व भव में पूतिगन्ध ने किस कारण से मुनिराज की हत्या की थी?'

उत्तर में जिनराज ने कहा – 'विन्ध्याचल पर्वत पर दिव्य अशोकवन है। उसमें दो मदोन्मत्त हाथी रहते थे। एक बार वे दोनों हाथी उसी प्रदेश की विशाल नदी में गये और जल के लिए परस्पर लड़ पड़े। वे इतने जोर से लड़े कि लड़ते – लड़ते मर गये। मरकर एक बिलाव हुआ दूसरा चूहा; दूसरी बार एक भयङ्कर सर्प हुआ और दूसरा नेवला; तत्पश्चात् बाज और बगुला और फिर दोनों कबूतर हुए।

कनकपुर नगर में सोमभ्रम राजा था, उसके नाम का पुरोहित सोमभूति था। वे दोनों कबूतर मरकर सोमभूति के यहाँ पुत्र हुए। उनमें से एक का नाम सोमशर्मा और दूसरे का नाम सोमदत्त था। वे विद्याभ्यास करके विज्ञान में पारङ्गत हुए। पिता सोमभूति की मृत्यु होने पर छोटे भाई सोमदत्त को पुरोहित पद मिला। जो बड़ा भाई सोमशर्मा था, उसने छोटे भाई सोमदत्त की स्त्री लक्ष्मीमति के साथ अनुचित सम्बन्ध स्थापित किया था। इसलिए सोमशर्मा की भोली पत्नी दीपा सोमदत्त को बारम्बार कहती थी कि तुम्हारी दुराचारिणी स्त्री के साथ मेरे पति का अनुचित सम्बन्ध है। यह जानकर सोमदत्त को अत्यन्त वैराग्य हुआ और उसने धर्मसेन मुनिराज के समीप जिनदीक्षा अङ्गीकार कर ली।

www.vitragvani.com

जब राजा को सोमदत्त के दीक्षा ले लेने के समाचार ज्ञात हुए तो उसने उसके बड़े भाई सोमशर्मा को पुरोहित का पद दे दिया।

❖ ❖ ❖

शकटदेश के वसुपाल राजा के यहाँ एक सुन्दर हाथी था। सोमप्रभ राजा ने दूत को भेजकर उस हाथी की माँग की, किन्तु राजा वसुपाल ने उसे देने से इन्कार कर दिया; इस कारण क्रोधित होकर सोमप्रभ राजा ने राजा वसुपाल पर चढ़ाई कर दी।

सन्ध्या के समय राजा की सेना ने वन में पड़ाव डाला। पुरोहित सोमशर्मा की नजर वहाँ ध्यानस्थ मुनिराज सोमदत्त पर पड़ी। मुनिराज को देखते ही सोमशर्मा क्रोध में लाल-पीला हो गया और उसने सोमप्रभ राजा से कहा – 'हे राजन्! हम बलवान राजा पर चढ़ाई करने निकले हैं किन्तु इन नग्न मुनि के दर्शन से अपशकुन हुआ है; इस कारण हमें इस मुनि को मारकर इसका खून दशों दिशाओं में अर्पण करके शान्ति विधान करना चाहिए।'

पुरोहित के हिंसामय वचन सुनकर राजा ने कान बन्द कर लिये। तब एक निमित्तज्ञ विश्वदेव ब्राह्मण ने राजा से कहा – 'राजन्! सोमशर्मा को शकुन-अपशकुन का कुछ भी ज्ञान नहीं है। अरे! यह मुनिराज तो समस्त प्राणियों का हित करनेवाले हैं, इनके दर्शन से तो अपना इच्छित कार्य तुरन्त पूर्ण हो जाए – ऐसे शकुन हुए हैं।' इस सन्दर्भ में उसने अनेक शास्त्राधार और युक्तियाँ देकर अपनी बात की पुष्टि करते हुए कहा – 'राजन! इन मुनिराज के महान शकुन होने से तो वसुपाल राजा स्वयं हाथी देने के लिए यहाँ आना चाहिए – ऐसा यह महान शकुन है।'

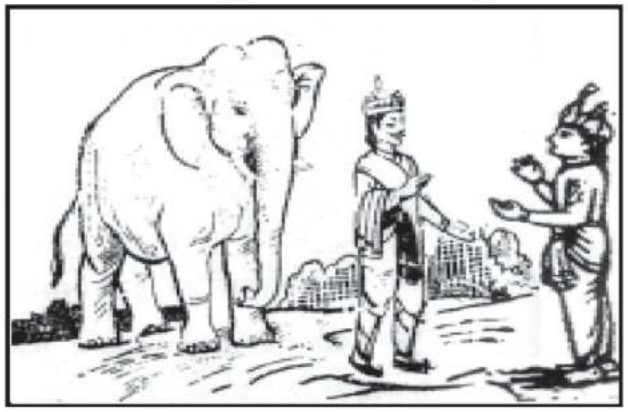

प्रभात होते ही वसुपाल राजा ने सोमप्रभ राजा को हाथी भेंट करके सम्मान किया और प्रसन्न होकर राजा ने वापिस अपने नगर की तरफ प्रस्थान कर दिया।

www.vitragvani.com

पुरोहित सोमशर्मा ने पूर्व के वैर के कारण ध्यानाविष्ट मुनिराज की तलवार से हत्या कर दी। प्रात:काल जब महाराज सोमप्रभ को ज्ञात हुआ कि सोमशर्मा ने मुनिराज की हत्या की है तो इस दुष्कृत्य से कुपित होकर राजा ने सोमशर्मा को मुनिहिंसा के कारण पाँच प्रकार का दण्ड दिया और दुष्ट बुद्धि सोमशर्मा को मुनिहिंसा के पाप से गलित कोढ़ निकल आया। वह सात दिन तक भयानक पीड़ा भोगते हुए मरकर तुरन्त ही सातवें नरक पहुँच गया।

वह महादु:ख भोगकर नरक से निकलकर एक हजार योजन का मच्छ हुआ। वहाँ अनेक प्रकार की पीड़ा सहन करके मरकर छठवें नरक गया। वहाँ बाईस सागर तक महान दु:ख भोगकर, वहाँ से निकलकर भयानक सिंह हुआ और वहाँ की आयु पूर्व करके पाँचवें नरक गया। वहाँ भी असहनीय दु:ख भोगकर बाघ हुआ वहाँ से मरकर तीसरे नरक का नारकी हुआ। वहाँ से निकलकर दुष्ट विकराल पक्षी हुआ और वहाँ से मरकर दूसरे नरक का नारकी हुआ। वहाँ भी दु:ख भोगकर सफेद बगुला हुआ, वहाँ भी पाप करके पहले नरक गया। हे राजन्! वहाँ एक सागर पर्यन्त दु:ख भोगकर वहाँ से निकलकर तुम्हारे यहाँ पूतिगन्धकुमार हुआ है।'

इस प्रकार पूर्व भव के पापों की बात सुनकर विनय-भक्तिपूर्वक पूतिगन्ध कहने लगा - 'हे जिनराज! पूर्व में किये हुए पापों का नाश किस प्रकार हो सकता है?'

जिनराज ने कहा - 'हे कुमार! यदि तू दु:खों से छूटना चाहता है तो रोहिणी नक्षत्र में उपवास का विधान कर।'

इस प्रकार जिनराज के उपदेश से पूतिगन्धकुमार ने सम्यक्त्व प्राप्त करके रोहिणी व्रत धारण किया ओर धर्म का पालन करते-करते मात्र एक माह ही हुआ था कि उसे अत्यन्त विरक्ति होने से अपने विजय नाम के पुत्र को राजगद्दी पर बैठाकर जिनदीक्षा लेकर चार प्रकार की आराधना करके सल्लेखनामरण प्राप्त कर प्राणत स्वर्ग में बाईस सागर की स्थितिवाला ऋद्धिधारी देव हुआ। बाईस सागर तक स्वर्ग में विपुल भोग-भोगकर वहाँ ये चयकर विदेहक्षेत्र में पुष्पकलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी में विमलकीर्ति राजा का अर्ककीर्ति नाम का पुत्र हुआ।

www.vitragvani.com

अर्ककीर्ति अत्यन्त रूपवान, लोगों के मन को हरनेवाला था। अर्ककीर्ति को प्राणों से प्रिय मेघसेन नाम का मित्र था। दोनों मित्र एक साथ ही विद्याभ्यास करके पारङ्गत हुए।

❖ ❖ ❖

एक बार मथुरा में सुमन्दिर नाम के सेठ पुत्र का विवाह सुशीला और सुमति नाम की दो कन्याओं के साथ हो रहा था। उन कन्याओं को राजकुमार अर्ककीर्ति ने देख लिया और उसके द्वारा मित्र मेघसेन को सङ्केत करने पर मेघसेन उन दोनों कन्याओं को उठा लाया, परन्तु मेघसेन को उन कन्याओं को उठाते हुए ग्रामवासियों ने देख लिया; अत: गाँव के लोगों ने मेघसेन से उन कन्याओं को तो छुड़ा लिया और पुण्डरीकिणी नगरी में आकर विमलकीर्ति राजा को यह सारा वृतान्त कह सुनाया। राजा ने क्रोधित होकर राजकुमार और उसके मित्र को देश से निष्कासित कर दिया।

दोनों मित्र वहाँ से निकलकर वीतशोकपुर आये। वहाँ के राजा विमलवाहन की जयमति आदि आठ रूपवान, गुणवान कन्याएँ चन्द्रबेध करनेवाले को विवाही जानी थी। इसके लिए अनेक राजकुमार आये थे, परन्तु किसी से भी चन्द्रबेध नहीं हो सका था। तत्पश्चात् अर्ककीर्ति ने आकर चन्द्र का भेदन किया; इस कारण राजा ने प्रतिज्ञानुसार आठों कन्याओं का विवाह अर्ककीर्ति के साथ कर दिया। विवाहोपरान्त कितने ही समय अर्ककीर्ति अपने श्वसुर के यहाँ रहा।

एक बार अर्ककीर्ति ने उपवास करके जिनमन्दिर में भगवान की पूजा की और रात्रि में मन्दिर में सो गया। वहाँ सिमलेखा नाम की एक विद्याधरी आई और निद्राधीन कुमार को लेकर विजयार्द्ध पर्वत के ऊपर जिनमन्दिर में छोड़ गयी।

जब अर्ककीर्ति जागृत हुआ तब 'अपने को विजयार्द्ध के जिनमन्दिर में' जानकर वहाँ के मन्दिर में दर्शन करने चला गया। उसके पुण्य-प्रभाव से वहाँ के वज्रमय कपाट खुल गये। उसको पुण्यवन्त जानकर वहाँ के राजसेवक राजा के पास ले गये और राजा ने उसका स्वागत किया तथा अपनी वीतशोका नाम की प्रिय पुत्री के साथ-साथ अपनी इकतीस कन्याओं का विवाह भी उसके साथ कर दिया।

www.vitragvani.com

अर्ककीर्तिकुमार ने पाँच वर्ष वहाँ सुखपूर्वक व्यतीत किये।

एक दिन पिता की याद आने पर वह अपने देश के लिए रवाना हुआ। रास्ते में अञ्जनगिरी नाम के नगर में पहुँचा। वहाँ पागल हाथी को वश में करके अपने पराक्रम से वहाँ के राजा की आठ कन्याओं से विवाह किया और अपनी पुण्डरीकिणी नगरी में आ गया।

एक दिन कुमार अर्ककीर्ति ने नटनी का रूप धारण करके पिता की सभा में जाकर लोगों के मन में आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला नृत्य किया और तत्पश्चात् अपने पिता राजा विमलकीर्ति की गायों को घेर लिया। तब राजा ने गायों को छुड़ाने के लिए उससे युद्ध किया। पिता-पुत्र आमन-सामने लड़ने लगे। तब अनेक जीवों का घात होता देखकर कुमार ने अपना नाम लिखित बाण पिता को भेजा। उसे देखकर, पत्र पढ़कर पिता का हृदय आनन्द से भर गया और दोनों पिता-पुत्र एक-दूसरे से अत्यन्त स्नेहपूर्वक मिले, क्षेम-कुशल पूछा और आनन्दपूर्वक राजभवन में गये।

महाराज विमलकीर्ति ने अपने पुत्र के आगमन की प्रसन्नता में इच्छानुसार दान दिया और अपने विजयी प्रिय पुत्र अर्ककीर्ति को राज्यलक्ष्मी समर्पित करके स्वयं श्रीधर मुनिराज के समीप जिनदीक्षा अङ्गीकार करके, कठिन तपश्चर्या करके अन्त में निर्वाण पधारे।

कुमार अर्ककीर्ति भी क्रम-क्रम से चक्रवर्ती की विभूति प्राप्त करके आनन्द से साम्राज्य में रहे। एक दिना संसार की क्षणभङ्गुरता का प्रसङ्ग देखकर अत्यन्त ही वैराग्य होने पर, अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर, जिनदीक्षा लेकर उग्र तपश्चर्यापूर्वक आत्मसाधना करने लगे। अन्त समय में सल्लेखनामरणपूर्वक शरीर का परित्याग कर बाईस सागर की स्थितियुत अच्युत स्वर्ग में देव हुए।

पूतिगन्धा ने भी श्रावकों के व्रत का पालन किया तथा रोहिणी व्रत के पालन से समाधिमरण करके अच्यूत स्वर्ग में पन्द्रह पल्योपम स्थितियुत, पूर्व के अर्ककीर्ति कुमार जो देव हुए थे, उनकी महादेवी हुई और उनके साथ मनोवाञ्छित भोग भोगे। फिर वहाँ से चयकर उस देव का तो अशोककुमार के रूप में जन्म हुआ और पहले

www.vitragvani.com

भव की पूतिगन्धा स्वर्ग में से चयकर चम्पानगरी के मधवा राजा की रोहिणी नाम की पुत्री हुई, जो तुम्हारे पास ही बैठी है।

❖ ❖ ❖

राजा अशोक, मुनिराज द्वारा अपने भवान्तरों को सुनकर अपने शुभाशुभपरिणामों व उनके फलों को जानकर संसार से उदास होकर भी दीक्षा न ले सके और रानी रोहिणी भी पूर्व भवों को सुनकर अन्तर में उदास हो गयी, पर राजा अशोक से अतिराग होने के कारण दीक्षा लेने का भाव होने पर भी दीक्षा न ले सकी। अत: वे दोनों मुनिराज को नमस्कार करके तब तो लौटकर हस्तिनापुर आ गये।

एक दिन की बात है कि राजा-रानी सिंहासन पर बैठे थे, इतने में रोहिणी ने अशोक के कान के पास चमकता हुआ सफेद बाल देखा और वह बाल तोड़कर राजा अशोक के हाथ में दिया। सफेद बाल देखकर, अशोक को एकदम वैराग्य जागृत हो गया और वह संसार, शरीर, भोगों की निन्दा करने लगा। उसी समय वनपाल ने आकर राजा से कहा -

'हे राजन्! भगवान वासूपूज्य अपने उद्यान में पधारे हैं।' राजा से यह सुखद समाचार सुनकर सिंहासन से उतरकर भगवान की दिशा में नमस्कार किया, वनपाल को ईनाम दिया और सम्पूर्ण नगर में आनन्दभैरी बजाकर भगवान के पधारने की सूचना दी।

राजा अशोक सम्पूर्ण राज्यलक्ष्मी, लोकपालकुमार को देकर वासूपूज्य भगवान के समवसरण में पहुँचे। वहाँ भगवान की तीन प्रदक्षिणा करके भक्तिपूर्वक नमस्कार करके जिनदीक्षा अङ्गीकार की और वासूपूज्य भगवान के अमृतास्त्रव नामक गणधर हुए। उग्र तपश्चर्या करके अन्त में समस्त कर्मों का अभाव करके निर्वाणधाम पधारे।

महारानी रोहिणी ने भी समस्त परिग्रह छोड़कर भगवान को नमस्कार करके सुमति आर्यिका से दीक्षा ग्रहण की और कठोर तपश्चर्या करके अन्त में सल्लेखनापूर्वक शरीर का परित्याग करके अच्युत स्वर्ग में देवपर्याय धारण की और वहाँ से आकर मुक्ति प्राप्त करेगी।

www.vitragvani.com

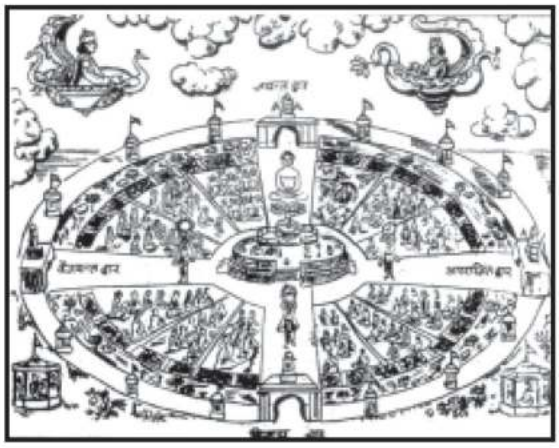

इस प्रकार घोर पाप करेनवाले जीव भी, जिनधर्म की शरण लेने पर शाश्वत सुख-मोक्षलक्ष्मी को वरते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री कहते हैं कि हे भाई! घोर विकारभाव भी आत्मा के ऊपर-ऊपर तैरते हैं, वे आत्मस्वभाव में कभी भी प्रवेश नहीं करते, पर्याय में ही रहते हैं और पर्याय स्वयं क्षणवर्ती है। अत: यदि यह जीव अपने स्वभाव पर दृष्टि करे तो पर्याय के दु:ख स्वयमेव समाप्त हो जाते हैं क्योंकि वे स्वप्न के समान अत्यन्त क्षणभङ्गुर हैं। नट के स्वाङ्गों की तरह क्षणिक स्वाङ्गरूप होने से अगले ही समय बदल जाते हैं। आत्मा की शक्ति सामर्थ्य तो सदा शुद्ध ही है, उस शुद्ध परमेश्वर शक्ति का विश्वास करने पर, स्वानुभूति करने पर आत्मा पर्याय में साक्षात् परमेश्वर हो जाता है। ऐसा अद्भुत आश्चर्यकारी आत्मा का स्वरूप है।

कुमार अशोक की तरह हमें भी ऐसे अपने अद्भुत आत्मस्वरूप को पहिचान कर उसमें अपनापन स्थापित कर शाश्वतसुख को प्राप्त करना चाहिए। ●

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

5 यशोधर और चन्द्रमति की कथा
मत करो पाप का अनुमोदन

एक दिन की बात है कि यशोमति अपने अन्त:पुर के साथ उद्यान में क्रीड़ा करने के लिए आया। उसी समय चन्द्रकर्मा भी मुर्गा युगल को लोहखण्ड के पिंजरे में बन्द करके उद्यान में आया। यहाँ आकर चन्द्रकर्मा ने रेशमी वस्त्र के समान अनेक रङ्गों से उज्ज्वल एक मनोहर भवन देखा। चन्द्रकर्मा ने इस प्रसाद के पूर्व द्वार में स्थित मणियों से उज्ज्वल, आकाश के समान स्वच्छ और विचित्र पट मण्डप में परस्पर प्रेमासक्त इस मुर्गा युगल को छोड़ दिया तथा वह मुर्गा युगल की मन्द-मन्द बाँग पुकारने लगा।

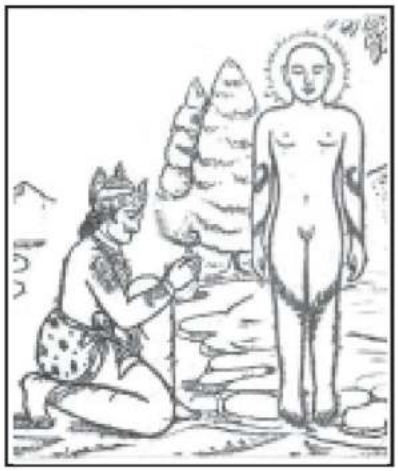

इतने में ही चन्द्रकर्मा ने अशोकवृक्ष के नीचे खड़गासन में स्थित एक मुनिराज को देखा। मुनिराज के दोनों हाथ नीचे की ओर लटक रहे थे और दृष्टि नासाग्र थी। वे दयालु थे, उन्होंने समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली थी।

चन्द्रकर्मा ने मुनिराज को देखा और मन बिना उनकी वन्दना की तथा निष्ठुर हृदय से उनके सम्बन्ध में विचारने लगा कि मनुष्य के मन में डर उत्पन्न करनेवाले प्रचण्ड सर्प के समान इस मुनि ने राजा के निवास स्थान को अपवित्र किया है। वह इस प्रकार विचार कर ही रहा था, इतने में मुनिराज को योग पूर्ण हो गया।

चन्द्रकर्मा ने मुनिराज को ध्यान में से बाहर आते देखा और अत्यन्त निष्ठुर मन से उन कामदेव विजेता मुनिराज से कहा कि - 'हे मुनिराज! आप लोक प्रसिद्ध हो और

www.vitragvani.com

जनता आपको मानती है–पूजती है, फिर भी आप क्या ध्यान करते हो ?'

मुनिराज, चन्द्रकर्मा का यह प्रश्न सुनकर विशुद्ध हृदय से उसे कहने लगे – 'हे भद्र ! तूने जो बात पूछी है, वह तुझे बताता हूँ, तू सावधान होकर एक चित्त से सुन। भद्र ! मैंने अपने ध्यान में यह विचार किया कि इस असार संसार में परिभ्रमण करते हुए अनन्त शरीर धारण किये और छोड़े तथा अनेक योनियों में जो दु:ख सहन किये, उन दु:खों से मुक्ति कैसे पायी जा सकती है ?'

मुनिराज की बात सुनकर चन्द्रकर्मा पूछने लगा – 'हे साधु ! क्या शरीर से अन्य भी कोई जीव वस्तु है ? शरीर उससे भिन्न है ?'

मुनिराज अवधिज्ञानी तथा ग्यारह अङ्ग के धारक थे और समस्त प्रकार के सन्देह को दूर करनेवाले थे। जब उन्होंने चन्द्रकर्मा का प्रश्न सुना तो स्पष्ट शब्दों में कहने लगे – 'हे भोले मानव ! तुझे इस सम्बन्ध में जरा भी सन्देह नहीं करना चाहिए। तू विश्वास रख कि शरीर एक अलग वस्तु है और जीव एक अलग वस्तु है।'

परन्तु चन्द्रकर्मा नहीं माना और वह मुनिराज से कहने लगा – 'योगिराज ! न तो जीव अलग है और न शरीर अलग है, परन्तु अनेक योनिरूप वृक्षों से मण्डित संसाररूपी वन में घूमनेवाले प्राणियों की जो सजीव वस्तु है, वह शरीर ही है।' वह एक उदाहरण देकर अपनी बात कहने लगा – 'मुनिराज ! मैंने एक चोर को एक कोठी में बन्द कर दिया और उस कोठी के चारों ओर लाख जड़ दी, फिर उसमें एक छेद किया, अब उस कोठी में पड़ा हुआ चोर मर गया, परन्तु मुनिराज ! मैंने कहीं भी उस छेद में से उसके जीव को निकलते नहीं देखा। अत: योगीराज ! मैं तो इस घटना से यह सत्य समझता हूँ कि वही जीव है और वही शरीर है, दोनों भिन्न–भिन्न नहीं हैं।'

योगीराज ने जब चन्द्रकर्मा की बात सुनी तो वे कहने लगे कि – 'हे भद्र ! तू उसी कोठी में एक मनुष्य को शंख देकर बैठा दे और उससे कह कि तू बहुत प्रसन्नता से उस शंख को फूँक। जब वह शंख बजाने लगे, तब उसकी आवाज को तू अवश्य सुनेगा, परन्तु उस आवाज को तू उस छिद्र में से निकलते हुए नहीं देख सकेगा, अन्य कोई भी नहीं देख सकेगा। भद्र ! जिस प्रकार आवाज बाहर निकलने पर भी देखी नहीं जा सकती; उसी

www.vitragvani.com

प्रकार शरीर में से बाहर निकलते हुए जीव को भी कोई नहीं देख सकता।'

चन्द्रकर्मा, मुनिराज का यह दृष्टान्त सुनकर कहने लगा – 'योगीराज! अब मैं जो दृष्टान्त आपसे कहनेवाला हूँ, उससे मेरी बात की सत्यता का स्पष्टीकरण होता है। मुनिराज! मैंने एक सजीव चोर को तराजू में तोला, फिर उसको जीव रहित कर दिया परन्तु दोनों स्थितियों में वजन एक समान ही रहा। हे मुनिराज! मेरे इस कथन से आप विश्वास करें कि जीव है, वही शरीर है, अर्थात् दोनों एक हैं।'

मुनिराज ने चन्द्रकर्मा का दृष्टान्त बहुत ही ध्यान से सुना, फिर उससे कहने लगे कि – 'भद्र! अब तू मेरा मनोहारी उदाहरण सुन! एक गोपाल ने चमड़े की थैली हवा से भरी और उसे तराजू में तोला, फिर उसमें से हवा निकालकर तराजू में तोला – दोनों अवस्थाओं में वजन एक समान ही रहा। इसलिए हे भद्र! जिस प्रकार चमड़े की थैली हवा से भरने पर भी उतनी ही रहती है, उसी प्रकार अजीव और सजीव मनुष्य भी उतना ही रहता है। जीव, शरीर में रहे अथवा न रहे; वजन में कोई अन्तर नहीं पड़ता।'

मुनिराज कहने लगे – 'हे भद्र! मेरी बात पर विश्वास कर कि जीव अलग वस्तु है और शरीर अलग वस्तु है – दोनों एक नहीं हैं।'

योगीराज की यह बात सुनकर चन्द्रकर्मा कहने लगा कि – 'हे महाराज! मेरी बात सुन लो, मैंने एक चोर के शरीर को काट दिया और उसके बहुत छोटे-छोटे टुकड़े किये तो शरीर के बाहर या अन्दर कहीं जीव नाम की वस्तु नहीं दिखी। मुनिराज! जिस प्रकार एक शरीर के छोटे-छोटे टुकड़े करने पर भी जीव नहीं दिखता है, अत: इससे ही सिद्ध होता है कि शरीर और जीव एक है।'

योगीराज ने चन्द्रकर्मा का यह उदाहरण सुना और फिर वे कहने लगे कि – 'भद्र! अब मेरा भी एक अत्यन्त स्पष्ट उदाहरण सुन! एक मनुष्य एक अरणी बाँस को काटता

www.vitragvani.com

है, परन्तु उसके भीतर रहनेवाली अग्नि उसे नहीं दिखती। तत्पश्चात् वह अरणी बाँस के छोटे-छोटे टुकड़े भी कर देता है, तथापि उसके भीतर की अग्नि उसे नहीं दिखती।' मुनिराज कहने लगे कि – हे भद्र! जिस प्रकार अरणी बांस में अग्नि होने पर भी उसको अग्नि नहीं दिखती; उसी प्रकार खण्ड-खण्ड शरीर में जीव विद्यमान होने पर भी इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं होने से मनुष्य को नहीं दिखता है। हे आर्य! इस दृष्टान्त से तू मेरी बात को सत्य समझ कि जीव और शरीर अलग-अलग है।'

मुनिराज की यह बात सुनकर चन्द्रकर्मा कहने लगा कि – 'हे देव! मैं तो निरुत्तर हो गया। अब आप बताओ कि मैं क्या करूँ? भगवान! अब आप मुझ पर प्रसन्न होओ।'

चन्द्रकर्मा की बात सुनकर मुनिराज उसके प्रति दयार्द्र हो गये और कहने लगे – 'महाभाग! अब तुम धर्म करो, क्योंकि धर्म ही समस्त प्राणियों का बन्धु है।'

तब चन्द्रकर्मा ने मुनिराज की सेवा में निवेदन किया कि – 'भगवान! आप मुझे स्पष्टरूप से धर्म और अधर्म का फल समझाओ।'

मुनिराज कहने लगे कि – 'सौभाग्य, सम्पत्ति, दीर्घायु, निर्मलयश, वशीकरण, आरोग्य – यह सब मनुष्य को धर्म से प्राप्त होते हैं और दरिद्रता, कुरूपता, दुर्भाग्य, बन्धुहीनता आदि सब मनुष्य को अधर्म से प्राप्त होता है।'

चन्द्रकर्मा ने जब मुनिराज से धर्म-अधर्म का फल सुना तो मुनिभक्ति के कारण उसका शरीर रोमाञ्चित हो गया और वह फिर कहने लगा – 'भगवान! आप तो संसार समुद्र पार करानेवाले हो, अत: मेरे गृहस्थ जीवन में मुझसे जो धर्म हो सके, उस विषय में कुछ उपदेश दो।'

चन्द्रकर्मा की विनती सुनकर ज्ञानी योगीराज के मन में करुणा उत्पन्न हुई। वह कहने लगे – 'वत्स! यदि तेरी धर्म पालन की इच्छा है तो सम्यक्त्वपूर्वक पाँच अणुव्रतों का पालन कर।'

मुनिराज की बात सुनकर चन्द्रकर्मा निवेदन करने लगा कि – 'महाराज! आप मुझे स्वर्ग और मोक्ष के हेतुभूत तथा सुख-सम्पत्ति प्रदाता पाँच अणुव्रतों का स्वरूप संक्षेप में समझाओ।'

www.vitragvani.com

मुनिराज ने पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, मधुत्याग, पाँच उदम्बर त्याग, रात्रि भोजन त्याग, पञ्च नमस्कार मन्त्र, सम्यक्त्व और गुरु पूजा इत्यादि समस्त गृहस्थधर्म का उपदेश संक्षेप में दिया।

मुनिराज का उपदेश सुनकर चन्द्रकर्मा कहने लगा – 'स्वामिन! मैंने सम्यक्त्वपूर्वक अन्य सब व्रत तो ले लिये, परन्तु मैं अहिंसाव्रत नहीं ले सकता, क्योंकि जीवघात करना हमारा कुलधर्म है।'

यह सुनकर मुनिराज कहने लगे – 'चन्द्रकर्मा! तू सत्य कहता है; जीवघात करना तुम्हारा कुलधर्म है परन्तु तुझे पता नहीं है कि अनन्त पापार्जन का कारण यह तेरा जीवघात जन्य कुलधर्म ही है। जब तक तू अपने कुलधर्म को नहीं छोड़ेगा, तब तक तू भी अनन्त दु:ख देनेवाली मृत्यु परम्परा को उसी प्रकार प्राप्त करेगा जिस प्रकार इन मुर्गे–मुर्गी के युगल ने जीवघात जन्य अपना कुलधर्म नहीं छोड़ा और अनन्त दु:ख देनेवाली मृत्यु परम्परा को प्राप्त किया।'

मुनिराज की यह बात सुनकर चन्द्रकर्मा का मन आश्चर्य से भर गया तथा वह कौतूहल के साथ पूछने लगा कि – 'योगीराज! इन मुर्गे–मुर्गी के युगल ने पूर्व भव में कुलधर्म नहीं छोड़ने के कारण किस प्रकार की मृत्यु परम्परा प्राप्त की।'

❖ ❖ ❖

चन्द्रकर्मा का यह प्रश्न सुनकर मुनिराज कहने लगे कि – 'चन्द्रकर्मा! तुम एकाग्रचित्त से सुनो, मैं इनके भवान्तर बताता हूँ। भद्र! यह मुर्गा यशोमतिकुमार राजा का पूर्व जन्म का पिता यशोधर नरेश है और यह मुर्गी यशोधर राजा की पूर्व जन्म की दादी चन्द्रमति है। इन्होंने अपना कुलधर्म नहीं छोड़ा और बहुत भक्ति के साथ चन्द्रिकादेवी की पूजा के लिए आटे का मुर्गा बनाकर उसका वध किया। उस पाप का यह परिणाम है। वे मुर्गा–मुर्गी के युगलरूप में उत्पन्न हुए तथा इसी कारण शान्तचित्त से इस समय धर्म श्रवण कर रहे हैं। वे दोनों पूर्व के यशोधर और चन्द्रमति एक भव में मोर और कुत्ता हुए, दूसरे भव में सर्प और नेवला हुए, तीसरे भव में मत्स्य और मगर हुए, चौथे भव में बकरी और बकरा हुए, पाँचवें भव में भँवरा और भँवरी हुए और छठवें भव में यह मुर्गा और मुर्गी हुए हैं।'

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

योगीराज की यह बात सुनकर चन्द्रकर्मा के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसका सम्पूर्ण शरीर भय से काँपने लगा। वह मुनिराज से कहने लगा – 'भगवान! मैं इसी समय मन, वचन और काया से अपना जीवघातरूप कुलधर्म त्यागता हूँ और सर्वोत्तम अहिंसक जैनधर्म स्वीकार करता हूँ; इसके सिवाय मैंने सम्यक्त्व और अणुव्रतादि व्रत भी स्वीकार कर लिये हैं। अब मैं सच्चा श्रावक हूँ और मेरे देव एकमात्र जिनेन्द्र भगवान ही हैं।'

मुर्गे–मुर्गी युगल ने भी मुनिराज के श्रीमुख से सर्वोत्तम धर्म सुनकर और अनेक दु:खों से परिपूर्ण अपने भवान्तर सुनकर भक्तिपूर्वक जैनधर्म स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् उनको इतना सन्तोष हुआ कि उसे व्यक्त करने के लिए अत्यन्त मधुर बाँग पुकारी।

ठीक उसी समय यशोमतिकुमार राजा अपनी प्रियतमा कुसुमावली के साथ पटमण्डप में बैठा था। मुर्गे–मुर्गी की बाँग सुनकर वह अपनी पत्नी से कहने लगा कि – 'हे प्रिया! तू मेरी धनुर्विद्या की कौशल्यता देख। मैं एक ही बाण की चोट से इस मुर्गे युगल को मार दूँगा।' ऐसा कहकर उसने एक बाण निकालकर धनुष की डोरी पर चढ़ाया, बाण को कान तक खींचकर मुर्गे युगल पर चला दिया और उनकी जीवन लीला समाप्त कर दी।

जिनधर्म परायण इस युगल ने समता के साथ प्राणों का त्याग किया; अत: यशोमतिकुमार राजा की रानी कुसुमावली के गर्भ में आये और उसके गर्भ से कुमार व कुमारी के रूप में जन्म धारण किया। दोनों कला, गुण और सौन्दर्य में बहुत वृद्धिगत हुए।

❖ ❖ ❖

एक दिन सुदत्त मुनिराज अपने विशाल संघसहित उज्जैनी नगरी में पधारे। उसी समय राजा यशोमति भी शिकार खेलने की इच्छा से अपने परिवार के साथ उज्जैनपुरी से निकला। जैसे ही यशोमति ने सुदत्त नामक आचार्य को एक वृक्ष के नीचे विराजमान देखा, उसने अपने पाँच सौ कुत्ते उन पर छोड़ दिये।

वे कुत्ते ज्यों ही दौड़ते हुए मुनिराज के समीप आये तो मुनिराज की शान्तमुद्रा को देखकर वे कुत्ते भी मुनिराज की प्रदक्षिणा देकर आनन्द के साथ उनके समक्ष बैठ गये। यशोमतिकुमार ने जब कुत्तों को शान्तभाव से बैठा देखा तो उसकी आँखें क्रोध से लाल हो

www.vitragvani.com

गयीं और वह स्वयं तलवार निकालकर मुनिराज को मारने दौड़ा, परन्तु सम्यग्दृष्टि कल्याणमित्र नाम के साहूकार ने उसे समझाया और मुनिराज के समीप ले गया।

आचार्य महाराज को देखकर यशोमतिकुमार का मन प्रसन्न हो गया और वह विचारने लगा कि – 'मुझ पापी ने किसलिए मुनिराज को मारने का विचार किया? इस पाप का केवल एक ही प्रायश्चित्त है कि मैं अपनी आत्मविशुद्धि के लिए अपना सिर काटकर मुनिराज के चरणों में अर्पित कर दूँ।'

उस समय अपने दुष्कृत्यरूप पाप के पश्चाताप से यशोमतिकुमार का आत्मा पवित्र हो गया था। वह जैसे ही अपना सिर काटने को तैयार हुआ कि तुरन्त ही मुनिराज ने उसे रोककर कहा – 'हे राजन! तुम्हे ऐसा अशोभनीय कार्य नहीं करना चाहिए।' जब यशोमतिकुमार को पता चला कि मुनिराज उसका अभिप्राय समझ गये हैं तो वह अत्यन्त लज्जित हुआ और मुनिराज को नमस्कार करने लगा। उस समय यशोमति को अत्यन्त वैराग्य हुआ। वह मुनिराज से प्रार्थना करने लगा – 'हे भगवन! आप मुझ अभागे के दुश्चरित्र को क्षमा कर दो।'

यशोमति की बात सुनकर मुनिराज कहने लगे कि – 'हे वत्स! तू बहुत भोला है। अरे! हमारे जैसे मुमुक्षुओं को तो संसार की समस्त जनता की बात सहन करनी चाहिए, परन्तु तुम्हारे समान राजा को तो विशेष प्रकार से सहनशील होना चाहिए।'

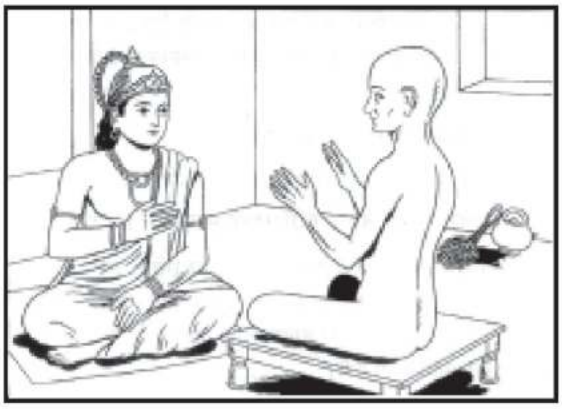

जब राजा ने मुनिराज की बात सुनी तो वह मुनिराज से निवेदन करने लगा – 'भगवन! आप मुझे स्पष्ट कहो कि मैं अभी क्या विचार कर रहा था?'

मुनिराज अवधिज्ञानी थे। वे कहने लगे – 'राजन! एक चित्त से सुन। मैं तेरी मन चिन्तित बात कहता हूँ। तुम विचार कर रहे थे कि संसार में मुनि वध करने का एक ही प्रायश्चित्त है, और वह यह है कि अपना सिर काटकर मुनिराज के चरणों में अर्पण कर दूँ,

www.vitragvani.com

परन्तु तुमने यह बहुत कुत्सित विचार किया है, क्योंकि विद्वानजन आत्महत्या को महान पाप मानते हैं।'

उस समय यशोमति को दु:ख और सन्तोष दोनों हो रहे थे, इतने में विशुद्ध आत्मा कल्याणमित्र, यशोमति से कहने लगा कि – 'हे राजन! मुनिराज ने तुम्हारी एक चिन्ता जान ली तो तुम्हें इतना आश्चर्य हो रहा है। मित्र! ये तो महान योगी हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल को जानते हैं। यदि तुम्हें कोई शङ्का होवे तो इन तपस्वी महाराज से पूछ सकते हो।'

जब यशोमति ने कल्याणमित्र की बात सुनी तो उसने बारम्बार योगीराज को नमस्कार किया और उनसे पूछने लगा – भगवान! आप मुझे यह कहें कि मेरे दादा किकीर्त्योघ, दादी चन्द्रमति और पिता यशोधर इस समय किस गति में हैं और किस प्रकार के सुख-दु:ख का अनुभव कर रहे हैं। इतना कह कर राजा का मन मुनिराज का उत्तर सुनने के लिए उत्सुक हो गया।

❖ ❖ ❖

अवधिज्ञानरूपी नेत्रधारी मुनिराज अपने दिव्यज्ञान से को इस प्रकार कहने लगे – हे भद्र! तेरे दादा ने सिर में एक सफेद बाल देखकर दिगम्बरी दीक्षा अङ्गीकार कर ली थी और पाँच रात तक तप करके समाधिपूर्वक देह छोड़कर अभी ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में दिव्य सुख का अनुभव कर रहे हैं तथा तेरी माता अमृतमति ने जहर देकर अपनी सास और पति (तेरी दादी और पिता) को मार दिया था। वह इस कृत्य के कारण छठवें नरक पहुँची और वहाँ की भयङ्कर तथा असहनीय वेदना का अनुभव करती, अपने पापी जीवन की निन्दा करती हुई अत्यन्त संक्लेश के साथ अपने दिन व्यतीत कर रही है। हे राजन्! तेरे पिता जो यशोधर नरेश थे तथा चन्द्रमति तेरी दादी थी, इन दोनों ने चन्द्रिका देवी / कुलदेवी को प्रसन्न करने के लिए आटे का मुर्गा बनाकर उसे मारकर देवी को अर्पण किया था। अत: हे राजन्! इस महान पापानुबन्ध के कारण वे तिर्यञ्च योनियों में परस्पर एक-दूसरे को मारा करते थे और जब वे युगल मुर्गे-मुर्गी के रूप में पैदा हुए थे तथा पञ्च नमस्कार मन्त्र का ध्यान कर रहे थे, इतने में तुमने उन्हें बाण से मार दिया। वे मर कर तुरन्त ही कुसुमावली

www.vitragvani.com

के गर्भ से तेरे पुत्र और पुत्री के रूप में पैदा हुए हैं। पुत्र का नाम अभयरुचि है और पुत्री का नाम अभयमति है।

इन भव परम्पराओं को सुनकर यशोमति राजा बहुत विस्मित हुआ। उसके मन में तीव्र वैराग्यभाव जागृत हुआ। उसने मुनिराज द्वारा सम्पूर्ण वृतान्त सुनकर अपने अन्त:पुर परिवार के साथ निर्ग्रन्थ दीक्षा अङ्गकार कर ली। वहीं जब अभयरुचि और अभयमति ने अपने भवान्तर सुने तो उनको जातिस्मरणज्ञान हो गया तथा उनके मन में भी वैराग्यभाव जागृत हो गया। दोनों ही भाई-बहिन ने दीक्षा लेने के भाव से मुनिराज सुदत्त के समीप जाकर अत्यन्त शान्तभाव और भक्ति से मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा की, नमस्कार किया और विनयपूर्वक कहने लगे - हे भगवान! हमें भी दिगम्बर दीक्षा प्रदान करो।

जब आचार्य सुदत्त ने उनकी बात सुनी तो दोनों का कुसुम-सुकुमार बाल जीवन देखकर और उनका धैर्य देखकर मुनिराज भी विस्मित हुए। मुनिराज कहने लगे - कुमारो! तुम लोगों का शरीर अभी एकदम कोमल है। तुमने अभी तक कभी विघ्न-बाधाओं का सामना नहीं किया और तुम्हारा मन भी बहुत ही कोमल है। तुम्हारे में सम्पूर्ण जैन मुनिव्रत पालन की क्षमता नहीं है; अत: अभी तुम लोगों को क्षुल्लक धर्म का पालन करना उचित है। उसके बाद तुम्हें दिगम्बरी दीक्षा दूँगा।

जब जिनभक्त परायण अभयरुचि और अभयमति ने मुनिराज की दिव्यवाणी सुनी तो अभयरुचि ने अत्यन्त भक्तिसहित मुनिराज के समीप क्षुल्लक धर्म स्वीकार किया तथा अभयमति ने ग्यारह अङ्ग की पाठिका शान्ति अर्यिका के समीप अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ क्षुल्लिका के व्रत स्वीकार किये।

❖ ❖ ❖

राजपुर नाम का एक सुन्दर नगर है। उस नगर में मारीदत्त नाम का राजा रहता था। वह देवी का परम भक्त था। उसी नगर की दक्षिण दिशा में चण्डमारी नाम की एक कुलदेवी रहती थी। मारीदत्त आदि अपने हाथों से जीवों की हत्या करके अत्यन्त भक्ति के साथ बलि से इस कुलदेवी की पूजा करते थे। वे मानते थे कि यदि इस प्रकार चण्डमारी देवी की पूजा नहीं करें तो वह सबको मार देगी।

www.vitragvani.com

एक दिन की बात है कि मारीदत्त राजा, प्रत्येक नगरवासी तथा अपने अन्त:पुर को साथ लेकर देवी के मन्दिर में आया। ठीक उसी समय सुदत्त नाम के आचार्य भी अपने संघसहित विहार करते उसी राजपुर के निकटवर्ती श्मशान में पधारे।

उस समय चण्डमारी की पूजा करने के लिये, उसके चरणों में बलि चढ़ाने के लिए सब लोग मोर, मुर्गी आदि असंख्य प्राणी साथ लाये थे। इतने में राजा के मेहतरों ने कहा कि एक सम्पूर्ण प्रशस्त लक्षणों से परिपूर्ण मनुष्य युगल मँगाओ। जब राजा ने मेहतरों की बात सुनी तो उसने शीघ्र ही सेवकों को आदेश दिया कि एक सुन्दर मनुष्य युगल ले आओ। नौंकरों ने राजा की आज्ञा को देव आज्ञा मानकर तुरन्त ही एक नर युगल को ले जाने के लिए प्रस्थान किया।

उसी समय पूर्वोक्त क्षुल्लक युगल ने भक्तिपूर्वक मुनिराज को नमस्कार किया तथा आहार लेने की इच्छा से वे नगर की तरफ जाने लगे। वह क्षुल्लक युगल उन नौंकरों के रास्ते में ही जा रहा था जो कि बलि के लिए नर युगल की खोज में निकले थे। वे क्षुल्लक युगल को देखकर परस्पर में कहने लगे कि देवी की बलि के लिए यह युगल राजा को बहुत पसन्द आयेगा।

क्षुल्लक युगल ने उन लोगों की यह भयङ्कर बात सुन ली और निर्भय होकर वहीं रुक गये। वे लोग भी इस रूपवान क्षुल्लक युगल को पकड़कर राजा मारीदत्त के पास ले गये।

जब क्षुल्लक युगल, राजा मारीदत्त के समीप आया तो देवता के चरणों में हाथ में भयङ्कर तलवार के साथ राजा को देखा। दोनों ने एक साथ राजा को 'जयवान रहो' कहा और तुम सम्पूर्ण हो, सूर्य के समान सुन्दर हो, निर्मल हो और कुन्द वृक्ष के समान तुम्हारा यश निर्मल है, राजन! तुम जयवन्त रहो।

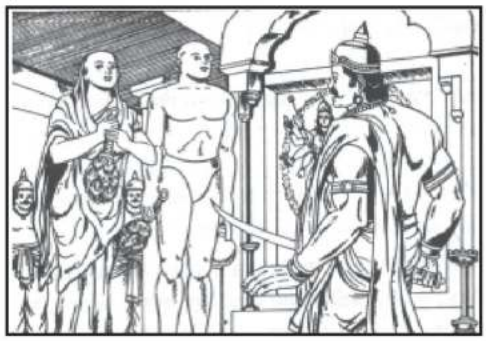

राजा ने मेघ की गर्जना के समान गम्भीर क्षुल्लक युगल की जयध्वनि सुनी, मनुष्य और स्त्री के समस्त लक्षणों से सम्पन्न देखा और उनसे

www.vitragvani.com

पूछने लगा – 'भद्र! इस अतिशय रूप से तुम किस कुल को प्रकाशित करते हो? अत्यन्त सुन्दर होने पर भी किस कारण से तुम लोगों ने ऐसी कठिन तपस्या धारण की है?'

जब क्षुल्लक युगल ने मारीदत्त की स्नेहपूर्ण बात सुनी, तब उन्होंने बालक, वृद्ध और युवाओं से भरी सभा में अपने तप का कारण तथा राजा यशोधर आदि का समस्त वृतान्त विस्तार से सुनाया। जिसे सुनकर उपस्थित जनता महान आश्चर्य में पड़ गई। इतना ही नहीं, इस घटनाक्रम से ऐसा प्रभाव पड़ा कि समस्त जनता ने देवी के सामने जीव वध छोड़ दिया और सब शान्त हो गये।

जब कुलदेवी ने भी सम्पूर्ण कथा सुनी तो उसने भी अपना भयङ्कर स्वरूप छोड़ दिया और सौम्यरूप धारण किया। उसने भावपूर्वक क्षुल्लक युगल को तीन प्रदक्षिणा की और अर्घ्य चढ़ाया। तत्पश्चात् वह हाथ में कलश लेकर क्षुल्लक युगल के चरणों में झुक गई। क्षुल्लक युगल के प्रति उसकी भक्ति और प्रेम एकदम उछल पड़ा तथा सम्पूर्ण जनता के सामने क्षुल्लक महाराज से विनती करने लगी – 'हे क्षुल्लक महाराज! आप मुझ पर प्रसन्न होओ! दया करो और मुझे शीघ्र संसार समुद्र से पार उतारनेवाली जैन दीक्षा प्रदान करो।'

क्षुल्लक महाराज ने देवी की बात सुनी, उस समय उसका हृदय भक्ति से गद्गद् था और वह हाथ जोड़कर खड़ी थी। क्षुल्लक महाराज कहने लगे – 'भद्र! उठो, देखो! तिर्यञ्च, नारकी और देवों के लिए इस दीक्षा का विधान नहीं है। मनुष्य ही यह दीक्षा ले सकता है।'

क्षुल्लक महाराज की बात सुनकर देवी एकदम विनय से झुक गई। वह कहने लगी – 'स्वामिन्! यदि मुझ अभागिन को दीक्षा नहीं तो मेरे धर्म के अनुकूल धर्म का उपदेश अवश्य प्रदान करें।'

क्षुल्लक महाराज ने देवी से कहा कि 'देवी-देवताओं के लिए दो प्रकार का धर्म है – सम्यक्त्व का लाभ और जिनपूजा, परन्तु नारकियों के लिए तो जिन पूजा भी दुर्लभ है। वे तो मात्र त्रैलोक्य के चूड़ामणि सम्यक्त्व का ही लाभ ले सकते हैं, परन्तु तिर्यञ्चगति

www.vitragvani.com

के जीव सम्यक्त्व के साथ-साथ कृत-कारित और अनुमोदनापूर्वक सम्पूर्ण मानव धर्म (श्रावक धर्म) का पालन कर सकते हैं।'

चण्डमारी देवी ने अत्यन्त भक्ति से महाराज का प्रवचन सुना और सम्यक्त्व व जिनपूजा को धारण किया। इस प्रकार चण्डमारी देवी ने सम्यक्त्वसहित जैनधर्म को धारण किया और समस्त जनता के साथ मारीदत्त राजा से कहने लगी -

'राजन! आज दिन से कोई भी मनुष्य मेरे लिए प्राणी हिंसा नहीं करें। सभी अत्यन्त शान्ति से रहें और यदि समझाने व रोकने पर भी कोई प्राणी-हिंसा करेगा तो मैं उसके सम्पूर्ण परिवार को मार दूँगी।' देवी ने मारीदत्त राजा से इतना कहा और क्षुल्लक युगल को प्रणाम करके अपने स्थान को चली गई।

जब देवताओं ने इस घटना को सुना तो वे आकाश में से क्षुल्लक महाराज के ऊपर सहर्ष दुन्दुभियाँ बजाने लगे तथा उन्होंने प्रसन्न हृदय से क्षुल्लक युगल को धन्यवाद दिया और जय-जय शब्दों के साथ उन पर पुष्प मालाएँ बरसाने लगे।

जब मारीदत्त ने मुर्गे के वध से उत्पन्न हुई अत्यन्त दु:ख परम्परा को सुना तथा देवताओं का आश्चर्य देखा तो वह क्षुल्लक महाराज से विनती करने लगा - 'स्वामिन! आप मुझे भवनाशिनी जिनदीक्षा प्रदान करें, जिससे मैं भी आपकी दया से आत्महित साध सकूँ।'

यह बात सुनकर क्षुल्लक महाराज मारीदत्त से कहने लगे - 'राजन! मैं तुमको जिनदीक्षा नहीं दे सकता। हमारे गुरु निर्मल ज्ञानी हैं, वे तुम्हें जिनदीक्षा देंगे।'

जब मारीदत्त राजा ने क्षुल्लक महाराज की बात सुनी तो उसका मन कौतूहल से भर गया तथा वह विशुद्ध हृदय से विचारने लगा कि देखो, नगरी की समस्त जनता और सामन्तगण मेरे चरण के नजदीक पड़े रहते हैं और मैं बलवान होकर भी देवता के चरणों में पड़ा था; देवता भी क्षुल्लक महाराज के चरण युगल में नतमस्तक हो गये और अब इन क्षुल्लक युगल के भी कोई अन्य महान गुरु हैं। राजा विचारता है कि धन्य है मुनिजनों के आश्यर्चकारी तप के महात्म्य को, जो कि तपस्वीजन, देवता और असुरों द्वारा भी पूज्य है।

❖ ❖ ❖

www.vitragvani.com

राजा मारीदत्त का चित्त भी जिनधर्म के उपदेश से पवित्र हो गया था और बुद्धि एकदम विशुद्ध। वह क्षुल्लक महाराज के समीप गभीर भाव से बैठ गया। इतने में आचार्य सुदत्त ने अपने दिव्यज्ञान से वीर क्षुल्लकों पर आये उपसर्ग तथा बुद्धिमान मारीदत्त राजा का धर्म धारण करना व दीक्षा लेने के भाव को जान लिया और वे क्षुल्लक युगल के पास आ पहुँचे।

मारीदत्त राजा ने अपनी स्त्रियों, सामन्तों, भाई-बन्धुओं के साथ आचार्यश्री के चरणों में नतमस्तक होकर महाविनय के साथ उनकी पूजा की और जिनदीक्षा प्रदान करने के लिए प्रार्थना करने लगा। उसने अपने पुत्र के राज्य पट्ट बाँधा और पुरोहित, महामात्य, सामन्त तथा अन्त:पुर परिवार के साथ सुदत्त महाराज के समीप दीक्षित हो गया।

क्षुल्लक युगल ने भी एक दिन विरक्त होकर क्षुल्लक धर्म से ऊपर उठकर अपने गुरु महाराज से जिन दीक्षा ले ली। इस युगल ने अपनी आयु के अन्तिम समय में चार प्रकार के आहार का त्याग करके प्रयोगमन संन्यास ले लिया तथा तीन पहर के अन्दर समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर स्वयंप्रभ विमान में देव हो गया।

यह आश्चर्य देखकर कितने ही लोग मुनि हो गये, कितने ही श्रावक बन गये और कितने ही तटस्थ रहे। सुदत्त मुनिराज ने विविध चार प्रकार की आराधना की और अन्त में स्वर्ग में पहुँचे। मारीदत्त राजा ने भी चार प्रकार की आराधानाओं का आराधन किया, सम्यग्दर्शन से पवित्र हुए और अपने भावों के अनुसार यथायोग्य स्वर्ग में गये।

(इस प्रकार संसार में जो प्राणी असावधान होकर एक जीव का भी वध करता है, वह अनेक भवों तक संसार परिभ्रमण करता रहता है। यह वैराग्य प्रेरक कथा बहुत ही संक्षेप में साररूप दी है। इस कथा का रोमाञ्चकारी विस्तार जानने के लिए यशोधर चारित्र पढ़ना चाहिए।) ●●

(- यशोधर चरित्र से सार संक्षेप)

6 भगवान नेमिनाथ के पितामह अंधकवृष्टि का भूतकाल
पापी से परमात्मा

इस जम्बूद्वीप की अयोध्यानगरी में अनन्तवीर्य नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगरी के कुबेर के समान धनी सुरेन्द्रदत्त नाम का सेठ रहता था। वह सेठ प्रतिदिन दस दीनार से; अष्टमी को सोलह दीनार से; अमावस्या को चालीस दीनार से, चतुर्दर्शी को अस्सी दीनार से अरहन्त भगवान की पूजा करता था और उपवास करता था। इन सब कारणों से सेठ ने 'धर्मशील' नाम का पद प्राप्त किया था।

एक दिन सेठ ने जलमार्ग से परदेश जाकर धन कमाने की इच्छा व्यक्त की। उसने बारह वर्ष में वापस आने का विचार किया था; इस कारण बारह वर्ष तक भगवान की पूजा करने के लिए जितना धन चाहिए था, उतना धन अपने मित्र रुद्रदत्त ब्राह्मण को सौंपकर कहा कि हे मित्र! इस धन से तू जिनपूजादि कार्य करते रहना, कारण कि तू मेरे समान है।

सेठ के परदेश जाने के पश्चात् रुद्रदत्त ब्राह्मण ने थोड़े ही दिनों में समस्त ही धन परस्त्री तथा जुआ आदि व्यसनों में खर्च कर दिया। उसके बाद वह चोरी आदि कार्य करने लगा। एक रात श्येनक नाम के कोतवाल ने उसे चोरी करते देखकर कहा कि तू ब्राह्मण है; अत: मैं तुझे मारता नहीं हूँ, परन्तु तू यह नगर छोड़कर चला जा। यदि फिर किसी समय तुझे ऐसा काम करते देख लिया तो मैं तुझे यमराज के पास भेज दूँगा–मार दूँगा – ऐसा कहकर कोतवाल उस ब्राह्मण पर क्रोधित हुआ। रुद्रदत्त भी वहाँ से निकलकर उल्काभिमुख पर रहनेवाले भीलों के स्वामी पापी कालक से जा मिला।

❖ ❖ ❖

एक बार रुद्रदत्त अयोध्यानगरी में गायों के समूह का अपहरण करने आया। वहाँ

www.vitragvani.com

श्येनक कोतवाल द्वारा मारे जाने से वह देवद्रव्य का भोग तथा चोरी आदि के महापाप के कारण से अधोगति में (सातवें नरक) पहुँच गया। वहाँ से निकलकर मगरमच्छ हुआ, फिर नरक गया; पुन: सिंह होकर नरक गया, नरक से निकलकर दृष्टिविष नाम का सर्प हुआ, फिर नरक गया और वापिस सर्प बना, फिर नरक गया और वहाँ से आकर भील बना। इस प्रकार सभी नरकों में जाकर बहुत दु:ख और कष्टों में से बाहर निकलकर त्रस-स्थावर योनियों में बहुत काल तक परिभ्रमण करता रहा।

अन्त में इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर नगर में जब राजा धनंजय राज्य करता था, तब गौत्तम गोत्री कपिष्टल नाम के ब्राह्मण के अनुन्धर नाम की अन्ध स्त्री से वह रुद्रदत्त का जीव अत्यन्त गरीब परिवार में गौतम नाम का पुत्र हुआ। पुत्र उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण परिवार का नाश हो गया। उसे खाने के लिए अन्न नहीं मिलता था, उसका पेट सूख गया था और हड्डियाँ दिखने लगी थी। नसें दिखने से उसका शरीर बहुत भयानक लगता था। उसके बालों में लीखें पड़ी थी। जहाँ भी वह सोता, वहाँ के मनुष्य उसे मारते थे। अपनी शरीर की स्थिति के लिए, कभी भी अलग न हो – ऐसे मित्र समान भिक्षापात्र वह सदा अपने हाथ में रखता था। इच्छित रस पाने को वह हमेशा ''दो, दो'' ऐसे शब्दों द्वारा मात्र भीख माँगने से ही सन्तोष प्राप्त करने का लालची था, परन्तु इतना अभागा था कि भिक्षा द्वारा उसका पेट नहीं भरता था। जिस प्रकार त्योंहार के दिनों में कौआ खाना ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर भटकता रहता है; उसी प्रकार वह भी भिक्षा प्राप्त करने के लिए इधर-उधर भटकता रहता था। वह मुनियों की तरह सर्दी-गर्मी और हवा के झपट्टे बारम्बार सहन करता था। वह हमेशा गन्दा रहता था। मात्र रसनेन्द्रिय के विषय की इच्छा रखता था, अन्य सभी इन्द्रियों का रस छूट गया था।

जिस प्रकार राजा हमेशा दण्डधारी होता है; वैसे ही यह भी हमेशा दण्डधारी ही रहता था – हाथ में लकड़ी रखता था। 'सातवें नरक में उत्पन्न होनेवाली नारकी का रूप ऐसा होता है' – मानों यह बताने के लिए ही विधाता ने इसकी रचना की हो। वह आद अथवा स्याही का रूप धारण करता था अथवा मानो सूर्य के भय से अन्धकार का समूह मनुष्य का रूप धारण करके चल रहा हो – ऐसा लगता था। तात्पर्य यह है कि वह अत्यन्त

www.vitragvani.com

घृणास्पद था, पापी था। यदि उसे किसी दिन कष्टपूर्वक पूर्ण आहार मिल जाता तो भी आँखों से अतृप्त जैसा लगता था। वह जीर्ण-शीर्ण और फटे हुए कपड़े अपनी कमर में बाँधे रखता था। उसका शरीर बहुभाग चोटों से युक्त था, उसमें से दुर्गन्ध आती थी। उसे भिनभिनाती मक्खियाँ हमेशा घेरे रहती थी, कभी हटती नहीं थी। मक्खियों के चिपकने से उसे बहुत गुस्सा आता था। नगर के बालकों का झुण्ड हमेशा उसके पीछे-पीछे रहता था और पत्थर आदि प्रहारों से उसे पीड़ा पहुँचाता था। वह क्रोधित होकर उन बालकों के पीछे दोड़ता भी था, परन्तु बीच में ही गिर जाता था। इस प्रकार वह अनेक कष्टपूर्वक अपने दिन बिता रहा था।

अहा! देखो तो सही! जीव के पापपरिणामों का दु:खप्रदायक फल!! थोड़े से इन्द्रियजन्य सुख के लिए हँस-हँसकर पाप बाँधनेवाला अज्ञानी प्राणी भूल जाता है कि इस पापोदय का फल उसे रो-रोकर भी भोगना पड़ेगा।

❖ ❖ ❖

किसी एक समय कालादिलब्धियों की अनुकूल प्राप्ति से वह आहार के लिए नगर में भ्रमण करनेवाले समुद्रसेन नाम के मुनिराज के पीछे जाने लगा। मुनिराज का आहारदान श्रवण सेठ के यहाँ हुआ। सेठ ने उस गौतम ब्राह्मण को भी भरपेट भोजन करा दिया। भोजन करने के बाद वह मुनिराज के आश्रम में जाकर कहने लगा - हे प्रभो! आप मुझे अपने जैसा बना दो।

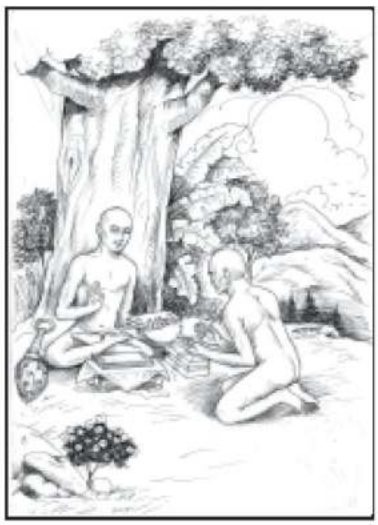

मुनिराज ने उसके वचन सुनकर पहले तो यह निर्णय किया कि यह वास्तव में भव्य है। फिर उसे कुछ दिनों तक अपने पास रखकर उसके हृदय की परख की, तत्पश्चात् मुनिराज ने उसे शान्ति का साधनभूत संयम ग्रहण करा दिया। उसको एक वर्ष पश्चात् बुद्धि आदि ऋद्धियाँ भी प्राप्त हो गईं।

अब वह गौतम ब्राह्मण गुरु के स्थान तक पहुँच गया, उनके समान बन गया। आयु

www.vitragvani.com

के अन्त में उसके गुरु मध्यम ग्रैवेयक के सुविशाल नाम के उपरितन विमान में अहमिन्द्र हुए और श्री गौतम मुनिराज भी अन्त में भले प्रकार से विधिपूर्वक आराधनाओं की आराधना करके समाधिमरण करके उसी मध्यम ग्रैवेयक के सुविशाल विमान में अहमिन्द्र पद को प्राप्त हुए। वहाँ के दिव्यसुख का उपभोग प्राप्त करके वह ब्राह्मण मुनि का जीव अट्ठाईस सागर की आयु पूर्ण होने पर वहाँ से चयकर अन्धकवृष्टि (श्री नेमिनाथ भगवान के दादाजी) नाम का राज हुआ।

एक बार उसने सुप्रतिष्ठित जिनेन्द्र के समीप जाकर अपने पूर्व भव के सम्बन्ध में पूछा। भगवान के श्रीमुख से अपने पूर्व भवों का वृतान्त सुनकर वह संसार ये भयभीत हो गया, अत: परमपद-मोक्षपद प्राप्त करने की इच्छा से अपने पुत्र समुद्रविजय को अभिषेकपूर्वक राज्य सौंप दिया और स्वयं समस्त ही परिग्रह छोड़कर, शान्तचित्त होकर उन्हीं सुप्रतिष्ठित जिनेन्द्र के समीप बहुत राजाओं के साथ तप धारण कर लिया। इस प्रकार संयम धारण करके अन्त में समाधिमरण किया और कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लिया।

देखो! चैतन्यस्वभाव की अद्भुतता!! कहाँ तो रुद्रदत्त के भव में अनेक प्रकार के पापपरिणामों से लिप्त एवं उसके फल में नरकादि गतियों का परिभ्रमण!! और कहाँ जैनेश्वरी दीक्षा और देव का भव! स्वरूप की अनवरत आराधना से मुक्ति का लाभ!! अहा! एक समय का पापपरिणाम अथवा पुण्यपरिणाम, चैतन्य के शुद्धस्वरूप का स्पर्श भी नहीं करता!! अहो! पुण्य-पाप की विकारी वृत्तियों के समय भी उनसे अलिप्त शुद्ध चैतन्यस्वभाव की एकमात्र आराध्य एवं उपास्य है। उसी की उपासना मुक्ति प्रदायिनी है।

(- हरिवंशपुराण में से)

7 वज्रबाहुकुमार का वैराग्य

श्री मल्लिनाथ भगवान के मोक्षगमन से मुनिसुव्रतनाथ के अन्तराल काल में इस क्षेत्र में अयोध्यानगरी में एक विजय नाम का राजा हुआ। वह महाशूरवीर, प्रतापी, प्रजापालन में प्रवीण, समस्त शत्रुओं को जीतनेवाला था। उसकी पटरानी का नाम हेमचूल था। उसके महागुणवान सुरेन्द्रबन्धु नाम का पुत्र हुआ। उसकी रानी का नाम कीर्तिरमा था, जिससे उन दोनों के दो पुत्र थे, एक वज्रबाहु और दूसरा पुरन्दर। उनकी क्रान्ति सूर्य-चन्द्र के समान थी। वे सार्थक नामवाले दोनों महागुणवान भाई, पृथ्वी पर सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत कर रहे थे।

उन्हीं दिनों हस्तिनापुर में राजा इन्द्रवाहन राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम चूड़ामणि था। इन दोनों के मनोदया नाम की अतिसुन्दर पुत्री थी। उसका विवाह वज्रबाहुकुमार के साथ हुआ था। विवाहोपरान्त उस कन्या का भाई उदयसुन्दर अपनी बहिन को लेने के लिए अयोध्या आया। वज्रबाहुकुमार को अपनी पत्नी मनोदया के प्रति अतिशय प्रेम था; अत: वह कुमार भी अपनी पत्नी के साथ ही ससुराल चलने हेतु तत्पर हुआ।

उस समय बसन्त ऋतु का समय था। वे सभी मार्ग में बसन्तगिरि पर्वत के समीप पहुँचे। जैसे-जैसे पर्वत समीप आता गया, वैसे-वैसे उसकी परम शोभा देखकर कुमार अत्यन्त हर्षित हुआ। वृक्षों की शोभा देखते-देखते राजकुमार वज्रबाहुकुमार की दृष्टि वहाँ आत्मध्यान में स्थित नग्न दिगम्बर वीतरागी मुनिराज पर पड़ी और वह विचारने लगा - 'अहा! यह स्तम्भ है, पर्वत का शिखर है अथवा मुनिराज हैं!' कायोत्सर्ग धारण करके खड़े मुनिराज के विषय में, वज्रबाहु इस प्रकार विचार करते हुए टकटकी लगाकर मुनिराज की ओर देखने लगा।

www.vitragvani.com

मुनि को वृक्ष का ठूँठ जानकर, मृग अपने शरीर को घिसकर अपनी खाज मिटा रहा था। जब वज्रबाहुकुमार नजदीक गया, तब उसको निश्चय हुआ कि यह महा योगीश्वर शरीर का भान भूलकर स्थिररूप से कायोत्सर्ग करके खड़े हैं, सूर्य की किरणें इनके मुख कमल का स्पर्श कर रही है, ये महा दैदीप्यमान भुजाएँ लम्बाकर खड़े हैं, इनका वक्षस्थल सुमेरु तट के समान सुन्दर है। दिग्गजों को बाँधने के स्तम्भ जैसी इनकी जंघाएँ हैं। शरीर तप से क्षीण होने पर भी कान्ति से परिपूर्ण दिखता है, इन्होंने निश्चल सौम्य नेत्र नाक की अणी के ऊपर स्थिर किये हैं, एकाग्र होकर आत्मा का ध्यान करते हैं – ऐसे मुनि को देखकर राजकुमार चिन्तवन करने लगा –

'अहो! धन्य है शान्तिभाव के धारक महामुनि! जो समस्त परिग्रह को छोड़कर, मोक्षाभिलाषी होकर तप कर रहे हैं; इनका निर्वाण निकट है। जिनकी बुद्धि निजकल्याण में लगी है, जिनकी आत्मा परजीवों को पीड़ा देने से निवृत्त हुई है और मुनिपद की क्रिया से मण्डित है, जिनको शत्रु और मित्र समान है, तृण और कञ्चन समान है, पाषाण और रत्न समान है; जिनका मन मान, मत्सर से रहित है; जिन्होंने पाँचों ही इन्द्रियों को वश में किया है, जिनका वीतरागभाव निश्चल पर्वत के समान है, जिनको देखने से जीवों का कल्याण होता है। वस्तुत: इन्होंने ही मनुष्य देह का फल प्राप्त किया है।

मैं पापी निरन्तर कर्मरूप बन्धन में बँध रहा हूँ। जैसे, चन्दन का वृक्ष सर्पों से घिरा रहता है; उसी प्रकार में असावधानचित्त अचेत के समान हो रहा हूँ। धिक्कार है मुझे! मैं भोगादिरूप महापर्वत के शिखर पर सो रहा हूँ, उससे नीचे ही गिरूँगा। यदि इन योगेन्द्र के जैसी दशा धारण करूँ तो मेरा जीवन सफल हो जाए' – इस प्रकार चिन्तन करते हुए वज्रबाहुकुमार की दृष्टि मुनिराज में इस तरह अतिनिश्चल हो गई, मानो स्तम्भ के साथ बँध गई हो। तब उनके साला उदयकुमार

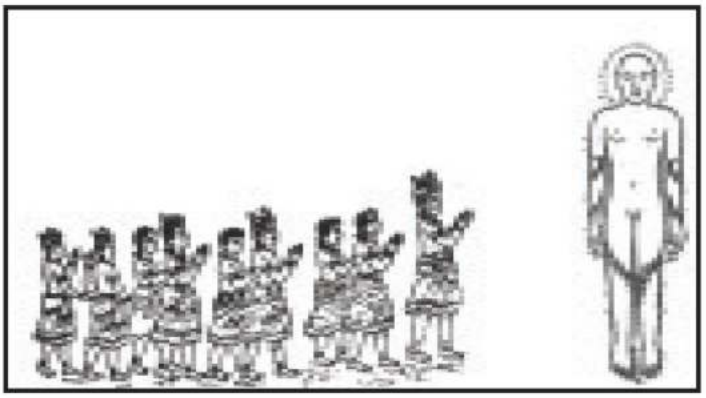

www.vitragvani.com

ने उन्हें मुनिराज को निश्चल दृष्टि से देखते देखकर मजाक ही मजाक में हँसकर कहा 'हे बन्धु! मुनिराज की तरफ निश्चल होकर देख रहे हो तो क्या दिगम्बर दीक्षा धारण करनी है?'

वज्रबाहु ने जवाब दिया – 'हे भ्राता! तुमने मेरे हृदय के भाव को प्रकट किया है। अब तुम इसी भाव की बात करो।'

उसने वज्रबाहु को रागी जानकर हँसते-हँसते कहा – 'यदि आप जिनदीक्षा लोगे तो मैं भी इसी पथ का अनुगमन कर लूँगा, परन्तु इस दीक्षा से तो आप अत्यन्त उदास होओगे।'

वज्रबाहु बोला – 'मैंने तो यह ली' – ऐसा कहकर विवाह के आभूषण उतार दिये और हाथी से नीचे उतर गया। उसकी यह चेष्टा देखकर, नवविवाहिता राजकुमारी मनोदया रोने लगी, बड़े मोतियों के समान अश्रुपात करने लगी। उसके आँसू पोंछते हुए उदयसुन्दर, वज्रबाहु से कहने लगा – 'भाई! यह तो मजाक की बात थी, इसे उल्टा क्यों लेते हो?'

अति मधुर वचनों से उसे शान्ति उपजाता वज्रबाहुकुमार कहने लगा – 'हे कल्याणरूप! तुम्हारे समान अन्य उपकारी कौन है? मैं विषयरूपी कुएँ में गिर रहा था, उससे तुमने मुझे बचाया, तुम्हारे जैसा तीन लोक में मेरा कोई मित्र नहीं है। हे उदयसुन्दर! जो जन्मा है, वह अवश्य मरेगा और जो मरा है, वह अवश्य जन्मेगा। यह जन्म और मरण रहट के घड़े के समान है, इसमें संसारी जीव निरन्तर भ्रमता है।

भाई! यह जीवन बिजली के चमकारे के समान, जल के तरङ्ग के समान तथा दुष्ट सर्प की जिव्हा के समान चञ्चल है। इस जगत के जीव दु:ख सागर में डूब रहे हैं। इस संसार के भोग स्वप्न के भोग के समान असार हैं, काया पानी के परकोटे जैसी है, इस जगत में स्नेह संध्या समय की लालिमा के समान है और यह यौवन फूल की तरह मुरझानेवाला है। यह तुम्हारी मजाक भी मेरे लिए अमृत के समान कल्याणरूप हुई है।

भाई! क्या हँसते-हँसते औषधि पीने से वह रोग को नहीं हरेगी? अवश्य हरती ही है। तुम मुझे मोक्षमार्ग के उद्यम में सहायक हुए। तुम्हारे जैसा अन्य कोई हितकारक नहीं

www.vitragvani.com

है। मैं संसार के आचरण में आसक्त हो गया था, अब मैंने वीतरागभाव पाया है। बन्धु! मैं तो जिनदीक्षा लेता हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो उस प्रकार तुम करो।'

– ऐसा कहकर, सब परिवार से क्षमा माँगकर, तप ही जिनका धर्म है – ऐसे गुणसार मुनि के समीप जाकर, उनके चरणारविन्द में नमस्कार करके, विनयवान होकर वज्रबाहुकुमार कहने लगा –

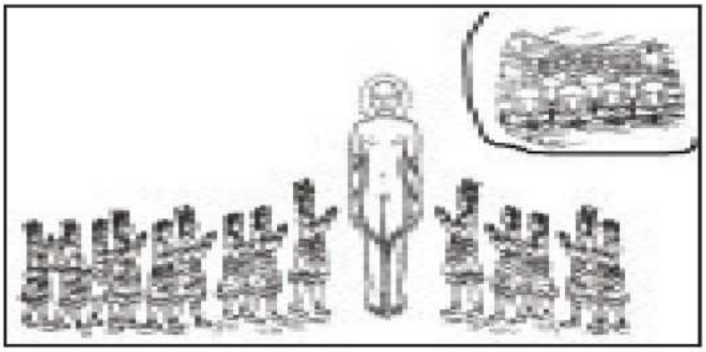

'हे स्वामी! आपकी कृपा से मेरा मन पवित्र हुआ है, अब मैं संसाररूपी कादव से निकलना चाहता हूँ।'

वज्रबाहुकुमार के वचन सुनकर गुरु ने आज्ञा दी – 'हे वत्स! यह जिनदीक्षा तुमको भवसागर से पार उतारनेवाली है।'

अहा! कैसे हैं गुरु? जो सातवें में से छठवें गुणस्थान में आये हैं। कुमार ने गुरु की आज्ञा को हृदय में धारण किया, समस्त वस्त्राभूषणों का त्याग करके, केशलोंच किया और पल्यंकासन धारण किया। इस देह को विनश्वर जानकर, शरीर का स्नेह त्यागकर राजपुत्री और राग को तजकर मोक्षदायिनी जिनदीक्षा अङ्गीकार की। साथ ही उदयसुन्दर आदि छब्बीस राजकुमारों ने भी जिनदीक्षा अङ्गीकार की।

जिनका रूप कामदेव के समान हैं, जिन्होंने राग-द्वेष-मत्सर का त्याग किया है, जिनको वैराग्य का अनुराग उत्पन्न हुआ है – ऐसे उन कुमारों ने परम उत्साह से वीतरागी नग्नमुद्रा धारण की। यह वृतान्त देखकर वज्रबाहु की पत्नी मनोदया ने भी पति और भाई के मोह को तजकर आर्यिका के व्रत धारण किये। सर्व वस्त्राभूषण तजकर एक सफेद साड़ी धारण की और महातप का आचरण किया।

जब राजदरबार में विराजित वज्रबाहु के दादा राजा विनय ने वज्रबाहु के जिनदीक्षा अङ्गीकार करने की घटना सुनी तो वे शोक से पीड़ित होकर कहने लगे – 'अरे! यह

www.vitragvani.com

आश्चर्य देखो! मेरा पौत्र युवावस्था में विषयों को विष-समान जानकर, उनसे विरक्त होकर मुनि हुआ है और मेरे समान मूर्ख विषयों का लोलुपी वृद्धावस्था में भी भोगों को नहीं छोड़ता। अहो! कुमार ने उन्हें किस प्रकार छोड़ा। अथवा वह महाभाग भोगों को तृणवत् त्यागकर मोक्ष के निमित्त ऐसे शान्तभाव में तल्लीन हुआ है और मैं मन्द भाग्य वृद्धावस्था से पीड़ित होने पर भी इन पापी विषयों के द्वारा लम्बे काल से छला गया हूँ।

अरे! ये विषय देखने में तो सुन्दर हैं, परन्तु इनका फल अत्यन्त कड़वा है। मेरे केश इन्द्रनीलमणिवत् श्याम थे, वे अब बरफ के समान श्वेत हो गये हैं। मेरा शरीर अति देदीप्यमान, शोभायमान, महाबलवान तथा स्वरूपवान था, वह भी वृद्धावस्था में वर्षा से क्षतिग्रस्त चित्र जैसा हो गया है। जो धर्म, युवा अवस्था में भली प्रकार सिद्ध होता है, वह जरामण्डित प्राणी से सधना विषम है। धिक्कार है पापी, दुराचारी, प्रमादी ऐसे मुझे! मैं चेतन होने पर भी मैंने अचेतनवत् दशा धारण की। यह झूठा घर, झूठी माया, झूठी काया, झूठे बाँधव, झूठा परिवार; इनके स्नेह से भवसागर में परिभ्रमण किया।'

इस प्रकार वैराग्यभावपूर्वक विचार करके, समस्त परिवार से क्षमा माँगकर, छोटे पौत्र पुरन्दर को राज्य देकर, अपने पुत्र सुरेन्द्रबन्धु सहित राजा विजय ने वृद्धावस्था में निर्वाणघोष स्वामी के समीप जिनदीक्षा अङ्गीकार कर ली।

धन्य है वज्रबाहुकुमार के वैराग्य को!! ●

(पद्मपुराण से)

मुनिराज के आगमन की प्रतीक्षा

भरत चक्रवर्ती जैसे धर्मात्मा भी भोजन के समय रास्ते पर आकर किन्हीं मुनिराज के आगमन की प्रतीक्षा करते थे और मुनिराज के पधारने पर परमभक्ति से आहारदान देते थे। **अहा! मानों आँगन में कल्पवृक्ष फला हो, उससे भी विशेष आनन्द धर्मात्मा को मोक्षमार्गसाधक मुनिराज को अपने आँगन में देखकर होता है।**

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, गुरुदेवश्री के वचनामृत, २०, पृष्ठ १२

8 देशभूषण और कुलभूषण की भवावली

श्रीराम, लक्ष्मण, और सीता वनवास के समय चलते-चलते वंशस्थल नगर में आ पहुँचे। नगर की बाजु में वंशधर नाम के पर्वत पर देशभूषण और कुलभूषण नामक दोनों मुनिराज महाध्यानारूढ़ दोनों हाथ लम्बाकर (लटकाकर) कायोत्सर्ग आसन में खड़े हैं। समुद्र के समान गम्भीर, गिरी के समान स्थिर, शरीर तथा आत्मा को भिन्न-भिन्न जाननेवाले, मोहरहित, नग्नस्वरूप, कान्ति के सागर, नवयौवन, परम सुन्दर, महा संयमी, जिनधर्म की आराधना करनेवाले उन मुनियों को राम-लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और अत्यन्त भक्ति करते हुए आनन्दित होकर दोनों भाई विनय से मुनिराज के समीप बैठ गये। उसी समय वहाँ असुर के आगमन का महा भयंकर स्वर हुआ। मायामयी सर्प और बिच्छु मुनिराजों के शरीर पर चढ़ने लगे। अति भयानक आवाजवाले सर्प तथा अनेक जाति के बड़े-बड़े बिन्छु मुनिराजों के शरीर को डंक मारने लगे।

यह दृश्य देखकर राम-लक्ष्मण, असुर पर अत्यधिक क्रोधित हुए और भयभीत सीता को धैर्य बँधाकर, दोनों भाई मुनिराजों के समीप जाकर उनके शरीर से सर्प और बिच्छुओं को दूर करके मुनियों के चरणों की पूजा करने लगे - योगीश्वर की भक्ति-वन्दना करने लगे। श्रीराम-लक्ष्मण वीणा लेकर बजाने लगे और मधुर स्वर से भक्ति गाने लगे, जिनके शब्द थे - 'धीर-वीर महायोगीश्वर मन-वचन-काया से वन्दनीय है, इनकी चेष्टा मन को लुभानेवाली है, देवों द्वारा पूजित महाभाग्यवन्त, तीन भुवन में प्रसिद्ध, जिनधर्म के धुरन्धर, वज्रदण्ड द्वारा महामोहरूपी शिला को खण्ड-खण्ड कर दे तथा धर्महीन प्राणी पर दया करके विवेक के रास्ते लावे, परम दयालु स्वयं तरे अन्य को तारे,'- इस प्रकार दोनों भाई स्तुति करते हुए अत्यन्त मधुर स्वर में भक्ति गा रहे थे, जिसे सुनकर

www.vitragvani.com

वन के तिर्यञ्च प्राणियों का मन भी मोहित हो गया। मुनिराज की भक्ति से प्रेरित सीता ऐसा नृत्य कर रही थी सुमेरु पर शचि ही नृत्य कर रही हो।

वीतरागी मुनिराजों पर असुर का उपद्रव सूर्य भी नहीं देख सका; अत: अस्त हो गया। दशों दिशाओं में अन्धकार व्याप्त हो गया। उस समय असुर के मायाचार से अनेक व्यन्तरियाँ आकर भयंकर शब्द बोलने लगी। दुर्गन्धसहित खून की धारा बरसाने लगीं तथा क्रूर है शरीर जिसका, हाथ में खड़ग लेकर तथा सिंह-बाघ जैसे मोटे, तप्त लोहे के समान नैत्र, हाथ में त्रिशूल धारण करके पिशाच नृत्य करने लगे। पर्वत की शिला कम्पायमान होने लगी तथा भूकम्प हुआ परन्तु शुक्लध्यान में लीन मुनियों ने तो कुछ भी नहीं देखा।

यह सारी चेष्टा देखकर सीताजी भय से डर गई। राम ने कहा - हे प्रिये! डरो नहीं; समस्त विघ्नों को हरनेवाले मुनियों के चरणों की शरण ग्रहण करो!

सीताजी को मुनिराजों के चरणों के समीप छोड़कर रामचन्दजी ने स्वयं लक्ष्मण के साथ हाथ में धनुष लेकर महावली मेघसमान गर्जना की। धनुष के चढ़ने से ऐसा शब्द हुआ मानो वज्रपात की आवाज हो। तब वह अग्निप्रभ नाम का असुर दोनों वीरों को बलभद्र-नारायण जानकर भाग गया, उसकी समस्त चेष्टायें विलीन हो गई। इस प्रकार श्रीराम-लक्ष्मण ने मुनिराजों का उपसर्ग दूर किया और तुरन्त ही देशभूषण-कुलभूषण ने केवलज्ञान प्राप्त किया।

❖ ❖ ❖

केवली भगवान के केवलज्ञान का महोत्सव मनाने चारों प्रकार के देव आये। विधिपूर्वक जिनदेव नमस्कार करके सब यथास्थान बैठ गये। केवलज्ञान के प्रताप से केवली के नजदीक रात-दिन का कोई भेद नहीं रहा। भूमिगोचरी तथा विद्याधर केवलज्ञान की पूजा करके यथास्थान बैठ गये। सुर-नर-विद्याधर आदि सभी ने धर्मोपदेश श्रवण किया। राम-लक्ष्मण-

www.vitragvani.com

सीता ने हर्षित होकर केवली की पूजा की और हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए पूछने लगे – हे भगवन्! असुर ने आपके ऊपर उपसर्ग किसलिए किया? तथा आप दोनों में प्रेम किस कारण से है?

तब केवली की सर्व समाधान कारक दिव्यध्वनि खिरने लगी, जिसमें इस प्रश्न का यह समाधान आया –

❖ ❖ ❖

पद्मनी नगर के राजा विजयपर्वत के धारणी नाम की जीवनसंगिनी तथा समस्त शास्त्रों में प्रवीण, राज-काज में निपुण अमृतसुर नाम का दूत था। उसकी पत्नी का नाम उपभोगा था। उसके उदित-मुदित नाम के दो पुत्र थे। राजा ने अमृतसुर नाम के दूत को कार्यवश बाहर भेजा। वह स्वामीभक्त अपने वसुभूति मित्र को साथ लेकर निकल पड़ा। वसुभूति पापी था। उसे अमृतसुर की स्त्री के प्रति आसक्ति होने से दुष्ट विचारों के कारण उसने रात्रि में अमृतसुर को तलवार से मार दिया और वापिस नगरी में आ गया। उस पापी ने लोगों से कहा कि उसने मुझे वापिस भेज दिया है परन्तु अमृतसुर की स्त्री से सत्य बात कह दी। अमृतसुर की पापी पत्नी ने कहा कि मेरे दो पुत्र हैं, यदि तुम इन्हें भी मार दो तो हम दोनों निर्विघ्न जी सकते हैं।

उदित की बहू ने यह बात सुनकर, उदित को माँ के इस कुत्सित विचार से अवगत कराया। यह बहू अपनी सास के दुष्चरित्र को पहले से ही जानती थी। उसने वसुभूति की पत्नी से भी यह समाचार कह दिया था; इस कारण वह परस्त्री के सेवनहार पति से विरक्त हो गई। उदित ने इन सब बातों से भाई मुदित को भी सावधान कर दिया। वसुभूति का खड़ग देखकर, पिता के मरण को सत्य मानकर उदित ने वसुभूति को मार दिया और वह पापी मरकर म्लेच्छ योनि में उत्पन्न हुआ।

अरे...रे...! संसार की विषय-वासनामय स्वार्थवृत्ति को धिक्कार है! जहाँ माता ही अपने पुत्रों को मारने हेतु तत्पर हो जाती है!!

❖ ❖ ❖

एक बार मतिवर्धन नाम के आचार्य पद्मनी नगरी में पधारे और बसन्ततिलक

www.vitragvani.com

उद्यान में संघसहित विराजमान हुए। अर्यिकाओं की गुरु गणिनी अनुराधा की संघसहित नगर के समीप उद्यान में विराजमान हुई।

जिस वन में मुनिराज विराजमान थे, उस वन के अधिकारी ने राजा विजयपर्वत के पास आकर कहा कि हे राजन्! मुनिराज उधान में पधारे हैं। यदि इन्कार करूँ तो भी डर लगता है और हाँ करूँ तो भी आपका भय लगता है – यह बड़ा संकट है। यह वन स्वर्ग के उद्यान के समान है। अभी तक यहाँ किसी को नहीं आने दिया परन्तु इन मुनियों का क्या कहना? जिनको देव भी नहीं पहुँचे, वहाँ मेरी क्या बिसात? तब राजा ने कहा कि तुम इन्कार नहीं करना। जहाँ साधु विराजते हैं, वह स्थान भी पवित्र हो जाता है।

ऐसा कहकर राजा ने स्वयं महाविभूतिसहित मुनिराजश्री के दर्शन करने हेतु वन की ओर गमन किया। हमारा अहोभाग्य है कि उद्यान में मुनिराज विराजे, वन की धूल भी पवित्र हो गई। जो मुक्ति के योग्य क्रिया से संयुक्त है, पठन-पाठन से सावधान है, भ्रमर के समान जिनके मधुर शब्द है, जिन्होंने शुद्धस्वरूप में ही चित्त लगाया है – ऐसे मुनि को दूर से देखकर राजा गर्वरहित होकर हाथी से उतर गया और समस्त मुनियों के दर्शन करके

आचार्य के समीप जाकर तीन प्रदक्षिणा करके पूछने लगा कि – हे नाथ! जैसी तुम्हारी शरीर में दीप्ति है-कान्ति है, वैसे भोग नहीं।

आचार्य कहने लगे कि हे राजन्! तुम्हारी बुद्धि कहाँ गई? तुम्हारी शूरवीरता कहाँ गई? तुम इन सब भोगों को स्थिर मानते हो? – यह बुद्धि संसार को बढ़ानेवाली है। जिस प्रकार हाथी के कान चञ्चल है; इसी प्रकार

www.vitragvani.com

विषय चञ्चल है। यह देह कदली के थम्भ के समान असार है तथा ऐश्वर्य इन्द्र धनुष के समान हैं। घर, परिवार, स्त्री, पुत्र, कलत्र, बन्धु आदि सभी असार है। यह सब जानकर संसार के प्रति प्रीति करने योग्य नहीं है, क्योंकि यह संसार दु:खदायक है।

यह प्राणी अनेक बार गर्भवास के दु:ख भोगता है। गर्भवास तो वस्तुत: नरक के समान भयंकर दुर्गन्धयुक्त और क्रमिजाल से पूर्ण, रक्त-श्लेष्मादि का सरोवर, अति अशूचि और कर्दभ से भरा है, परन्तु यह प्राणी मोहरूपी अन्धकार से अन्धा होकर गर्भवास से नहीं डरता। धिक्कार है ऐसे अशुभ के स्थान, क्षणभङ्गुर, अपवित्र देह को! जिसका कोई रक्षक नहीं है, यह जीव ऐसी देह को पोषता है और देह इसे ही दु:ख देती है; इसके प्रति अति कृतघ्न है। अन्तड़ियों और नाड़ियों का जाल, चमड़े से आच्छादित, अनेक रोगों का घर - ऐसी देह में जो प्राणी स्नेह करते हैं, वे ज्ञान रहित अविवेकी हैं। उनका कल्याण कहाँ से हो? इस शरीर में इन्द्रिय चोर बसते हैं। वे बलात्कारपने धर्मरूपी धन की चोरी करते हैं। यह जीवरूपी राजा कुबुद्धिरूपी स्त्री से रमता है तथा भयानक मृत्यु आकर उसका भक्षण करती है। मनरूपी मत्त हाथी विषयरूपी वन में क्रीड़ा करता है। ज्ञानरूपी अंकुश से उसे वश करके उसे विवेकी वैराग्यरूपी खम्बे से बाँधते हैं। यह इन्द्रियरूप तरङ्ग मोहरूप पताका का धारक है, चित्त को प्रेरित कर चञ्चलता रखती है। तात्पर्य यह है कि चित्त को वश करना योग्य है।

हे राजा! तू संसार-शरीर-भोगों से विरक्त हो। जिनराज को नमस्कार करके उनकी भक्ति कर, निरन्तर उनका स्मरण रख-इससे तू निश्चित संसार से पार हो जायेगा। तप-संयमरूप बाण से मोहरूपी शत्रु का नाश करके तू लोक के शिखर पर अविनाशीपुर का राज्य करेगा। निर्भय ऐसे निजपुर में तेरा वास होगा।

मुनिराज के श्रीमुख से भेदज्ञान एवं वैराग्यप्रेरक उपदेश सुनकर राजा विजयपर्वत राज्य त्यागकर मुनि हो गये। उस दूत के पुत्र दोनों भाई उदित-मुदित भी जिनवाणी सुनकर मुनि हो गये।

❖ ❖ ❖

एक बार तीर्थराज सम्मेदशिखर की यात्रा के लिए निकले वे दोनों मुनि - उदित-

www.vitragvani.com

मुदित रास्ता भूल जाने के कारण वन में जा पहुँचे। पूर्व के वसुभूति विप्र का जीव अतिभयंकर भील हुआ है, वह मुनि को देखकर अतिक्रोधायमान होकर कठोर दुर्वचन बोलने लगा और दोनों को खड़ा रखकर मारने के लिए तैयार हुआ। तब बड़े भाई उदित, मुदित से कहने लगे कि भाई! भय नहीं करना, क्षमारूपी ढाल को अङ्गीकार करना। यह मारने के लिए तैयार हुआ है तो हमने भी बहुत दिनों तक तप से क्षमा का अभ्यास किया है; अत: अब दृढ़ता रखना।

उदित मुनिराज के यह वचन सुनकर मुदित मुनिराज बोले – हे मुनि श्रेष्ठ! अपने को जिनमार्ग में श्रद्धा है, अत: अपने को डर कैसा? यह शरीर तो नश्वर है और यह वसुभूति का जीव है, जिसने पिता को बैरवश मारा था। इस प्रकार दोनों मुनि परस्पर बातचीत करके शरीर की ममता त्याग कर ध्यान में खड़े रहे। भील उन्हें मारने के लिए आया, किन्तु भील के सरदार ने उसे रोककर मुनियों को बचा लिया।

❖ ❖ ❖

केवली भगवान के श्रीमुख से यह कथा सुनकर राम ने प्रश्न किया कि हे देव! सरदार ने बचाया तो उसकी प्रीति का कारण क्या है? तब केवली भगवान की दिव्यध्वनि में आया कि एक यक्षस्थान नाम के गाँव में सुरय तथा कर्षक नाम के दो भाई रहते थे। शिकारी एक पक्षी को जीवित पकड़कर गाँव में लाया तो इन दोनों भाईयों ने धन देकर पक्षी छुड़ा लिया। वह पक्षी मरकर म्लेच्छ हुआ और वे सुरय और कर्षक दोनों भाई मरकर उदित–मुदित हुए। उस परोपकार से इस भव में म्लेच्छ सरदार ने मुनियों को बचाया। वे मुनि उपसर्ग से छूटकर सम्मेदशिखर की यात्रा करने गये तथा उन्होंने अनेक तीर्थों की यात्रा की। रत्नत्रय की आराधना करते–करते समाधिमरण करके वे दोनों स्वर्गलोक में गये और वसुभूति का जीव जो म्लेच्छ हुआ था, वह अनेक कुयोनियों में भ्रमण करके मनुष्य देह पाकर तापस व्रत करके अज्ञानतप द्वारा मरकर ज्योतिषी देव में अग्निकेतु नाम का क्रूर देव हुआ।

❖ ❖ ❖

भरतक्षेत्र के अरिष्टपुर नगर का राजा प्रियव्रत था। उसकी महागुणवती दो रानियाँ – एक कनकप्रभा दूसरी पद्मावती थी। उदित–मुदित के जीव स्वर्ग में आकर पद्मावती

www.vitragvani.com

रानी के रत्नरथ तथा विचित्ररथ नाम के पुत्र हुए। वह ज्योतिषी अग्निकेतु का जीव रानी कनकप्रभा के अनुधर नाम का पुत्र हुआ। राजा प्रियदत्त ने पुत्र को राज्य देकर भगवान के चैत्यालय में छह दिन का अनशन करके देह का त्याग करके स्वर्गलोक प्राप्त किया।

तत्पश्चात् एक राजा की पुत्री श्रीप्रभा, जो कि लक्ष्मी के समान थी, का विवाह रत्नरथ से हुआ। अनुधर की इच्छा उससे विवाह करने की थी और रत्नरथ के साथ पूर्व भव का बैर तो था ही, उसमें यह नया बैर बँधा। अत: अनुधर, रत्नरथ की पृथ्वी उजाड़ने लगा। तब रत्नरथ और विचित्ररथ दोनों भाईयों ने अनुधर को युद्ध में जीतकर देश से निकाल दिया। पूर्व भव के बैर व देश निष्कासन के बैर से वह दोनों भाईयों से अत्यधिक क्रोध करने लगा। महा तेजस्वी, रत्नरथ, विचित्ररथ चिरकाल तक राज्य करके, मुनि होकर, तप करके स्वर्ग में देव हुए। स्वर्ग में महासुख भोगकर वहाँ से आकर सिद्धार्थ नगर के राजा क्षेमन्धर की रानी विमला के देशभूषण-कूलभूषण नाम के दो पुत्र हुए।

❖ ❖ ❖

एक दिन एक सागरघोस नाम का पण्डित अनेक देशों में भ्रमण करता हुआ आया। राजा ने बहुत आदर से पण्डित को रखा और दोनों भाईयों को पढ़ाने के लिए उसे सौंप दिया। दोनों भाई अत्यन्त विनय से सर्वप्रकार की कला सीखने के लिए परिजनों इत्यादि को छोड़कर केवल एक विद्या को ही मुख्य जानकर विद्याभ्यास करने लगे। विद्यागुरु के समीप उन्होंने अनेक प्रकार की विद्या सीखी और सर्व कलाओं के पारगामी वे पुत्र, पिता के समीप आये। उन्हें सर्वकला निपुण देखकर पिता प्रसन्न हुए और पण्डित को मनोवाञ्छित दान दिया।

यह कथा कहकर केवली श्रीराम से कहते हैं कि वह देशभूषण और कुलभूषण हम हैं। कुमार अवस्था में हमने सुना कि पिता ने हमारे विवाह के लिए राजकन्या मँगाई है तो यह सुनकर हम नगर की शोभा देखने के लिए बाहर निकले। हमारी बहिन कमलोत्सवा कन्या झरोखे में बैठी नगर की शोभा निहार रही थी। हमने सिवाय विद्याभ्यास के कभी भी परिवार में किसी को नहीं पहिचाना था; अत: न हम यह जान सके कि यह हमारी बहिन है। हमारे मन में विकार उत्पन्न हुआ। उसी समय छड़ीदार के मुख से सुना कि राजा

www.vitragvani.com

क्षेमन्धर, रानी विमला जयवन्त हो, जिनके देव समान दो पुत्र हैं और इस झरोखे में बैठी कमलोत्सवा सरस्वती के समान पुत्री है। महागुणवान पुत्रों और महागुणवती पुत्री–ऐसी सन्तानें तो पुण्याधिकारी को ही होती है।

जब हमने यह बात सुनी तो में विचारा कि अहो देखो! मोहकर्म की दुष्टता! अपनी बहिन के प्रति भोग की इच्छा हुई! यह संसार असार तथा दु:ख से भरा है। धिक्कार है ऐसे जीवन को कि ऐसा भाव आया!! पाप के योग से प्राणी नरक में जाकर महादु:ख भोगते हैं – ऐसा विचारकर हमको ज्ञान हुआ और हम वैराग्य से दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए। उस समय स्नेह के कारण माता–पिता दु:खी हुए। हमने सबकी ममता तजकर दिगम्बरी दीक्षा धारण की। हमको आकाशगामिनी ऋद्धि–सिद्धि प्राप्त हुई। विविध जिन तीर्थों में बिहार किया। पिता राजा क्षेमन्धर पूर्व भव में भी हमारे पिता थे। वे हमारे वियोग की शोकरूपी अग्नि में जलकर सर्वप्रकार के आहार का त्याग करके मरण को प्राप्त हुए। वे मरकर गरुड़ेन्द्र हुए जो देवों की सभा में आकर बैठें हैं।

❖ ❖ ❖

वह अनुधर तापसी भी परिभ्रमण करते–करते कौमुदी नगरी में आया और अपने शिष्यों के साथ राजा के सन्मुख बैठा। उसकी रानी रतिवती अति सुन्दरी सैंकड़ों रानियों में प्रधान थी, उसकी एक मदना नाम की नृत्यकारिनी थी, जो अति सुन्दर रूप, अद्‌भुत चेष्टा की धारक थी। उसने साधुदत्त नाम के मुनि के द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था, तभी से कुगुरु–कुदेव–कुधर्म को तृणवत् समझती थी। उससे एक दिना राजा से कहा कि यह अनुधर तापसी महा तपस्वी है। तब मदना ने कहा कि हे नाथ! अज्ञानी को तप कैसा? पाखण्ड रूप है। यह सुनकर राजा ने क्रोध किया कि तू तपस्वी की निन्दा करती है? तब उसने कहा कि आप मुझ पर क्रोध नहीं करें, थोड़े ही दिनों में उस तापस की वास्तविकता

www.vitragvani.com

पता पड़ जायेगी। ऐसा कहकर घर आकर अपनी नागदत्ता नाम की पुत्री को सिखाकर तापस के आश्रम में भेज दिया।

वह देवाङ्गना के समान परम चेष्टा की धारक कन्या, तापस को अपने अति सुन्दर अङ्ग-उपाङ्ग दिखाने लगी। अज्ञानी तापस का मन मोहित हो गया और नेत्र चलायमान हुए। जिस-जिस अङ्ग पर उसकी दृष्टि पड़ी, वहीं उसका मन बँध गया। तापस कामबाण से पीड़ित होने लगा। व्याकुल होकर उसने देवाङ्गना समान कन्या के समीप आकर पूछा – तू कौन है और यहाँ कहाँ से आई है ? सायंकाल के समय जबकि सभी छोटे-बड़े अपने स्थान में बैठे हैं, तू महासुकुमार अकेली वन में क्यों विचरती है ?

तब मधुर शब्दों से उसका मन हरती हुई वह कन्या बोली – हे नाथ! दयावान, शरणागत प्रतिपाल! आज मुझे मेरी माता ने घर से निकाल दिया है; अत: अब मैं तुम्हारे वेष में तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ, तुम मुझ पर कृपा करो। रात-दिन तुम्हारी सेवा करने से मेरा यह लोक तथा परलोक-दोनों सुधर जायेंगे। धर्म, अर्थ, काम सब तुम्हारे से प्राप्त है। तुम परमनिधान हो और पुण्य के योग से मुझे प्राप्त हुए हो।

इस प्रकार कन्या के कहने पर कामाग्नि में जलता हुआ तापस कहने लगा – हे भद्रे! मैं क्या कृपा करूँ ? तू कृपा करके प्रसन्न हो। मैं जीवनभर तेरी सेवा करूँगा – ऐसा कहकर वह कन्या का हाथ पकड़ने का प्रयत्न करने लगा। तब हाथ से इन्कार करके आदरपूर्वक कन्या कहने लगी कि हे नाथ! मैं कुँवारी कन्या हूँ, ऐसा करना उचित नहीं है। आप मेरी माता के घर जाकर पूछो, घर भी पास ही है। मुझ पर तुम्हारी जितनी करुणा उत्पन्न हुई है, वैसा बताकर मेरी माँ को प्रसन्न करो। वह तुम्हें देखेगी, तब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह करना।

कन्या के ऐसे वचन सुनकर वह मूढ़ तापस कामाग्नि से व्याकुल होता हुआ शीघ्र ही कन्या के साथ रात्रि में उसकी माता के पास आया। जिसकी सर्व इन्द्रियाँ काम से व्याकुल है – ऐसे तापस ने, जैसे मत्त-पागल हाथी जल के सरोवर में पड़ता है वैसे, नृत्यकारिनी ने घर में प्रवेश किया।

हे राजन्! काम से घायल प्राणी न स्पर्शता है, न चखता है, न सूँघता है, न देखता

www.vitragvani.com

है, न सुनता है, न डरता है और लज्जा करता है; वह कामाग्नि से इतना अन्धा हो गया होता है और महामोह से निरन्तर दु:ख पाता है। जैसे अन्धा प्राणी सर्प से भरे हुए कुएँ में गिरता है, वैसे ही कामान्ध जीव, स्त्री के विषयरूपी कुएँ में गिरता है। वह तापस नृत्यकारिनी के चरणों में लोटकर अति गरीब होकर कन्या की इच्छा करने लगा। उसने तापस को बाँधकर रखा और राजा को सूचना दी, राजा ने आकर तापस को बँधा हुआ देखा और प्रात:काल होने पर प्रताड़ित करके अपने राज्य से निकाल दिया। इससे अपमानित होकर वह अतिलज्जित होकर महादु:ख को वेदता पृथ्वी पर परिभ्रमण करके मरा और अनेक कुयोनियों में जन्म-मरण धारण किये।

कर्मानुयोग से वह एक दरिद्र के घर उत्पन्न हुआ। जब वह उदर में आया तभी उसकी माता, अपने पति को क्रूर वचन कहकर कलह करने लगी। जिससे उसका पति उदास होकर घर छोड़कर विदेश चला गया। तत्पश्चात् उसका जन्म हुआ। अभी बाल्यावस्था ही थी कि भीलों ने देश के मनुष्यों को पकड़ा, उसमें उसकी माता को भी पकड़ा था। परिवार में कोई नहीं होने से वह बहुत ही दु:खी हुआ। बहुत दिन बाद तापस होकर अज्ञानतप करके ज्योतिषी देव में अग्निप्रभ नाम का देव हुआ।

एक दिन धर्म में निपुण शिष्य ने अनन्तवीर्य केवली से पूछा कि हे नाथ! मुनिसुव्रतनाथ के मुक्ति जाने के बाद आप केवली हुए, आपके समान संसार का तारक कौन होगा? तब उन्होंने कहा कि देशभूषण, कुलभूषण होंगे। केवलज्ञान तथा केवलदर्शन के धरनेवाले, जगत में सार, जिनका उपदेश सुनकर लोग संसार समुद्र से तिरेंगे। यह शब्द सुनकर अग्निप्रभ अपने निवास स्थान पर आ गया और उसने विचारा कि अनन्तवीर्य केवली के वचन मिथ्या करूँ। ऐसा गर्व करके पूर्व भव के बैर से उपद्रव करने आया और तुमको बलभद्र तथा नारायण समझकर भाग गया।

हे राम! तुम चरमशरीरी - तद्भाव मोक्षगामी बलभद्र तथा लक्ष्मण नारायण है। यहाँ आकर तुमने हमारी सेवा की, हमें घातियाकर्म के नाश से केवलज्ञान प्रगट हुआ।

इस प्रकार प्राणियों के बैर का कारण बैर-अनुबन्ध है। ऐसा समझकर जीवों के पूर्व भव जानकर हे प्राणी! राग-द्वेष तजकर निश्चल होओ।

www.vitragvani.com

केवली के ऐसे महापवित्र वचन सुनकर सुर, नर, असुर, बारम्बार नमस्कार करने लगे और भव दु:खों से डरने लगे। गरुड़ेन्द्र अति आनन्दित होकर केवली के चरणों में नमस्कार करके महा स्नेह की दृष्टि बरसाता हुआ राम से कहने लगा – हे भव्योत्तम! तुमने मुनियों की भक्ति की, इससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। ये मेरे पूर्व भव के पुत्र हैं। तुम जो माँगों वह मैं दूँगा। तब राम एक क्षण विचार करके बोले कि तुम देवों के स्वामी हो, किसी समय हमारे ऊपर कोई विपत्ति आये, तब हमको याद करना। साधु की सेवा के फल में यह प्रमाद मिला कि आप जैसों का मिलाप हुआ। तब गरुड़ेन्द्र ने कहा कि मैं तुम्हारा वचन प्रमाण रखता हूँ। जब भी तुमको मेरा काम पड़ेगा, तब मैं तुम्हारे साथ हूँ।

अनेक देव मेघ-समान ध्वनि करते वांजित्रनाद करने लगे। साधुओं के पूर्व भव सुनकर कितने ही उत्तम मनुष्य मुनि हुए, कितने ही ने श्रावक के व्रत लिये। वे देशभूषण और कुलभूषण केवली जगतपूज्य, संसार दु:ख से रहित, नगर, गाँव पर्वतादि सभी स्थानों में विहार करते हुए धर्मोपदेश देने लगे। इन दोनों केवलियों के पूर्व भव का चारित्र निर्मल स्वभाव के धारक जो जीव धारण करते हैं, वे सूर्य के समान तेजस्वी, पापरूप अन्धकार को शीघ्र नष्ट करते हैं।

(-श्री पद्मपुराण में से)

९ मानप्रतिष्ठा से लोभ से मुनि होनेवाले सूर्यमित्र
निधान मिल गया

राजगृही नगर का राज सुबलराज बहुत मूल्यवान रत्नों से जड़ित अँगुठी पहिनता था। एक बार जब राजा स्नान से पूर्व तेलमर्दन के लिए तैयार हुआ, तब रत्नों की आभा खराब न होने के हेतु से उसने अँगुठी निकालकर अपने राजपुरोहित सूर्यमित्र को सम्हला दी। सूर्यमित्र पुरोहित ने वह अँगुठी अपनी अँगुली में पहिन ली और अपने घर चला गया। घर पहुँचकर उसने सन्ध्यातर्पण आदि ब्राह्मणकर्म करके राज्य दरबार में जाने की तैयारी की तो अँगुठी को अँगुली में नहीं देखकर अत्यन्त उदास हो गया। उसने परमबोध नामक निमित्तज्ञानी से पूछा कि मेरी अँगुली में से जो सोने की अँगुठी गिर गयी है, वह मिलेगी या नहीं ?

निमित्तज्ञानी ने जवाब दिया – 'मिल जाएगी, आप चिन्ता नहीं करें।'

पुरोहित ने उसे विदा तो कर दिया, परन्तु उसकी चिन्ता कम नहीं हुई। उसे तो उसी समय राजा की अँगुठी देनी थी। वह चिन्ता से व्याकुल होकर अपने महल के ऊपरी भाग में गया।

उसने शहर के बाहर उपवन में भव्य जीवों को सम्बोधनेवाले, तीन लोक के देवों द्वारा पूज्यनीय चरणवाले, मति-श्रुत-अवधिज्ञान को धारण करनेवाले, जगत का हित करनेवाले, जगत वन्दित, जगत श्रेष्ठ, जगत से स्तुति योग्य सुधर्म नाम के जैनमुनि आचार्य को देखा। उन आचार्य को देखकर पुरोहित ने विचार किया कि ये महाज्ञानवान साधु हैं, अत: अवश्य मेरी अँगुठी के सम्बन्ध में जानते होंगे; इसलिए इनसे एकान्त में पूछना चाहिए।

www.vitragvani.com

इस प्रकार विचार करके वह सूर्यास्त से कुछ समय पूर्व अँगुठी का पता लगाने के लिए आचार्य संघ के समीप गया। ज्ञानऋद्धि आदि गुणों के सागर, अपने शरीर से भी निस्पृह, मोक्षसिद्धि की इच्छावाले योगी को देखकर भी लज्जा और अभिमान के कारण अपना प्रश्न पूछने में असमर्थ हुआ, तथापि अपने कार्य की सिद्धि के लिए मुनिराज के आस-पास चक्कर लगाने लगा।

अवधिज्ञान के योग से उसे निकट भव्य जानकर परमोपकारी सुधर्माचार्य ने उससे कहा – 'हे सूर्यमित्र! राजा की अँगुठी गुम हो जाने से चिन्तित होकर तू यहाँ मेरे पास अपनी चिन्ता मिटाने आया है न?'

सूर्यमित्र पुरोहित अपनी मानसिक चिन्ता और सम्पूर्ण बात सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुआ। उसने योगीराज से कहा – 'हाँ'। सूर्यमित्र ने मुनिराज को नमस्कार करके पूछा – 'हे स्वामी! वह अँगूठी कहाँ पड़ी है?'

तीन ज्ञानरूपी नेत्रवाले योगीराज ने उत्तर दिया – 'विद्वान! अपने महल के पीछे बगीचेवाले सरोवर में जब तू सूर्य को अर्घ्य दे रहा था, तब तेरे हाथ की अँगुली में से निकलकर वह अँगुठी सरोवर के कमल की कनी में पड़कर अदृश्य हो गयी है। तू चिन्ता मत कर, वह अभी तक वहीं पड़ी है, इसलिए तू अँगुठी की चिन्ता का परित्याग कर दे और मेरे वचनों में विश्वास रख।'

विद्वान पुरोहित ने मुनिराज के वचन सुनकर तालाब में जाकर देखा तो उसने अँगुठी को वहीं पाया। वह अँगुठी लेकर उसने राजा को दे दी। वह अपने हृदय में महान आश्चर्यपूर्वक विचार करने लगा कि ये साधु तो समस्त ज्ञानियों में श्रेष्ठ, सम्पूर्ण विश्व को प्रत्यक्ष जाननेवाले अनुपमज्ञानी हैं। ऐसा निमित्तज्ञान समस्त ही निमित्तज्ञानों में सारभूत है, इसलिए इन योगीराज की आराधना करके, यह अद्भुत ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इसके प्राप्त होने पर सत्पुरुष विद्वानों में मेरी महान प्रसिद्धि होगी, मान्यता बढ़ेगी, ऐश्वर्य बढ़ेगा और उत्तम पद भी प्राप्त होगा। इस प्रकार वह धन आदि के लोभ से गुरु के पास विद्या सीखने गया।

उसने उन योगियों के स्वामी को नमस्कार कर हाथ जोड़कर करके प्रार्थना करते

www.vitragvani.com

हुए कहा – 'हे भगवान! मुझ पर दया करके समस्त पदार्थों को दिखलानेवाली यह अपूर्व विद्या मुझे भी प्रदान करने की कृपा करें, कारण कि आप कृपानाथ हैं।'

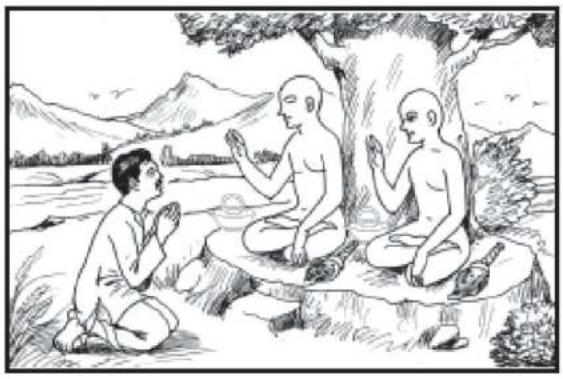

यह सुनकर ज्ञानी मुनिराज ने कहा – 'हे भव्योत्तम! यह उत्कृष्ट विद्या निर्ग्रन्थ (नि:परिग्रह) नग्न दिगम्बर ज्ञानी के अतिरिक्त किसी को भी प्राप्त नहीं होती। अत: यदि तुझे यह विद्या सीखनी हो तो तू भी मेरे समान निर्ग्रन्थ दिगम्बर हो जा।'

विद्वान ब्राह्मण, योगीराज की बात सुनकर घर गया। उसने परिवार के समस्त सदस्यों को बुलाकर दिगम्बर मुनिवेष धारण करने का विचार प्रगट किया और कहा कि 'इन योगिराज के पास बहुत ही अद्‌भुत विद्या है, जो निर्ग्रन्थ दिगम्बर वेष धारण करनेवालों के अतिरिक्त वे अन्य किसी को नहीं देते; इस कारण उस विद्या की सिद्धि के लिए मैं निर्ग्रन्थ दिगम्बर होने जा रहा हूँ। मैं किसी भी उचित युक्ति से वह विद्या सीख लूँगा और अपना कार्य पूरा करके वापस आ जाऊँगा। तुम मेरे इस वियोग से जरा भी शोक मत करना।'

उसकी बात सुनकर परिवारजनों ने उसे निर्ग्रन्थ दिगम्बर होकर विद्या सीखने के लिए सहमति दे दी।

इस प्रकार वह सूर्यमित्र ब्राह्मण, विद्या प्राप्त करने के लिए उन मुनिराज के पास जाकर नमस्कार करके बोला – 'हे भगवन्। मैंने स्वार्थ सिद्धि के लिए यह निर्ग्रन्थ दिगम्बर वेष धारण किया है, इसलिए आप मुझे शीघ्र ही वह विद्या प्रदान करें।'

भविष्य में होनेवाली घटनाओं को प्रत्यक्ष जाननेवाले मुनिराज ने भी उसे बाह्य परिग्रह से छुड़ाकर स्वर्ग–मोक्ष की लक्ष्मी को वशीभूत करनेवाले सारभूत मूलगुण देकर

www.vitragvani.com

तीन लोक में कल्याण करनेवाली, जगत में वन्दनीय जैन दीक्षा प्रदान कर दी।

विद्वान ब्राह्मण सूर्यमित्र ने मुनि को नमस्कार करके प्रार्थना की – 'हे भगवान! अब दया करके मुझे वह विद्या प्रदान करें।'

तब मुनिराज ने कहा – 'विद्वान! क्रियाकलाप के पाठ और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी तप के बिना वह विद्या सिद्ध नहीं होती; मात्र नग्न होने से ही विद्या थोड़े ही सिद्ध होती है!'

मुनिराज के वचन सुनकर उस विद्वान ब्राह्मण ने अतिशय उद्यम से बुद्धि लगाकर गुरु से चारों अनुयोगों को सीखना प्रारम्भ किया। उसने त्रेसठ शलाका पुरुषों के भवादिक शुभ सामग्री, आयु, वैभव, आदि का सूचक, पुण्य-पाप का फल प्रगट करनेवाला, धर्म का कारण प्रथमानुयोग सीखा। लोक-अलोक विभाग, उसका संस्थान, सात नरकों का दु:ख, स्वर्ग आदि का सुख, संसार की स्थिति का दीपक – ऐसा करणानुयोग भी सीखा। मुनिराज और गृहस्थों का आचरण – महाव्रत, अणुव्रत, शीलव्रत और उनके फलादि को बतानेवाला चरणानुयोग भी योगीराज ने उसे सिखाया और छह द्रव्य, सात तत्त्व, पाँच मिथ्यात्व, सत्य-असत्य मतों की परीक्षा, प्रमाण-नय आदि को बतानेवाला द्रव्यानुयोग भी उसने सीखा।

द्रव्यानुयोग के शास्त्रों को पढ़कर वह विद्वान सूर्यमित्र, सम्यग्दृष्टि हो गया। उसके अन्तरङ्ग में हेयोपादेय का ज्ञान प्रगट हो गया। उसने धर्म-अधर्म, शुभ-अशुभ तथा जैनधर्म व अन्य धर्मों का भेद अपने निर्मल चित्त से अच्छी तरह जानकर विचार किया कि अहो! जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्रतिपादित जैनधर्म ही सत्य और महान है, स्वर्ग-मोक्ष प्रदाता है। जैनधर्म के अतिरिक्त अन्य सभी मत, स्वार्थी लोगों के द्वारा बनाये गये हैं। वे सब मुझे जहर के समान भासित होते हैं। जिनदेव द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण जीव आदि पदार्थों का स्वरूप महान सत्य है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान के लिए कारणभूत है।

मैंने अब तक कुमार्गगामियों द्वारा असत्य-अशुभ कुतत्त्वों को सीखने में ही व्यर्थ समय गँवाया है, इसका मुझे खेद होता है। मति और श्रुत ये दो ही ऐसे परोक्षज्ञान हैं कि जिनके द्वारा समस्त चराचर का ज्ञान होता है। अवधिज्ञान के द्वारा जगत के रूपी पदार्थ और

www.vitragvani.com

भवान्तर प्रत्यक्ष दिखते हैं। सूक्ष्म पदार्थों को दिखानेवाला मन:पर्ययज्ञान भी प्रत्यक्ष ज्ञान है। वह ज्ञान, तप द्वारा योगीश्वरों को ही प्राप्त होता है। घातिकर्मों के नाश से उत्पन्न होनेवाला, आत्मा में उत्पन्न, तीन लोक को देखने में दीप के समान, विश्व का प्रत्यक्ष दर्शक केवलज्ञान है। इन जगत प्रकाशक पाँच प्रकार के ज्ञानों को, कोई भी विद्वान किसी को नहीं दे सकता। ये ज्ञान तो श्रेष्ठ योगीश्वरों को ज्ञानावरण के क्षयोपशम अथवा क्षय से अपने आप ही होते हैं।

अहा! मैंने अपने हित के लिए बहुत ही उत्तम कार्य किया है कि जो ज्ञान के लोभ से संयम धारण कर लिया। जैसे जङ्गल में कन्दमूल खोजनेवाला दरिद्री महान हीरे-मोती से भरा निधान प्राप्त कर ले; उसी तरह मुझ प्रसिद्धि के लोभी को यह निर्ग्रन्थ जैन दिगम्बर दीक्षारूपी अपूर्व निधान मिल गया है।

इन योगीराज ने भी मेरे हित के लिए ही जगत का कल्याण करनेवाली यह दीक्षा मुझे प्रदान की है और मैं भी ज्ञान की आशा से इस जिनदीक्षा को प्राप्त करके आज कृतकृत्य होकर सत्यार्थ मोक्षमार्ग का आराधक हुआ हूँ। मैं पाप से दूर होकर पवित्र बना और तीन जगत् में पूज्य हुआ हूँ। मैंने महान भाग्योदय से यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी बोधि प्राप्त की है, जो कि जैनशासन में ही प्राप्त हो सकती है। उत्तम भोग और मुक्ति का प्रदाता यह निर्दोष जैनधर्म ही है। यह सम्यक् रत्नत्रयरूपी मुनिपद ही गुण की खान और जगत का स्वामी है, जिसको मैंने काललब्धि से प्राप्त किया है। ये निर्ग्रन्थ गुरु ही इस संसार में तारण-तरण हैं।

मैंने मिथ्यामार्ग में रहकर स्नान, तर्पण आदि द्वारा संक्लेशरूप खोटे परिणाम करके इतना समय व्यर्थ ही गँवाया है। जैनधर्म से भिन्न रहनेवाले यह मिथ्यादृष्टि, स्वहित में अजान-मूर्ख हैं, वे कुमार्ग में रहकर व्यर्थ ही दुर्भाग्य से धर्म के लिए प्रयत्न करते हैं। मैं तो महा भाग्यशाली हूँ कि मोक्षमार्ग का पथिक बनकर जगत में सार और सत्य जिनमार्ग को ग्रहण किया। **जैसे, ज्योतिष मण्डल में सूर्य; धातुओं में सुवर्ण; पत्थरों में चिन्तामणि रत्न; वृक्षों में कल्पवृक्ष; स्त्रियों में शीलवन्ती नारी; धनिकों में दानी; तपस्वियों में विद्वान, सदाचारी और जितेन्द्रिय तपस्वी ही उत्तम है; उसी प्रकार संसार में जितने**

www.vitragvani.com

भी धर्म कहे जाते हैं, उनमें जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रणीत जैनधर्म ही महान और सेवन योग्य, उत्तम है। जैसे, गाय के सींगों को दुहने से दूध नहीं मिलता; सर्प के मुख से कभी अमृत नहीं निकलता; अनाचार से कीर्ति नहीं मिलती और अभिमान से महानता प्राप्त नहीं होती; उसी प्रकार कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र-कुधर्म और कुमार्ग से कभी भी श्रेष्ठ कल्याण की प्राप्ति नहीं होती।

❖ ❖ ❖

एक बार यह सूर्यमित्र मुनिराज अपने गुरु के साथ नगर, वन आदि में विहार करते-करते चम्पापुर आये। यह नगरी वासूपूज्य भगवान की निर्वाणभूमि है। इसकी स्तुति, वन्दना और प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके, आचार्य महाराज के साथ निर्वाण-भक्ति का पाठ किया। वासूपूज्य स्वामी के गुणों का समूह और निर्वाण लाभ की भावना से सूर्यमित्र महामुनि की आत्मा के परिणामों में जो विशुद्धि आयी, इससे अज्ञान अन्धकार को नष्ट करनेवाला, तीन लोक के पदार्थों को प्रकाशित करनेवाला उत्तम अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। वस्तुत: जो निस्पृह होते हैं, उन्हें ही समस्त अभिष्ट ऋद्धियाँ तपश्चर्या के प्रभाव से स्वयं ही प्रगट होती हैं।

श्री सुधर्माचार्य ने इन सूर्यमित्र मुनिराज को ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, गुणों का सागर, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से विशुद्ध आत्मावाले, संघ का भार उठाने में समर्थ, महान तपस्वी, महान तेजस्वी, महान ध्यानी, महान व्रती, महान जितेन्द्रिय, महान शीलयुक्त, महान योगी, महान हृदयवाले, संसार का हित चाहनेवाले, जगत को सुखी करने में निस्पृह और समस्त शिष्यों में गुणों से महान हैं - ऐसा जानकर, सम्पूर्ण संघ की साक्षीपूर्वक आचार्य पद दे दिया। अब श्री सुधर्माचार्य स्वामी आचार्यपद के जञ्जाल से मुक्त होकर घोरातिघोर तपश्चर्या करके मोक्ष पधारे। काललब्धि पाकर आचार्य सूर्यमित्र भी मोक्षधाम पधारे। इस प्रकार यह जिनधर्म और जिनदीक्षा को पाकर वे योगीराज तृप्त-तृप्त हो गये।●●

(- सुकुमाल चरित्र में से सार-संक्षेप)

10 माता और डाकू के प्रति समभावी वीतरागी मुनि नागकुमार

किसी समय मगध राज्य की राजधानी राजगृही में प्रजापाल राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम प्रियधर्मा था। उन दोनों के प्रियमित्र और प्रियधर्म नाम के दो पुत्र थे। कुछ समय पश्चात् दोनों भाईयों ने वैराग्य प्राप्त करके जिनदीक्षा अङ्गीकार कर ली और घोर तपश्चर्यापूर्वक, समाधिमरण करके अच्युत स्वर्ग में देव हुए। स्वर्ग में जाकर दोनों देवों ने प्रतिज्ञा की कि अपने में से जो पहले मनुष्यभव में जन्म लेगा, उसे स्वर्ग में रहा हुआ दूसरा देव सम्बोधन करके मोक्षप्रदायिनी जिनदीक्षा ग्रहण कराएगा।

दोनों में से प्रथम प्रियमित्र ने स्वर्ग से चयकर उज्जैनी नगरी के राजा नागधर्म के घर, उनकी रानी नागदत्ता के उदर से नागदत्त पुत्र के रूप में जन्म लिया। नागदत्त को नाग / सर्प के साथ क्रीड़ा करने का शौक था; जिससे अन्य लोग आश्चर्यचकित होते थे। एक दिन स्वर्ग में रहनेवाले प्रियधर्म देव को अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हुआ। तब वह स्वर्ग का देव मदारी का वेष धारण करके, दो भयङ्कर सर्पों को लेकर उज्जैनी नगरी में आया और नगर में सर्पों का खेल दिखाने लगा। जब कुमार नागदत्त को मदारी सम्बन्धी समाचार मिले तो उसने तुरन्त मदारी को राजदरबार में बुलाया। घमण्ड में आकर कुमार ने मदारी से कहा – 'तेरे जहरीले सर्प बता, मैं उनके साथ क्रीड़ा करना चाहता हूँ। देखूँ तो, कैसे जहरीले नाग हैं।'

कुमार की अभिमानपूर्ण बात सुनकर मदारी ने कहा – 'हे राजकुमार! मैं आपके साथ ऐसा मजाक नहीं कर सकता, जिसमें प्राण जाने का भय हो। कुमार! मान लो यदि नाग आपको काट ले और आपकी मृत्यु हो जाए तो राजा मुझे तो प्राणदण्ड ही देंगे न।'

www.vitragvani.com

कुमार ने कहा – 'नहीं-नहीं! मैं तुम्हें राजा से अभयदान दिलाता हूँ।'

ऐसा कहकर कुमार मदारी को राजा के पास ले गया और राजा ने कुमार की इच्छानुसार मदारी को अभयदान का वचन दे दिया। मदारी ने एक साधारण सर्प निकाला। कुमार नागदत्त ने उससे क्रीड़ा करके उसे तुरन्त हरा दिया और मदारी से कहा – 'तेरे पास दूसरा जहरीला नाग हो तो निकाल।'

मदारी ने कहा – 'मेरे पास एक दूसरा भयङ्कर नाग है, किन्तु उसकी फुफकार से ही लोगों को चक्कर आने लगेंगे।'

कुमार ने कहा – 'तेरे पास कैसा भी भयङ्कर जहरीला नाग क्यों न हो, उसे निकाल; मेरे पास ऐसी जड़ी-बूटी है कि मुझ पर भयङ्कर नाग का जहर भी नहीं चढ़ सकता; अत: तू निर्भय होकर अपने नाग को बाहर निकाल।'

मदारी ने भयङ्कर नाग को बाहर निकाला। उसकी फुफकार से ही लोगों को चक्कर आने लगे। नागदत्त उसके साथ क्रीड़ा करने लगा, इतने में नाग ने उसे डस लिया और कुमार को तुरन्त जहर चढ़ गया, जिससे लोगों में हाहाकार मच गया। अनेक मन्त्र -तन्त्रवादियों को बुलाया गया, परन्तु कोई भी जहर उतारने में सफल नहीं हुआ।

राजा ने घबराकर मदारी से कहा – 'हे मदारी! तेरे पास कोई मन्त्र आदि हो तो तू राजकुमार का जहर उतार।'

मदारी बोला – 'मैं प्रयत्न करके देखता हूँ परन्तु मेरी एक शर्त है कि यदि राजकुमार बच जाए तो आपको इसे मोक्षप्रदायिनी जिनदीक्षा लेने की अनुमति देनी पड़ेगी।'

घबराकर राजा ने कहा – 'यदि कुमार बच जाए तो मैं उसे जिनदीक्षा लेने की आज्ञा दे दूँगा।'

मदारी ने मन्त्र पढ़कर जहर उतार दिया और कुमार सचेत हो गया। पिता ने कुमार से जिनदीक्षा की आज्ञा के वचन सम्बन्धी बात कही। कुमार, जिनदीक्षा लेने की बात सुनकर अति प्रसन्न हुआ। तब मदारी ने अपना देव का रूप प्रगट करके, स्वर्ग में दोनों मित्रों के बीच हुई प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया। जिसे सुनकर नागदत्त ने अत्यन्त प्रसन्न होकर

www.vitragvani.com

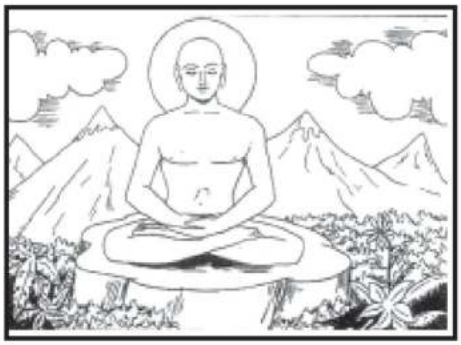

देव का उपकार माना और यमधर मुनिराज के समीप जिनदीक्षा धारण कर ली। नागदत्तमुनि कठिन तपश्या करने लगे और जिनकल्पी एकलविहारी मुनि हुए।

एक दिन यात्रा के लिए निकलते हुए रास्ते में भयङ्कर जङ्गल आया। जङ्गल में डाकुओं का विशाल अड्डा था। डाकुओं ने मुनि को वहाँ देखा तो उन्हें लगा कि यदि यह मुनि किसी को बता देंगे तो हमारा गुप्त स्थान प्रसिद्ध हो जाएगा – ऐसा विचारकर वे डाकू मुनि नागदत्त को अपने सरदार के पास पकड़कर ले गये। डाकू सरदार ने मुनि को देखते ही कहा – 'तुम मुनिराज को पकड़कर क्यों लाये हो ? ये तो शत्रु-मित्र के प्रति समभावी होते हैं। शीघ्र ही इनको छोड़ दो।'

डाकुओं ने तुरन्त ही मुनिराज को छोड़ दिया। मुनिराज वहाँ से चल पड़े। इतने में उन नागदत्त मुनि की माता नागदत्ता कितने ही अङ्गरक्षकों के साथ अपनी पुत्री का विवाह कौशाम्बी के सेठ जिनदत्त के पुत्र धनपाल के साथ करने के लिए रास्ते में जाते हुए मिली। उसने वन्दन करके मुनि से सुख-साता पूछी और पूछा – 'हे प्रभु! आगे का मार्ग भयरहित तो है न ?' मुनिराज उसका कोई भी उत्तर दिये बिना आगे चले गये।

नागदत्ता पुत्री को लेकर आगे गयी, तभी डाकू ने आकर हमला करके नागदत्ता को लूट लिया तथा माँ-बेटी को पकड़कर अपने सरदार के पास ले जाकर उससे कहा – 'हे सरदार! उन मुनिराज को छोड़कर हम जङ्गल में इधर-उधर घूम रहे थे, वहाँ हमने देखा कि इन माँ-बेटी ने मुनिराज के दर्शन किये और इस तरफ आगे बढ़ीं तो भी उन मुनिराज ने यह नहीं कहा कि इस ओर डाकू बसते हैं। हम राजकन्या, जवाहरात आदि देखकर, उन्हें लूटकर आपके लिए यह राजकन्या पकड़कर लाये हैं।'

तब डाकू सरदार ने कहा – 'देखो! मैंने कहा था न कि मुनि तो सर्व जीवों के प्रति समभावी होते हैं। मुनिराज के दर्शन करनेवाली इस माता-पुत्री को भी उन्होंने यह नहीं कहा कि आगे डाकुओं का भय है क्योंकि अपनी आत्मा के आनन्द में मस्त वीतरागी सन्तों को डाकू हो या मित्र, सबके प्रति समभाव वर्तता है।'

www.vitragvani.com

मुनिराज की प्रशंसा सुनकर, मुनिराज की माता नागदत्ता बहुत क्रोधित हुई – 'अरे! मैंने पुत्र से दर्शन करके पूछा था कि आगे मार्ग में भय तो नहीं है न ? तथापि उसने मुझसे भी बात नहीं की और हमें मौत के मुँह में ढकेल दिया। धिक्कार है ऐसे निष्ठुर-निर्दय पुत्र को जिसे मैंने जन्म दिया। इसकी अपेक्षा तो मेरे पुत्र ही नहीं होता तो ठीक था...' इत्यादि कल्पनाएँ करके वह अपने पेट में तलवार मारने को तैयार हुई।

यह देखकर डाकू सरदार गद्गद् होकर माता नागदत्ता के पैरों में गिर कर कहने लगा – 'माता! आप मात्र नागदत्त मुनि की ही माता नहीं, बल्कि हमारी भी माता हैं। हे माता! आप धन्य हैं कि आपने ऐसे उत्तम मुनिराज को जन्म दिया।' – ऐसा कहकर डाकू सरदार ने लूटा हुआ धन और राजकन्या माता को सौंपकर क्षमा माँगी।

अहो! डाकू भी मुनिराज नागदत्त के वीतरागी साम्यभाव की महिमा करते हैं। धन्य हैं वे नागदत्त मुनिराज और धन्य है उनकी मुनिदशा! देखो तो सही! अपनी माता के पूछने पर भी उन्हें सावधान भी नहीं करते कि आगे डाकू हैं। चैतन्यस्वरूप में झूलते हुए वीतरागी निर्लेप मुनिराज के लिए तो माता हो या डाकू, सहज ही किसी के प्रति राग-द्वेष नहीं होता। अपनी माता, डाकुओं की ओर न जाए तो ठीक – ऐसा विकल्प तक भी जिनको नहीं आता, ऐसे समभावी सन्त मुनिश्वर को धन्य है!

इस प्रकार मुनिराज की महिमा करते-करते वह डाकू सरदार, मुनिराज नागदत्त के समीप जाकर दीक्षा अङ्गीकार करता है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करके, घोर तप करके घातिकर्मों का नाश करके वे नागदत्त मुनिराज और डाकू सरदार सूरदत्त मुनिराज, केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और पश्चात् अघातिकर्मों का भी नाश करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।

धन्य है मुनिराज को! और उनकी मुनिदशा को कि जिनका वीतरागी समभाव देखकर क्रूरपरिणामी डाकू भी मुनि होकर मोक्ष प्राप्त करता है। ● *(- नागकुमारचरित्र से)*

11 रात्रिभोजन त्याग का प्रभाव
सियार चला मुक्ति के मार्ग

पवित्र जिनधर्म तथा गुरुजनों को नमस्कार करके उनकी कथा लिखते हैं कि जिन्होंने रात्रि भोजन त्याग करके आगे चलकर मोक्ष प्राप्त किया।

जो महानुभाव जीवों की रक्षा के लिए रात्रि भोजन का त्याग करते हैं, वे इस लोक तथा परलोक दोनों में सुखी रहते हैं, उनको हर प्रकार की सम्पदा सुलभ होती है और जो लोग रात्रि में भोजन करते हैं, वे पापी होते हैं, उनको जीवहिंसा का पाप लगता है; इसलिए सभी के लिए रात्रि भोजन का त्याग हितकारी है।

एक सियार ने मुनिराज से रात्रि भोजन-पान के त्याग का नियम लेकर, जीवन पर्यन्त उस नियम का निर्वाह किया और अगले ही भव में मोक्षलक्ष्मी का वरण कर अनन्त सुखी हुआ, उसका यहाँ कथारूप में वर्णन करते हैं।

मगधदेश में सुप्रतिष्ठित नाम का नगर अपनी सुन्दरता तथा विशालता के लिये प्रख्यात था। वहाँ के राजा जयसेन धर्मज्ञ तथा प्रजापालक थे।

वहाँ धनमित्र नाम का एक सेठ रहता था। उसकी पत्नी धनमित्रा थी। यह दम्पति जैनधर्म के दृढ़श्रद्धानी थे। एक दिन उनके पुण्य योग से उन्हें सागरसेन नामक अवधिज्ञानी मुनिराज को आहार देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुनिराज के आहारोपरान्त उन्होंने अति विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे धर्मोपदेश सुनाने का निवेदन किया और कहा कि – 'हे प्रभो! अब हमको सन्तान की आशा नहीं रही; अत: इस संसार की मोह-माया में फँसने से उत्तम है कि जिनदीक्षा ग्रहण करके आत्महित करें।

www.vitragvani.com

तब अवधिज्ञानी मुनिराज ने कहा – 'हे भव्य! अभी दीक्षा का शुभ अवसर नहीं है। तुम्हें शीघ्र ही पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी, उसके द्वारा अनेक प्राणियों का कल्याण होगा।' मुनि की ऐसी भविष्यवाणी सुनकर सेठ दम्पति प्रसन्न हुए।

तभी से सेठानी धनमित्रा जिनपूजादि धार्मिक अनुष्ठानों की ओर विशेष ध्यान देने लगीं। उसने थोड़े समय के पश्चात् यथासमय एक प्रतापी पुत्र को जन्म दिया। पुत्र-जन्म के उपलक्ष्य में सेठ ने उत्सव किया, पूजा प्रभावना की और उस बालक का नाम प्रीतिङ्करकुमार रखा। उसकी सुन्दरता कामदेव के समान थी।

जब प्रीतिङ्कर पाँच वर्ष का हुआ तो उसके पिता ने उसे विद्या पढ़ने के लिए गुरु के पास भेज दिया। कुमार अपनी कुशाग्रबुद्धि के कारण थोड़े ही समय में विद्वान् बन गया। धनी और विद्वान होने पर भी प्रीतिङ्कर में अभिमान का नामोनिशान नहीं था। वह हमेशा शिक्षण देता और धर्मोपदेश करता था। महाराज जयसेन भी उसकी इस परोपकारिता से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने वस्त्राभूषणों से प्रीतिङ्कर का सम्मान किया।

यद्यपि प्रीतिङ्कर को धन की कमी नहीं थी, तथापि उसको कर्तव्यहीन होकर बैठा रहना ठीक नहीं लगा। उसे धन प्राप्त करने की इच्छा हुई। उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं स्वयं धनोपार्जन नहीं करूँगा, तब तक विवाह नहीं करूँगा। ऐसी प्रतिज्ञा करके वह धनोपार्जन हेतु विदेश के लिए रवाना हुआ। विदेश में वर्षों रहकर प्रीतिङ्करकुमार ने बहुत धन अर्जित किया और उस धनसहित जब वापस घर आया, तब उसके माता-पिता आदि सभी को अत्यन्त आनन्द हुआ। प्रीतिङ्कर की ऐसी लगन देखकर महाराज जयसेन अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी पुत्री पृथ्वीसुन्दरी का विवाह प्रीतिङ्कर से करके उसे आधा राज्य भी दे दिया। इसी बीच अन्य देशों की राजकुमारियों के साथ भी प्रीतिङ्कर का विवाह सम्पन्न हुआ।

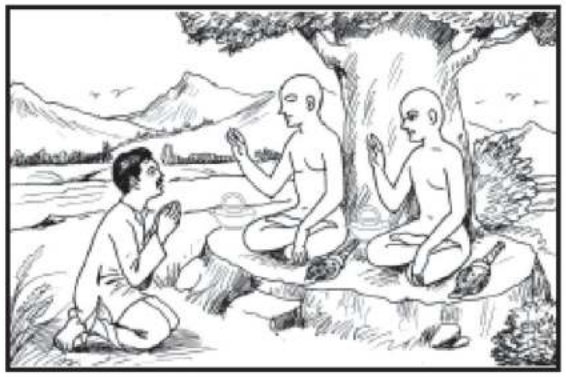

प्रीतिङ्कर, राज्यविभूति प्राप्तकर आनन्दपूर्वक रहने लगा। वह प्रतिदिन

www.vitragvani.com

जिनपूजा एवं शास्त्र स्वाध्याय, तत्त्वचिन्तन-मनन आदि करता था। परोपकार करना तो उसके जीवन का अङ्ग ही था।

एक बार सुप्रतिष्ठितपुर के सुन्दर बगीचे में चारण ऋद्धिधारी मुनि ऋजुमति और विपुलमति पधारे। प्रीतिङ्करकुमार ने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और अष्ट द्रव्यों से उनकी पूजा करके धर्म का स्वरूप पूछा।

मुनिराज ने धर्म का स्वरूप इस प्रकार बताया –

'प्रीतिङ्कर! **धर्म वह है, जिससे संसार के दुःखों से रक्षा तथा उत्तम सुख प्राप्त हो।** धर्म के दो भेद हैं – मुनिधर्म और गृहस्थधर्म। मुनिधर्म, सर्व त्यागरूप होता है और गृहस्थ, घर में रहकर ही धर्म का पालन करता है। मुनिधर्म और गृहस्थधर्म में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि पहला साक्षात् मोक्ष का कारण है और दूसरा परम्परा से।'

मुनिराज के उपदेश से प्रीतिङ्कर को जैनधर्म के प्रति श्रद्धा और भी दृढ़ हो गई। उसने हाथ जोड़कर मुनिराज से प्रार्थना की – 'हे प्रभु! मेरे पूर्व भव की कथा सुनाओ।'

★★★

मुनिराज कहने लगे –

'एक बार इस बगीचे में तपस्वी सागरसेन मुनि उतरे थे। नगर निवासी गाजते-बाजते मुनिराज के दर्शन के लिए आये थे। लोगों के चले जाने के बाद वहाँ एक सियार आया और एक मृत देह का भक्षण करने को तैयार हुआ, तभी मुनिराज ने उसे समझाया कि पापपरिणामों का फल बहुत बुरा होता है। तू मुर्दे को खाने के लिए इतना व्याकुल है, धिक्कार है तुझे! तू जैनधर्म ग्रहण न करके आज तक बहुत दुःखी हुआ है। अब तू पुण्य के रास्ते चलना सीख।'

उसकी होनहार ठीक थी; अतः वह मुनिराज का उपदेश सुनकर शान्त हो गया। मुनिराज ने आगे कहना शुरु किया कि 'तू विशेष व्रतों को तो धारण नहीं कर सकता। अतः रात्रि में खाना-पीना छोड़ दे। यह व्रत समस्त व्रतों का मूल है।' सियार ने ऐसा ही किया। वह हमेशा मुनिराज के चरणों का स्मरण करता रहता था।

इस प्रकार सियार का जीवन व्रतसहित बीतने लगा। एक बार दिन में ही आकाश

www.vitragvani.com

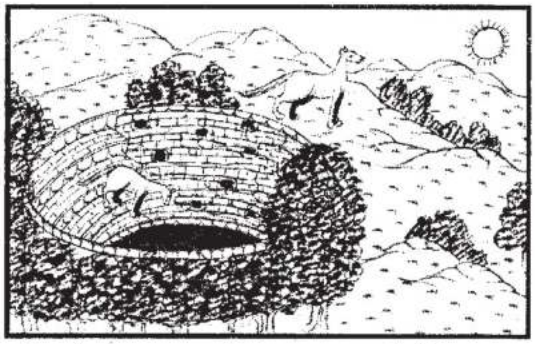

में घने मेघों के छा जाने से दिन ही रात्रि के समान भाषित होने लगा, फिर भी मेघों के अन्दर छुपा हुआ सूर्य खुले मैदान में तो अपने प्रताप से दिन की सत्ता का अहसास करा रहा था परन्तु बावड़ी के भीतर कुछ अन्धकार-सा प्रतीत होने के कारण वहाँ रात्रि-सी लगने लगी थी। इसी समय में उस सियार को बहुत जोर से प्यास लगी, वह बावड़ी के अन्दर पानी पीने गया। बावड़ी के अन्दर अन्धकार था, वह समझा कि रात्रि हो गई है; अत: बिना पानी पिये ही वापिस आ गया।

इस प्रकार वह कितनी ही बार भी बावड़ी में उतरा और वहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं देख कर वापस आ जाता। अन्त में बिना पानी पिये दु:खी हो गया और अन्तिम बार बावड़ी में उतरा परन्तु वापिस नहीं आ सका। वहीं उसका मरण हो गया। मृत्यु के उपरान्त उसने धनमित्रा के गर्भ से प्रीतिङ्कर के रूप में जन्म लिया है। यह तेरा अन्तिम शरीर है। तू कर्मों का अभाव करके मोक्ष प्राप्त करेगा।'

इस प्रकार मुनिराज के श्रीमुख से पूर्व भव का वृतान्त सुनकर राजा प्रीतिङ्कर को वैराग्य हो गया। उसे विषय भोगों से विरक्ति हो गयी। वह अपने पुत्र प्रियङ्कर को राज्य देकर भगवान वर्द्धमान स्वामी के समवसरण में गया और उसने त्रिलोक पूज्य भगवान के दर्शन करके जिनदीक्षा ले ली। तत्पश्चात् प्रीतिङ्कर मुनिराज ने शुक्लध्यान द्वारा केवलज्ञान प्राप्त किया। उनके पवित्र उपदेशामृत से संसार के जीव दु:ख से छुटकारा पाकर सुखी हुए।

प्रीतिङ्कर मुनिराज का यह चरित्र पढ़कर भव्यजन चिरकाल तक सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करते रहेंगे।

एक पशु पर्याय में उत्पन्न सियार ने केवल रात्रिभोजन त्यागकर मनुष्य योनि में जन्म लिया और सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त किया। इसी प्रकार भव्य जीवों को भी अनन्त सुख की प्राप्ति के लिए जैनधर्म में दृढ़ विश्वास कर अपने आत्मा की साधना और परमात्मा की आराधना कर अपना जीवन सफल करना चाहिए।● ***(आराधना कथा कोश में से सार संक्षेप)***

12 सुपात्रदान का चमत्कारिक फल
मुक्ति-साधक धन्यकुमार

अहा! देवता भी शिवसुख की प्राप्ति के लिए जिस उज्जयिनी नगरी में जन्म लेना चाहते हों, उस उज्जयिनी नगरी के गुणों का वर्णन कैसे सम्भव है ? उसी उज्जयिनी नगरी में धर्मबुद्धि और धर्मात्माओं के प्रति प्रेम रखनेवाला 'अवनिपाल' नामक राजा राज्य करता था। उसके राज्य में सरल स्वभावी 'धनपाल' नामक एक वनिक (सेठ) रहता था। उसके अनेक शुभ लक्षणोंवाली 'प्रभावती' नामक पत्नी थी। इनके परस्पर में प्रेम करनेवाले सात पुत्र थे।

तत्पश्चात् प्रभावती ने आठवें पुण्यशाली पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्म के समय जब उसकी नाल को जमीन में गाड़ने गये तो वहाँ जमीन में से रत्नों का खजाना प्राप्त हुआ।

रत्नों का खजाना मिलने पर पिता धनपाल आदि इस आश्चर्य को देखकर राजा अवनिपाल के पास गये और कहा 'हे नाथ! मेरे यहाँ उत्तम पुत्र का जन्म हुआ है और उसकी नाल गाड़ते समय मुझे बड़ा खजाना मिला है।' यह सुनकर महाराज बोले 'हे श्रेष्ठी! जिस पुत्र के पुण्य से धन मिला है, वही इसका मालिक है, मुझे प्रजा के किसी धन की अभिलाषा नहीं है।'

महाराज की इस प्रकार की निस्पृहता देखकर धनपाल को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने घर जाकर पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में जिनमन्दिरों में कल्याण के कारणभूत, विघ्न

www.vitragvani.com

विनाशक जिनेन्द्रभगवान की महापूजा की, कुटुम्बीजनों तथा याचकजनों को अनेक प्रकार का दान देकर सन्तुष्ट किया। पुण्यशाली पुत्र के जन्म से परिजनों के धन्य व कृतार्थ होने के विचार से पुत्र का सार्थक नाम भी 'धन्यकुमार' रखा। वह पुत्र माता-पिता आदि को आनन्दित करता हुआ देवकुमारों की भाँति क्रम से वृद्धिङ्गत होने लगा।

उसे कुमार अवस्था प्राप्त होने पर देव-गुरु और साधुओं का परिचय कराके विद्या, कला आदि के अभ्यास के लिये विद्यागुरु के समीप रखा गया, फलस्वरूप उसने थोड़े ही काल में सभी प्रकार की विद्याएँ प्राप्त कर लीं। वह कुमार अवस्था में भी निर्लोभी रहकर निरन्तर देव-गुरु-धर्म के लिये प्रचुर धन खर्च करता था और दीन-अनाथ आदि को दान देता था।

धन्यकुमार का इस प्रकार निरन्तर उदारता से धन खर्च करना, उसके बड़े भाईयों को सहन नहीं हुआ; उन्होंने एक दिन माता से कहा कि हम सब मेहनत करके धन कमाते हैं और धन्यकुमार उसे खर्च करता रहता है और वह कोई व्यापार भी नहीं करता।

उनकी बात सुनकर प्रभावती ने धनपाल से कहा कि अब धन्यकुमार युवा हो गया है, किन्तु फिर भी आप उसे व्यापार में नहीं लगाते, इस कारण उसके बड़े भाई भी उससे द्वेष करते हैं।

अपनी पत्नी के कहे अनुसार सेठ धनपाल, शुभ मुहूर्त में पुत्र धन्यकुमार को बाजार ले गये और कहा 'पुत्र! अपने पास एक सौ दीनार रखो और बाजार में कोई अच्छी वस्तु बिकने के लिये आवे तो उसे खरीद लेना और उस खरीदी हुई वस्तु से अन्य कोई अच्छी वस्तु बिकने आवे तो उसे खरीद लेना। इस प्रकार भोजन के समय तक खरीदना और भोजन के समय उस वस्तु को नौकरों के साथ लेकर घर आ जाना।' इस प्रकार पिता ने शिक्षा देते हुए उसे एक सौ दीनार व्यापार के लिये दे दिये।

★★★

सरल हृदय धन्यकुमार बाजार में खड़ा है। वहाँ लकड़ी की गाड़ी बिकने हेतु आई तो धन्यकुमार ने एक सौ दीनार देकर उसे खरीद ली और फिर लकड़ी की गाड़ी को बेचकर...। - इस प्रकार दिन भर खरीद-बेच करता रहा और अन्त में एक चारपाई/खाट

www.vitragvani.com

खरीदी और भोजन का समय हो जाने से नौकर द्वारा चारपाई उठवाकर धन्यकुमार घर आ गया। उसे घर आया देखकर माता बहुत आनन्दित हुई और कहने लगी कि 'आज धन्यकुमार पहले दिन व्यापार करके घर आया है, अत: उत्सव करना चाहिए।'

धन्यकुमार द्वारा लाई हुई लकड़ी की चारपाई को देखकर सातों बड़े भाई कहने लगे कि 'वाह! कैसी आश्चर्य की बात है कि पिता ने आज ही एक सौ दीनारें दी थीं, जिसे गँवाकर धन्यकुमार घर आया है, फिर भी हमारी माता उत्सव कर रही है, जबकि हम तो रोजाना बहुत-सा धन कमाकर लाते हैं तो भी हमारी तरफ देखती भी नहीं। अरे! इसमें इसका क्या दोष है? हमारे पूर्वोपार्जित कर्मों का ही दोष है।'

माता ने प्रसन्नचित्त से सातों पुत्रों के इस वचन को हृदय में रख लिया और समस्त पुत्रों से पूर्व धन्यकुमार को भोजन कराकर स्वयं ने भी भोजन कर लिया। फिर एक बड़े बर्तन में पानी भरकर अपने ही हाथ से उत्साहपूर्वक चारपाई के पाये धोने-पोंछने लगी, धोते-पोंछते एक कील से एक पुराना धब्बा मिटाते समय चारपाई का एक पाया टूट गया।

धन्यकुमार के प्रचुर पुण्योदय से उसमें से रत्न बिखरने लगे, साथ ही एक पत्र भी निकला, जिसमें लिखा था कि - 'इस नगरी में पुण्यशाली महाधनी वसुमित्र राजश्रेष्ठी हो गये हैं। उनके प्रचुर पुण्योदय से उनके यहाँ समस्त भोगोपभोग सम्पदा को देनेवाली नवनिधि उत्पन्न हुई थी। एक दिन वसुमित्र ने उपवन में पधारे हुए अवधिज्ञानी मुनिराज से जाकर पूछा कि प्रभु! ऐसा कौन पुण्यवान नररत्न उत्पन्न होगा कि जो इन नवनिधि का स्वामी होगा? मुनिराज ने अवधिज्ञान से देखकर कहा कि महाराज अवनिपाल की उत्तम राजधानी में धनपाल सेठ के यहाँ धन्यकुमार नाम का पुत्र उत्पन्न होगा, वही पूर्वोपार्जित पुण्योदय से इस नवनिधि का स्वामी होगा और उसके द्वारा लोगों को बहुत सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति होगी।

www.vitragvani.com

इस प्रकार अवधिज्ञानी मुनिराज का वचन सुनकर, वसुमित्र सेठ ने घर जाकर एक पत्र लिखकर उत्तम रत्नों के साथ में चारपाई के पायों में रखकर उन्हें बन्द कर दिया। कुछ समय पश्चात् सेठ वसुमित्र समाधिमरणपूर्वक स्वर्ग सिधारे और उनके पीछे परिवारजन भी मरणदशा को प्राप्त हुए। उनमें से जो सबसे अन्तिम मनुष्य मरण को प्राप्त हुआ, उसे जलाने के लिये चारपाईसहित श्मशान में ले गये और वह चारपाई चाण्डाल को प्राप्त हुई, जिसे पुण्योदय से धन्यकुमार ने चाण्डाल से खरीद ली।

अहो! पुण्योदय से अत्यन्त दुर्लभ वस्तु भी बिना प्रयत्न के चरणों में आ पड़ती है।

धन्यकुमार चारपाई से प्राप्त पत्र को पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस पत्र को लेकर राजा के समीप गया। राजा ने पत्र में लिखे अनुसार समस्त निधियाँ धन्यकुमार के सुपुर्द कर दीं। धन्यकुमार ने उत्कृष्ट नव निधियों को अपने अधिकार में लेकर सर्वप्रथम देव-शास्त्र-गुरु की महापूजा में अतिधय धन खर्च किया और भक्तिपूर्वक सत्पात्रों को दान दिया तथा दीन-दुखियों को भी इच्छित दान दिया।

इस प्रकार के महान पुण्योदय से धन्यकुमार, परिजनों तथा पुरजनों को अत्यन्त प्रिय होने लगा और ग्राम के अन्य श्रेष्ठी अपनी सुन्दर कन्याओं का सम्बन्ध उसके साथ करने हेतु तत्पर होने लगे, परन्तु धन्यकुमार का इस प्रकार का अभ्युदय उसके बड़े भाईयों से सहन नहीं हुआ, इस कारण वे उससे ईर्ष्या करने लगे और उसे मार डालने के षडयन्त्र रचने लगे, किन्तु सरल चित्त धन्यकुमार उनके इस दुष्ट अभिप्राय से अनजान था।

एक दिन सातों बड़े भाई धन्यकुमार को मार डालने के अभिप्राय से उसे उपवन की वापिका में जलक्रीड़ा के लिये ले गये और वापिका के किनारे पर बैठे हुए धन्यकुमार को बड़े भाईयों ने पीछे से धक्का देकर वापिका में गिरा दिया व ऊपर से पत्थरों की मार मारने लगे। उस समय धन्यकुमार ने णमोकार

www.vitragvani.com

मन्त्र का स्मरण किया और इसे अपने पूर्व कर्म का उदय समझकर धैर्य धारण कर सहन किया। सभी बड़े भाई इसे मरा हुआ जानकर वहाँ से चले गये। पश्चात् धन्यकुमार अपने पुण्योदय से बच गये, तब बाहर निकलने पर बड़े भाइयों की दुष्टता पर विचार कर, यह निर्णय किया कि अब घर जाकर दुष्ट भाईयों के साथ रहना योग्य नहीं है। ऐसा विचार कर धन्यकुमार अन्य देश के लिये रवाना हो गये। चलते-चलते एक खेत में किसान को हल चलाते देख उसे आश्चर्य हुआ कि यह किस जाति की विद्या है ? मैंने तो कभी ऐसी विद्या देखी नहीं - इस प्रकार उसे देखते-देखते वे अपनी थकान दूर करने के विकल्प से वहीं बैठ गये।

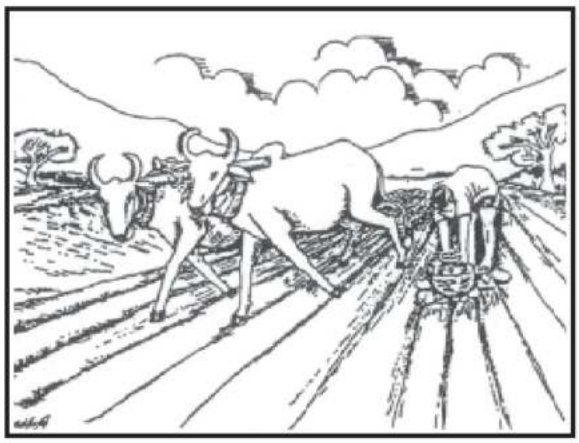

किसान, धन्यकुमार को थका हुआ देखकर उनके हाल-चाल पूछने उनके पास आया, तथा धन्यकुमार को देखकर आश्चर्य में पड़ गया और विचारने लगा कि अवश्य ही यह कोई महापुरुष है; अत: उसने धन्यकुमार को अपना अतिथि मानकर उनसे निवेदन किया - 'हे सज्जनोत्तम! मेरे पास शुद्ध दही और भात है, उन्हें आप कृपा करके स्वीकार करें, आप मेरे अतिथि हैं। धन्यकुमार की स्वीकृती पाकर किसान को बहुत प्रसन्नता हुई और वह दही-भात परोसने के लिये पात्र (पत्तल) लेने चला गया। इधर कोतुहलवश धन्यकुमार ने हल चलाया तो हल का काँटा एक विशाल सोने की मोहरों से भरे हुए बर्तन से जा टकराया। उसे देखकर धन्यकुमार को लगा कि अरे! ऐसे अपूर्व विज्ञानाभ्यास से बस होओ ? यदि इस विशाल धन को किसान देख लेगा तो वह भी भाईयों की तरह दुष्ट वर्ताव करेगा।

- ऐसा विचार कर उस धन के खजाने पर मिट्टी डाल दी और वापिस यथास्थान आकर बैठ गये।

इतने में ही किसान पात्र (पत्तल) लेकर आ गया और शुद्ध जल से उसे साफ करके दही-भात का भोजन धन्यकुमार को कराकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। कुमार भी भोजन

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

करके राजगृह नगर का मार्ग पूछकर वहाँ से रवाना हो गये। धन्यकुमार के जाने के बाद जब किसान पुन: हल चलाने लगा, तब उसकी नजर धन से भरे खजाने पर पड़ी। उसे देखकर किसान को आश्चर्य हुआ कि अहो! यह धन इन भाग्यशाली के भाग्य से निकला है, इस कारण इसका स्वामी वही भाग्यशाली पुरुष है; अत: यह धन मुझे स्वीकारना योग्य नहीं है।

अहो! देखो, किसान गरीब है, फिर भी उसमें कितनी निर्लोभता और सज्जनता है कि अपने खेत में से इतना बड़ा खजाना मिलने पर भी, मैं उसका स्वामी नहीं, किन्तु जिसके भाग्य से निकला है, वही उसका मालिक है – ऐसा मानता है।

वह किसान धन्यकुमार के पीछे-पीछे आवाज लगाता हुआ दौड़ता है। कुमार भी किसान की आवाज सुनकर खड़े रहते हैं। किसान ने धन्यकुमार के समीप आकर विनम्रता से कहा है कि 'हे भाग्यशाल! आपके पुण्योदय से जो यह खजाना निकला है, आप ही उसके स्वामी हैं।'

धन्यकुमार ने कहा 'हे भाई! मैं तो अपने साथ कुछ लाया नहीं, मैंने तो तुम्हारे दही-भात खाये हैं। जो धन तुम्हारे खेत में से निकला है, तुम्हीं उसके मालिक हो, मैं नहीं।' तब किसान बोला 'हम अपने बाप-दादा के जमाने से यह खेत जोतते हैं परन्तु धन का ऐसा खजाना कभी नहीं मिला; अत: आज जो खजाना निकला है, वह तो आपके पुण्योदय से ही निकला है; इस कारण इसके स्वामी आप ही है।' तब धन्यकुमार ने कहा कि 'भले ही ऐसा हुआ हो परन्तु यह धन का खजाना मैं तुम्हें भेंट देता हूँ, तुम इसे स्वीकार करो।' इस बात को सुनकर किसान ज्यादा कुछ नहीं बोला सका, मात्र इतना ही कहा 'इस दास के योग्य कोई कार्य-सेवा हो तो अवश्य याद करना।' – ऐसा कहकर वे दोनों अपने-अपने रास्ते चले गये।

★★★

राजगृही चलने के लिये आगे बढ़ते-बढ़ते धन्यकुमार अपने महाभाग्य से एक अवधिज्ञानी मुनिराज को एकान्त स्थान में बैठे देखते हैं। मुनिराज के दर्शन से धन्यकुमार को बहुत प्रसन्नता होती है।

www.vitragvani.com

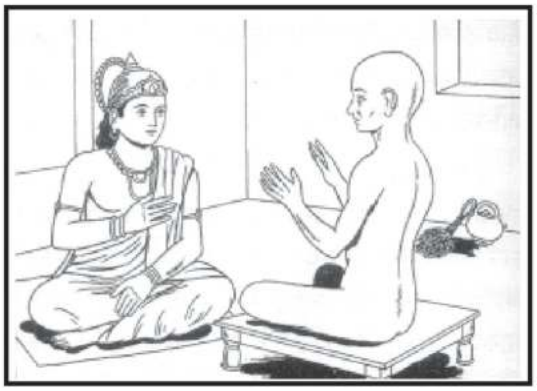

मुनिराज को वन्दन करके वे उनसे धर्म का स्वरूप पूछते हैं, जिसके उत्तर में मुनिराज विस्तार से धर्म के स्वरूप का वर्णन करते हैं। उसे सुनकर धन्यकुमार को बहुत आनन्द आता है। तत्पश्चात् वे मुनिराज से पूछते हैं कि प्रभु! मुझे किस पुण्योदय से धन के खजाने मिलते हैं और माता अत्यधिक प्रेम करती है तथा किस पापोदय के कारण भाई मुझसे द्वेष करते हैं – यह सब कृपा करके कहो?'

मुनिराज धन्यकुमार को आसन्नभव्य जानकर उनके पूर्वजन्म की कथा इस प्रकार कहते हैं –

'हे भव्य! तू चित्त को स्थिर करके अपने पूर्वभव की कथा सुन! क्योंकि उसे सुनकर तुझे संसार से वैराग्य उत्पन्न होगा और धर्म में रुचि होगी, पापों से डर लगेगा; दान, शील, तप, नियमादि में प्रवर्तन होगा। तेरे पूर्व भव की कथा सुनने से अन्य जीवों का भी उपकार होगा।

मगधदेश के अन्तर्गत भोगावती नाम की एक नगरी थी। उसके स्वामी का नाम कामवृष्टि था और उसकी स्त्री का नाम मृष्टदाना था। उसके घर में सुकृतपुण्य नाम का एक नौकर था। जब मृष्टदाना गर्भवती हुई, तब पापोदय से उसके पति कामवृष्टि का मरण हो गया। तत्पश्चात् ज्यों-ज्यों गर्भ वृद्धिङ्गत होता गया, त्यों-त्यों उसके परिवार के सभी मनुष्य मरते गये। जब पुत्र का जन्म हुआ, तब मृष्टदाना की माता भी मर गयी और पुण्यकर्म भी नष्ट हो गया। अत: बुद्धिमान पुरुषों को अनिष्ट संयोग का प्रधान कारण जो पाप है, उसे प्राण जाने पर भी नहीं करना चाहिए।

जब मृष्टदाना के पास कुछ भी नहीं बचा तो वह उस पापी पुत्र का पेट अनाज पीस-पीसकर भरने लगी। कामवृष्टि के मरणोपरान्त उसका नौकर सुकृतपुण्य, पुण्योदय से भोगावती नगरी का स्वामी बन गया।

देखो! इस बालक ने पाप के अलावा कभी पुण्यकर्म नहीं किया, इस कारण

www.vitragvani.com

उसकी दारुण दु:खदायक दशा हुई। इस कारण से उसकी माता ने अपने उस अभागे पुत्र का नाम अकृतपुण्य रखा।'

इतना सुनकर धन्यकुमार ने मुनिराज से पूछा कि 'हे भगवन्! पापी अकृतपुण्य ने पूर्व में कौन-कौन से पाप किये थे, जिस कारण उसकी ऐसी दु:खदायक दशा हुई।'

मुनिराज धन्यकुमार के प्रश्नों का उत्तर देते हुए आगे की कथा कहने लगे -

★★★

'इसी देश में भूतिलक नाम का एक सुन्दर नगर था; उसमें महादानी, महाधनी, बुद्धिमान शुभकर्म करनेवाला धनपति नाम का एक सेठ रहता था। एक दिन धनपति सेठ को विचार आया कि यह लक्ष्मी तो पुण्योदय से मिली है और इसका सही उपयोग पात्रदान से ही है परन्तु उत्तम पात्र साधु तो आहार के सिवाय कुछ लेते नहीं, अत: इसका सदुपयोग करने के लिये बड़े-बड़े जिनालय बनवाने चाहिए और जिनालयों में जिनप्रतिमाओं के साथ-साथ चारों अनुयोगों के शास्त्रों को विराजमान करना चाहिए, जिससे अनेक जीव जिनेन्द्र दर्शन, भक्ति, पूजन, स्वाध्याय आदि कर धर्मलाभ प्राप्त करें। इस प्रकार महान पुण्योपार्जन का कारण होने से जिनमन्दिर बनवाकर विशाल पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा कराने से धन की सफलता होती है - ऐसा विचारकर उसने विशाल जिनमन्दिर बनवाया और उसमें सुन्दर मणि-रत्नों की प्रतिमाएँ पधराईं तथा चारों अनुयोगों के अनेक शास्त्र विराजमान किये, जिनकी सर्वत्र प्रसिद्धि हुई। दूर-दूर से यात्री दर्शनार्थ आकर लाभ लेते और महान धर्मप्रभावना होती।

इस वृतान्त को सुनकर एक दुर्व्यसनी चोर ने लोभ के वशीभूत होकर विचार किया कि इन मणि-रत्नों की प्रतिमाओं की चोरी के लिये त्यागी का वेश धारण करने से चोरी में सुगमता रहेगी, इसलिए मायाजाल से कपटपूर्वक ब्रह्मचारी का वेश धारण करके मिथ्या तपश्चरणादि करने लगा और उससे भोले लोगों में उसकी बहुत प्रशंसा होने लगी। गाँव-गाँव में भ्रमण करते हुए वह कपटी ब्रह्मचारी एक बार भूतिलक नगर में आया और धनपति

www.vitragvani.com

सेठ ने लोगों के मुख से उसकी प्रशंसा सुनी, इस कारण धनपति सेठ, ब्रह्मचारी के पास जाकर विनती करके उसे अपने जिनालय में ले आया। वहाँ उस ब्रह्मचारी ने बगुले की तरह मायाचार के कायक्लेश आदि द्वारा लोगों में मान प्राप्त किया।

एक समय धनपति सेठ ने ब्रह्मचारी से विनती करके कहा कि मैं धन उपार्जन के लिये विदेश जाता हूँ, जब तक मैं वापिस नहीं आऊँ, तब तक आप इस जिनमन्दिर और जिनप्रतिमाओं की सँभाल रखना, तब कपटी ब्रह्मचारी कहने लगा कि अरे सेठ! हम तो त्यागी हैं, ऐसी उपाधि में हमारा काम नहीं है। फिर भी सेठ अत्यन्त आग्रहपूर्वक ब्रह्मचारी को सब सौंपकर परदेश चला गया।

सेठ के परदेश जाते ही कपटी वेशधारी को मौका मिल गया। उसने जिनालय के कीमती उपकरणों को व्यसनादि के लिये खर्च कर दिया परन्तु ऐसे पाप कब तक छिपे रहते? उसके सम्पूर्ण शरीर में कोढ़ का रोग फूट निकला, जिससे उसे महापीड़ा होने लगी, शरीर महादुर्गन्धमय हो गया। सत्य ही कहा है कि '**अधिक पुण्य अथवा पाप का फल तुरन्त ही आ जाता है।**'

अरे, हलाहल जहर खाना तो ठीक है, क्योंकि वह तो एक ही भव में प्राण हरता है परन्तु निर्माल्य द्रव्य खाने से तो अनन्त भव बिगड़ते हैं। इस बात को ध्यान में लेकर बुद्धिमानों को देव-शास्त्र -गुरु का निर्माल्य द्रव्य कभी नहीं लेना चाहिए।

ब्रह्मचारी कोढ़ की भीषण वेदना में वहाँ रहता था, तभी सेठ धनपति विदेश यात्रा से घर वापिस आ गया। उसे देखकर ब्रह्मचारी का क्रोध भभक उठा कि अरे पापी सेठ परदेश में मरा नहीं और घर वापिस आ गया। इस प्रकार क्रोध ही क्रोध में उसकी रोग की वेदना बढ़ गई और महारौद्रध्यान से महाकष्ट से प्राण छोड़कर वह सातवें नरक में गया।

वहाँ जाकर विचारता है कि अरे! इन घोर दु:खों का अन्त कब आयेगा? - ऐसा विलाप करता है। इस तरह सातवें नरक के तैंतीस सागर तक दु:ख सहन करके महामच्छ हुआ और वहाँ भी अत्यन्त कठोर पाप किये, फिर सातवें नरक में आया, महादु:ख भोगकर वहाँ से निकलकर त्रस-स्थावर योनियों में बहुत काल तक भ्रमण किया और वहाँ से निकलकर अकृतपुण्य हुआ।'

www.vitragvani.com

मुनिराज कथा को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि 'वह अकृतपुण्य एक दिन सुकृतपुण्य के खेत पर गया और सुकृतपुण्य की खुशामद करके कहने लगा कि दूसरे लोग तुम्हारे खेत में से चने उखाड़ते हैं, यदि मैं भी उखाड़ूँ तो मुझे क्या दोगे ?

अकृतपुण्य के ऐसे दीन वचन सुनकर सुकृतपुण्य विचारने लगा कि अहो ! संसार में यह सब कर्मों की ही विचित्रता है। जो स्वामी है, वह तो नौकर हो जाता है और जो नौकर हो, वह स्वामी हो जाता है। हाय ! यह तो मेरे ही सेठ का पुत्र है परन्तु कर्मोदय से मेरे पास याचना कर रहा है। धिक्कार है ऐसे कर्मों को ! ऐसा विचारकर दया से सुकृतपुण्य ने उसे स्वर्ण से भरा हुआ कलश दे दिया परन्तु अकृतपुण्य के पापकर्म इतने तीव्र थे कि हाथ में लेते ही उसे वह कलश अग्नि के अंगारों की तरह जलाने लगा, इससे अकृतपुण्य कहने लगा कि 'भाई ! तुम दूसरों को तो चने देते हो, तब मुझे ये अंगारे क्यों दे रहे हो ?'

यह परिदृश्य देखकर सुकृतपुण्य ने सोचा कि अभी इसके पापकर्म दारुण हैं। अत: उसने कहा कि 'भाई ! तू मेरे अंगारे मुझे दे दे और जितने चने तुझसे ले जाएँ जा सकें, ले जा।' अकृतपुण्य अपने साथ जितने चने ले जा सका, उतने चने बाँधकर घर ले गया। उसकी माता ने चने देखकर पूछा कि तू चने कहाँ से लाया ?

तब उसने कहा – 'मैं सुकृतपुण्य के खेत पर काम करने गया था, वहाँ से लाया हूँ।' यह सुनकर उसकी माता दु:खित हृदय से विचारने लगी कि 'हाय ! जो सुकृतपुण्य हमारा ही नौकर था, वह मालिक हो गया और हम मालिक थे, सो भिखारी हो गये। अहो ! भाग्य की गति न्यारी है' – ऐसा विचारकर उसने देशान्तर जाने के लिए चने का नाश्ता बनाया और माता-पुत्र दोनों अन्य गाँव की ओर रवाना हो गये। दोनों चलते-चलते अवन्ति देश के सोसवाक गाँव में जा पहुँचे और मार्ग की थकावट दूर करने के लिये उस गाँव के सेठ बलभद्र के घर के सामने जा बैठे।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

उन्हें देखकर सेठ बलभद्र ने पूछा – 'बहिन! आप कहाँ से आई हो और कहाँ जाने के लिये निकली हो?' यह सुनकर दु:खी मृष्टदाना रोते-रोते कहने लगी – 'भाई! हम मगधदेश से निकले हैं और जहाँ हमारी आजीविका चले वहाँ जाना है।' यह सुनकर सेठ बलभद्र को दया आई, उसने कहा – 'बहिन! यदि तुम्हें आजीविका की आवश्यकता है तो यहीं मेरे यहाँ ही रहो और मेरी रसोई बना दिया करो तथा तुम्हारा पुत्र है, वह मेरी गायों की चर्या कर दिया करेगा। मैं आपको उचित वेतन व भोजनादि दूँगा।' मृष्टदाना ने यह बात स्वीकार कर ली। अत: सेठ ने उनके रहने के लिये अपने ही घर के पीछे की एक झोपड़ी दे दी।

सेठ बलभद्र के सात पुत्र थे। उनके खाने के लिये प्रतिदिन सवेरे खीर का भोजन बनता था। उसे देख-देखकर अकृतपुण्य भी रोजाना अपनी माता के पास खीर खाने के लिये रोया करता था। माता उसे समझाती कि तूने पूर्वभव में कोई पुण्यकर्म नहीं किया; अत: मैं तुझे ऐसा उत्तम भोजन कहाँ से लाकर दूँ? परन्तु अकृतपुण्य तो बालक है, इस कारण रोजाना सेठ के पुत्रों को खीर खाते देखकर माता से खीर माँगता और खीर नहीं मिलने से रोता। यह देखकर सेठ के दुष्ट पुत्र उसे मारते थे। एक बार मारने से उसे अधिक लग गयी और उसका मुँह सूज जाने से विकृत हो गया।

अकृतपुण्य की ऐसी दशा देखकर सेठ बलभद्र ने पूछा कि यह मुख कैसे सूज गया?'

तब उसकी माता ने कहा कि 'यह खाने के लिये खीर माँगा करता था, परन्तु पाप के उदय से खीर कैसे मिल सकती है? उसके बदले में आपके पुत्रों ने इसकी यह दशा की है।' यह सुनकर सेठ को बहुत दया आई और उसने अकृतपुण्य की माता से कहा 'तू मेरे घर से घी, दूध, चावल और शक्कर अपने घर ले जा और उनकी खीर बनाकर पुत्र की अभिलाषा पूर्ण कर।' सेठ के कहे अनुसार वह दूध आदि सामग्री अपने घर लाई और पुत्र से कहा कि 'आज मैं तुझे खीर बनाकर खिलाऊँगी, तू बछड़ों की टहल करके शीघ्र आ जाना।'

अकृतपुण्य प्रसन्नचित्त से बछड़ों की चर्या करने गया और माता के कहे अनुसार जल्दी आ गया। इतने में माता ने खीर बनाकर तैयार कर दी। माता ने अकृतपुण्य से कहा

www.vitragvani.com

कि 'बेटा! मैं पानी भरकर अभी घर आती हूँ। यदि इतने में कोई साधु आवें तो उन्हें जाने मत देना, क्योंकि उत्तम पात्रदान से महान पुण्य बँधता है। उत्तम पात्रों को दान देने से अपने को उत्तम भोजन मिला करेगा तथा उत्तम पात्रदान से ही गृहस्थाश्रम की सफलता है। हमने पहले कभी दान नहीं दिया, इस कारण दरिद्रता के दु:ख सहन करने पड़ रहे हैं' – इत्यादि प्रकार से धार्मिक भावना समझाकर माता घड़ा लेकर पानी भरने गई।'

इतने में महान पुण्योदय से अकृतपुण्य को रत्नत्रय के धारक व अनेक ऋद्धियों से विभूषित महापात्र 'सुकृत' नामक मुनिराज एक माह के उपवास के पारणे के लिये शरीर की स्थिति के लिये बलभद्र के घर की तरफ आते दिखायी दिये। यह देखकर अकृतपुण्य शुद्धमन से विचारने लगा कि अहो! यह महान साधु महात्मा हैं।

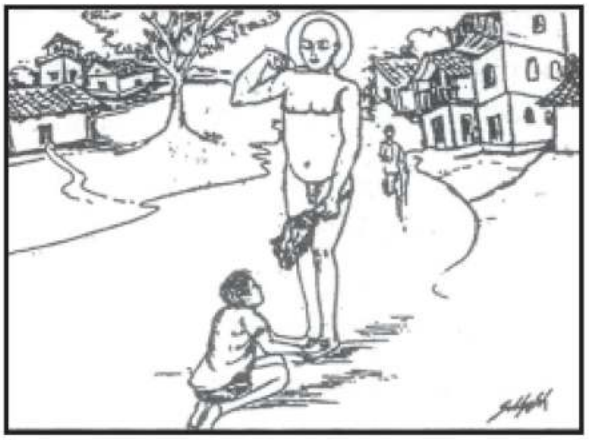

देखो, इनके पास वस्त्रादिक कुछ भी नहीं है। अहो! मेरे महान पुण्योदय से ये साधु महात्मा पधारे हैं। मैं इनको जाने नहीं दूँगा।' इस प्रकार विचार करते हुए वह मुनिराज के सामने जाकर विनती करने लगा कि 'प्रभु! मेरी माता ने बहुत ही सरस खीर बनाई है, वह आपको भोजन में देनी है। मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप यहीं ठहरें। मेरी माता अभी पानी भरकर आती ही हैं' – परन्तु मुनिराज का यह मार्ग नहीं है; इसलिए वे धीमे-धीमे आगे बढ़ने लगे।

तब अकृतपुण्य, मुनिराज के चरण पकड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक पुन: बोला है कि 'तात्! मेरे ऊपर दया करो, कुछ देर खड़े रहो, आप यहाँ से आगे मत पधारो' – इस प्रकार प्रार्थना करने लगा। इतने में ही उसकी माता पानी भरकर आ पहुँची और मुनिराज को देखकर उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। जैसे अनायास दुर्लभ धन मिलने से दरिद्री को प्रसन्नता होती है, वैसी ही प्रसन्नता इस समय उसे हुई। उसने तुरन्त अपने सिर से पानी का घड़ा उतारकर मुनिराज के चरणों में नमस्कार किया और – 'हे स्वामी! नमोऽस्तु...

www.vitragvani.com

नमोऽस्तु... अत्र... अत्र... अत्र... तिष्ठः, तिष्ठः, तिष्ठः, ठः ठः ठः, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि, आहार-जल शुद्ध है' - ऐसा कहकर मुनिराज का पड़गाहन किया।

तत्पश्चात् मुनिराज को घर में ले जाकर उच्च-आसन पर विराजमान किया और नवधाभक्ति से अत्यन्त हर्षित होकर पुत्र के साथ-साथ माता ने मुनिराज को खीर का आहार कराया। मुनिराज को आहार करते देखकर अकृतपुण्य बहुत ही आनन्दित हुआ, इस कारण उसने महान पुण्य का उपार्जन किया। वह विचारने लगा कि 'अहो! आज मैं कृतार्थ हुआ, आज महादान से मेरा जन्म सफल हुआ। अहो! आज मैं कितना भाग्यशाली हूँ। देव, राजा, महाराजा और विद्याधरों से वन्दनीय महापात्र मुनिराज मेरे घर आहार कर रहे हैं।' इस प्रकार अकृतपुण्य उल्लासपूर्वक पवित्र भावना से महान पुण्य का उपार्जन करता रहा।

जितेन्द्रिय योगीराज ने खड़े -खड़े शान्तभाव से पाणिपात्र में आहार करके दाता को पावन किया और शुभ-आशीर्वाद प्रदान कर वन-जङ्गल की तरफ विहार कर गये।

अहा! देखो बालक की उत्तम भावना! कि जो खीर के लिये कितने ही समय से रोता था और जैसे-तैसे सेठ की कृपा से खीर मिली तो भी उसने उसे खाने के लिये ऐसी लोलुपता नहीं की, कि यह खीर मुझे बड़ी कठिनाई से मिली है; अतः मैं किसी को नहीं खाने दूँगा, बल्कि सारी ही खीर मैं खा जाऊँगा; अपितु साधु महाराज को खीर देने के लिये धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करता है और सद्भाग्य से मुनिराज के आ जाने पर निर्लोभता से, भक्ति से, उल्लापूर्वक खीर का दान देकर आनन्दित होता है।

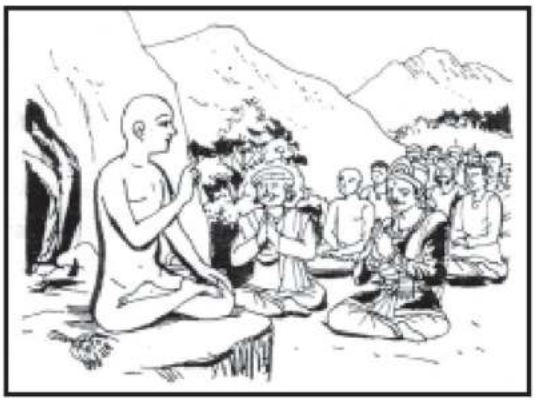

वे मुनिराज अक्षीण ऋद्धि से विभूषित थे, इस कारण मुनिराज का आहार होने से खीर अक्षीण हो गयी। जब मुनिराज आहार करके चले गये तो मृष्टदाता ने अकृतपुण्य को बहुत खीर खिलाई और स्वयं भी पेट भरकर खाई, तो भी खीर रंचमात्र कम नहीं हुई। यह देखकर उसको बहुत आश्चर्य हुआ और सेठ

www.vitragvani.com

बलभद्र के कुटुम्ब को भोजन के लिये बुलाया तो भी भोजन कम नहीं हुआ, तब पूरे गाँव को दिन भर भोजन कराया, इस महानदान से माता-पुत्र की बहुत प्रसिद्धि हुई।

खीर खाकर अकृतपुण्य बछड़ों को चराने के लिये वन में ले गया किन्तु पेट भर गरिष्ट भोजन खाने से उसको निद्रा आ गयी और गायें स्वयं वापिस घर आ गयीं। गायों को अकेला आया देखकर उसकी माता सोचने लगी कि पुत्र वापिस घर क्यों नहीं आया ? उसे क्या हुआ होगा ? ऐसी चिन्ता से वह रोने लगी और सेठ से उसकी खोज कराने को कहा। मृष्टदाना के आग्रह से सेठ अपने नौकरोंसहित अकृतपुण्य को खोजने के लिये निकला।

इधर जब अकृतपुण्य की निद्रा उड़ी तो उसने गायों को नहीं देखा, अत: व्याकुल होकर उन्हें चारों तरफ खोजते-खोजते घर की तरफ आने लगा। इतने में अपने सामने सेठ बलभद्र को आते देखकर, वह भयभीत होकर पर्वत पर चढ़ गया। बलभद्र ने उसकी बहुत खोज की परन्तु उसके नहीं मिलने पर वह वापिस घर आ गया।

अकृतपुण्य पर्वत के ऊपर गुफा के दरवाजे पर खड़ा रहा। गुफा में सुव्रत मुनिराज धर्म का उपदेश दे रहे थे; अत: अकृतपुण्य भी उसे प्रसन्नतापूर्वक सुनने लगा।

उपदेश पूर्ण होने के बाद श्रावकगण 'णमो अरहंताणं' का उच्चारण करते हुए गुफा में से बाहर निकले। अकृतपुण्य भी उन लोगों के साथ मन्त्र का उच्चारण करते हुए पीछे-पीछे जा रहा था, इतने में एक क्षुधातुर बाघ ने उसे पकड़ लिया और अकृतपुण्य ने मन्त्र के स्मरणसहित समाधिपूर्वक देह का त्याग किया और उपार्जित किये हुए महान पुण्य के उदय से सौधर्म स्वर्ग में महर्धिक देव हुआ।

अहो ! देखो, कहाँ तो उसके प्रबल पापोदय और कहाँ उस दुर्लभ पात्रदान का योग और कहाँ उत्तम भावना से प्राप्त स्वर्ग !

★ ★ ★

इधर रात भर पुत्र के न आने से चिन्तातुर माता सवेरा होते ही सेठ बलभ्रद को लेकर पुत्र को खोजने के लिये निकली। वे उसे खोजते-खोजते उसी पर्वत पर जा पहुँचे, कि जहाँ प्रिय पुत्र का आधा खाया हुआ शरीर पड़ा था। उसे देखकर पुत्र की मृत्यु जानकर उसकी माता महाशोकपूर्वक रुदन करने लगी।

www.vitragvani.com

इधर अकृतपुण्य स्वर्ग में उत्पन्न होने पर विचार करने लगा कि अहा! मैं कौन हूँ? और यह सुखमय स्थान कौन-सा है? इत्यादि विचार करने पर उसे अवधिज्ञान प्रगट हो गया और पूर्वजन्म की सारी बातें जान ली तथा अपनी माता को रुदन करते देखकर उसने सर्वप्रथम तो जिनमन्दिर में जाकर जिनेन्द्रदेव की महापूजा-भक्ति की और पश्चात् बहुत वैभव के साथ माता को समझाने के लिये पृथ्वी पर आया। शोक से रुदन करती माता को देखकर उसने कहा कि - 'हे माता! तू रुदन मत कर, मैं ही तेरा पुत्र हूँ परन्तु पात्रदान तथा नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से मैं देव हुआ हूँ।'

- ऐसा कहकर स्वर्ग के उत्तम-उत्तम सुखों का वर्णन किया और अन्त में कहा कि - 'हे माता! यह सब प्रताप दान, व्रत आदि का है; अत: तू भी व्रतादि का पालन कर और रुदन छोड़! रुदन करने से पाप बन्ध होता है। अत: तू दुर्लभ संयम को ग्रहण करके मनुष्य जन्म सफल कर!' इत्यादि सम्बोधन करके देव (भूतपूर्व पुत्र का जीव) स्वर्ग में गया और माता मृष्टदाना को महान आश्चर्य हुआ कि अहो! कहाँ तो अकृतपुण्य की दारुण दु:खमय दशा और कहाँ महान पात्रदान का लाभ तथा व्रतादि की भावना से स्वर्ग का उत्तम सुख!

- ऐसा जानकर वह भी घर-बार का परित्याग करके, संसार से विरक्त होकर दीक्षित हुई और यथायोग्य तपादि करके समाधिपूर्वक प्राणों का परित्याग किया। जहाँ अकृतपुण्य का जीव था, वहीं बलभद्र का जीव, देव और मृष्टदाना का जीव, देवी हुआ।

मुनिराज धन्यकुमार से कहते हैं कि 'हे कुमार! वही बलभद्र स्वर्ग में से यहाँ तेरे पिता धनपाल हुए हैं और माता मृष्टदाना स्वर्ग से आकर तेरी माता हुई है, जो पूर्व के स्नेह से तुझ पर विशेष प्रेम रखती है। अकृतपुण्य का जीव पात्रदान के प्रभाव से जो स्वर्ग में देव हुआ था, वह अब तुम्हारे रूप में धन्यकुमार बना है और बलभद्र के सात पुत्र तुम्हारे भाई के रूप में उत्पन्न हुए हैं, जो तुम्हें मारना चाहते हैं। तुम्हें वर्तमान में जो स्थान-स्थान पर लक्ष्मी, सौन्दर्यता, यश आदि मिलते हैं, वह सब पूर्व के पात्रदान, व्रतादि की भावना का व नमस्कार मन्त्र के स्मरण का फल है। अब तुम इस भव में भी प्रयत्नपूर्वक धर्म करने में सावधान रहना' - इत्यादि आशीर्वाद दिया। धन्यकुमार अपने पूर्व भव जानकर बहुत प्रसन्न हुआ और धर्म में विशेष दृढ़ हुआ।

★★★

www.vitragvani.com

अब धन्यकुमार, मुनिराज के द्वारा सुनाये गये धर्म के उत्तम फल का विचार करते हुए राजगृही नगर की तरफ जा रहा है। राजगृही नगर के बाहर एक सूखे हुए वन में जाकर विश्राम करता है। जब धन्यकुमार वन में सूखे वृक्ष के नीचे विश्राम के लिये बैठता है, तब सारा ही वन एकदम हरा-भरा हो जाता है। सूखी बावड़ी पानी से भर जाती है।

इस वन का मालिक सेठ कुसुमदत्त है। वह अपने वन को सूख जाने से काटने का विचार करता था, इतने में एक अवधिज्ञानी मुनिराज से उनकी भेंट हो गयी। सेठ कुसुमदत्त, मुनिराज को भक्ति से नमस्कार करके पूछता है कि 'प्रभु! यह वन सूख गया है सो फिर से नन्दनवन समान होगा या नहीं?' मुनिराज कहते हैं कि 'कोई भाग्यवान पुरुष आकर यहाँ बैठेगा, उस समय यह वन नन्दनवन के समान हो जाएगा।' इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर सेठ कुसुमदत्त उस भाग्यवान पुरुष की प्रतीक्षा करता था।

धन्यकुमार के आने से यह सूखा वन फल-फूलादि से नन्दनवन समान बन जाने से आश्चर्ययुक्त कुसुमदत्त सेठ, धन्यकुमार के पास आकर नम्रता से पूछता है कि 'आप भाग्यशाली कौन हैं? और किस स्थान से पधारे हैं?' तब धन्यकुमार कहता है कि 'मैं उज्जैनी का निवासी जैन वणिक पुत्र हूँ।' तब सेठ अत्यन्त प्रसन्नता से कहता है कि 'मैं भी जैनी ही हूँ, इस कारण आप मेरे साधर्मी हैं, अत: आप मेरे घर पधारने की कृपा करें।' सेठ का वात्सल्य देखकर धन्यकुमार उसके घर जाता है। सेठ अत्यन्त आदर-सत्कारपूर्वक उसे घर ले जाता है और अपनी पत्नी से कहता है कि 'यह अपने अतिथि/मेहमान हैं; अत: इनका भलीभाँति स्वागत करना।' सेठानी धन्यकुमार को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती है और यह मेरा भावी दामाद है - ऐसा जानकर बहुत सत्कार करती है।

कुसुमदत्त सेठ के पुण्यावती नाम की सुन्दर कन्या है। वह धन्यकुमार के रूपादि देखकर मोहित होती है और कुमार की चतुराई की परीक्षा के लिये सुन्दर फूल और डोरा

www.vitragvani.com

देती है। कुमार उसकी सुन्दर चित्ताकर्षक फूलमाला गूँथ देता है। कुमारी पुण्यावती उस फूलमाला को अपनी सखी राजा श्रेणिक की पुत्री राजकुमार गुणवती को अर्पण करती है। गुणवती, माला देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती है और पूछती है कि 'ऐसी सुन्दर गूँथी हुई पुष्पमाला किसने बनाई है ?' तब पुण्यावती कहती है कि 'हमारे घर एक सेठ पुत्र आया है, उसी बुद्धिमान ने बनाई है।' राजकन्या गुणवती, सेठ पुत्री से कहती है कि 'अहो! तू बहुत भाग्यशाली है, जिससे तुझे ऐसे उत्तम वर की सङ्गति मिलेगी।'

★★★

एक बार धन्यकुमार बाजार में जाता है और एक सेठ की दुकान पर बैठता है। उसके बैठने से सेठ को व्यापार में बहुत लाभ होने से उसका कारण पुण्यशाली धन्यकुमार को जानकर, वह कुमार से विनती करता है कि 'मेरी पुत्री सुन्दर, रूपवान और गुणवान है, मैं उसका विवाह आपके साथ करूँगा।' इसी तरह दूसरे दिन शालिभद्र सेठ की दुकान पर जाकर कुमार बैठा तो उसे भी व्यापार में बहुत लाभ हुआ। वह इस लाभ का कारण पुण्यशाली कुमार है – ऐसा जानकर कुमार से कहता है कि 'हे भद्र! कृपया, मेरी सुभद्रा नामक बहिन को स्वीकार कर अनुग्रहीत करें, मैं आपके साथ उसका विवाह कर अपने को भाग्यशाली समझूँगा।' इसी प्रकार अन्य भी कितने ही श्रीमन्तों ने अपनी कन्याओं का विवाह धन्यकुमार के साथ करने का निश्चय किया।

राजा श्रेणिक की पुत्री गुणवती भी धन्यकुमार के रूप-गुण से मोहित होकर दिन-प्रतिदिन दुबली होने लगी। यह जानकर राजा श्रेणिक ने अपने पुत्रों से सलाह माँगी कि 'गुणवती का विवाह धन्यकुमार के साथ करना उचित लगता है ?'

तब राजपुत्र कहते हैं कि 'पिताजी! उसकी शूरवीरता आदि की परीक्षा करना चाहिए और उसके लिए नगरी के बाहर राक्षसगृह है, उसे उसमें एक रात्रि रखना चाहिए, यदि वह राक्षसगृह के उपद्रवों पर विजय प्राप्त कर ले तो गुणवती का विवाह उसके साथ कर देना।' इस प्रकार विचार कर धन्यकुमार से रात्रि में किसी कार्य का बहाना करके राक्षसगृह जाने को कहा। धन्यकुमार ने भी उनका यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। अन्य अनेक श्रीमन्तों ने उसे जाने को मना किया कि जो उस राक्षसगृह में जाता है, वह

www.vitragvani.com

मृत्यु से बचता नहीं है; अत: आप वहाँ नहीं जावें, परन्तु कुमार तो निडर है, इसलिए उसने किसी की बात न मानकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक राक्षसगृह में जाना स्वीकार किया।

धन्यकुमार को राक्षसगृह में आते देखकर गृह का रक्षक राक्षस बहुत प्रसन्न होता है और नमस्कार करके कहता है कि 'हे प्रभु! आप मुझे अपना सेवक समझें, मैंने इतने समय से आपके धन-खजाने से परिपूर्ण इस भवन की रक्षा की है। अब आप आ गये हैं तो अपना धन-खजाना सँभालें और जब कभी भी ऐसी आवश्यकता पड़े, तब इस सेवक को अवश्य याद करना, मैं हाजिर हो जाऊँगा' - ऐसा कहकर अन्तर्हित हो गया। कुमार रात्रि में सुखपूर्वक वहाँ रहा और प्रात:काल उठकर सामायिकादि क्रिया करके प्रसन्नतापूर्वक गाँव में आ गया। यह देखकर राजा श्रेणिक आदि को आश्चर्य के साथ यह निर्णय हो गया कि यह कोई साधारण मनुष्य नहीं है, महान गुणवान पुरुष है - ऐसा जानकर उन्होंने अपनी पुत्री गुणवती का विवाह कुमार के साथ कर दिया और साथ ही आधा राज्य भी दे दिया। अब धन्यकुमार राजा हो गये हैं। यह सब पुण्योदय का फल है, जो धर्म सेवन से होता है - ऐसा जानकर कुमार अत्यन्त रुचिपूर्वक धर्म का पालन करता है और समय-समय पर धर्म की महान प्रभावना करता है और सुखपूर्वक आनन्द से रहता है।

★★★

जब धन्यकुमार भाईयों की दुष्टता से गाँव छोड़कर चला आया था, तभी से उनके नव निधि विलुप्त हो गयी तथा सभी हैरान-परेशान होकर उस घर को छोड़कर किसी पुराने मकान में रहने गये तथा भाईयों की दुष्टता से गाँव के लोग उनकी निन्दा करने लगे और कुपुत्रों के पापोदय से धन समाप्त हो गया, पेट भरना भी मुश्किल हो गया, इस प्रकार वे सब महादु:खी हो गये।

एक दिन सेठ धनपाल अपने धनवान भानजे सेठ शालिभद्र के यहाँ जाने को रवाना हुआ। राजगृही पहुँचकर धन्यकुमार के महल के नीचे बैठकर शालिभद्र का मकान कहाँ है? - यह पूछने लगा। धन्यकुमार महल के ऊपर बैठा था, उसकी नीचे नजर पड़ी कि, 'अहो! ये तो मेरे पिताश्री ही हैं' - ऐसा पहिचानते ही तुरन्त नीचे आकर पिताजी के चरणों में नम्रीभूत हो गया। बेचारे पिताजी तो उस समय फटे हुए कपड़े पहिने भिखारी जैसे हो

www.vitragvani.com

रहे थे, उन्हें राजा धन्यकुमार को नमस्कार करते देखकर राज्य कर्मचारी और नगरजन आश्चर्य करने लगे। पिता धनपाल तो धन्यकुमार को पहिचान ही नहीं पाये, इस कारण राजा को अपने पैरों में पड़ने से लज्जित हो गये और कहने लगे – 'अहो नराधीश! आप तो महान पुण्यात्मा हो, आप तो पृथ्वीपालक हैं, अत: मुझे आपको नमस्कार करना चाहिए।'

यह सुनकर धन्यकुमार ने कहा कि 'आप ही नमस्कार करने योग्य हैं, क्योंकि आप मेरे पूज्य पिताजी हैं और मैं आपका सबसे छोटा पुत्र हूँ' – ऐसा सुनते ही पिता, अपने पुत्र को पहिचान लेते हैं और उनकी आँखों से आनन्द की अश्रुधारा बह निकलती है, यही दशा धन्यकुमार की हो जाती है।

धन्यकुमार पिताजी को अपने महल में ले गये और माता तथा भाइयों के कुशल समाचार पूछे। पिताजी ने उसके जाने के बाद घटित समस्त दु:खद वृतान्त कह सुनाया। जिसे सुनकर धन्यकुमार ने सेवकों के साथ धन-धान्य, वस्त्रादि भेजकर उज्जैनी से माता व भाईयों को बुलाने भेजा। माता और भाई धन्यकुमार के समाचार जानकर बहुत आनन्दित हुए और राजगृही आ गये। राजगृही आने पर धन्यकुमार ने माता और भाईयों का बड़ा सत्कार-स्वागत किया और माता-पुत्र परस्पर मिलकर बहुत आनन्दित हुए। कुमार ने सबको रहने के लिये भवन दिये। भाईयों ने अपने अपराध की क्षमा माँगी। पश्चात् धन्यकुमार ने उनके लिये धनादि की समुचित व्यवस्था कर दी। इस प्रकार धन्यकुमार, माता-पिता और सभी भाई सुख-शान्ति से रहने लगे और विशाल जिनमन्दिरों का निर्माण कराकर धर्मध्यान में समय व्यतीत करने लगे।

★★★

एक दिन धन्यकुमार अपनी पत्नी सुभद्रा का मुख मलिन देखकर पूछते हैं कि 'हे प्रिये! आज तुम्हारा मुख मलिन क्यों दिख रहा है? तुम्हें कुछ शोक है – ऐसा लगता है?' तब सुभद्र कहती है कि 'हे स्वामी! मेरा भाई शालिभद्र बहुत दिनों से कुटुम्ब, घर आदि से उदासीन होकर वैराग्य के चिन्तवनपूर्वक घर में तप का अभ्यास करता है परन्तु आज ज्ञात हुआ है कि वह जिनदीक्षा लेने के लिये तैयार हुआ है, इस कारण से मुझे शोक

www.vitragvani.com

है। अन्यथा मैं आपके राज्य में सब प्रकार से अत्यन्त सुखी हूँ।' यह सुनकर धन्यकुमार सुभद्रा से कहता है कि 'मैं अभी जाकर शालिभद्र को सुमधुर वचनों से समझा दूँगा, तू शोक छोड़।'

धन्यकुमार उसी समय अपने साले के घर गया और कहा – 'अरे शालिभद्र! तुम आजकल घर क्यों नहीं आते?' तब शालिभद्र कहता है कि 'हे प्रियवर! संयम बहुत कठिन है, अत: उसकी सिद्धि के लिये घर में रहकर तपश्चरण का अभ्यास करता हूँ; इस कारण आपके यहाँ नहीं आ पा रहा हूँ।'

यह सुनकर धन्यकुमार कहता है कि 'अरे भाई! तुम्हें जिनदीक्षा लेनी हो तो जल्दी करो! जो ऋषभदेव आदि महापुरुष मोक्ष गये हैं, क्या उन्होंने घर में तपश्चरण का अभ्यास किया था? वे तो उल्कापात आदि किञ्चित्मात्र वैराग्य का कारण पाकर करोड़ों वर्षों से भोगे हुए भोगों को क्षणमात्र में छोड़कर तप द्वारा मुक्त हो गये थे; वस्तुत: उन्हें ही पुरुषोत्तम कहा जाता है, तुम तो डरपोक दिखते हो; इस कारण घर में ही रहकर तप का अभ्यास कर रहे हो।

देखो! मैं अभी कठिन दीक्षा और तप को उसके अभ्यास किये बिना ही ग्रहण करता हूँ। क्या तुम नहीं जानते कि पापी काल कब आकर भक्षण कर लेगा, इसका कुछ भी विश्वास करने योग्य नहीं है। इस कारण जो संसार से छूटना चाहता है, उसको जब तक वृद्धदशा नहीं आवे, इन्द्रियाँ शिथिल न होवें, उसके पूर्व ही मोक्ष के लिये प्रयत्न करना चाहिए' – इत्यादि हितकर और वैराग्यपूर्ण वचनों से शालिभद्र के रोम-रोम में वैराग्य रस जागृत करके उन्हें तत्काल ही मुनिपद के लिये तैयार कर दिया और स्वयं भी उनसे अधिक विरक्तिपूर्वक अपने घर गये, राज्य का भार अपने पुत्र को सौंपा और माता-पिता, राजा श्रेणिक आदि से आज्ञा लेकर शालिभद्र आदि अनेक लोगों के साथ भगवान महावीर के समवसरण में गये।

समवसरण में जाकर भगवान के दर्शन-पूजन किये, अनेक प्रकार के गुणगान करके भगवान की भक्ति की; तत्पश्चात् प्रभु से विनती की कि हे नाथ! हमें मोक्ष प्रदायक भगवती जिनदीक्षा प्रदान करो – ऐसा कहकर हाथ जोड़कर खड़े हुए और भगवान की

www.vitragvani.com

आज्ञा अनुसार धन्यकुमार, शालिभद्र आदि के साथ बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग कर मोक्ष की मातारूपी दिगम्बर दीक्षा अङ्गीकार कर, अनेक प्रकार की कठिन तपश्चर्या करने में तत्पर हुए।

इस प्रकार मुनिराज धन्यकुमार तपश्चरण कर अन्त में सल्लेखना का पालन कर प्रायोपगमन मरण से ध्यान और समाधिपूर्वक बाह्य दश प्राणों का त्यागकर धर्म के प्रभाव से सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग में अहमिन्द्र हुए तथा वहाँ से चय कर मनुष्य पर्याय प्राप्त कर मोक्ष जाएँगे।

शालिभद्र आदि मुनिराज भी अपनी-अपनी योग्यतानुसार तपश्चरण करके समाधिमरणपूर्वक देह त्याग कर यथायोग्य स्वर्गों में गये।

अहो! देखो, पवित्र जैन धर्म की महानता! जो जीव इसे अपने अन्दर उतारता है, उसका कल्याण नियम से होता ही है। देखो, धन्यकुमार के जीव ने पूर्व में पापी चोर होकर जिनमन्दिर का निर्माल्य द्रव्य चोरी किया, सातवें नरक में गया, वहाँ के घोर दु:ख भोगे। उसके बाद अकृतपुण्य हुआ और मात्र मुनिराज को आहारदान देने की भावनामात्र से महान पुण्यार्जन कर स्वर्ग गया, तत्पश्चात् महाभाग्यशाली के रूप में धन्यकुमार हुआ और मुनि होकर तपश्चरण किया तथा समाधिपूर्वक प्रायोपगमन मरण कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ तथा अगले भव में मोक्ष जाएगा।

ऐसे पापी जीवों को भी पवित्र बनाकर मोक्षमार्ग में लगानेवाला यह महान जैनधर्म हमें भी अपना कर अपने आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए। ●

(- ब्रह्मचारी हरिलाल जैन)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

13 श्रीराम, लक्ष्मण, सीता आदि के पूर्व भव

महासुन्दर देहाकार के धारक श्रीराम की भक्तिरूपी आभूषण से युक्त, रावण के भ्राता और विद्याधरों में श्रेष्ठ राजा विभीषण हाथ जोड़कर, प्रणाम करके सकलभूषण केवली से पूछने लगे – हे देवाधिदेव! श्रीराम ने पूर्व भव में क्या किया था, जिससे वे ऐसी महिमा को प्राप्त हुए? उनकी सहधर्मिणी सीताजी को किस कारण दण्डकवन में रावण हरकर ले गया? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन चार पुरुषार्थों के वेत्ता अनेक शास्त्रों का पाठी, कृत्य-अकृत्य का ज्ञाता, धर्म-अधर्म का दृष्टा, प्रधान गुण सम्पन्न रावण, मोह के वश होकर परस्त्री की अभिलाषारूपी अग्नि में पतङ्गे के भाव को कैसे प्राप्त हुआ? विद्याधरों का महेश्वर, अनेक अद्भुत कार्यों का कर्ता और महा बलवान रावण, संग्राम में लक्ष्मण के द्वारा मारा गया – वह ऐसी मृत्यु को कैसे प्राप्त हुआ?

श्री केवली भगवान ने कहा – हे लंकेश्वर! श्रीराम और लक्ष्मण दोनों अनेक भवों के भाई हैं और रावण के जीव के प्रति लक्ष्मण के जीव का अनेक भवों से वैर है। इन सबका वृत्तान्त इस प्रकार है –

❖ ❖ ❖

भरतक्षेत्र के एक नगर के अल्प धन का धनी नयदत्त नाम का वणिक था, उसकी सुनन्दा स्त्री के धनदत्त पुत्र था, वह श्रीराम का जीव तथा दूसरा वसुदत्त नाम का पुत्र था, वह लक्ष्मण का जीव। एक यज्ञबली नाम का विप्र वसुदत्त का मित्र था, वह तेरा (विभीषण

www.vitragvani.com

का) जीव। उसी नगर में एक सागरदत्त वणिक की रत्नप्रभा स्त्री के गुणवती नाम की पुत्री थी, वह सीता का जीव और उसका छोटा भाई गुणवान, वह भामण्डल का जीव था। यौवन, रूप, कला, कान्ति से मण्डित गुणवती के पिता के अभिप्राय से गुणवान (भामाण्डल का जीव) ने धनदत्त (राम के जीव) के साथ उसकी सगाई कर दी।

उसी नगर में एक महा धनवान वणिक श्रीकान्त (रावण का जीव) था। वह निरन्तर गुणवती से विवाह की अभिलाषा रखता था। गुणवती का भाई गुणवान धन का लोभी होकर धनदत्त को अल्प धनिक जानकर गुणवती को श्रीकान्त के साथ विवाहने का उद्यमी हुआ।

यज्ञबली ब्राह्मण ने यह वृतान्त वसुदेव से कहा कि तेरे बड़े भाई के साथ सगाई हुई कन्या का, उसका बड़ा भाई श्रीकान्त के साथ विवाह करना चाहता है। यह सुनकर वसुदत्त (लक्ष्मण का जीव) खड़ग लेकर श्रीकान्त को मारने के लिए अन्धेरी रात्रि में श्याम वस्त्र पहिनकर धीमें पदचाप से उसके घर गया। उस समय श्रीकान्त ने वसुदत्त को भी खड़ग मार दिया। दोनों मरकर विन्ध्याचल के वन में हिरण हुए। नगर के दुर्जनों ने गुणवती का विवाह धनदत्त के साथ नहीं होने दिया और कहा कि इसके भाई ने अपराध किया है। दुर्जन लोग बिना कारण ही क्रोध करते हैं, यह तो एक बहाना हुआ।

अपने भाई का मरण, अपना अपमान और सगाई की हुई कन्या का अलाभ होने से महादु:खी होकर धनदत्त (राम का जीव) घर से निकलकर विदेश गमन करने लगा। उस कन्या ने भी धनदत्त की अप्राप्ति से अतिदु:खी होकर अन्य किसी से विवाह नहीं किया और मुनियों की निन्दा तथा जिनमार्ग की अश्रद्धापूर्वक पापोपार्जन से काल गँवाकर आर्तध्यान से मरकर, जिस वन में वे दोनों (रावण और लक्ष्मण का जीव) हिरण हुए थे, वहाँ हिरणी हुई। पूर्व वैरवश उस मृगी के लिए वे दोनों मृग परस्पर लड़कर मरते रहे और इस प्रकार जल-स्थल के जीव होकर प्राण तजते रहे।

❖ ❖ ❖

मार्ग के खेद से अति दु:खी धनदत्त (राम का जीव) एक दिन सूर्यास्त के समय मुनियों के आश्रम में गया। वह भोला कुछ नहीं जानता था, इसलिए साधुओं से कहने लगा

www.vitragvani.com

कि तुम धर्मात्मा हो, मैं प्यास से पीड़ित हूँ; अत: मुझे जल-पान कराओ। तब मुनि तो कुछ नहीं बोले, परन्तु किसी जिनधर्मी ने मधुर वचनों से उसे सन्तोष उत्पन्न कराते हुए कहा – हे मित्र! रात्रि में अमृत भी नहीं पीना चाहिए, तब जल की तो बात ही क्या? जब नेत्रों द्वारा कुछ नहीं दिखता, सूक्ष्म जीव दृष्टि में नहीं आते – ऐसी रात्रि के समय यदि तू अति तृषातुर होवे तो भी खान-पान नहीं करना। भाई! जिससे भवसागर में डूबना पड़े – ऐसा कार्य तू मत करना। यह सुनकर दयायुक्त चित्त धनदत्त शान्तचित्त हुआ। शक्ति अल्प होने से वह महाव्रती तो नहीं हो सका, परन्तु अणुव्रती श्रावक हुआ। काल पाकर समाधिमरण करके सौधर्म स्वर्ग में महाऋद्धिधारी देव हुआ।

पूर्व पुण्य के योग ये देवाङ्गना आदि का सुख भोगकर, स्वर्ग से चयकर वह देव महापुरनगर के मेरुनामक श्रेष्ठी की धारीणि नाम स्त्री का पद्मरुचि नाम का पुत्र हुआ। एक दिन सेठ का पुत्र पद्मरुचि अपने गौकुल में अश्व पर चढ़कर आया, वहाँ उसने एक वृद्ध बैल को कण्ठगत प्राणसहित देखा। इस कारण वह अश्व से उतरकर दयापूर्वक बैल के कान में णमोकार मन्त्र सुनाने लगा। बैल ने चित्त लगाकर णमोकार मन्त्र सुना और प्राण तजकर उसी नगर के राजा छत्रच्छय की रानी श्रीदत्ता के गर्भ में आया।

राजा छत्रच्छय के कोई पुत्र नहीं था; अत: इस पुत्र के जन्म से अति हर्षित होकर उसने नगर की महान शोभा की और बालक का नाम वृषषध्वज रखा। पुण्यकर्म के योग से वह बालक वृषभध्वज पूर्व जन्म को जानने लगा। बैल के भव के शीत-आताप आदि महादु:ख और मृत्यु के समय णमोकार मन्त्र के श्रवण के प्रभाव से राजकुमार हुआ – यह सब पूर्व अवस्था याद करके वह बाल्यावस्था में ही महाविवेकी हुआ। तरुण अवस्था होने पर एक दिन विहार करते हुए बैल के मरण स्थान पर गया। अपने पूर्व भव का चारित्र विचारकर वह वृषभध्वज कुमार, पूर्व जन्म की मरणभूमि देखकर अति दु:खी हुआ। हाथी से उतरकर उसने 'अपनी मृत्यु का सुधारनेवाला एक पुरुष बैल के समीप बैठकर णमोकार मन्त्र सुनाता है' – ऐसा एक चित्रपट बनाकर वहाँ लगा दिया और उसके समीप एक रखवाला रख दिया।

एक बार मेरुश्रेष्ठी का पुत्र पद्मरुचि जिनमन्दिर के दर्शन करने के लिए आया और

www.vitragvani.com

चित्रपट को देखकर हर्षित हुआ। दर्शन करने के पश्चात् वह चित्रपट को देखकर मन में विचार करने लगा कि मैंने एक मरणोन्मुख बैल को णमोकार मन्त्र सुनाया था। यह बात रखवाले ने राजकुमार को जाकर कही। जिसे सुनते ही राजकुमार महाऋद्धिसहित हाथी पर चढ़कर शीघ्र ही अपने मित्र से मिलने आया। हाथी से उतरकर सर्व प्रथम जिनमन्दिर के दर्शन करके बाहर आकर उसने पद्मरुचि को बैल की तरफ निहारते हुए देखा। राजकुमार ने श्रेष्ठीपुत्र से पूछा कि – हे श्रेष्ठीवर! तुम बैल की तरफ क्यों देख रहे हो?

पद्मरुचि ने कहा – एक मरते हुए बैल को मैंने णमोकार मन्त्र दिया था, वह अब कहाँ उत्पन्न हुआ है? यह जानने की मेरी इच्छा है।

तब वृषभध्वज बोला कि 'वह मैं हूँ' – ऐसा कहकर उसने पद्मरुचि के पैरों में गिरकर उसकी स्तुति की। जैसे शिष्य गुरु की स्तुति करता है, वैसे ही वह कहने लगा कि मैं महाअविवेकी पशु मृत्यु के दु:ख से महादु:खी था; तुम मेरे महामित्र, णमोकार मन्त्र के दाता, समाधिमरण के कारण हुए। आप दयालु ने मुझे परभव का सुधारक महामन्त्र दिया, जिससे मैं राजकुमार हुआ हूँ। राजा, देव, माता, सहोदर, मित्र और परिजन भी जो उपकार नहीं करते, वह तुमने किया है। तुमने मुझे णमोकान्त मन्त्र दिया, उसके समान त्रिलोक में कोई नहीं है। मैं उसका क्या प्रत्युपकार करूँ? आपके प्रति मेरी विशेष भक्ति उत्पन्न हुई है; अत: आप जो आज्ञा दें, वह मैं करुँगा।

हे पुरुषोत्तम! आप आज्ञा करके मुझे भक्त करो। इस समस्त राज्य को ग्रहण करो; मैं तो आपका दास हूँ। मेरे इस शरीर द्वारा जो इच्छा हो, वह सेवा कराओ। इस प्रकार जब वृषभध्वज ने कहा, तब पद्मरुचि और उसमें अतिप्रीति हो गई। दोनों सम्यग्दृष्टि, राज्य में श्रावक के व्रत पालन करने लगे। जगह-जगह जिनेन्द्र भगवान के चैत्यालय बनाकर, उनमें जिनबिम्ब पधराकर समस्त पृथ्वी को शोभायमान करके अन्त में वृषभध्वज और सेठ पद्मरुचि समाधिमरण करके दूसरे स्वर्ग में देव हुए और वहाँ भी परममित्र हुए।

❖ ❖ ❖

वहाँ से चयकर पद्मरुचि (राम का जीव) पश्चिम विदेह में विजयाधर्मीगिरि में नंधावर्तनगर के राजा नंदीश्वर की रानी कनकप्रभा का नयनानन्द नाम का पुत्र हुआ। उसने

www.vitragvani.com

विद्याधरों के चक्रीपद की सम्पदा को भोगा, पश्चात महामुनि की अवस्था धारण कर तप करके समाधिमरण करके चौथे स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ पुण्यरूपी वृक्ष के सुखरूप महामनोज्ञ फलों को भोगा और वहाँ से चयकर पूर्व विदेह में क्षेमपुरी नगरी के राजा विद्युतवाहन और रानी पद्मावती का श्रीचन्द नाम का पुत्र हुआ। वहाँ स्वर्ग के समान सुख भोगे। उसके पुण्य के प्रभाव से दिन-प्रतिदिन राज्य की वृद्धि हुई, अखूट भण्डार हुआ और समुद्रान्त पृथ्वी को एक ग्रामवत् वश में किया। इन्द्राणियों के समान रानियों सहित सुख भोगते हुए हजारों वर्षों तक राज्य किया।

एक दिन महा संघसहित त्रिगुप्ति के धारक समाधिगुप्त नाम के योगीश्वर को नगर के उद्यान में विराजित जानकर नगर के लोग उनकी वन्दना करने गये। स्तुति करते हुए वाजिन्त्रों को बजाते हर्ष से जाते हुए लोगों का नाद सुनकर श्रीचन्द ने समीपवर्ती लोगों से पूछा कि यह हर्षनाद किस कारण हो रहा है ? मन्त्रीजनों ने तपास करके बताया कि नगर के उद्यान में मुनिश्वर पधरे हुए हैं, सब उनके दर्शनार्थ जा रहे हैं। यह समाचार सुनकर राजा श्रीचन्द के शरीर में हर्ष से रोमांच हो आया और समस्त परिजनों के साथ राजा भी मुनिराज के दर्शन के लिये चल पड़ा।

मुनिराज को देखकर अत्यन्त भक्ति से प्रणाम करके महाविनय से संयुक्त होकर राजा पृथ्वी पर बैठ गया। ऋषिवर को देखकर राजा को अति धर्म स्नेह उत्पन्न हुआ। महातपोधर, धर्मशास्त्र के वेत्ता परम गम्भीर मुनिश्वर लोगों को तत्वज्ञान का उपदेश देने लगे। उत्तम पुरुषों का जीवन वृत्तान्त कहनेवाला प्रथमानुयोग, त्रिलोक का कथन करनेवाला करणानुयोग, मुनि-श्रावक के आचार का दर्शानेवाला चरणानुयोग और छह द्रव्य, सात तत्त्व, नव पदार्थ तथा पंचास्तिकाय का निर्णय करानेवाला जो द्रव्यानुयोग है; वक्ताओं में श्रेष्ठ मुनिराज, जिनमार्ग का उद्योत करनेवाले चार अनुयोग का उपदेश देने लगे।

मुनिराज ने कहा - इस संसार सागर में कर्म के योग में भ्रमण करते यह जीव

www.vitragvani.com

महाकष्ट से मोक्षमार्ग को प्राप्त होता है। संध्या के वर्ण (लालिमा) के समान संसार का ठाठ विनाशीक है, बिजली की चमकार तथा इन्द्रधनुषवत् जगत का चरित्र क्षणभंगुर और नि:सार है।

नरक, तिर्यन्वगति तो दु:खरूप है ही और देव, मनुष्यगति में यह जीव भ्रमवश सुख मानता है, परन्तु वह सुख नहीं है, दु:ख ही है। जिससे तृप्ति न हो, वह दु:ख ही है। जो माहेन्द्र स्वर्ग के भोगों से तृप्त नहीं हुआ, वह इस मनुष्यभव के तुच्छ भोगों से तृप्त कैसे होगा? यह मनुष्यभव, भोग के योग्य नहीं, वैराग्य के योग है।

मुनिराज के वचन सुनकर राजा श्रीचन्द को विषयानुभव के सुख से वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह अपने ध्वजकीर्ति पुत्र को राज्य देकर समाधिगुप्त मुनिराज के समीप मुनि हो गया। महातपस्वी, महागुणोत्तम श्रीचन्दमुनि कर्मपिंजर को जर्जरित करके काल पाकर पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग में इन्द्र हुए तथा लक्ष्मी, कीर्ति, प्रताप के धारक देवों के चूड़ामणी, त्रिलोक प्रसिद्ध परमऋद्धि से युक्त महासुख भोगने लगे। मुनिराज श्रीचन्द का जीव भी ब्रह्मेन्द्र स्वर्ग के सुख भोगकर वहाँ से आकर रामचन्द्र हुए हैं।

इस प्रकार (१) धनदत्त का जीव (२) प्रथम स्वर्ग में देव (३) पद्मरुचि सेठ (४) दूसरे स्वर्ग में देव (५) नयनानन्द राजा (६) चौथे स्वर्ग में देव (७) श्रीचन्द राजा (८) ब्रह्मेन्द्र और नौवें भव में रामचन्द्र हुए हैं। हे लंकेश्वर (विभीषण)! अब आगे श्रीराम इसी भव से मोक्ष प्राप्त करेंगे, पुन: संसार भ्रमण नहीं।

❖ ❖ ❖

कर्मों की विचित्रतावश मृणालकुण्ड नगर के राजा वज्रकुम्बक की रानी हेमवती के पृथ्वी प्रसिद्ध शम्भू नाम का पुत्र हुआ वह श्रीकान्त का जीव, होनहार रावण है। वसुदत्त का जीव, उसी राजा का श्रीभूति पुरोहित हुआ, वह होनहार लक्ष्मण है। वह महाजिनधर्मी, सम्यग्दृष्टि है और उसकी स्त्री सरस्वती से वेदवती नाम की पुत्री हुई, वह गुणवती का जीव, होनहार सीता है।

पूर्व में गुणवती के भव से सम्यक्त्व के बिना अनेक तिर्यन्च योनियों में भ्रमण करके साधुओं की निन्दा के दोष से गंगा तट पर हथिनी हुई, एक दिन कीचड़ में फँसीं और शरीर

www.vitragvani.com

पराधीन हो गया, नैत्र चकल-विकल हुए और मन्द-मन्द श्वाँस ले रही थी, उस समय एक तरंगवेश नाम के महादयावान विद्याधर ने उसके कान में णमोकार मंत्र दिया। उसके प्रभाव से कषाय मन्द हुई और विद्याधर ने व्रत दिये; अत: जिनधर्म के प्रसाद से श्रीभूति पुरोहित की (लक्ष्मण के जीव की) पुत्री वेदवती हुई।

एक दिन मुनिराज आहार के लिये पधारे, तब वह हँसने लगी। पुत्री की इस चेष्टा से खिन्न पिता ने उसे रोका और वह शान्तचित्त हो गई। कन्या रूपवती थी, अत: अनेक राजकुमार उससे विवाह की अभिलाष रखते थे। राजा वज्रकुम्बक का पुत्र शम्भू, जो होनहार रावण, वह भी विशेष अनुरागी हुआ। पुरोहित श्रीभूति जिनधर्मी था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि मिथ्यादृष्टि कुबेर के समान धनवान होने पर भी मैं उसे अपनी पुत्री नहीं दूँगा। इस कारण शम्भूकुमार ने रात्रि में पुरोहित को मार दिया।

पुरोहित जिनधर्म के प्रसाद से स्वर्ग में देव हुआ। साक्षात् देवी समान वेदवती शम्भू को चाहती नहीं थी, तथापि वह पापी बलजोरी से उससे विवाह करने को उद्यमी हुआ। वेदवती को उसके प्रति किंचित् अभिलाषा नहीं थी, तब काम से प्रज्ज्वलित चित्त पापी शम्भू ने बलजोरी से वेदवती के साथ मैथुन सेवन किया। इससे विरक्त हृदय, कंपायमान शरीर से अग्नि की शिखा समान प्रज्ज्वलित कन्या, अपने शीलघात से और पिता के मरण से परम दु:ख के धारण करती हुई, लाल नेत्र करके महाक्रोधपूर्वक कहने लगी – 'अरे पापी! तूने मेरे पिता को मारा, मुझ कुँवारी के साथ बलात्कारपूर्वक विषय सेवन किया; अत: हे नीच! मैं तेरे नाश का कारण बनूँगी। तूने मेरे पिता को मारकर महान अनर्थ किया है। मैं अपने पिता के मनोरथ का कभी उल्लंघन नहीं करूँगी। मिथ्यादृष्टि का सेवन करने की अपेक्षा तो मरण श्रेष्ठ है।' ऐसा कहकर श्रीभूति पुरोहित की कन्या वेदवती, हरिकान्ता आर्यिका के समीप जाकर आर्यिका के व्रत धारण करके घोर तप करने लगी। उसने केशलोंच करके महातप द्वारा रुधिर, माँस को सुखा दिया, उसके अस्थि और नसें प्रगट दिखने लगी। अन्त में समाधिमरण करके वह पाँचवे स्वर्ग में उत्पन्न हुई और वहाँ पुण्योदय से स्वर्ग के सुखों को भोगने लगी।

❖ ❖ ❖

www.vitragvani.com

वेदवती का जीव स्वर्ग से चयकर चक्रपुर नगर के चक्रध्वज राजा की चित्तोत्सवा नाम की पुत्री हुई। वह कन्या पाठशाला में पढ़ती थी, वहाँ एक ब्राह्मण पुत्र पिंगल भी पढ़ता था, उसके साथ चित्तोत्सवा का मन मिल गया – इस कारण पिंगल को विद्या सिद्ध नहीं हुई। सत्य है, जिसका मन कामबाण से बिध जाता है, उसको विद्या और धर्म की प्राप्ति नहीं होती।

जैसे अपयश, कीर्ति को हर लेता है, उसी प्रकार पापी पिंगल, चित्तोत्सवा को हरकर विद्ग्धनगर में गया और धन रहित होने से नगर के बाहर कुटी बनाकर रहने लगा। ज्ञान–विज्ञान रहित होने से लकड़ियां काटकर उन्हें बेचकर आजीविका चलाने लगा।

एक समय वहाँ का राजा कुण्डलमंडित, चित्तोत्सवा को देखकर काम से मोहित हो गया और दासी को भेजकर चित्तोत्सवा को अपने यहाँ रखकर अपनी रानी बना लिया। जब पिंगल लकड़ी काट कर घर आया, तब वहाँ अपनी प्रिया को नहीं देखा, इस कारण राजा के यहाँ फरियाद करने गया कि कोई मेरी स्त्री को चुराकर ले गया है। राजा ने नौकर को संकेत करके समझाकर पिंगल को बाहर निकाल दिया। पिंगल अपनी स्त्री के वियोग से अति दु:खी हुआ। एक बार मुनिराज का समागम होने पर उनके उपदेश से उसका मन शान्त हुआ और वह दीक्षा लेकर मुनि हो गया और मरकर भवनवासी देव हो हुआ।

कुण्डलमंडित अन्याय मार्ग से राज्यभ्रष्ट हुआ। एक बार मुनिराज का समागम होने पर उनके उपदेश से उसने माँसादि का त्याग किया और अन्त समय रोग की व्याधि से मरण प्राप्त करके राजा जनक की रानी विदेहा के गर्भ में आया और उसी समय चित्तोत्सवा का जीव, जो वेदवती हुई थी वह (सीता का जीव) तप के प्रभाव से जनक की रानी विदेहा के गर्भ में आई वह सीता का जीव और कुण्डलमंडित का जीव भामण्डल – दोनों बहिन–भाई के रूप में विदेहा के यहाँ उत्पन्न हुए।

❖ ❖ ❖

शम्भूकुमार अनीति के योग में संसार में अत्यन्त निन्दनीय हुआ। धन, परिवार और सेवकों से रहित होकर उन्मत्त हो गया। जिनधर्म से पराङ्मुख, साधुओं की हँसी–निन्दा करता, माँस, मद्य का आहारी, पाप क्रिया में उद्यमी वह आशुभोदय से नरक–तिर्यञ्च

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

गतियों में महादु:ख भोगने लगा। कालवश किंचित् पापकर्म के उपशम से क्रशध्वज ब्राह्मण की सावित्री नाम की स्त्री का प्रभासकुंद नाम का (होनहार रावण) पुत्र हुआ।

प्रभासकुंद ने दुर्लभ जिनधर्म का उपदेश पाकर विचित्रनिधि के पास दीक्षा अंगीकार कर ली और काम, क्रोध, मद, मत्सर, आरम्भ रहित हुआ। निर्विकार तप करके दयावान, निस्पृही, जितेन्द्रिय पक्षोपवास, मासोपवास करने लगा। जहाँ सूर्यास्त हो, वहीं निर्जन वन में रहता। मूलगुण, परीषहादि का पालन करता और इस प्रकार उत्तम क्रिया युक्त वे प्रभासकुंद मुनि सम्मेदशिखर की वन्दना के लिये गये। जिसका चिंतवन करने से पापों का क्षय होता है – ऐसे निर्वाणक्षेत्र में आकाश में एक कनकप्रभ विद्याधर की विभूति देखकर निदान किया कि यदि जिनधर्म के तप और माहात्म्य सत्य है तो मैं भी ऐसी विभूति पाऊँ।

देखो, जीवों की मूढ़ता! तीन लोक में भी जिसका मूल्य नहीं – ऐसे अमूल्य तप रूपी रत्न को भोगरूपी मुट्ठी भर सब्जी के लिये बेच दिया। कर्म के प्रभाव से जीवों की विपरीत बुद्धि होती है। निदान से दु:खित वह विषम तप करके तीसरे स्वर्ग में देव हुआ। भोगासक्त चित्त वह वहाँ से चयकर राजा रत्नप्रभ की रानी कैकसी के रावण नाम का पुत्र हुआ और उसने लोक में महाविभूति को प्राप्त किया।

वसुदत्त का जीव अनुक्रम से लक्ष्मीरूप बेल को लिपटा लेने के लिये वृक्षरूपी वासुदेव हुआ। उसके भव- (१) वसुदत्त (२) मृग (३) सूकर (४) हाथी (५) पाड़ा (६) बैल (७) वानर (८) चीता (९) शियाल (१०) घेंटू (११) जलचर-स्थलचर के अनेक भव (१२) श्रीभूति पुरोहित (१३) देवराज (१४) पुनर्वसु विद्याधर (१५) तीसरे स्वर्ग में देव (१६) वासुदेव लक्ष्मण (१७) मेघा-नरक (१८) कुटुम्बी-पुत्र (१९) देव (२०) वणिक (२१) भोगभूमि (२२) देव (२३) चक्रवर्ती का पुत्र (२४) कितने ही उत्तम भवों का धारी पुष्करार्द्ध विदेहक्षेत्र में तीर्थंकर और चक्रवर्ती-दो पद का धारक होकर मोक्ष प्राप्त होगा।

जानकी के भव- (१) गुणवती (२) मृगी (३) सूकरी (४) हथिनी (५) भैंस (६) गाय (७) बन्दरी (८) चीती (९) शिलालनी (१०) घेंटी (११) जलचर-स्थलचर के अनेक भव (१२) वेदवती (१३) देवी अमृतमती-पाँचवा स्वर्ग

www.vitragvani.com

(१४) चितोत्सवा (१५) बलदेव की पटरानी सीता (१६) सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र (१७) चक्रवर्ती (१८) अहमिन्द्र (१९) रावण का जीव तीर्थंकर होगा, उसका प्रथम गणधरदेव होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

❖ ❖ ❖

रावण ने सकल पृथ्वी वश की, एक अंगुल प्रमाणभूमि आज्ञारहित नहीं रही। गुणवती का भाई गुणवान था, वही चितोत्सवा का पति कुण्डलमंडित करकर सीता (चितोत्सवा) का भाई भामण्डल हुआ। यह बलि ब्राह्मण का जीव तू विभीषण हुआ और बैल के भव में णमोकार मन्त्र के प्रभाव से देव-नर का भवधारी यह सुग्रीव हुआ। भामण्डल, सुग्रीव और तू (विभीषण) पूर्व भव की प्रीति और पुण्य के प्रभाव से महा पुण्याधिकारी श्रीराम के अनुसारी हुए।

यह कथा सुनकर विभीषण ने वाली के भव पूछे। केवली ने कहा- हे विभीषण! राग-द्वेषादि के दु:ख के समूह से भरा हुआ यह चतुर्गतिमय संसार सागर है। इसमें एक वृन्दावन में एक कलियार मृग, स्वाध्याय करते हुए एक साधु के शब्दों को अन्त समय में सुनकर, ऐरावतक्षेत्र में दित नगर में वहित नाम के सम्यग्दृष्टि मनुष्य की शिवमती नाम की स्त्री का मेघदत्त पुत्र हुआ। वह जिन पूजा में उद्यमी, जिनराज का भक्त, अणुव्रत का धारक, समाधिमरण करके दूसरे सवर्ग में देव हुआ। वहाँ से चयकर जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह की विजयावतीपुरी के समीप मतकोकिल ग्राम के स्वामी कान्तीशोक की रत्नांगिनी स्त्री का महासुन्दर शुभाचारी स्वत्प्रभ नाम का पुत्र हुआ।

जिनधर्म निपुण उसने संयत नाम का मुनि होकर हजारों वर्षों पर्यन्त विधिपूर्वक अनेक विद्य तप महानिर्मल चित्त से किया। तप के प्रभाव से अनेक ऋद्धियाँ प्रगट होने पर भी गर्वरहित रहा। संयोग के सम्बन्ध में ममता को तजकर, उपशमश्रेणी आरोहणकर शुक्लध्यान के प्रथम भाग में मृत्यु को प्राप्त कर सर्वार्थसिद्धि में गया। वहाँ तैंतीस सागर तक अहमिन्द्र का सुख भोगकर राजा सूर्यरथ का वाली नाम का पुत्र हुआ।

वाली विद्याधरों का अधिपति, किहकिंधापुर का स्वामी, सुग्रीव का भाई, महागुणवान था। उसने जब रावण चढ़ आया, तब जीवदया के अर्थ युद्ध नहीं किया और सुग्रीव को

www.vitragvani.com

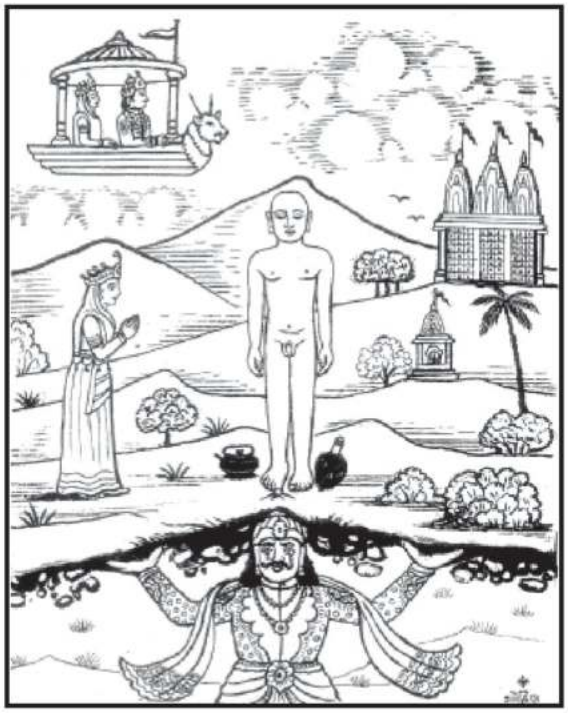

राज्य देकर दिगम्बर मुनि हो गया। जब वे (वाली मुनि) कैलाशपर्वत पर ध्यान कर रहे थे, उस समय रावण वहाँ से निकला, उन्हें देखकर रावण ने क्रोध करके कैलाशपर्वत को उठाने का उद्यम किया। वाली मुनि ने चैत्यालय का भंग न हो- ऐसी भक्ति से धीरे से अंगूठे द्वारा भूमि को दबाया, जिससे रावण कैलाश के नीचे दबने लगा। तब उसकी रानी मंदोधरी ने साधु की स्तुति करके अभयदान दिलाया। रावण ने वाली मुनि की पूजा-भक्ति की और अपने स्थान को गया। वाली महामुनि ने गुरु के समक्ष प्रायश्चित नामक तप लेकर दोष का निराकरण करके क्षपकश्रेणी चढ़कर कर्मों को भस्म किया और लोकशिखर पर सिद्धालय में विराजमान हुए-निज स्वभाव को प्राप्त हुए।

❖ ❖ ❖

वसुदत्त (लक्ष्मण के जीव) और श्रीकान्त (रावण का जीव) के गुणवती के कारण महाबैर उत्पन्न हुआ था, इससे वे अनेक भवों में लड़कर मृत्यु को प्राप्त हुए। गुणवती से और वेदवती से रावण के जीव की अभिलाषा उत्पन्न हुई थी - इस कारण रावण ने सीता का हरण किया और वेदवती का पिता श्रीभूति उत्तम सम्यग्दृष्टि ब्राह्मण को वेदवती के लिये शत्रु ने (रावण के जीव ने लक्ष्मण के जीव को) मारा, वह स्वर्ग में जाकर वहाँ से चयकर प्रतिष्ठित नगर में पुनर्वसु विद्याधर हुआ। वह निदानसहित तप करके तीसरे स्वर्ग में देव होकर श्रीराम का महास्नेहवन्त भ्राता लक्ष्मण वासुदेव हुआ और पूर्व वैर से रावण को मारा। वेदवती के साथ शम्भूकुमार ने बलजोरी से मैथुन सेवन करके शीलभ्रष्ट किया था; इस कारण सीता, रावण के नाश का कारण बनी। जो जिसको मारता है, वह उसके द्वारा मारा जाता है।

www.vitragvani.com

तीन खण्ड की लक्ष्मीरूपी रात्रि का चन्द्रमा रावण, उसको मारकर लक्ष्मण सागरान्त पृथ्वी का अधिपति बना। रावण के समान शूरवीर पराक्रमी इस प्रकार मारा जाये – यह कर्मों का दोष है। दुर्बल से सबल बने, सबल से दुर्बल बने और घातक हो वह मरे, मारा गया हो, वह घातक बने – यही संसारी जीवों की गति है। जीव, कर्मों की चेष्टा से कभी स्वर्ग में सुख तो कभी नरक में दु:ख पाता है। जैसे कोई महास्वादिष्ट भोजन में विष मिलाकर उसको दूषित करे; इसी प्रकार मूढ़ जीव उग्र तप को भोग-विलास द्वारा दूषित करता है। जैसे कोई विष वृक्ष को अमृत से सींचे, भस्म के लिये रत्नों की राशि को जलावे और कोयले के लिये चन्दन के वृक्ष को दग्ध करे; उसी प्रकार अज्ञानी जीव, निदानबन्ध करके तप को दूषित करता है।

इस संसार में स्त्री समस्त दोषों की खान है। अज्ञानी उसके लिये क्या कुकर्म नहीं करता? इस जीव ने जो कर्म उपार्जित किये हैं, वे अवश्य ही फल प्रदान करते हैं। उन्हें अन्यथा करने में कोई समर्थ नहीं है। जो जीव, धर्म में प्रीति नहीं करके अधर्म का उपार्जन करता है, वह कुगति को प्राप्त करता है। उसकी भूल के लिये कोई क्या कहें? जो साधु होकर मद-मत्सर धारण करता है, उसको उग्र तप से भी मुक्ति नहीं होती।

जिसको शान्तभाव नहीं है, संयम नहीं है, तप नहीं है – उस दुर्जन मिथ्यादृष्टि के संसार सागर तिरने का क्या उपाय है? जिस प्रचण्ड पवन से मदोन्मत्त गजराज उड़ जाता है, उससे सरसों उड़ जाए – इसमें क्या आश्चर्य है? उसी प्रकार जिस संसार की झूठी माया में चक्रवर्ती आदि महापुरुष भ्रमित हो जाते हैं तो अन्य मनुष्यों की क्या बात है? इस जगत में वैरभाव परम दु:ख का कारण है, उसे विवेकी नहीं करता। जिसको आत्म-कल्याण की भावना है, वह कदापि पापकारी बोली नहीं बोलता।

(सीता के जीव ने) गुणवती के भव में मुनिराज का अपवाद किया था और वेदवती के भव में एक मण्डलिका ग्राम में सुदर्शन नामक मुनिराज वन में आये थे, लोग उनकी वन्दना करके गाँव में गये, तब मुनि की बहिन सुदर्शना नाम की आर्यिका, मुनि के समीप बैठी धर्मश्रवण कर रही थी। यह देख वेदवती ने गाँव के लोगों से मुनि की निन्दा करते हुए कहा – 'मैंने मुनि को अकेली स्त्री के समीप के बैठे देखा है।' तब कितने ही

www.vitragvani.com

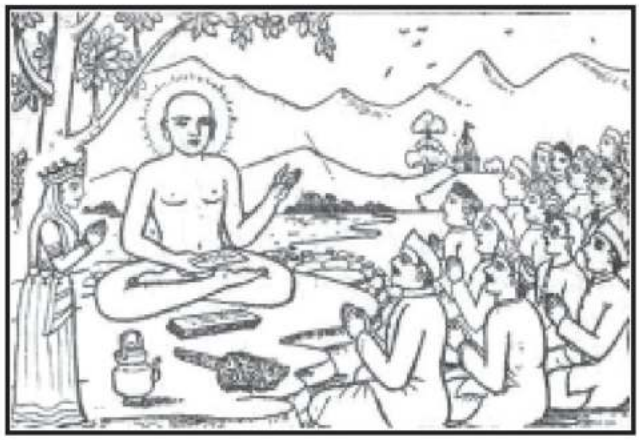

लोगों ने इस बात को माना और कितने ही बुद्धिमानों ने नहीं माना, परन्तु गाँव में मुनि का अपवाद हुआ। इस कारण मुनिराज ने नियम लिया कि यह मिथ्या अपवाद दूर होगा तो आहार के लिये निकलूँगा, अन्यथा नहीं। तब नगर के देवता ने वेदवती के मुख से समस्त नगरजनों को कहलवाया कि 'मैंने मिथ्या अपवाद किया है, वे तो भाई-बहिन हैं।' और वेदवती ने मुनि के पास जाकर क्षमायाचना की कि 'हे प्रभु! मुझ पापिन द्वारा कहे गये मिथ्या वचनों को क्षमा करो।'

इस प्रकार मुनि निन्दा के दोष से सीता का मिथ्या अपवाद हुआ और उसने मुनि के समीप क्षमा-याचना की थी, इसलिए उसका अपवाद दूर हुआ। इस कारण जो जिनमार्गी हैं, वे कभी भी परनिन्दा नहीं करते। ज्ञानी तो किसी में सच्चे दोष हों तो भी उन्हें द्वेषभाव से नहीं कहते। यदि कोई कहता हो तो उससे मना करते हैं और सर्वथा प्रकार से पर दोष को ढाँकते हैं। जो कोई परनिन्दा करता है, वह अनन्त काल तक संसारवन में दु:ख भोगता है। सम्यग्दर्शन रत्न का यह महा गुण है कि वह पराये दोषों को ढँकता है। जो पराये सच्चे दोषों को भी द्वेषभावना से कहता है, वह अपराधी है। जो अज्ञान और मत्सरभाव से पराये मिथ्या दोषों को प्रकाशित करता है, उसके समान अन्य कोई पापी नहीं है। अत: अपने दोषों को गुरु के समीप प्रकाशित करना और पर के दोषों को ढाँकना। जो पराई निन्दा करता है, वह जिनमार्ग से पराङ्मुख है।

❖ ❖ ❖

केवली के ये अद्भुत वचन सुनकर सुर, असुर, मनुष्य सब आनन्दित हुए। मुनि तो सर्व जीवों से निर्वैर हैं, इसलिए वे तो अधिक शुद्धभावों को धारण करने लगे। चतुर्निकाय के समस्त देव क्षमाभाव को प्राप्त करके वैरभाव त्यागने लगे। अनेक राजा

www.vitragvani.com

प्रतिबद्ध होकर शान्तभाव धारण करके गर्व के भाव को तजकर मुनि या श्रावक हुए। जो मिथ्यात्वी थे, वे भी सम्यक्त्व को प्राप्त हुए। इस प्रकार सभी जीव जगत की माया को धिक्कारने लगे और केवली को मस्तक झुकाकर प्रणाम करके सभी देव, मनुष्य, विभीषण की प्रशंसा करने लगे कि आपके कारण हमने भी महापुरुषों का चरित्र सुना। आपको धन्य है और अन्त में सुरेन्द्र, नरेन्द्र सब परिवार आनन्दपूर्वक सर्वज्ञदेव की स्तुति करने लगे–

'हे भगवान पुरुषोत्तम! यह समस्त तीन लोक आपसे शोभयमान है; इस कारण आपका सकलभूषण नाम सत्यार्थ है। आपकी केवलज्ञानमयी निज विभूति सर्व जगत की विभूति को जीतकर शोभायमान है। आपकी यह अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी सर्वलोक का तिलक है। इस जगत के जीव अनादि काल से कर्मवश हो रहे हैं, महादु:ख के सागर में पड़े हैं। आप दीनानाथ, दीनबन्धु, करुणानिधान हो; जीवों को जिनराज पद प्रदान करो।

हे सर्वज्ञदेव! हम भव वन के मृग जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, वियोग, व्याधि आदि अनेक प्रकार के दु:ख भोगते हुए अशुभकर्मरूपी जाल में पड़े हैं, इससे छूटना अति कठिन है। आप ही इससे छुड़ाने में समर्थ हो। हमको निज बोध प्रदान करो, जिससे कर्मों का क्षय हो। हे नाथ! इस विषय–वासनारूपी गहन वन में हम शिवपुरी का मार्ग भूल रहे हैं; हे जगत दीपक! आप हमको शिवपुरी का मार्ग दर्शाओ। आप आत्मबोधरूपी शान्तरस के तृषातुर के लिये तृषाहारी सरोवर हो। आप कर्मरूपी वन को भस्म करने के लिये साक्षात दावानल हो। विकल्पजालरूपी बर्फ से कंपायमान जगत की शीत व्यथा को हरने के लिये आप साक्षात् सूर्य हो। हे सर्वेश्वर! हे सर्व भूतेश्वर! हे जिनेश्वर! जब आपकी स्तुति करने में चार ज्ञान के धारक गणधर देव भी समर्थ नहीं हैं तो हम कौन? हे प्रभो! हम निज हित के लिये बारम्बार आपको नमस्कार करते हैं।'

–पद्मपुराण में से संक्षिप्त सार

14 काम विजयी : सेठ सुदर्शन

बहुत समय पूर्व अंगदेश की चम्पानगरी में राजा गजवाहन राज्य करता था। वह अत्यन्त सुन्दर और बहादुर था। उसने अपने समस्त शत्रुओं को पराजित कर अपना राज्य निष्कंटक बना लिया था। राजा गजवाहन की राजधानी में एक वृषभदत्त नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम अर्हदासी था। वह शीलवती थी। सेठ को अपनी सहधर्मिणी के प्रति अत्यन्त प्रेम था। इस प्रकार दोनों का दाम्पत्य जीवन आनन्द से व्यतीत हो रहा था।

सेठ के यहाँ एक सुभग ग्वाला नौकर था। एक दिन एक ऐसी घटना घटित हुई, जिससे उस ग्वाले के जीवन में महान परिवर्तन आ गया। घटना यह थी कि ग्वाला जंगल से अपने घर आ रहा था, उसने मार्ग में शिला के ऊपर एक मुनिराज को ध्यानस्थ देखा। दिन अस्त होने का समय हो रहा था और सर्दी के दिन थे। ग्वाले ने विचार किया कि सर्दी के दिनों में शिला

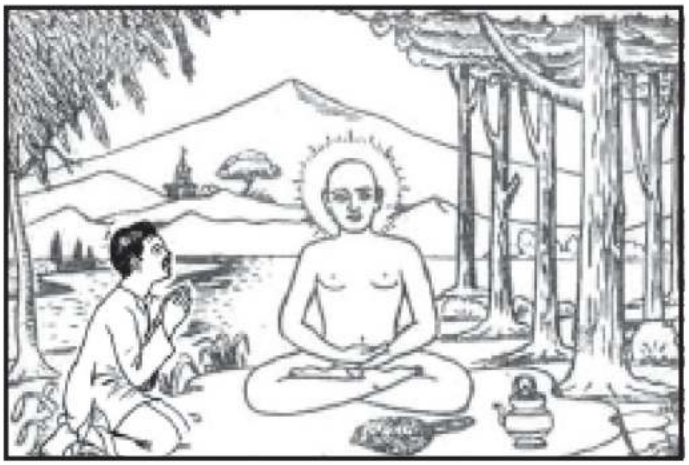

के ऊपर एक भी वस्त्र के बिना मुनिराज रात्रि किस प्रकार व्यतीत करेंगे ? दयाभाव से प्रेरित होकर वह अपने घर गया और अपनी पत्नी से मुनिराज का समस्त वृतान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् ग्वाला, मुनिराज के समीप गया। उसने देखा कि मुनिराज का सम्पूर्ण शरीर सर्दी में ओस से भीग रहा था, परन्तु मुनिराज उसी शिला पर अन्तर्लीन होकर ध्यान में

www.vitragvani.com

विराजमान थे। उस ग्वाले ने भक्तिभाव से प्रेरित होकर ओंस से भीगे हुए उनके शरीर को वस्त्र से साफ किया। इस प्रकार ग्वाले ने सम्पूर्ण रात्रि मुनिराज की सेवा में व्यतीत की। प्रभात होते ही मुनिराज ध्यान में से बाहर आये। मुनिराज ने ग्वाले को भक्तिभाव से सेवा में रत्त देखकर पवित्र पंच नमस्कार मंत्र दिया। जिसे प्राप्त करके मनुष्य स्वर्ग-मोक्ष के समस्त सुखों को प्राप्त करता है। मुनिराज भी मंत्रोच्चार करते हुए आकाशमार्ग से विहार कर गये।

❖ ❖ ❖

वह ग्वाला निरन्तर णमोकार मंत्र का स्मरण करने लगा; सोते-जागते, उठते-बैठते णमोकार मंत्र का जाप करने लगा। वह किसी भी कार्य का प्रारम्भ करने से पूर्व पवित्र मंत्र की आराधना करता। इस प्रकार वह मंत्र उसके रोम-रोम में समा गया।

एक दिन सेठ वृषभदत्त ने ग्वाले को मंत्र बोलते सुन लिया। मंत्र प्राप्ति के विषय में सेठजी ग्वाले से पूछने लगे। ग्वाले ने मुनिराज से मंत्र प्राप्ति का सम्पूर्ण वृतान्त उन्हें कह सुनाया। सेठ वृषभदत्त ने प्रसन्न होकर कहा - तेरा जीवन धन्य है। तेरा अहोभाग्य है कि तुझे उन मुनिराज के दर्शन हुए, जिनकी पूजा त्रिभुवन में होती है।

❖ ❖ ❖

एक दिन की बात है, उस ग्वाले की गायें नदी पार करने लगी, ग्वाला भी पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण करके नदी में कूद पड़ा। वर्षा के कारण नदी भरपूर जल से भरी थी। दुर्भाग्य कहो या संयोग, उसके नदी में कूदते ही एक अणिदार (नुकीली) लकड़ी ग्वाले के पेट में घुस गई, जिससे उसका पेट फट गया और उसकी मृत्यु हो गई। पवित्र मंत्र के प्रभाव से वह स्वर्ग में जाता, परन्तु उसने अपने मन में सेठ वृषभदत्त का पुत्र होने की इच्छा की थी, फलस्वरूप वह ग्वाला मरकर सेठ के यहाँ पुत्र हुआ। जिसके होने पर सेट वृषभदत्त की बहुत उन्नति हुई। उसकी प्रतिष्ठा, धन, वैभव और सम्पत्ति में बहुत वृद्धि हुई। सेठ ने उसका नाम सुदर्शन रखा।

कुछ समय बाद सुदर्शन युवा होने लगा। उसी नगरी में सागरदत्त नाम का सेठ रहता था। उसकी धर्मपत्नी का नाम सागरसेना था। उनकी मनोरमा नाम की सुन्दर पुत्री थी।

www.vitragvani.com

उसके साथ सुदर्शन का विवाह हो गया। अब सुदर्शन ने गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया। वह युगल जोड़ी आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगी।

एक दिन सेठ वृषभदत्त, समाधिगुप्त नामक मुनिराज के दर्शन करने के लिये गया। उसने मुनिराज से धर्मोपदेश की याचना की। अकारण करुणा सागर मुनिराज ने धर्मामृत-वर्षा करते हुए कहा - हे भव्य! इस जगत में एकमात्र निज शुद्धात्मा ही आराध्य है। पुण्योदय से प्राप्त बाह्य संयोग तो अचेतन पुद्गलपिण्ड हैं; नि:सार है। वे मूर्ख हैं जो जड़ सम्पत्ति के व्यामोह में पड़कर निज चैतन्य निधि को विस्मृत कर देते हैं। भाई! चेतो!! आत्मसाधना का यह पवित्र अवसर है।

सेठ वृषभदत्त मुनिराज के उपदेश से इतना प्रभावित हुआ कि समस्त धन, वैभव, परिग्रह को छोड़कर जिन दीक्षा अंगीकार कर तपस्वी हो गया। अब सुदर्शन पर घर-गृहस्थी और परिवार का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व आ पड़ा। सुदर्शन की प्रसिद्धि होने लगी। राज-दरबार, सर्व साधारण सभी उसे बहुत चाहने लगे। सुदर्शन भी कुशलतापूर्वक सर्व सांसारिक कार्यों का निर्वहन करने के साथ ही जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में अपना अधिकांश समय व्यतीत करने लगा। अब उसकी गिनती धार्मिक पुरुषों में होने लगी। सभी उसके सदाचार, श्रावकव्रत, तथा दान, पूजादि कार्यों की प्रशंसा करने लगे। वह भी ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करता था, इससे राज दरबार में भी उसकी प्रशंसा होने लगी। मगधापति उसे बहुत सम्मान देते थे।

सुदर्शन के कपिल नाम का एक ब्राह्मण मित्र था और वह राजा दतिवाहन (राजवाहन) का पुरोहित था। उसकी पत्नी का नाम कपिला था। वह सुदर्शन के रूप-गुण पर मोहित थी। एक दिन कपिला ने षडयन्त्र रचकर अपनी दासी को सुदर्शन के पास भेजा और कहलवाया कि तुम्हारे अभिन्न हृदय (मित्र) कपिल ने विशेषरूप से घर मिलने के लिये बुलाया है।

www.vitragvani.com

दासी के कहने से सुदर्शन कपिल के घर गया। कपिला ने कहा कि कपिल तो बाहर गया है, परन्तु मेरी बात सुनो! मैं तुम्हारे रूप-गुण पर मोहित हूँ, इसलिए मेरा मनोरथ पूर्ण करो! यदि तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं करोगे तो मैं तुम्हें अभी ही मरवा दूँगी। ऐसा कहकर वह मूर्खा सुदर्शन से आलिंगनादि करने लगी।

कपिला की ऐसी कुचेष्टा देखकर सेठ सुदर्शन उससे कहने लगा – हे देवी! क्या तुम्हें पता नहीं है कि मैं नपुंसक हूँ? यह सुनकर कपिला उससे विरक्त हुई और उसे घर जाने दिया।

❖ ❖ ❖

एक दिन महाराज, सुदर्शन के साथ बगीचे में घूम रहे थे। उस समय महाराज गजवाहन की रानी भी साथ थीं। सेठ सुदर्शन का रूप-सौन्दर्य देखकर रानी उस पर मोहित हो गई। उसने अपनी दासी के द्वारा सेठ सुदर्शन की परख की। दासी ने हाथ जोड़कर कहा- महारानी! वह हमारी नगरी के प्रधान सेठ का पुत्र है, उसका नाम सुदर्शन है। रानी ने कहा कि यह तो बहुत आनन्द की बात है कि सुदर्शन राज्यरत्न है परन्तु उसका सौन्दर्य अपूर्व है। मैंने आज तक ऐसा सुन्दर पुरुष नहीं देखा है। उसे देखते ही मेरा मन आकर्षित हो गया है। मुझे भ्रम है कि स्वर्ग का देव भी इतना सुन्दर होगा क्या? अच्छा, तू ही कह कि सेठ कैसा लगता है? क्या तूने उसके जैसा दूसरा सुन्दर पुरुष देखा है?

दासी ने कहा – महारानी जी! तुम्हारा अनुमान सत्य है। पृथ्वी पर तो क्या, सम्पूर्ण त्रिभुवन में भी उसके समान सुन्दर युवक मिलने वाला नहीं है। वह सचमुच ही सुन्दर पुरुषों का सिरताज है।

रानी ने दासी को अपने अनुकूल जानकर कहा – हे दासी! तू मेरा एक काम कर सकेगी? सत्य मान, मैं तुझे अपनी अन्तरंग दासी मानकर कहती हूँ, ध्यान रहे यह बात किसी के सामने प्रकट न हो जाए।

दासी ने कहा – मैं तो आपकी दासी हूँ, क्या आज्ञा है, कहो? मैं कार्य पूरा करने के लिये तैयार हूँ।

रानी ने कहा – तू सत्य कहती है कि यह कार्य कर सकेगी।

www.vitragvani.com

दासी ने सोचकर कहा – महारानीजी! आप मुझ पर विश्वास रखो। मुझसे जहाँ तक बनेगा मैं आज्ञा का पालन करूँगी।

तब रानी अपनी भावी आशा पर फूली नहीं समाई और वह भविष्य की सुन्दर कल्पनाएँ करने लगी। तत्पश्चात् रानी व्यग्रता प्रकट करने लगी कि मैं उस नवयुवक पर तन-मन से मोहित हूँ। जब से मैंने उसे देखा है, तभी से वह मेरी नजरों में समा गया है। मेरा हृदय उस पर न्योंछावर हो रहा है। बस, तू ऐसा प्रयत्न कर कि वह सुन्दर सेठ मेरे पास आवे, अन्यथा मेरा जीवन व्यर्थ है। ध्यान रहे, यह गुप्त बात तेरे सिवाय अन्य कोई नहीं जान पाये अन्यथा.... कहकर रानी चुप हो गई।

दासी फूलकर कुप्पा हो गई। उसने विचार किया कि अब मेरा भाग्य भी चमक जाएगा। मैं मालामाल हो जाऊँगी। काम से पीड़ित रानी मेरे चंगुल में फँस गई है। ऐसा विचारकर वह रानी से कहने लगी लगी –आप इतनी छोटी सी बात के लिये क्यों परेशान होती हो? बात ही बात में मैं आपके दिल के अरमान पूरे कर दूँगी। संसार में ऐसी कौनसी वस्तु है जो आपको नहीं मिल सकती? आप विश्वास रखो, घबराओ नहीं। आपके मन की मुराद अवश्य पूर्ण होगी और शीघ्र ही होगी।

❖ ❖ ❖

इस समस्त दुष्चक्र से अनजान सेठ सुदर्शन ने श्रावक के व्रत धारण किये थे। वह संसार में रहता हुआ भी उससे मुक्त होना चाहता था; इस कारण कभी ध्यान में लीन हो जाता था। वह अष्टमी तथा चौदस को श्मशान भूमि में जाता था। रात्रि के समय वह श्मशान में जाता और ध्यानमग्न हो जाता था। इधर रानी की दासी तो सुदर्शन से एकान्त में मिलने का मौका ढूँढ़ रही थी, वह मौका उसे मिल गया। सबसे पहले उसने चौकीदारों पर रौब जताने के लिये एक षड़यन्त्र रचा। उसने कुम्हार से मनुष्य के आकार की एक विशाल मूर्ति बनवाई। एक दिन वह उस मूर्ति को महल में ले जाने लगी, जब चौकीदार ने उसे अन्दर नहीं जाने दिया तो दासी ने गुस्से में आकर मूर्ति फेंक दी, जिससे मिट्टी की वह मूर्ति टूट गई। अब दासी क्रोधपूर्ण कठोर शब्दों में कहने लगी – दुष्टों! तुमको पता नहीं है कि महारानी जी ने नरव्रत धारण किया है, जिसमें नर के समान मिट्टी के पुतले की आवश्यकता

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

होती है, मैं उसे ले जा रही थी, परन्तु तुमने उसे तोड़ दिया। अब महारानीजी का व्रत किस प्रकार पूरा होगा ? रानी भोजन के बिना रहेंगी। मैं अभी जाकर तुम्हारी शिकायत करती हूँ। तुम्हें दण्डित कराकर तुम्हारे दुष्कर्मों का फल चखाती हूँ।

चौकीदार भयभीत हो गया। वह दासी से क्षमा याचना करने लगा कि तुम महारानी से कहकर दण्ड मत दिलवाओ।

दासी ने कहा – अच्छा, इस समय तो तुम्हें क्षमा करती हूँ। यद्यपि तुमने अपराध तो बहुत बड़ा किया है, परन्तु तुम्हारी हालत देखकर मुझे दया आती है। अब फिर से ऐसी भूल मत करना। मुझे किसी वस्तु अथवा महारानीजी के नरव्रत की पूर्ति के लिये किसी मनुष्य की जरूरत पड़े और तुम लोगों ने उसमें विघ्न डाला तो क्या होगा, पता है ?

चौकीदारों ने कहा कि इस समय क्षमा करो, दूसरी बार तुम्हारे कार्य में सिर नहीं मारेंगे। तुम कहीं भी आने-जाने के लिये स्वतन्त्र हो।

दासी ने बनावटी क्रोध करके कहा – इस समय तो क्षमा करती हूँ, आगे से ध्यान रखना, ऐसी भूल करके हमारे कार्य में विघ्न मत डालना। मैं रानी का व्रत पूर्ण करने के लिये मिट्टी का पुतला लेने जा रही हूँ अथवा जैसी आवश्यकता होगी वैसा करूँगी। ऐसा कहकर दासी श्मशान में पहुँच गई। वहाँ जाकर उसने देखा कि तपस्वी सुदर्शन ध्यान में लीन है। श्मशान भूमि भयंकर होती है। इसी भयंकर स्थान में तपस्वी सुदर्शन कायोत्सर्ग में लीन थे। बस, दासी को अच्छा सुयोग मिल गया, वह फूली नहीं समाई। उसने उसी समय तपस्वी सुदर्शन को उठाकर रानी के महल में पहुँचा दिया।

जब रानी ने सुदर्शन को अपने कक्ष में देखा तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने मन में विचार किया कि अब मेरी मनोकामना पूर्ण हुई। उसने कामवासना से पीड़ित होकर सेठ सुदर्शन से कहा – हे प्रिय! मेरी मनोकामना पूर्ण करो। अपने, प्रेमालिंगन से मुझे सुखी करो। देखो, तुम्हारे लिये मुझे कितने कष्ट झेलने पड़े हैं। अब आनन्द से सुख-क्रीड़ा करके जीवन सार्थक बनाओ... परन्तु सेठ सुदर्शन टस से मस नहीं हुआ।

संसार में ऐसे जितेन्द्रिय तपस्वी आदर्श सदाचारी कहाँ मिलेंगे ? रानी की अनेक प्रकार की कुचेष्टाओं से भी ब्रह्मचारी सुदर्शन का मन विचलित नहीं हुआ। इस कष्ट को

www.vitragvani.com

दूर करने के लिये सेठ जिनेन्द्र भगवान का स्मरण करके प्रार्थना करने लगा। उसने मन में निश्चय कर लिया कि यदि मेरे सदाचार की रक्षा हो तो संसार का परित्याग करके जिनदीक्षा अंगीकार कर लूँगा, इस संसार के झमेले में नहीं पड़ूँगा। इस प्रकार दृढ़निश्चय करके ध्यान मग्न हो गया।

धन्य है सुदर्शन! आपकी जितनी प्रशंसा की जाये कम ही है। भला ऐसा कौन ब्रह्मचारी होगा जो सुन्दरियों द्वारा अनेक प्रकार की विनती करने पर भी ठुकरा दें? संसार से उदासीन होकर ब्रह्मचर्य की रक्षा करके सुन्दरियों के बाहुपाश से बचकर अपने सदाचार की रक्षा करना तपस्वी सुदर्शन का ही कार्य है।

रानी अपने लाख प्रयत्न करके थक गई, परन्तु सुदर्शन का व्रत भंग नहीं हुआ। रानी अपनी वासना पूर्ण नहीं होने से लज्जित होकर सेठ सुदर्शन को फँसाने के लिये षड़यन्त्र रचने लगी। वह अपने शरीर पर नख द्वारा जख्म करके हा-हू करने लगी - 'अरे! दौड़ो, बचाओ, पापी के हाथों से बचाओ।' बस, उसका दूसरा षड़यन्त्र सफल हो गया। तपस्वी सुदर्शन को महल में ही पकड़कर महाराज के सामने पहुँचा दिया गया। देखा स्त्री चरित्र! थोड़े समय पूर्व क्या बात थी और क्या हो गया? दुराचारी रानी ने सफल न होने से निर्दोष ब्रह्मचारी सुदर्शन को बन्दी बना दिया। महाराज ने सुदर्शन की कथा सुनकर अत्यन्त क्रोधित होकर उसे फाँसी की सजा सुना दी।

महाराज का हुक्म हुआ - 'दुष्ट पापी को मार दो।' जल्लाद तपस्वी सुदर्शन को मारने के लिये श्मशान भूमि में ले गये। ज्यों ही सुदर्शन को मारने के लिये जल्लादों की तलवार उठी उसकी गर्दन पर वार खाली गया; तलवार सुदर्शन की गर्दन पर फूल की तरह पड़ी। सब आश्चर्यचकित हो गये। उसी समय आकाश में से देवों ने तपस्वी सुदर्शन की जय-जयकार बुलाते हुए पुष्पवृष्टि की और इस प्रकार स्तुति की -

www.vitragvani.com

हे तपस्वी! तू धन्य है!! आज संसार में तेरे समान कोई भी जिनभक्त नहीं है, तुमने ब्रह्मचर्य से अलौकिक कार्य किया है, जिसकी उपमा तीन भुवन के इतिहास में नहीं मिलती। – इस प्रकार देवों ने पुष्पवृष्टि की और श्रद्धा–भक्ति से उसकी पूजा की। इधर सेवकों ने महाराज को तपस्वी सुदर्शन के प्रभाव का वर्णन जाकर सुनाया। महाराज विलम्ब न करते हुए शीघ्र ही तपस्वी सुदर्शन के समीप पहुँचे और उन्होंने अपने अपराध की क्षमा याचना की।

इस घटना से सुदर्शन के हृदय में अत्यन्त विरक्तभाव उत्पन्न हो गया। उन्होंने तुरन्त अपने पुत्र सुकान्तवाहन को घर–परिवार का भार सौंपकर, संसार पूजित विमलवाहन महामुनि के समीप जाकर जिन दीक्षा अंगीकार कर ली।

❖ ❖ ❖

इधर राजा के भय से रानी ने अपघात कर लिया और दासी भागकर पटना पहुँच गयी। वह पटना की समस्त गणिकाओं और नगर की स्त्रियों को अपने स्वदेश त्याग और सुदर्शन की कथा कहती हुई प्रतिदिन अपनी निन्दा और गर्हा करती हुई देवदत्ता वैश्या के यहाँ रहने लगी। पटना की जनता को भी दासी की बात सुनकर मन में बहुत आश्चर्य हुआ, उससे वहाँ के जनसमूह को सुदर्शन मुनि के दर्शन के लिये उत्साहित कर दिया, जिससे वे बहुत ही जिज्ञासा से उनके दर्शन की प्रतीक्षा करने लगे।

❖ ❖ ❖

एक समय की बात है कि अत्यन्त धीर आत्मा सुदर्शन मुनि विहार करते–करते पटना आ पहुँचे। सुदर्शन मुनि का शरीर अनेक प्रकार के उपवासों के कारण जीर्ण हो गया था। एक दिन दासी ने मुनि को पारणा के लिये राजमार्ग से आते देखा, वह देवदत्ता वैश्या से कहने लगी – हे सुन्दरी! जिस मानव आत्मा के कारण मैं नष्ट हुई, उस साधु को तो देख!

दासी की बात सुनकर देवदत्ता कहने लगी कि पण्डिता! महादेवी और कपिला में से कोई भी कामशास्त्र की पण्डिता नहीं थी, न कामकला विशारद थी और न मनुष्य के मन की पारखी थी; तू देख! मैं अभी तुरन्त ही इस मुनि के चित्त को मोहित करती हूँ।

www.vitragvani.com

इस प्रकार दासी से कहकर देवदत्ता ने अपनी नौकरी को बुलाकर उससे कहा कि तू जा और इन मुनिराज से कह कि हे भगवन्! आज आप हमारे घर भोजन करो। नौकरानी की प्रार्थना से मुनिराज देवदत्ता के घर पधारे। जहाँ मुनिराज देवदत्ता के घर आये कि उसने तुरन्त ही दरवाजा बन्द कर दिया और तीन-तीन दिन तक मुनिराज पर भयंकर उपसर्ग किया, परन्तु उस समय मुनिराज ने अपने मन को इतना आत्मसन्मुख कर दिया कि जिससे वे लकड़ी के अथवा मिट्टी के अथवा पत्थर के समान निश्चल हो गये। उस समय देवदत्ता ने अपने सैकड़ों हाव-भाव, चेष्टा से विकार चेष्टाएँ कीं, परन्तु सुमेरुवत् अचल सुदर्शन मुनिराज का चित्त जरा भी मोहित नहीं हुआ। जब देवदत्ता ने देखा कि मुनिराज इतने हाव-भाव दिखाने पर भी एकदम स्थिरचित्त, गम्भीर और गुण सागर रहे हैं - यह जानकर उसे बहुत भय हुआ और वह अपने दूषित अभिप्राय की निन्दा करने लगी। रात्रि होते ही वह मुनिराज को श्मशान में छोड़ आई और अपना काला मुँह लेकर वापस घर आ गई।

सुदर्शन मुनि जैसे ही भयंकर श्मशान भूमि में पहुँचे, उन्होंने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। रात्रि में कायोत्सर्ग करके स्थिर हो गये। वहाँ रानी महादेवी अभय का जीव, जो मरकर व्यन्तरी हुई थी, उसने सुदर्शन मुनि को पहिचान लिया और लगातार सात दिन तक उनके ऊपर भयंकर उपसर्ग किया। सात दिन के पश्चात मुनिराज ने श्रेणी माँडकर घातिकर्मों का क्षय किया और समस्त पदार्थों को साक्षात करनेवाला केवलज्ञान प्रकट किया। केवलज्ञान प्रगट होते ही देवों का समूह स्तुति वन्दना करने के लिये आने लगा। तब वैश्या देवदत्त, दासी, व्यन्तरी और समस्त नगरवासी जनता अत्यन्त भक्ति से केवली के पास आये और भगवान धर्मोपदेश देने लगे -

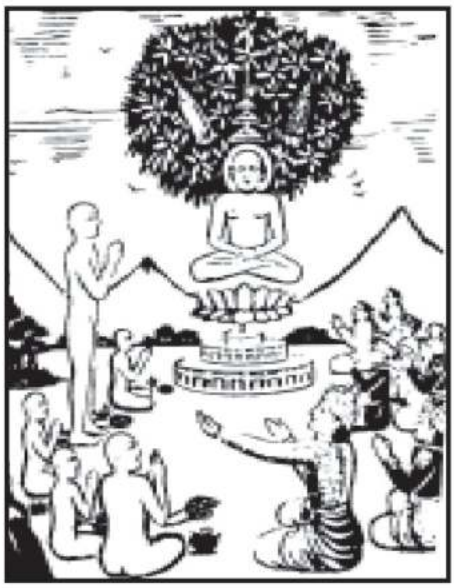

हे भव्यों! जो मानव शरीर पाकर धर्म नहीं करता, वह निधि पाकर भी दरिद्री है। अरे! पंचेन्द्रिय के मधुर विष सम् विषयों के लिये नर जीवन बर्बाद

www.vitragvani.com

कर देनेवाला तो राख के लिए रत्न जला देने की चेष्टा करनेवाला अविवेकी है। सच तो यह है कि पंचेन्द्रिय के विषयों में सुख है ही नहीं। सुख का सागर तो निज भगवान आत्मा है। उसी में अपनापन करके, स्थिर हो जाओ – यही सुखी होने का एकमात्र उपाय है।

पूर्व कथित व्यन्तरी, देवदत्ता वैश्या, दासी और उपस्थित जनसमुदाय सुदर्शन केवली का धर्मोपदेश सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। कितने ही जीवों ने भक्ति ने श्रावक के व्रत धारण किये, कितने ही जीवों ने सम्यक्त्व धारण किया और कितने ही भव्य जीवों ने संसार से विरागी हाकर समस्त परिग्रह छोड़कर मुनिदीक्षा अंगीकार की।

केवली सुदर्शन ने देशान्तर में विहार करके धर्मोपदेश दिया और अन्त में समस्त कर्मों का नाश करके मोक्ष पधारे।

इस प्रकार सुदर्शन मुनिराज, जो पूर्व भव में सुभग ग्वाला थे, वे जिनेन्द्र भगवान के नमस्कार के फल से शाश्वत् निर्वाण पद को प्राप्त हुए।

–वृहद् कथा कोष भाग–२ में से संक्षिप्त सार

मुनि बनने की भावना

सम्यग्दृष्टि की भावना तो मुनि बनने की ही होती है। वह विचारता है कि अहो! मैं कब चैतन्य में लीन होकर सर्वसङ्ग का परित्यागी होकर मुनिमार्ग में विचरण करूँ। मुनि बनकर चैतन्य के जिस मार्ग पर तीर्थङ्कर विचरे, मैं भी उसी मार्ग पर विचरण करूँ - ऐसा धन्य स्वकाल कब आयेगा? धर्मीजीव आत्मा के भानपूर्वक इस प्रकार मुनि बनने की भावना भाते हैं। ऐसी भावना होते हुए भी निज पुरुषार्थ की मन्दता और निमित्तरूप में चारित्रमोह की तीव्रता से कुटुम्बीजनों के आग्रहवश स्वयं ऐसा मुनिपद नहीं ले सके तो उस धर्मात्मा को गृहस्थपने में रहकर देवपूजा आदि षटकर्मों का पालन अवश्य करना चाहिए।

– पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, श्रावकधर्मप्रकाश

15 शालिसिक्य मच्छ के भावों की कथा

स्वयंभू श्री आदिनाथ भगवान को नमस्कार करके यह कथा लिखते हैं, जिससे ज्ञात होता कि मन की कुत्सित भावना से कैसे -कैसे दोष होते हैं अथवा कर्म बँधते हैं।

अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र में एक विशाल महामच्छ होता है, जिसकी लम्बाई एक हजार योजन अर्थात् चार हजार कोस; चौड़ाई पाँच सौ योजन अर्थात् दो हजार कोस और ऊँचाई अढ़ाई सौ योजन अर्थात् एक हजार कोस होती है। उस महामच्छ के कान में एक शालिसिक्य मच्छ रहता है, जो महामच्छ के कान का मैल खाता है। जब महामच्छ सैकड़ों जल-जन्तुओं को खाकर गहरी नींद में सो रहा होता है, तब दूसरे जीव-जन्तु उसके खुले मुँह में आया-जाया करते हैं। उस समय शालिसिक्य मच्छ (चावल जैसा मच्छ) विचार करता है कि यह महामच्छ कैसा मूर्ख है, जो अपने मुँह में आते हुए जल-जन्तुओं को व्यर्थ ही छोड़ देता है। यदि मुझमें ऐसी शक्ति होती तो मैं एक भी जीव को खाये बिना नहीं छोड़ता।

पापी जीव ऐसी कुत्सित भावना से दुर्गति में दु:ख भोगता है। ऐसे कुत्सित परिणामों से शालिसिक्य मच्छ की भी ऐसी ही दुर्गति हुई। वह मरकर सातवें नरक गया, क्योंकि मन के भाव ही पुण्य और पाप का कारण होते हैं। इस कारण सज्जन पुरुष, जैन शास्त्रों का अभ्यास करके अपने को पवित्र बनावें और कभी भी कुत्सित भावना को हृदय में स्थान नहीं दें। शास्त्रों के बिना अच्छे-बुरे भावों का ज्ञान नहीं होता, इसलिए शास्त्र अभ्यास को पवित्रता का मूल कारण कहा है।

जिनवाणी, मिथ्या अन्धकार को नष्ट करने के लिए प्रकाश का काम करती है।●●

(आराधना कथाकोश)

16 नलिनकेतु आदि मुक्ति प्राप्त मोहान्ध जीवों की कथा
मोह से मुक्ति की ओर

पूर्व विदेहक्षेत्र में मङ्गलावती नाम का मनोहर देश है। वह मङ्गलावती देश श्री जिनेन्द्रदेव तथा मुनियों की वन्दना, यात्रा, पूजा-प्रतिष्ठा आदि के सैंकड़ों उत्सवों के धर्मध्यान का कारण होने से उसका 'मङ्गलावती' नाम सार्थक है। उसमें क्षेमकंर नाम के तीर्थङ्कर राज्य करते है। उन क्षेमकंर तीर्थङ्कर के वज्रायुद्ध नाम का (भविष्य में होनेवाले तीर्थङ्कर श्री शान्तिनाथ का जीव) चक्रवर्ती पुत्र है।

एक समय राजा वज्रायुद्ध सभा में सिंहासन पर विराजमान थे और उन पर सैंकड़ों चँवर ढूल रहे थे। वे राजा, इन्द्र समान सुशोभित हो रहे थे। वे चक्रवर्ती स्व-पर कल्याण के लिए तथा मोक्ष प्राप्त करने के लिए सिंहासन पर विराजमान होकर अपने भाई-बन्धु, मित्र राजाओं तथा सेवकों को धर्मोपदेश देते थे।

एक दिन एक विद्याधर डर से घबराकर दौड़ता हुआ आया और उसने अपनी रक्षा करने के लिए चक्रवर्ती से शरण प्रदान करने की याचना की। तभी उसके पीछे-पीछे सभा भवन को कँपायमान करती हुई एक विद्याधरी आयी। वह क्रोधरूपी अग्नि में जल रही थी और हाथ में खुली तलवार लेकर इस विद्याधर को मारना चाहती थी। उस विद्याधरी के पीछे एक वृद्ध विद्याधर आया, उसके हाथ में गदा थी। वह इन दोनों के वैरभाव से परिचित था।

वृद्ध विद्याधर, राजा वज्रायुद्ध को नमस्कार करके कहने लगा - 'हे स्वामिन्! आप दुष्टों को दण्ड देने और सज्जनों का पालन करने में चतुर हो। वस्तुत: दुष्टों को उचित दण्ड देना और सज्जनों का पालन करना ही क्षत्रियों का धर्म है और आप हमेशा इस धर्म

www.vitragvani.com

का पालन करते रहे हो। अत: आप जैसे धर्मात्मा को अवश्य ही इस दुष्ट विद्याधर को दण्ड देना चाहिए, क्योंकि यह अन्यायी है, पापी है। हे देव! यदि आप इसका कारण जानना चाहते हैं तो मैं जो कहता हूँ उसे मन लगाकर सुनें।

❖ ❖ ❖

यह जम्बूद्वीप धर्म का स्थान है तथा देव, विद्याधर और मनुष्यों से भरा हुआ है। इसमें एक कच्छ नाम का मनोहर देश है और उसमें एक विजयार्द्ध पर्वत है। उसकी उत्तर श्रेणी के शुकप्रभ नगर में अपने पूर्व सञ्चित धर्म के प्रभाव से इन्द्रदत्त नाम का विद्याधर राज्य करता था। उसकी शुभलक्षणोंवाली रानी का नाम यशोधरा था। मैं उसका वायुवेग नाम का पुत्र हूँ; समस्त विद्याधर मेरी आज्ञा मानते हैं।

उसी श्रेणी के किन्नरगीत नामक नगर में चित्रचूल नाम का विद्याधर राज्य करता था, उसकी सुकान्ता नाम की पुत्री थी। सुकान्ता का विवाह विधिपूर्वक मुझसे हुआ। उसके गर्भ से यह शान्तिमति नामक शीलवती कन्या उत्पन्न हुई है। यह भोग और धर्म की सिद्धि के लिए पूजा की सामग्री लेकर मुनिसागर पर्वत पर विद्या सिद्ध करने गयी थी। जब यह विद्या साध रही थी, उस समय यह दुष्ट कामातुर पापी उस विद्यासिद्धि में विघ्न करने आया, परन्तु पुण्यकर्मोदय से सब कार्य सिद्ध करनेवाली तथा सुखप्रदायिनी सारभूत यह विद्या, मेरी इस पुत्री को उसी समय प्राप्त हो गयी। यह पापी, विद्या के भय से आपकी शरण में आया है और मेरी पुत्री भी क्रोधवश इसे मारने के लिए पीछे-पीछे आयी है। जब मैं विद्या की पूजा सामग्री लेकर वहाँ पहुँचा, तब वहाँ अपनी पुत्री को न देखकर इसी मार्ग से मैं भी पीछे-पीछे यहाँ आया हूँ। हे नाथ! इस प्रकार मैंने अपनी वास्तविकता आपके समक्ष प्रस्तुत की है। अब आप इस दुष्ट के लिए जो कुछ उचित समझें, सो करें।'

वृद्ध विद्याधर की बात सुनकर अवधिज्ञानी चक्रवर्ती महाराज कहने लगे - हे भाई! विद्या सिद्ध करने में जो विघ्न डालता था, वह मैं जानता हूँ। मैं अपने अवधिज्ञान से जानकर तुम्हें इनके पूर्व भव की कथा कहता हूँ, वह सुनो।

❖ ❖ ❖

इसी जम्बूद्वीप के ऐरावतक्षेत्र में गन्धार देश के विन्ध्यपुरी नगर में विन्ध्यसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसके सुलक्षणोंवाली सुलक्षण नाम की रानी थी। इन दोनों के

www.vitragvani.com

नलिनकेतु नाम का पुत्र था। उसी नगर में धनदत्त नाम का धनी वैश्य रहता था। उसकी सहधर्मिणी का नाम श्रीदत्ता था। उन दोनों के सुदत्त नाम का पुत्र था, उसकी पत्नी का नाम प्रीतिकरा था। वह स्त्री रूप, लावण्य और गुणों की निधि थी।

एक दिन प्रीतिकरा वनभ्रमण के लिये गयी। वहाँ राजपुत्र नलिनकेतु की दृष्टि उस पर पड़ गयी, उसकी सुन्दरता देखकर वह कामासक्त हो गया। वह न तो उसके बिना रह सका और न कामाग्नि को सहन कर सका; इस कारण वह मूर्ख न्यायमार्ग का उल्लंघन कर बलजोरी से प्रीतिकरा का हरण करके ले गया।

पत्नी के वियोग से सेठ सुदत्त का हृदय भी व्याकुल हो गया। वह अपने को पुण्यहीन समझकर, अपनी निन्दा करने लगा। वह विचारने लगा – 'मैंने न तो पूर्व भव में धर्म का पालन किया था, न तप किया था, न चारित्र धारण किया था, न दान दिया था और न ही जिनेन्द्रदेव की पूजा की थी; इस कारण मेरे पापकर्मोदय से मेरी रूपवती स्त्री का राजा ने जबरदस्ती हरण कर लिया।

संसार में सुख देनेवाले इष्टपदार्थों का जो वियोग होता है; स्त्री, धन आदि का जो वियोग होता है; दुष्ट, शत्रु, चोर, रोग, क्लेश, दु:ख आदि दुष्ट अनिष्ट पदार्थों का संयोग होता है, वह सब पापरूप शत्रु द्वारा किया हुआ होता है। मनुष्यों को जब तक पूर्व भव में उपार्जित अनेक दु:ख देनेवाले पापकर्मों का उदय है, वहाँ तक उसको उत्तम सुख कभी प्राप्त नहीं होता। यदि पापरूपी शत्रु न हो तो मुनिराज, घर छोड़कर वन में जाकर तपश्चरणरूपी तलवार से किसे मारते हैं ? संसार में वही सुखी है, जिसने अलौकिक सुख प्राप्त करने के लिए चारित्ररूपी शस्त्र के प्रहार से पापरूपी महाशत्रु को मार दिया है; इसलिए मैं भी सम्यक्चारित्ररूपी धनुष लेकर ध्यानरूपी बाण से अनेक दु:खों के सागर इस पापरूपी शत्रु का नाश करूँगा।'

– इस प्रकार हृदय में विचार करके, काललब्धि प्रगट होने पर सेठ सुदत्त स्त्री, भोग, शरीर और संसार से विरक्त हो गया। तत्पश्चात् वह दीक्षा अङ्गीकार करने के लिए सुदत्त तीर्थङ्कर के समीप पहुँचा और शोकादिक को त्यागकर तपश्चर्या के लिए तैयार हुआ। समस्त जीवों का हित करनेवाले तीर्थङ्कर भगवान को नमस्कार करके, उसने मुक्तिरूपी

www.vitragvani.com

स्त्री को वश करनेवाला संयम धारण किया।

वह विरक्त होने के कारण बहुत दिनों तक शरीर को कष्टकारक कायोत्सर्ग आदि अनेक प्रकार की कठिन तपस्या करने लगा। मोक्ष प्राप्त करने के लिए उन मुनिराज ने बिना किसी प्रमाद के मरणपर्यन्त धर्मध्यान किया। अन्त में उन्होंने संन्यास धारण करके मन को शुद्ध किया और समस्त आराधनाओं का आराधन किया। अपने हृदय में जिनेन्द्रदेव को विराजमान करके अत्यन्त जागृतिपूर्वक प्राणों का परित्याग किया। उस चारित्ररूपी धर्म के प्रभाव से वे ईशानस्वर्ग में महाऋद्धि को धारण करनेवाले देव हुए। उस देव की आयु एक सागर की थी। वहाँ देवाङ्गनाओं के साथ सुख भोगता और अनेक प्रकार की क्रीड़ा करता हुआ वह देव, स्वर्गलोक एवं मनुष्यलोक की जिनप्रतिमाओं की महाविभूतिसहित पूजा करता था।

❖ ❖ ❖

इसी जम्बूद्वीप के सुकच्छ देश में शिखरों पर देवियों के भवनों से शोभायमान विजयार्द्धपर्वत है। उसकी उत्तरश्रेणी के कञ्चनतिलक नगर में महेन्द्रविक्रम नाम का विद्याधर राजा राज्य करता था। उसकी सुखदायिनी रानी का नाम अनलवेगा था। वह देव, स्वर्ग से आकर उसके यहाँ अजितसेन नाम का पुत्र हुआ।

इधर राजपुत्र नलिनकेतु को भी उल्कापात देखकर वैराग्य होने से आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। उसने पहले जो दुश्चरित्र का सेवन किया था, उसकी निन्दा करने लगा एवं हृदय में परस्त्री के परित्याग का सङ्कल्प करके अपने पाप का प्रायश्चित करने लगा।

वह विचार करने लगा – 'अरे रे! मैं बहुत पापी हूँ, परस्त्री भोगी हूँ, लम्पटी हूँ, अधम हूँ, विषयान्ध हूँ, सैंकड़ों अन्याय करनेवाला हूँ। स्त्रियों के शरीर में अच्छा क्या है? वह तो चमड़ी, हड्डियों और अन्तड़ियों का समूह है। संसार में जितने अमनोज्ञ पदार्थ हैं,

www.vitragvani.com

उन सबका आधार तथा विष्ठा आदि दुर्गन्धमय चीजों का घर तो शरीर है। यह शरीर, सप्त धातुओं से निर्मित है। स्त्रियों की देह मात्र गोरी चमड़ी से ढँका हुआ है तथा ऊपर से वस्त्राभूषण से सुशोभित है। स्त्रियों का शरीर करोड़ों कीड़ों से भरा हुआ है, विष के समान है। अरे! संसार में ऐसा कौन ज्ञानी पुरुष है जो उसका सेवन करेगा? यह स्त्री तो नरकरूपी घर का दरवाजा है, स्वर्ग-मोक्षरूपी घर के लिए अर्गल (व्यवधान) समान है। यह स्त्री समस्त पापों की खान है। चञ्चल हृदयवाली स्त्री, धर्मरत्नों के खजाने को चुराने के लिए चोर है। मनुष्यों का भक्षण करने के लिए दृष्टिविष सर्पिनी के समान हैं। मूर्ख जीव, स्त्रियों के समागम से व्यर्थ ही प्रतिदिन अनेक पापों का उपार्जन करते हैं।

अरे रे! संसार में कितने पुण्यवान पुरुष ऐसे हैं कि जो अपनी स्त्री का भी परित्याग करके संयम धारण करते हैं, परन्तु मेरे समान नीच कौन होगा, जो परस्त्री को चाहता है? – इस प्रकार अपनी निन्दा करके उसने पूर्वोपार्जित पापों को नष्ट किया और पापरूपी वन को जलाने के लिए अग्नि-समान संवेग को बलवान किया।

तत्पश्चारत् चारित्र धारण करने की इच्छा करता हुआ वह राजपुत्र नलिनकेतु उस स्त्री तथा राज भोगों का परित्याग कर सीमंकर मुनि के समीप पहुँचा। उसने दु:खरूपी दावानल को बुझाने के लिए वर्षा समान उन मुनिराज के दोनों चरण युगल को नमस्कार किया और बाह्याभ्यन्तर परिग्रह को त्यागकर दीक्षा धारण की। उसका संवेग गुण बहुत बढ़ गया, इस कारण उसने घोर तपश्चर्या की और समस्त तत्त्वों से परिपूर्ण आगम का बहुत अभ्यास किया।

नलिनकेतु मुनिराज ने क्षपकश्रेणी पर आरुढ़ होकर प्रथकत्व-वितर्क नामक शुक्लध्यानरूपी तलवार से दुष्ट कषायरूपी शत्रुओं को मारकर तीन वेदों को नष्ट किया और दूसरे शुक्ल-ध्यानरूपी वज्र से शेष घातिकर्मरूपी पर्वत को चूर-चूर करके साक्षात

www.vitragvani.com

केवलज्ञान प्रगट किया। उसी समय इन्द्रों आदि ने आकर उनकी पूजा की। कुछ समय पश्चात् सुख के सागर जिनराज, अघातिकर्मरूपी शत्रुओं को नष्ट करके शाश्वत् मोक्षपद में जाकर विराजित हुए।

प्रीतिकरा ने भी अपने दुराचार की निन्दा की और मोक्ष की प्राप्ति के लिए संवेग धारण करके सुव्रता नामक आर्यिका के समीप जा पहुँची। उसने घर सम्बन्धी समस्त परिग्रह का त्याग करके संयम धारण किया। कर्मरूपी तृण को जलानेवाली अग्नि को शुद्ध करने के लिए चन्द्रायण तप किया। अन्त में संन्यास धारण करके विधिपूर्वक प्राणों का त्याग किया। इस पुण्य से वह अनेक सुख तथा गुण के समुद्र ईशानस्वर्ग में उत्पन्न होकर वहाँ के दिव्य भोग भोगते हुए आयु पूर्ण करके, वहाँ से चयकर अब तेरी पुत्री हुई है। अत: पूर्व जन्म के स्नेह से जिसका मन, राग से अन्धा हो रहा है – ऐसे इस अजितसेन ने इस विद्याधरी को जबरदस्ती विकार पैदा करने का प्रयत्न किया है। पूर्व जन्म के संस्कार से इस लोक में भी जीवों का स्नेह, वैर, गुण, दोष, राग-द्वेष आदि सब चले आते हैं – ऐसा समझकर बुद्धिमान पुरुष, शत्रुओं के लिए भी कभी विषाद नहीं करते। अत: तू भी वैरभाव का त्याग कर दे।

❖ ❖ ❖

इस प्रकार राजा वज्रायुद्ध के मुख से अपने पूर्व भव का वृतान्त सुनकर वह शान्तिमति विद्याधरी संसार से उदास हो गयी। उसने अपने विवाह की तैयारियाँ छोड़ दी तथा पिता, परिवार आदि का त्याग करके, देवों द्वारा पूज्य क्षेमंकर तीर्थङ्कर के समीप पहुँची। उस सती ने श्री जिनेन्द्रदेव की तीन प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया और धर्मामृत का पान करने के लिए सभा में जा बैठी। उसने अपने कानों द्वारा जन्म-मरण और वृद्धापन के दाह को दूर करनेवाला, आत्मरस प्रगट करनेवाला, मुनियों के समझने योग्य धर्मामृतरूपी उत्तमरस का पान किया।

www.vitragvani.com

तत्पश्चात् वह सुलक्षणा नाम की श्रेष्ठ गुणशालिनी आर्यिका के समीप पहुँची और मोक्ष प्राप्त करने के लिए मोक्ष को वश करनेवाला चारित्र धारण किया। उस शान्तिमति विद्याधरी ने एक साड़ी के सिवाय अन्य समस्त बाह्य परिग्रह का त्याग किया तथा मिथ्यात्व आदि अन्तरङ्ग परिग्रह से परिमुक्त हो गयी। संवेगगुण से सुख के सागर समान कठिन तपस्या की और शास्त्रों का अभ्यास करके सम्यग्दर्शन की विशुद्धि धारण की। अन्त में चार प्रकार का संन्यास धारण किया। एकाग्रचित्त से श्री जिनेन्द्रदेव का स्मरण किया, द्वादश भावनाओं का चिन्तवन किया और समाधिपूर्वक प्राणों का त्याग करके सम्यग्दर्शन के प्रभाव से स्त्रीलिङ्ग का छेद करके ईशानस्वर्ग में महाऋद्धि को धारण करनेवाला देव हुई।

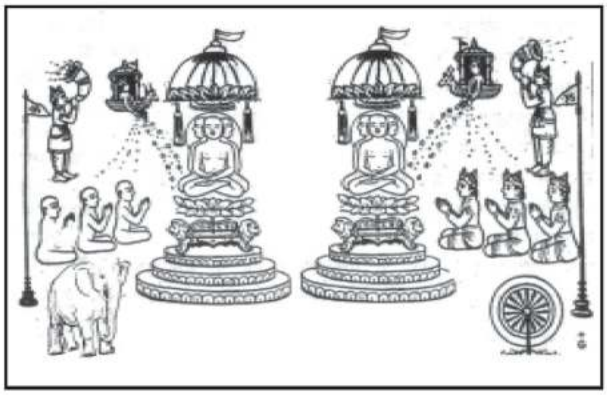

वह देव अवधिज्ञान से अपने पूर्व भव जानकर मुनियों तथा जिनप्रतिमाओं की पूजा करने के लिए पृथ्वी पर आया। उसी समय मुनिराज अजितसेन (शान्तिमति को विद्यासिद्धि में विघ्न करता था वह) और वायुवेग (शान्तिमति के पिता) के दर्शन किये। अतिशय वैराग्य के कारण घर का त्याग करके संयम का धारण करने से तथा तपस्या और ध्यान से उन दोनों को केवलज्ञानरूपी नेत्र प्राप्त हुए थे, अर्थात् दोनों को उसी समय केवलज्ञान प्रगट हुआ था। वे दोनों सिंहासन पर विराजित थे। उन पर चँवर ढूल रहे थे। बहुत प्रकार की विभूति एवं प्रतिहार्यों के मध्य वे विराजमान थे। असंख्य देवगण उनकी सेवा कर रहे थे। वे चार संघों से सुशोभित थे। समस्त जीवों के हित के लिए सदा तत्पर थे। अनेक प्रकार से उनकी महिमा थी। समस्त इन्द्र एक साथ मिलकर दोनों जिनराज की पूजा कर रहे थे। उनको अनन्त सुख प्राप्त हो गया था। अनेक मुनिराज उनको वन्दन कर रहे थे।

उन दोनों के दर्शन करके वह देव विचारने लगा – अहा! आश्चर्य है!! कहाँ तो भय से व्याकुल विषयान्ध विद्याधर, और कहाँ तो देवों द्वारा पूजित तीन लोक के नाथ

www.vitragvani.com

सर्वज्ञदेव! कहाँ तो मेरे वृद्ध पिता और कहाँ तो सर्व पदार्थों को एक साथ देखनेवाले श्री केवली भगवान! संसार में बड़े-बड़े पुरुषों को भी आश्चर्य उत्पन्न होने योग्य बात है!

अहा! पहले मुनिराज ने कहा था कि जीव में अनन्त शक्ति है, वह मिथ्या कैसे हो? क्योंकि मैंने इस समय वह शक्ति साक्षात् देखी है! इस प्रकार मन में चिन्तवन करते-करते केवली को तीन प्रदक्षिणा देकर मस्तक झुकाकर वन्दन किया; उनके गुणगाान करते हुए स्तुति की और स्वर्गलोक के द्रव्यों से भक्तिपूर्वक पूजा करके आश्चर्यकारी धर्म से प्रसन्न होकर वह देव, स्वर्ग में गया।

इस प्रकार, परस्त्री हरण करनेवाले मोहान्ध नलिनकेतु ने उसी भव में मोहविजेता बनकर सादि-अनन्त सुख को प्राप्त किया और पूर्व-स्नेह के संस्कारवश शान्तिमति विद्याधरी पर कामासक्त होनेवाला अजितसेन विद्याधर तथा उसका वैर लेने को तत्पर हुए शान्तिमति के पिता भी शाश्वत् सुख को प्राप्त हुए - यह सब अनन्त शक्तिस्वरूप चैतन्यस्वभाव की आराधना का ही चमत्कार है। *(- शान्तिनाथ पुराण से सारांश)*

मानो परमात्मा का ही वन-विहार

अहो! मोक्षमार्गी निर्ग्रन्थ मुनिराज, काया के प्रति उदासीन वर्तते हुए स्वरूप में लीन होकर आनन्द में झूलते हैं। **जैसे वन में वनराज सिंह विचरण करता है, वैसे मुनिराज विचरण करते है; मानो परमात्मा ही वन-विहार कर रहे हों –** ऐसे मुनि भगवन्त, भव का अन्त करके सिद्धदशा प्राप्त कर लें – इसमें क्या आश्चर्य है? *- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वीतराग-विज्ञान, भाग ५, पृष्ठ ५५*

17 राजा इन्द्र की पराजय, वैराग्य और निर्वाणगमन
करनी का फल

रथनपुर का राजा इन्द्र महाशक्तिशाली था। उस पर चढ़ाई करके रावण ने उसे बाँध लिया, इस कारण इन्द्र के सामन्त अपने स्वामी के दु:ख से व्याकुल हो गये। तब इन्द्र के पिता सहस्त्रार, जो उदासीन श्रावक हैं, उनसे विनती की और इन्द्र को छुड़ाने के लिए सहस्त्रार को लेकर लंका में रावण के समीप आये। द्वारपालों से निवेदन करके, इन्द्र का सारा वृतान्त कहकर रावण के पास गये। रावण ने सहस्त्रार को उदासीन श्रावक जानकर उनका बहुत विनय किया, उन्हें सिंहासन दिया और स्वयं सिंहासन से उतरकर नीचे बैठ गया।

सहस्त्रार रावण को विवेकी जानकर कहने लगा – 'हे दशानन! तुम जगजित हो, इससे तुमने इन्द्र को भी जीता, तुम्हारा बाहुबल सबने देखा है। जो महान राजा होते हैं, वे गर्विष्ट लोगों का गर्व दूर करके फिर कृपा करते हैं; अत: अब इन्द्र को मुक्त कर दो।' सहस्त्रार ने ऐसा कहा ही, और जो चारों लोकपाल थे, उनके मुख से भी यही शब्द निकले, मानो सहस्त्रार का पढ़ाया ही पढ़ा हो।

रावण ने सहस्त्रार से हाथ जोड़कर कहा – 'हे विज्ञ! आप जैसा कहते हो, वैसा ही होगा।' फिर उसने मजाक करते हुए चारों लोकपालों से कहा – 'तुम नगर की सफाई करो। नगर को तृण, कंकर रहित और कमल की सुगन्धरूप करो, पृथ्वी पर सुगन्धित जल का छिड़काव करो और पाँचों रंगों के मनोहर पुष्पों से नगर की शोभा करो।' रावण के मुख से यह सुनकर चारों लोकपाल लज्जित होकर नीचे देखने लगे।

इस विचित्र परिस्थिति को लक्ष्यगत करते हुए सहस्त्रार अमृतमयी वाणी में बोला

www.vitragvani.com

– 'हे वीर! तुम जिसे जो आज्ञा करोगे, उसी अनुसार ये सब करेंगे, तुम्हारी आज्ञा सर्वोपरि है। यदि तुम्हारे जैसे महामानव पृथ्वी को शिक्षा नहीं दें तो पृथ्वी के लोग अन्याय मार्ग में प्रवर्तन करेंगे।'

सहस्त्रार की मधुर वाणी सुनकर रावण अति प्रसन्न हुआ और बोला – 'हे पूज्य! आप हमारे पिता तुल्य हो और इन्द्र मेरा चौथा भाई है। उसे प्राप्त करके मैं सम्पूर्ण पृथ्वी को कंटकरहित करूँगा। उसका इन्द्रपद ज्यों का त्यों है और ये लोकपाल भी ज्यों के त्यों रहेंगे; साथ ही दोनों श्रेणी के राज्य की अधिक इच्छा हो तो वह भी ले लो। मुझमें और इन्द्र में कोई अन्तर नहीं है। आप बड़े हो, गुरुजन हो; जैसे इन्द्र को शिक्षा देते हो, वैसे ही मुझे भी दो। आपकी शिक्षा अलङ्काररूप है। आप रथनपुर में विराजमान रहें अथवा यहाँ विराजो, दोनों आपकी ही भूमियाँ हैं।'

रावण के ऐसे प्रिय वचनों से इन्द्र के पिता सहस्त्रार का मन अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। वे कहने लगे कि 'हे भव्य! तुम्हारे जैसे सज्जन पुरुषों की उत्पत्ति सभी लोगों को आनन्द देती है। हे चिरंजीवी! तुम्हारी शूरवीरता का आभूषणरूप यह उत्तम विनय सम्पूर्ण पृथ्वी में प्रशंसा को प्राप्त है। तुम्हें देखने से मेरे नेत्र सफल हुए हैं। धन्य है तुम्हारे माता-पिता, कि जिन्होंने तुम्हें जन्म दिया। तुम्हारी कीर्ति कुन्दन पुष्प के समान उज्ज्वल हैं। तुम समर्थ और क्षमावान; दाता और गर्व रहित; ज्ञानी और गुण प्रिय; तथा पवित्र जिनशासन के अधिकारी हो। तुमने मुझे यह कहा कि 'यह आपका घर है और जैसा इन्द्र आपका पुत्र है, वैसा मैं हूँ' तो इस बात के लिए तुम योग्य हो, तुम्हारे मुख से ऐसे ही वचन निकलेंगे, तुम्हारे जैसा पुरुष इस संसार में विरल है।

परन्तु हे बन्धु! जन्मभूमि माता के समान होती है, उसे छोड़ा नहीं जा सकता। जन्मभूमि का वियोग चित्त को आकुल करता है। तुम समस्त पृथ्वी के स्वामी हो, तो भी तुम्हें लंका प्रिय है। हमारे बन्धुजन और समस्त प्रजाजन हमें देखनें की अभिलाषा से हमारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं; इस कारण मैं रथनपुर तो जाऊँगा, परन्तु चित्त सदा तुम्हारे पास रहेगा। हे देवों के प्रिय! तुम चिरकाल तक पृथ्वी की रक्षा करो।'

उसी समय रावण ने इन्द्र को बुलाया और सहस्त्रार के साथ रथनपुर भेज दिया।

www.vitragvani.com

रावण स्वयं सहस्त्रार को पहुँचाने थोड़ी दूर तक गया और अत्यन्त विनयपूर्वक विदा दी। सहस्त्रार, इन्द्र को लेकर लोकपातसहित विजयार्द्धगिरि पर आये। सारा राज्य ज्यों का त्यों था। लोकपाल भी आकर अपने-अपने स्थानों पर रहें, परन्तु मान भङ्ग से आकुलता को प्राप्त हुए।

❖ ❖ ❖

जैसे-जैसे विजयार्द्ध के लोग इन्द्र और लोकपालों को देखते, वैसे-वैसे वे शर्म से नीचे झुक जाते। इन्द्र को अब न तो रथनपुर से प्रीति थी, न रानियों से प्रीति थी, न उपवनादि में प्रीति थी, न लोकपालों में प्रीति थी। कमलों के मकरन्द से जिसका जल पीला हो रहा है - ऐसे मनोहर सरोवरों में भी प्रीति नहीं थी अथवा किसी क्रीड़ा में प्रीति नहीं थी। अधिक क्या ? यहाँ तक कि उसे अपने शरीर में भी प्रीति नहीं थी। उसका चित्त लज्जा से युक्त था। उसे उदास देखकर सब उसे अनेक प्रकार से प्रसन्न करना चाहते और कथाओं के प्रसङ्ग कहकर यह बात भुलाने का प्रयत्न करते परन्तु वह भूलता नहीं था। उसने सभी लीला-विलास छोड़ दिए। अपने राजमहल के मध्य गन्धमादन पर्वत के शिखर के समान ऊँचे जिन मन्दिर के एक स्तम्भ के ऊपर वह रहता, उसका शरीर कान्ति रहित हो गया था।

पण्डितों से मण्डित वह विचारता है कि धिक्कार है इस विद्याधर पद के ऐश्वर्य को, कि जो एक क्षणमात्र में विलय को प्राप्त हुआ। जैसे, शरद ऋतु के बादल अत्यन्त ऊँचे होते हैं, परन्तु वे क्षणमात्र में विलुप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार यह शस्त्र, यह हाथी, यह तुरङ्ग, यह योद्धा आदि सब तृण समान हो गये कि जिन्होंने अनेक बार अद्भुत कार्य किये थे अथवा यह कर्मों की विचित्रता है, कौन पुरुष इसे अन्यथा कर सकता है ? अत: जगत् में कर्म प्रबल है। मैंने पूर्व में नाना प्रकार की भोग सामग्री देनेवाले कर्म उपार्जित किये थे, वे अपना फल देकर खिर गये - इस कारण मेरी यह दशा हो रही है। रण संग्राम में शूरवीर सामन्तों का मरण होता है, वही ठीक है; उससे पृथ्वी पर अपयश नहीं होता। मैं जन्म से लेकर शत्रुओं के सिर पर चरण रखकर जिया हूँ - ऐसा मैं इन्द्र, शत्रु का अनुचर होकर किस प्रकार राज्य लक्ष्मी भोगूँगा ? अत: अब संसार के इन्द्रियजनित सुख की अभिलाषा तजकर मोक्षपद की प्राप्ति के कारणरूप मुनिव्रत को अङ्गीकार करूँ। रावण, शत्रु का वेश

www.vitragvani.com

धारण करके मेरा महामित्र बना है, उसने मुझे प्रतिबोध दिया, अन्यथा मैं तो असार सुख के आस्वाद में आसक्त था।

इस प्रकार इन्द्र विचार कर ही रहा था कि उसी समय निर्वाणसंगम नामक चरण मुनि विहार करते हुए आकाशमार्ग से जा रहे थे। चैत्यालय के कारण उनका आगे गमन नहीं हो सका, इस कारण उन्होंने नीचे उतरकर भगवान के प्रतिबिम्बों के दर्शन किये। मुनिराज चार ज्ञान के धारक थे। राजा इन्द्र ने उठकर उनको नमस्कार किया। उन मुनिराज ने समीप जाकर अमृतरूप वचन से इन्द्र का समाधान किया – 'हे इन्द्र! जो रहंट का एक घड़ा भरा होता है, वह खाली होता है और जो खाली है, वह भरता है; उसी प्रकार इस संसार की यात्रा क्षणभंगुर है, यह बदल जाए इसमें आश्चर्य नहीं है।'

मुनिराज के मुख से उपदेश सुनकर इन्द्र ने अपने पूर्व भव पूछे। तब अनेक गुणों से शोभित मुनिराज ने कहा – 'हे राजन! अनादि काल का यह जीव चार गतियों में परिभ्रमण करता आ रहा है। जो अनन्त भव यह धारण करता है, वे तो केवलज्ञान गम्य है, परन्तु कुछ भवों का कथन करता हूँ, वह तू सुन!

❖ ❖ ❖

शिखापद नामक नगर में एक अत्यन्त गरीब स्त्री रहती थी। उसका नाम कुलवन्ती था। उसकी आँख चिपड़ावाली, नाक चपटा, शरीर में अनेक व्याधियाँ थी। वह पापकर्म के उदय से लोगों की झूठन खाकर जीवित थी। उसके अङ्ग कुरूप; वस्त्र मेले-फटे; बाल रूखे थे। वह जहाँ जाती, वहाँ लोग उसका अनादर करते थे। उसे कहीं सुख नहीं मिला था। अन्त काल में उसे सुबुद्धि उत्पन्न हुई और उसने एक मुहुर्त का अनशन व्रत अंगीकार कर लिया। वह प्राण तजकर किंपुरुष देव की शीलधारा नाम की दासी हुई। वहाँ से चयकर रत्ननगर में गौमुख नामक कणबी की धरणी नाम की स्त्री के

www.vitragvani.com

गर्भ से सहस्त्रभाग नामक पुत्ररूप में उत्पन्न हुई। वहाँ उसने परम सम्यक्त्व पाकर श्रावक के व्रत अङ्गीकार किये और मरकर शुक्र नामक नौवें स्वर्ग में उत्तम देव का जन्म धारण किया। वहाँ से चयकर महाविदेहक्षेत्र के रत्नसंचय नगर में मणी नाम के मन्त्री की गुणावली नाम की स्त्री के सामन्तवर्द्धन नाम के पुत्ररूप में जन्म लिया। उसने पिता के साथ वैराग्य अङ्गीकार किया, अति घोर तप किया और तत्वार्थों में चित्त को लगाया। निर्मल सम्यक्त्वपूर्वक कषायरहित बाईस परिषहों को सहन करके शरीर का त्याग किया और नौंवे ग्रैवेयक में गया। वहाँ बहुत काल तक अहमिन्द्र का सुख भोगकर राजा सहस्त्रार विद्याधर की रानी हृदयसुन्दरी के गर्भ से तू इन्द्र नाम का पुत्र हुआ है और इस रथनपुर में जन्मा है। पूर्व के अभ्यास से तेरा मन इन्द्र के सुख में आसक्त हुआ और तू विद्याधरों का अधिपति इन्द्र कहलाया।

अब तू व्यर्थ खेद करता है कि मैं विद्या में अधिक था फिर भी शत्रुओं से पराजित हुआ। हे इन्द्र! कोई बुद्धिहीन कौदव बोकर शालि (चावलों) की इच्छा करे, वह निरर्थक है। यह प्राणी जैसा कर्म करता है, वैसा फल भोगता है। तूने पूर्व में भोग का साधन हो, वैसा शुभकर्म किया था, वह नष्ट हुआ है। कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती – इस विषय में आश्चर्य किसका? तूने इस जन्म में अशुभकर्म किये हैं, उसका यह अपमानरूप फल मिला है, उसमें रावण तो निमित्तमात्र है। तूने जो अज्ञानरूप चेष्टा की है, उसे क्या तू नहीं जानता? तू ऐश्वर्य के मद से भ्रष्ट हुआ है। बहुत दिन हुए, इसलिए तुझे याद नहीं है। मैं बताता हूँ, तू एकाग्रचित्त होकर सुन!

❖ ❖ ❖

एक बार अरिंजयपुर में ब्रह्मवेग राजा और वेगवती रानी की अहल्या नाम की पुत्री का स्वयंवर मण्डप रचा गया था। वहाँ दोनों श्रेणियों के विद्याधर अति अभिलाषा रखकर गये थे और तू भी बहुत बड़ी सम्पदासहित गया था। एक चन्द्रवर्त नाम के नगर का स्वामी राजा आनन्दमाल भी वहाँ आया था। अहल्या ने सबको छोड़कर उसके गले में वरमाला पहना दी थी। वह आनन्दमाल अहल्या से विवाह करके जैसे इन्द्र, इन्द्राणी के साथ सुख भोगता है, वैसे मनवांछित भोग भोगता था। जिस दिन से उसका विवाह अहल्या के साथ

www.vitragvani.com

हुआ, उसी दिन से तुझे उसके प्रति ईर्ष्या बढ़ गयी और तूने उसे अपना शत्रु मान लिया। कितने ही दिन वह घर में रहा। फिर उसे ऐसा विचार आया कि यह देह विनाशीक है, इससे मुझे कोई लाभ नहीं है, अब मैं तप करूँगा, जिससे संसार के दु:ख दूर हो। ये इन्द्रियों के भोग महा ठग हैं, इनमें सुख की आशा कैसे की जा सकती है ?

इस प्रकार मन में विचार करके वह ज्ञानी अन्तरात्मा आनन्दमाल समस्त परिग्रह का त्याग करके तपश्चरण करने लगा। एक दिन वह हंसावली नदी के किनारे कायोत्सर्ग धारण करके बैठा था, वहाँ तूने उसे देखा। उसे देखते ही तेरी क्रोधाग्नि भड़क उठी और तुझ मूर्ख ने उसका उपहास किया – 'अहो आनन्दमाल! तू काम-भोग में अति आसक्त था, अब अहल्या के साथ रमण कौन करेगा ?' वह तो विरक्तचित्त पहाड़ के समान निश्चल होकर बैठा था। उसका मन तत्त्वार्थ चिन्तन में अत्यन्त स्थिर था। इस प्रकार तूने परममुनि की अवज्ञा की। वे मुनिराज तो आत्मसुख में मग्न थे, उन्होंने तेरी बात को हृदय में प्रवेश नहीं होने दिया। उनके पास तेरा भाई कल्याण नाम का मुनि बैठा था। उन्होंने तुझसे कहा 'तूने इस मुनिराज की अवज्ञा की है, इस कारण तेरी भी पराजय होगी।' तब सर्वश्री नाम की स्त्री, जो कि सम्यग्दृष्टि और साधु पूजक थी, उसने नमस्कार करके कल्याण स्वामी को शान्त किया। यदि उसने उन्हें शान्त नहीं किया होता तो तू तत्काल साधु की क्रोधाग्नि से भस्म हो जाता।

तीन लोक में तप के समान कोई बलवान नहीं है। जैसी शक्ति साधुओं की होती है, वैसी इन्द्रादिकों की भी नहीं होती है। जो पुरुष साधुओं का अनादर करता है, वह भव-भव में अत्यन्त दु:ख पाकर नरक-निगोद में ही जा पड़ता है। अत: मन से भी साधुओं का अपमान मत करो। जो मुनिराज का अपमान करता है, वह इसभव, परभव में दु:खी होता है। जो मुनियों को मारता है अथवा पीड़ा करता है, वह अनन्त काल तक दु:ख भोगता है।

www.vitragvani.com

मुनियों की अवज्ञा के समान दूसरा पाप नहीं है। यह प्राणी मन, वचन और काया से जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल भोगता है – ऐसा जानकर धर्म में बुद्धि को करो और अपनी आत्मा को संसार दु:खों से छुड़ाओ।''

❖ ❖ ❖

महामुनि के मुख से अपने पूर्वभव की कथा सुनकर इन्द्र आश्चर्य को प्राप्त हुआ। वह नमस्कार करके मुनिराज से कहने लगा – 'हे भगवन्! आपके प्रसाद से मैंने उत्तम ज्ञान प्राप्त किया है। अब मेरे समस्त पाप क्षणमात्र में विलय को प्राप्त होंगे। साधुओं के सङ्ग से जगत में कुछ भी दुर्लभ नहीं है, अनन्त जन्मों में जो नहीं मिला, वह आत्मज्ञान भी उनके प्रसाद से मिलता है।' – ऐसा कहकर उसने बारम्बार मुनिराज की वन्दना की और मुनिराज आकाशमार्ग से विहार कर गये।

❖ ❖ ❖

इन्द्र गृहस्थाश्रम में अत्यन्त विरक्त हो गया। शरीर को पानी के परकोटे के समान असार जानकर, धर्म में निश्चलबुद्धि से अपनी अज्ञानचेष्टा की निन्दा करते हुए उस महापुरुष ने अपनी राज्यविभूति पुत्र को देकर अपने अनेक पुत्रों, राजाओं और लोकपालों सहित सर्व कर्मों की नाशक जिनेश्वरी दीक्षा अङ्गीकार कर ली। सर्व परिग्रहों का त्याग करके, निर्मल चित्तवाले उसने पहले जैसे शरीर को भोगों में लगाया था, वैसा ही तप के समूह में लगाया – ऐसा तप अन्य से नहीं हो सकता। महापुरुषों की शक्ति बहुत होती है। वह जैसे भोगों कें प्रवर्तते हैं, वैसे ही विशुद्ध भाव में भी प्रवर्तते हैं। इस प्रकार राजा इन्द्र बहुत काल तक तप करके, शुक्लध्यान के प्रताप से कर्मों का क्षय करके निर्वाण पधारे।

गौतमस्वामी, राजा श्रेणिक से कहते हैं हे श्रेणिक! 'देखो! महान मनुष्यों का चरित्र आश्चर्यकारी होता है। वे प्रबल पराक्रम के धारक बहुत काल तक भोग भोगकर, फिर वैराग्य लेकर अविनाशी सुख भोगते हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। वे समस्त परिग्रह का त्याग करके, क्षणमात्र में ध्यान के बल से महान पापों का क्षय करते हैं। जैसे बहुत काल से ईंधन की राशि का सञ्चय किया हो, वह क्षणमात्र में अग्नि के संयोग से भस्म हो जाती है – ऐसा जानकर हे प्राणी! आत्म कल्याण का प्रयत्न करो! अन्त:करण विशुद्ध करो! मरण का दिन कोई निश्चित नहीं है, अत: ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश से अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करो।' ●●

(पद्मपुराण से संक्षिप्त सार)

18 वाली मुनिराज की कथा

अब अपने इष्टदेव को विधिपूर्वक नमस्कार करके, उनके गुणों का स्तवन करके, किंहकिंधपुर में वानरवंशी राजा सूर्यरज की रानी चन्द्रमालिनी के वाली नामक अनेक गुण सम्पन्न पुत्र का वर्णन करते हैं। उसे हे भव्य! तू सुन! कैसा है वाली? सदा उपकारी, शीलवान, पण्डित, प्रवीण, धीर, लक्ष्मीवान, शूरवीर, ज्ञानी, अनेक कला संयुक्त, सम्यग्दृष्टि, महाबलवान, राजनीति में प्रवीण धैर्यवान, दयाचित्तवाला, विद्या के समूह से गर्वित (मण्डित) कान्तिवान और तेजस्वी है।

ऐसे पुरुष संसार में विरले ही होते हैं जो समस्त ढ़ाई द्वीप में जिनमन्दिरों के दर्शन का प्रयत्न करे। वे जिनमन्दिर अति उत्कृष्ट प्रभाव से मण्डित है। वाली तीनों काल अतिश्रेष्ठ भक्तियुक्त, संशयरहित, श्रद्धालु, जम्बूद्वीप के सभी चैत्यालयों के दर्शन कर आया है। वह महा पराक्रमी, शत्रुओं को जीतनेवाला, नगर के लोगों की नेत्ररूपी कुमुदी को प्रफुल्लित करने के लिए चन्द्रमा के समान, जिसे किसी की शङ्का नहीं, किंहकिंधपुर में देवों की तरह रमता है। किंहकिंधपुर महा रमणीय, नाना प्रकार के रत्नमयी महलों से मण्डित, गजतुङ्ग आदि से पूर्ण, अनेक प्रकार के व्यापार से भरा सुन्दर बाजारों वाला है।

वाली के क्रम से छोटा भाई सुग्रीव था। वह भी धीर-वीर, मनोज्ञ, रूपवान, नीतिवान और विनयवान है। दोनों ही वीर कुल के आभूषण है। सुग्रीव के पश्चात् सुप्रभा नाम की बहिन का जन्म हुआ, वह साक्षात लक्ष्मी, रूप में अतुल्य थी। सूर्यरज के छोटे भाई रक्षरज की रानी हरिकान्ता के नल और नील नाम के पुत्र हुए। सज्जनों को आनन्द देनेवाले, दुश्मन से निर्भय मानो किंहकिंधपुर की शोभा ही थे।

इन दोनों भाइयों (सूर्यरज और रक्षरज के) दो-दो महागुणवान पुत्र हुए। राजा

www.vitragvani.com

सूर्यरज अपने पुत्रों को युवा हुआ देखकर, मर्यादा पालक जानकर स्वयं विषयों को विष-मिश्रित अन्न के समान जानकर संसार से विरक्त हुआ। राजा सूर्यरज ज्ञानी है, उसने वाली को राज्य दिया और सुग्रीव को युवराज पद दिया तथा स्वयं इस चारगतिरूप जगत को दु:ख से पीड़ित देखकर विहतमोह नामक मुनि का शिष्य हुआ। भगवान ने जैसा चारित्र का स्वरूप कहा है, वैसा चारित्र उसने अङ्गीकार किया। मुनि सूर्यरज को शरीर में ममत्व नहीं है। जिनका अन्त:करण आकाशवत् निर्मल है, समस्त परिग्रहों से रहित होकर उन्होंने पवन की तरह पृथ्वी पर विहार किया, वे विषय-कषाय रहित मुक्ति के अभिलाषी हुए।

वाली के महापतिव्रता ध्रुवा नाम की स्त्री थी। वह गुणों के उदय से सैंकड़ों रानियों में मुख्य थी। वानरवंशियों के मुकुटराजा वाली देवों के समान सुख भोगते हुए किंहकिंधपुर में राज्य करते हुए रावण की आज्ञा से विमुख हुए। वाली अद्भुत कर्म करनेवाली विद्या से मण्डित है, इसलिए रावण ने वाली के पास एक दूत भेजा। वह दूत महा बुद्धिमान था। वह किंहकिंधपुर जाकर वाली से कहने लगा -

'हे वानरधीश! दशमुख ने तुम्हें आज्ञा दी है वह सुनो! दशमुख महाबली, महा तेजस्वी, महानीतिवान, महा उदयवान, प्रचण्ड और दण्ड देनेवाला, जिसके समान भरतक्षेत्र में दूसरा कोई नहीं है ऐसा, तुझको आज्ञा की है कि मैंने तुम्हारे पिता सुर्यरज को राजा यम को निकालकर किहकिंधपुर में स्थापित किया है और में तुम्हारे पिता से भी अधिक प्रेम तुमसे करूँगा। तुम शीघ्र ही हमारे पास आओ, हमें प्रणाम करो और अपनी बहिन श्रीप्रभा का विवाह हमारे साथ करो। हमारे साथ सम्बन्ध रखने से तुम्हें सब प्रकार से सुख होगा।' दूत ने कहा कि रावण की इस आज्ञा को प्रणाम करो।

वाली के मन में दूसरी बात का तो स्वीकार हुआ, परन्तु प्रणाम की बात स्वीकार

www.vitragvani.com

नहीं हुई, क्योंकि उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि देव-शास्त्र-गुरु के सिवाय अन्य किसी को प्रणाम नहीं करुँगा।

तब दूत ने फिर कहा – हे कपिध्वज! अधिक कहने से क्या लाभ? मेरा वचन तुम मानो। थोड़ी लक्ष्मी मिलने से गर्व मत करो। या तो दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करो अन्यथा आयुध पकड़ो। या तो सेवक बनकर स्वामी पर चँवर ढोलो या भागकर दशो दिशाओं में भटकते फिरो।

तब वाली ने व्याघ्रविलम्बी नाम सुभट ने कहा – हे कुदूत! नीच पुरुष! तू ऐसे अविवेकी वचन बोलता है, लगता है तू खोटे ग्रहों से ग्रसित है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर जिसका पराक्रम और गुण प्रसिद्ध है – ऐसे वाली की बात तेरे कुराक्षस ने सुनी नहीं लगती है। ऐसा कहकर उस सुभट ने दूत को मारने के लिए हाथ में तलवार ले ली। तब वाली ने उसे रोका और कहा कि इस बेचारे को मारने का क्या फायदा है? यह तो अपने स्वामी के समझाये हुए वचन बोलता है और रावण ऐसे वचन कहलवाता है; इसलिए उसका ही आयुष्य अल्प है।

दूत डरकर शीघ्रता से रावण के पास आया, रावण को सारी वास्तविकता बताई, जिससे रावण अत्यन्त क्रोधित हुआ। दुस्सह तेजवान रावण ने अख्तर पहिनकर विशाल सेनासहित शीघ्र कूच किया। रावण का शरीर तेजमय परमाणुओं से रचित है। रावण किहकिंधपुर आया, तब वाली भी संग्राम के लिए बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगा। उस समय महाबुद्धिमान, महानीतिवान सागर, वृद्धजन, मन्त्री आदि ने उसको शान्त करके कहा – हे देव! निष्कारण युद्ध करने से क्या लाभ है? क्षमा करो, पूर्व में अनेक योद्धा मान करके नष्ट हुए हैं। अष्टचन्द्र विद्याधर, अर्ककीर्ति के हाथ का आधार, जिसकी देव ने सहायता की थी तो भी मेघेश्वर जयकुमार के बाणों से क्षय को प्राप्त हुआ। रावण के पास बड़ी सेना है, जिसके सामने कोई देख नहीं सकता। अनेक आयुधों सहित है; अत: आप सन्देह की तुलारूप संग्राम के लिए मत चढ़ो।

वाली ने कहा कि हे मन्त्री! अपनी प्रशंसा करना योग्य नहीं है, तथापि मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि इस रावण को उसकी सेना के साथ क्षणमात्र में दायें हाथ की हथेली

www.vitragvani.com

से चूरा करने में समर्थ हूँ परन्तु यह भोग क्षणभङ्गुर है, इनके लिए निर्दय कर्म कौन करे ? जब क्रोधरूप अग्नि से मन प्रज्ज्वलित होता है, तब निर्दय कर्म होता है। इस जगत में भोग केले के थम्भ के समान असार है, उन्हें प्राप्त करके जीव मोहवश नरक में जा पड़ता है। नरक महा दु:खों से परिपूर्ण है। समस्त जीवों को जीवन प्रिय है और जीवों के समूह को नष्ट करके इन्द्रियों के भोग से सुख पाना वह गुण कहाँ है ? इन्द्रियसुख तो साक्षात् दु:ख ही है।

यह प्राणी संसाररूपी महाकूप में रहँट के घड़े के समान भरता है और खाली होता है। कैसे हैं ये जीव ? विकल्प जाल से अत्यन्त दु:खी है। श्री जिनेन्द्रदेव के चरणकमल संसार के पार होने में कारण है उनको नमस्कार करने के बाद मैं अन्य को नमस्कार कैसे करुँ ? मैंने पहले से ही ऐसी प्रतिज्ञा कर रखी है कि देव-शास्त्र-गुरु के अलावा अन्य किसी को प्रणाम नहीं करुँगा। अत: न तो मैं अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करुँगा और न युद्ध में अनेक प्राणियों का घात करुँगा। मैं तो मुक्ति प्रदायिनी सर्वसङ्गरहित दिगम्बरी दीक्षा धारण करुँगा। मेरे जो हाथ श्री जिनराज की पूजा में प्रवत्त हुए और पृथ्वी का रक्षण करने में प्रवर्ते हैं, वे मेरे हाथ अन्य को किस प्रकार प्रणाम करेंगे ? और जो हाथ जोड़कर दूसरे का किंकर होता है, उसका ऐश्वर्य क्या ? और जीवन क्या ? वह तो दीन है।

– ऐसा कहकर उसने सुग्रीव को बुलाकर कहा कि हे बालक ! सुन, तू रावण को नमस्कार कर या मत कर, अपनी बहिन उसको दे या नहीं दे, मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। मैं तो संसार मार्ग से निवृत्त हुआ हूँ, जो तुझे अच्छा लगे वह कर। ऐसा कहकर, सुग्रीव को राज्य देकर उसने गुणों से गरिष्ट श्री गगनचन्द मुनि के समीप पारमेश्वरी दीक्षा ग्रहण करली।

जिन्होंने अपने चित्त को परमार्थ में लगाया है – ऐसे वे वाली मुनिराज परमऋषि बनकर एक चिद्रुपभाव में रत हुए। जिनका सम्यग्दर्शन निर्मल है, जो सम्यग्ज्ञान

www.vitragvani.com

सहित है, वे सम्यकचारित्र में तत्पर बारह अनप्रेक्षाओं का निरन्तर विचार करने लगे। आत्मानुभव में मग्न, मोहजाल रहित, स्वगुणरूपी भूमि पर वे विहरने लगे। निर्मल आचारवान मुनियों द्वारा वह गुणभूमि सेवनीय है। वाली मुनिराज पिता की तरह समस्त जीवों पर दयालु बनकर बाह्याभ्यन्तर तप से कर्मों की निर्जरा करने लगे। वे शान्तबुद्धिवाले तपोनिध महाऋद्धि को प्राप्त हुए। वे ऊँची-ऊँची गुणस्थानरूपी सीढ़ियाँ चढ़ने का उद्यम करने लगे। जिन्होंने अन्तरङ्ग मिथ्यात्वरूप गाँठ भेद दी है, जो बाह्यभ्यान्तर परिग्रहरहित जिनसूत्र द्वारा करने योग्य और नहीं करने योग्य सब जानते थे, वे संवर द्वारा कर्मों के समूह को खपाते (नष्ट करते) थे, प्राणों की रक्षा जितना आहार लेकर वे धर्म की रक्षा के लिए प्राण टिकाते थे और मोक्ष के लिए धर्म का उपार्जन करते थे। भव्य जीवों को आनन्द देनेवाले, उत्तम आचरणवाले वाली मुनिराज मुनियों की उपमा के योग्य हुए और सुग्रीव ने रावण के साथ अपनी बहिन का विवाह किया, रावण की आज्ञा स्वीकार करते हुए किहकिंधपुर का राज्य किया।

❖ ❖ ❖

पृथ्वी पर जो-जो विद्याधरों की कन्यायें रूपवती थी, उन सबको रावण ने अपने पराक्रम से विवाहा। वह नित्यलोक नगर के राजा नित्यलोक और रानी श्रीदेवी की पुत्री रत्नावली से विवाह करके वापिस लंका आते हुए कैलाशपर्वत पर आया। वहाँ के जिन मन्दिरों के प्रभाव और वाली मुनिराज के प्रभाव से उसका पुष्पक विमान आगे नहीं बढ़ सका। वह विमान मन के वेग के समान चञ्चल था, परन्तु जैसे सुमेरु के तल के समीप आते ही वायुमण्डल रुक जाता है, उसी प्रकार विमान रुक गया।

उस समय विमान को रुका हुआ देखकर रावण ने मन्त्री मारीच से पूछा - हे मन्त्रीवर! यह विमान रुक क्यों गया है?

तब सभी बातों में प्रवीण मारीच ने कहा कि देव! सुनो, यह कैलाश पर्वत है। यहाँ कोई मुनि कायोत्सर्ग करके विराजमान है, वे शिला के ऊपर रत्न के स्तम्भ के समान ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के सन्मुख आतापन योग कर रहे हैं। उनके तेज के सन्मुख सूर्य का तेज भी फीका पड़ रहा है। वे महामुनि धीर-वीर हैं, घोर तप करते हैं, शीघ्र मुक्ति प्राप्त करना चाहते

www.vitragvani.com

हैं- इस कारण नीचे उतरकर उनके दर्शन करके आगे चलो तथा विमान को वापिस मोड़कर कैलास पर्वत को छोड़कर दूसरे मार्ग से ले चलो। यदि आप हठ करके इसे कैलाश पर्वत के ऊपर से ले जायेंगे तो विमान के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।

मारीच के वचन सुनकर राजा यम का विजेता रावण अपने पराक्रम से गर्वित होकर विमान से नीचे उतरा। वहाँ उसने ध्यानरूपी समुद्र में मग्न, अपने शरीर के तेज से दशो दिशाओं को प्रकाशित करते महामुनि वाली को देखा। वे दिग्गजों की सूण्ड समान दोनों भुजाओं को लम्बाकर कायोत्सर्ग में खड़े थे, उनके शरीर पर सर्प लिपट रहे थे, मानो कि वह चन्दन वृक्ष ही हो। आतापन शिला पर खड़े वे स्तम्भ ही लगते थे।

रावण, वाली मुनि को देखकर पूर्व के बैर का विचार करके क्रोधरूपी अग्नि से प्रज्ज्वलित हो गया। वह भृकुटि चढ़ाकर होंठ फड़फड़ाते हुए मुनि से कठोर वचन कहने लगा कि - 'अहो, यह तेरा कैसा तप है कि अभी भी अभिमान नहीं छूटा और मेरा विमान रोक दिया। कहाँ उत्तम क्षमारूप वीतराग का धर्म और कहाँ पापरूप क्रोध ? तू व्यर्थ मेहनत करता है, तू अमृत और विषय को एक करना चाहता है, इसलिए मैं तेरा गर्व दूर करूँगा। तुझ सहित कैलाश पर्वत को उखाड़कर समुद्र में फेंक दूँगा।''

ऐसे कठोर वचन बोलकर रावण ने विकराल रूप धारण किया। उसने जो विद्यायें साधी थी, उनकी अधिष्ठाता देवी चिन्तनमात्र में हाजिर हो गई। उस विद्या के बल से रावण ने महानरूप बनाया। वह धरती को भेद कर पाताल में प्रविष्ठ हो गया। महापाप में उद्यमी, प्रचण्ड क्रोध से लाल नेत्र करके, मुख से हुंकार करके भुजाओं द्वारा कैलाश को उखाड़ने का प्रयत्न किया। उस समय सिंह, हाथी, सर्प, हिरण और अनेक जाति के पक्षी भय से कोलाहल करने लगे, पानी की धारायें टूट गई और पानी गिरने लगा, वृक्ष टूट पडे, पर्वत के शिला और पाषाण गिरने लगे। उसकी विकराल आवाज से दशों दिशाओं में से कैलाश पर्वत हिलने लगा। जो देव वहाँ क्रीड़ा कर रहे थे, वे आश्चर्य करने लगे और दशों दिशाओं में देखने लगे। जो अप्सरायें लताओं में केलि कर रही थी, वे लता को छोड़कर आकाश में गमन करने लगी।

वाली, रावण का यह कर्तव्य जानकर अपने लिए किञ्चित् खेद को प्राप्त नहीं हुए,

www.vitragvani.com

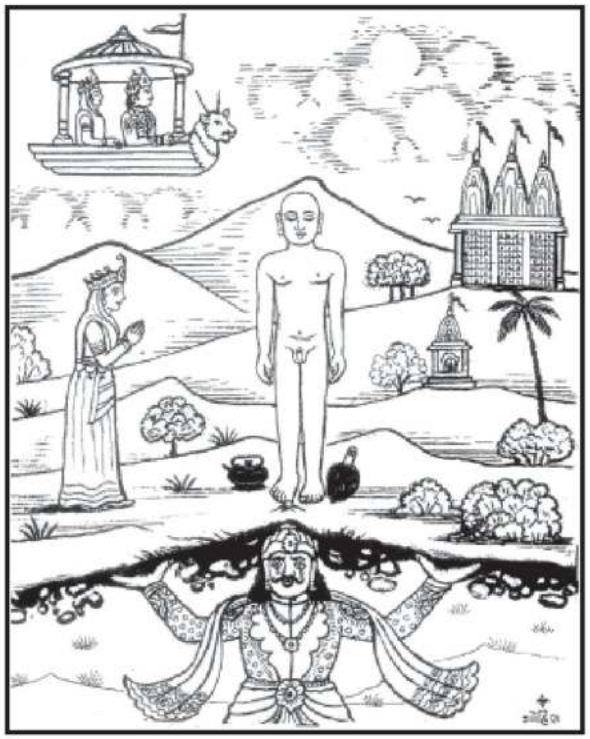

जैसे निश्चलपने खड़े थे, वैसे ही खड़े रहे। उनके मन में ऐसा विचार आया कि इस पर्वत पर भगवान के अतिउतङ्ग, रत्नमयी चैत्यालय भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित हैं, जहाँ सुर, असुर, विद्याधर निरन्तर पूजा-भक्ति करने आते हैं, उनमें दरार नहीं पड़े और यहाँ अनेक जीव विचरण करते हैं, उनको बाधा (कष्ट) न पहुँचे-ऐसे विचार से उन्होंने अपने पैर का अँगुठा धीरे से दबाया। इससे रावण महाभार से आक्रान्त होकर दब गया। उसके द्वारा बनाये हुए, अनेक रूप टूट गये, दु:ख और आकुलता से उसकी आँखों में से खून टपकने लगा, मुकुट टुट गया, सिर जकड़ गया, पर्वत बैठ गया और रावण के घुटने छिल गये, जाँघ भी छिल गई, वह तत्काल पसीने से भीग गया। धरती भी पसीने से भीग गई। रावण के गाल सङ्कुचित होकर कछुए जैसे हो गये, तब वह रोने लगा। इसी कारण पृथ्वी पर रावण कहलाया, जबकि अभी तक तो दशानन कहलाता था। उसके अत्यन्त दीन शब्द सुनकर उसकी रानी अत्यन्त विलाप करने लगी और मन्त्री, सेनापति सहित पहले तो भ्रम से वृथा युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। फिर ये सब मुनि का अतिशय है-ऐसा देखकर सबने शस्त्र नीचे डाल दिये। मुनि के कायबल ऋद्धि के प्रभाव से देवगण दुन्दुभी बजाले लगे और कल्पवृक्षों के पुष्पों की वृष्टि हुई, आकाश में देव-देवी नृत्य करने लगे, गीत की ध्वनि होने लगी। पश्चात् महामुनि ने दया करके अँगूठा ढीला किया।

रावण ने पर्वत के नीचे से निकलकर, वाली मुनि के समीप आकर नमस्कार करके क्षमायाचना की। जिसने तप का बल जाना था - ऐसा वह बारम्बार योगीश्वर की स्तुति करने लगा-हे नाथ! आपने घर में ही ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिनेन्द्र, मुनिन्द्र

www.vitragvani.com

और जिनशासन के अलावा अन्य किसी को प्रणाम नहीं करुँगा। यह सब आपकी सामर्थ्य का फल है। अहो! धन्य है, आपका निश्चय और धन्य आपके तप का बल! हे भगवान! आप योगशक्ति से तीन लोक को अन्यथा करने में समर्थ हो, आपको किसी के प्रति क्रोध नहीं है।

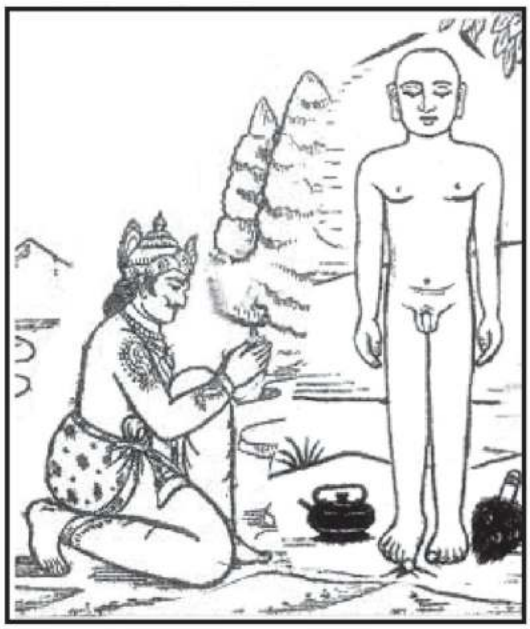

हे प्रभो! जैसा पूर्ण सामर्थ्य तप से मुनियों को प्रगट होता है, वैसा इन्द्रादि के भी नहीं होता। धन्य है आपके गुण, धन्य हैं आपका रूप, धन्य है आपकी कान्ति, धन्य है आपका आश्चर्यकारी बल और अद्भुत तप। तीन लोक में जो अद्भुत परमाणु है, उनके सुकृत का आधार आपका शरीर बना है। आज जन्म से ही महा बलवान, सर्वसामर्थ्य के धारण हैं। आपने नवयौवन में ही जगत की माया छोड़कर परमशान्तरूप अरहन्त की दीक्षा ग्रहण की है – ऐसा अद्भुत कार्य आपके जैसे सतपुरुषों से ही सम्भव है। मुझ पापी ने आपके जैस सत्पुरुष का अविनय किया और महापाप का बन्ध किया। धिक्कार है मेरे मन–वचन–काया को! मैं पापी, मुनिद्रोह में प्रवर्तित हुआ, जिनमन्दिरों का अविनय किया। आपके समान पुरुषरत्न और मेरे जैसे दुर्बुद्धि में सुमेरु और सरसों के दाने जितना अन्तर है। मुझ मरते हुए को आज आपने प्राण प्रदान किये है, आप दयालु हैं। हमारे जैसे दुष्ट–दुर्जन के प्रति भी क्षमाभाव रखते हैं।

इसी प्रकार उसने अन्य भी बहुत कुछ कहा। मैं जिनवाणी का श्रवण करता हूँ, जानता हूँ, देखता हूँ कि यह संसार असार है, अस्थिर है, दु:खस्वरूप है; तथापि मैं पापी, विषयों से विरक्त नहीं हुआ। धन्य है वे पुण्यवान महापुरुष, जो अल्प संसारी, मोक्ष के पात्र हैं, जो तरुण अवस्था में विषयों को छोड़कर मुनिव्रत का आचरण करते हैं।

इस प्रकार उसने मुनि की तीन प्रदक्षिणा की, नमस्कार किया और अपनी निन्दा

www.vitragvani.com

करते हुए अत्यन्त लज्जित होकर मुनि के समीप जो जिनमन्दिर थे, उनकी वन्दना हेतु प्रवर्तित हुआ। चन्द्रहास खड़ग को नीचे रखकर अपनी रानियों के साथ जिनवर की पूजन करने लगा। भुजा में से नसरूप तांता निकालकर वीणा की तरह बजाने लगा। उसने भक्ति में पूर्णभाव रखकर जिनेन्द्रदेव की स्तुति की और जिनेन्द्रदेव के गुणानुवाद इस प्रकार गाने लगा–

हे देवाधिदेव! लोकालोक के ज्ञाता, आपको नमस्कार हो। आपका तेज लोक को लाँघ जाता है। हे कृतार्थ महात्मा! नमस्कार। तीन लोक ने आपकी पूजा की है, आप वचन अगोचर हो, गुणों के समूह के धारक हो, महा ऐश्वर्य से मण्डित हो, मोक्षमार्ग के उपदेशक हो, सुख की उत्कृष्टता में पूर्ण हो, समस्त कुमार्ग से दूर हो, जीवों की मुक्ति का कारण हो, महाकल्याण का मूल हो, सर्व कर्मो के साक्षी हो। समस्त कुमार्ग से दूर हो, महाकल्याण का मूल हो, सर्व कर्मों के साक्षी हो। आपने ध्यान द्वारा पाप की भस्म / राख कर दी है, जन्म-मरण को दूर करनेवाले हो, आपका कोई गुरु नहीं है, आप सबके गुरु हो, आप किसी को नमते नहीं हो, आप सबके द्वारा नमस्कार योग्य हो, आदि-अनन्तरहित, समस्त रागादिक उपाधि से शून्य हो, सर्व के उपदेशक हो, द्रव्यार्थिकनय से सर्व नित्य और पर्यायार्थिक नय से सर्व अनित्य है- ऐसा कथन करनेवाले हो। किसी एक नय से द्रव्य-गुण भेदरूप तो किसी एक नय से द्रव्य-गुण अभेदरूप है-ऐसा अनेकान्त बतानेवाले जिनेश्वर हो। सर्वरूप, एकरूप, चिद्रूप, अरूप, जीवों को मुक्ति देनेवाले-ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार हो।

रावण द्वारा की गई जिनेन्द्र की स्तुति से धरणेन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। उसने अवधिज्ञान से रावण का वृत्तान्त जान लिया और हर्ष से उसके नेत्र खिल गये। उसने देदीप्यमान मणियों से अन्धकार दूर किया और वह नागपति शीघ्र पाताल में से कैलाशपर्वत पर आया। वहाँ आकर उसने जिनेन्द्र को नमस्कार किया, विधिपूर्वक समस्त मनोज्ञ द्रव्यों से भगवान की पूजन की और फिर रावण से कहने लगा – 'हे भव्य! तूने भगवान की बहुत स्तुति की है और जिनभक्ति के सुन्दर गीत गाये हैं, इससे मुझको बहुत आनन्द हुआ है। हे राक्षेश्वर! तू धन्य है, जिसने जिनराज की स्तुति की है। तेरे भाव से अभी मेरा आगमन

www.vitragvani.com

हुआ है, मैं तुझसे सन्तुष्ट हुआ हूँ। तू वर माँग! तू जो मनवाञ्छित वस्तु माँगेगा वह मैं तुझे दूँगा। जो वस्तु मनुष्यों को दुर्लभ है, वह मैं तुझे दूँगा।'

तब रावण ने कहा कि हे नागराज! जिन वन्दना के समान दूसरी कोई शुभ वस्तु है? कि जो मैं आपसे माँगू! जिनेन्द्र की वन्दना के समान अन्य कोई कल्याणकारी नहीं है, आराधना की गई यह जिनभक्ति मुक्ति का सुख देती है; अत: इसके समान अन्य कोई पदार्थ न है, न हुआ है और न कभी होगा। हे महामते! यदि इससे अधिक अन्य वस्तु नहीं है तो मैं क्या माँगू?

तब धरणेन्द्र ने कहा – तूने जो कहा, वह सब सत्य है, जिनभक्ति से सब सिद्ध होता है; उससे कुछ भी दुर्लभ नहीं है। तेरे समान और इन्द्र के समान अनेक पद जिनभक्ति से ही मिलते हैं और इस संसार का सुख तो अल्प तथा विनाशीक है, उसकी क्या बात? मोक्ष का जो अविनाशी और अतीन्द्रिय सुख है, वह भी जिनभक्ति से प्राप्त होता है।

हे रावण! यद्यपि तू महान त्यागी है, विनयवान, बलवान, ऐश्वर्यवान और गुणों से शोभित है, तथापि मेरा दर्शन तुझे व्यर्थ न हो; अत: मैं तुमसे विनती करता हूँ कि कुछ माँग! मैं यह जानता हूँ कि तू याचक नहीं है परन्तु मैं अमोघविजय नाम की शक्तिविद्या तुझे देता हूँ, उसे हे लंकेश! तू ग्रहण कर। हमारा स्नेह मत तोड़। हे रावण! किसी की दशा सदा एक समान नहीं रहती। सम्पत्ति के बाद विपत्ति आ पड़े तो यह शक्ति तेरे शत्रु का नाश और तेरी रक्षा करेगी। मनुष्यों की तो बात ही क्या, इससे देव भी डरते हैं। यह शक्ति अग्नि ज्वाला से मण्डित विस्तीर्ण शक्ति की धारक है। तब रावण ने धरणेन्द्र की आज्ञा लोपने में असमर्थ होने से शक्ति को ग्रहण किया क्योंकि किसी के पास से कुछ लेता लघुता है; अत: इस बात से रावण प्रसन्न नहीं हुआ। रावण अति उदारचित्त है। रावण ने हाथ जोड़कर धरणेन्द्र को नमस्कार किया और धरणेन्द्र

www.vitragvani.com

अपने स्थान को चला गया। रावण ने एक माह तक कैलाश पर्वत पर रहकर महाभक्ति से भगवान के चैत्यालयों की पूजा की, वाली मुनि की स्तुति की और फिर अपने स्थान को चला गया।

वाली मुनि ने मन के क्षोभ से जो कुछ कर्म उपार्जित किया था, उसका गुरुजनों के पास जाकर प्रायश्चित कर लिया और शल्य दूर करके परम सुखी हुए। जैसे विष्णुकुमार मुनि ने मुनियों की रक्षा के निमित्त बलि का पराभव किया था और फिर गुरु के समीप प्रायश्चित लेकर परम सुखी हुए थे; उसी प्रकार वाली मुनि ने चैत्यालयों की और अनेक जीवों की रक्षा के निमित्त रावण का पराभव किया और कैलाश को बचाया, फिर गुरु के समीप प्रायश्चित लेकर शल्य मिटाकर परम सुखी हुए। चारित्र से, गुप्ति से, धर्म से, अनुप्रेक्षा से, समिति से, परीषह सहन करने से महासंवर को प्राप्त करके, कर्मों की निर्जरा करके वाली मुनि ने केवलज्ञान को प्राप्त किया और तत्पश्चात् आठ कर्मों से रहित होकर लोक के शिखर अविनाशी स्थान में अविनाशी सुख को प्राप्त हुए।

- पद्मपुराण में से

मुनिराजों से जैनशासन की शोभा!

मुनिराज निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लीन रहते हैं। वे कभी-कभी पिछली रात्रि में थोड़ी निद्रा लेते हैं, उन्हें विशेष प्रमाद नहीं होता। **अहा, जिनका आत्मा चैतन्य की साधना में अत्यन्त जागृत है, उन्हें नींद लेना कैसे सुहाएगा? जागृत रहकर सिद्धपद को साधनेवाले मुनिराजों से जैनशासन की शोभा है।** उनका समावेश 'णमो लोए सव्वसाहूणं' में होता है।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वीतराग-विज्ञान, भाग ६, पृष्ठ २८

राजा वज्रजंघ की कथा

19 अनुमोदना का उत्तम फल

एक बार राजा ऋषभदेव के जीव राजा वज्रजंघ को वन में मुनिराज के आहारदान का लाभ प्राप्त हुआ। अपने द्वारपाल के कहने से उन्हें ज्ञात हुआ कि ये दोनों मुनि तो उनके ही अन्तिम पुत्र थे। इस कारण राजा वज्रजंघ अपनी सहधर्मिणी रानी श्रीमती के साथ अत्यन्त प्रेम से वन में मुनि के समीप गये और पुण्य-प्राप्ति की इच्छा से सद्गृहस्थों का धर्म सुनने लगे। दान, पूजा, शील और प्रोषध आदि धर्मों का विस्तृत स्वरूप सुनने के पश्चात् राजा वज्रजंघ ने मुनिराज से अपने और श्रीमती के पूर्व भव के सम्बन्ध में पूछा। राजा के प्रश्न के उत्तररूप में दमधर नामक मुनि, अपनी दाँतों की किरणों से दशों दिशाओं में प्रकाश फैलाते हुए दोनों के पूर्व भव इस प्रकार कहने लगे –

★ ★ ★

'हे राजन! तू इस जन्म से (पूर्व) के चौथे भव में जम्बूद्वीप के विदेहक्षेत्र में स्थित गंधिला देश के सिंहपुर नगर में राजा श्रीषेण और अतिशय मनोहर सुन्दरी नाम की रानी का बड़ा पुत्र था। वहाँ तुमने विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की थी, परन्तु संयम प्रगट नहीं कर सके थे और विद्याधर राजाओं में चित्त लगाकर मृत्यु को प्राप्त हुए, जिससे गंधिला देश के विजयार्द्ध पर्वत की उत्तरश्रेणी पर 'अलका' नगरी में महाबल राजा हुए। वहाँ तुमने मनवांछित भोगों का अनुभव किया, तत्पश्चात् स्वयंबुद्ध मन्त्री के उपदेश से आत्मज्ञान

www.vitragvani.com

प्राप्त करके जिनपूजा की और समाधिमरण-पूर्वक शरीर का त्याग करके स्वर्ग में ललितांगदेव हुआ और वहाँ से च्युत होकर अब वज्रजंघ राजा हुए हो।

यह श्रीमती भी पहले एक भव में घातकीखण्ड द्वीप में पूर्व मेरु से पश्चिम की ओर गंधिला देश के पलालपर्वत नामक गाँव में किसी गृहस्थ की पुत्री थी। वहाँ से किसी पुण्य के उदय से यह उसी देश के पाटली नामक गाँव में किसी वणिक के यहाँ निर्णामिका नामक पुत्री हुई। वहाँ इसने पिहितास्त्रव नामक मुनिराज के उपदेश से विधिपूर्वक जिनेन्द्र गुणसम्पत्ति और श्रुतज्ञान नामक व्रतों के उपवास किये, जिसके फलस्वरूप श्रीप्रभ विमान में स्वयंप्रभा देवी हुई थी। जब तुम ललितांगदेव की पर्याय में थे, तब यह तुम्हारी प्रिय देवी थी और वहाँ से चयकर वज्रदन्त चक्रवर्ती की श्रीमती नामक पुत्री हुई है।'

इस प्रकार राजा वज्रजंघ ने श्रीमती के साथ अपने पूर्व भव सुनकर कौतूहल से अपने प्रिय सम्बन्धियों के पूर्व भव पूछते हुए कहा – 'हे नाथ! वह मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन्न मुझे मेरे भाई के समान अतिशय प्रिय हैं। अत: आप प्रसन्न होकर उनके पूर्व भव बतलाने का अनुग्रह करें।' इस प्रकार राजा का प्रश्न सुनकर उत्तर में मुनिराज कहने लगे कि –

❖ ❖ ❖

'हे राजन! इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेहक्षेत्र में एक वत्सकावती नाम का देश है, जो स्वर्ग के समान सुन्दर है। उसमें एक प्रभाकरी नाम की नगरी है। यह मतिवर पूर्व भव में उसी नगरी में अतिगृद्ध नाम का राजा था, वह विषयों में अत्यन्त आसक्त रहता था। उसने आरम्भ और परिग्रह के करण नरक का बन्ध कर लिया था, जिसके फलस्वरूप वह मरकर पंखप्रभा नामक चौथे नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ दस सागर तक नरकों के दु:ख भोगता रहा। उसने पूर्व भव में उसी प्रभाकर नगरी के बाजु में एक पर्वत पर अपना बहुत-सा धन गाड़ रखा था, वह नरक से निकलकर उसी पर्वत पर सिंह हुआ। तत्पश्चात् किसी एक दिन प्रभाकरी नगरी के राजा प्रीतिवर्द्धन अपने प्रतिकूल छोटे भाई को जीतकर वापिस जाते हुए उसी पर्वत पर रुके। वहाँ वे अपने छोटे भाई के साथ बैठे थे, इतने में पुरोहित ने आकर उनसे कहा कि आज यहाँ आपको मुनिदान के प्रभाव से महान लाभ

www.vitragvani.com

होनेवाला है। हे राजन! वे मुनिराज यहाँ किस प्रकार प्राप्त हो सकेंगे ? इसका उपाय मैं तुम्हें कहता हूँ, सुनो!'

हम नगर में ऐसी घोषणा करा देते हैं कि आज राजा के अत्यन्त आनन्द का समय है, अत: सभी नगरजन अपने–अपने घरों पर ध्वजाएँ फहराएँ, तोरण बाँधें और घर के आँगन तथा गलियों में सुगन्धित जल छाँटकर इस प्रकार फूल बिछा दें कि बीच में कहीं जगह नहीं रहे। ऐसा करने से नगर में जानेवाले मुनि, मार्ग अप्रासुक होने के कारण नगर को अपने विहार के अयोग्य समझकर वहाँ से वापस यहाँ अवश्य पधारेंगे ही। पुरोहित के वचनों से सन्तुष्ट होकर राजा प्रीतिवर्धन ने ऐसा ही किया। इस कारण मुनिराज वापस आकर, वहाँ महिने का उपवास पूरा करके आहार के लिए घूमते–घूमते क्रम से राजा प्रीतिवर्धन के गृह में दाखिल हुए। राजा ने उनको विधिपूर्वक आहारदान दिया। जिससे देवों ने आकाश से रत्नों की वर्षा की और वे रत्न मनोहर शब्द करते हुए जमीन पर गिरे। राजा अतिगृद्ध के जीव सिंह को यह सब देखकर जातिस्मरण ज्ञान हो गया और वह अत्यन्त शान्त हो गया। उसकी मूर्च्छा (मोह) मिट गयी। उसने शरीर और आहार से भी ममत्व त्याग दिया। वह समस्त कषायों का त्याग करके एक शिला पर बैठ गया।

मुनिराज पिहितास्रव ने भी अपने अवधिज्ञानरूपी नेत्र से सिंह की समस्त स्थिति जानकर राजा प्रीतिवर्धन से कहा – 'हे राजा! इस पर्वत पर कोई श्रावक होकर तप कर रहा है, तुझे उसकी सेवा करनी चाहिए। वह आगामी काल में भरतक्षेत्र के प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव का चक्रवर्ती पद का धारक पुत्र होगा और उसी भव से मोक्ष प्राप्त करेगा, इसमें कोई शङ्का नहीं है।'

मुनिराज के इन वाक्यों से राजा प्रीतिवर्धन को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसने मुनिराज के साथ वहाँ जाकर अत्यन्त साहस करनेवाले सिंह को देखा। तत्पश्चात् राजा ने उसकी सेवा और समाधि में योग्य सहायता की और 'वह देव होनेवाला है' – ऐसा समझकर मुनिराज ने भी उसके कान में नमस्कार मन्त्र सुनाया। वह सिंह अठारह दिनों तक आहार का त्याग करके समाधिपूर्वक शरीर का परित्याग करके दूसरे स्वर्ग में दिवाकर विमान में दिवाकरप्रभ नाम का देव हुआ।

www.vitragvani.com

इस आश्चर्य को देखकर राजा प्रीतिवर्धन का सेनापति, मन्त्री और पुरोहित भी तुरन्त ही अत्यन्त शान्त हो गये। इन सब ने राजा के द्वारा दिये गये पात्रदान को अनुमोदना की थी, जिसके फलस्वरूप आयु पूर्ण होने के पश्चात् उत्तरकुरु भोगभूमि में आर्य हुए और आयु के अन्त में वहाँ से ईशान स्वर्ग में लक्ष्मीमान देव हुए। उनमें से मन्त्री कांचन नामक विमान में कनकाभ नाम का देव हुआ, पुरोहित ऋषि नामक विमान में प्रभंजन नाम का देव हुआ और सेनापति प्रभा नामक विमान में प्रभाकर नाम का देव हुआ। तुम्हारी ललितांग देव की पर्याय में ये सब तुम्हारे परिवार के ही देव थे। सिंह का जीव वहाँ से चयकर राजा मतिसागर और श्रीमती का पुत्र होकर तुम्हारा मतिवर नाम का मन्त्री हुआ है। प्रभाकर का जीव वहाँ से चयकर अपराजित सेनानी आर्जवा का पुत्र होकर तुम्हारा अकम्पन नाम का सेनापति हुआ है। कनकप्रभ का जीव पिता श्रुतकीर्ति और माता अनन्तमति का पुत्र होकर तुम्हारा आनन्द नाम का प्रिय पुरोहित हुआ है तथा प्रभंजनदेव वहाँ से च्युत होकर धनदत्त और धनदत्ता का पुत्र होकर तुम्हारा धनमित्र नाम का सम्पत्तिशाली सेठ हुआ है। इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर राजा वज्रजंघ और श्रीमती दोनों को धर्म में अत्यन्त प्रीति हुई।

राजा वज्रजंघ ने फिर अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक उन मुनिराज से पूछा कि यह नेवला, सिंह, बन्दर और सूअर चारों ही आपके मुख कमल में दृष्टि लगाकर इन मनुष्यों के मध्य निर्भय होकर कैसे बैठे हैं? इस प्रकार राजा के पूछने पर चारित्रऋद्धि के धारक ऋषिराज बोले – हे राजन! यह सिंह पूर्व भव में इसी देश में प्रसिद्ध हस्तिनापुर नगर में सागरदत्त और धनवती का उग्रसेन नाम का पुत्र हुआ था। वह उग्रसेन स्वभाव से ही अत्यन्त क्रोधी था – इस कारण उस अज्ञानी ने अनन्तानुबन्धी क्रोध के निमित्त से तिर्यंच आयु का बन्ध कर लिया था। एक दिन उस दुष्ट ने राजा के भण्डार की रक्षा करनेवाले लोगों को मारकर वहाँ से बहुत सा घी और चावल

www.vitragvani.com

निकालकर वैश्या को दे दिए। जब राजा ने यह समाचार सुने तो उसने उसे बाँधकर तमाचों, घूसों और डण्डों से बहुत मारने का दण्ड दिया। जिससे अत्यन्त वेदना से मरकर वह यहाँ सिंह हुआ है।

हे राजन! यह सूअर पूर्व भव में विजय नामक नगर में राजा महानन्द और बसन्तसेना का हरिवाहन नाम का पुत्र हुआ था। वह अनन्तानुबन्धी मान के उदय से हड्डियों के समान (कठोर) मान को धारण करता था। अत: माता-पिता का विनय भी नहीं करता था। इस कारण उसे तिर्यंच आयु का बन्ध हो गया था। एक दिन वह माता-पिता की नहीं मानकर दौड़ता हुआ जा रहा था कि पत्थर से टकराने से सिर फट गया और आर्त्तध्यान करके यह सूअर हुआ है।

हे राजन! यह बन्दर पूर्व भव में धन्युधर नामक नगर में कुबेर नामक वनिक की सुदत्ता नाम की स्त्री से नागदत्त नाम का पुत्र हुआ था। वह अनन्तानुबन्धी माया को धारण करता था। एक दिन उसकी माता नागदत्त की छोटी बहिन के विवाह के लिए अपनी दुकान में से इच्छानुसार चुन-चुनकर कुछ सामान ले रही थी। नागदत्त उसे छकाना चाहता था परन्तु किस प्रकार छकाना चाहिए - इसका उपाय वह नहीं जानता था। अत: इसी उलझन में अचानक आर्तध्यान से मरकर तिर्यंच आयु के बन्ध से यह बन्दर हुआ है।

हे राजन! नेवला भी पूर्व भव में इसी सुप्रतिष्ठित नगर में लोलुप नाम का हलवाई था। वह धन का अत्यन्त लोभी था। किसी समय वहाँ का राजा जिनमन्दिर बना रहा था और उसके लिए मजदूरों से ईंटें मँगवाता था। वह लोभी मूर्ख हलवाई, मजदूरों को कुछ खाने को देकर उनके पास से चुपचाप थोड़ी ईंटें अपने घर में डलवा देता था। ये ईंटें तोड़ने पर उनमें से सोना निकला। यह देखकर उसका लोभ बहुत बढ़ गया। वह सुवर्ण के लोभवश बारम्बार मजदूरों को खाने के लिए कुछ देकर ईंटें अपने घर में डलवाने लगा। एक दिन उसको अपनी पुत्री के गाँव जाना पड़ा। वह जाते समय अपने पुत्र से कहता गया कि हे पुत्र! तू भी मजदूरों को कुछ खाने को देकर ईंटें घर में रखवा लेना - ऐसा कहकर वह तो चला गया परन्तु उसके पुत्र ने उसके कहे अनुसार ईंटें घर में नहीं रखवाई। जब वह वापस आया और उसे यह ज्ञात हुआ तो उसने लकड़ी और पत्थरों से अपने पुत्र को मार

www.vitragvani.com

दिया, और उसके दु:ख से दु:खी होकर क्रोध से अपना पैर भी काट दिया। अन्त में वह राजा द्वारा मारा गया और यहाँ यह नेवला हुआ है।

हे राजन! तुम्हारे आहारदान को देखकर ये चारों अत्यन्त हर्षित हुए हैं और इनको जातिस्मरण ज्ञान हो गया है – इस कारण ये संसार से विरक्त हो गये हैं। तुम्हारे द्वारा दिये गये आहारदान की अनुमोदना करने से इन सबने उत्तम भोगभूमि की आयु का बन्ध कर लिया है। इसी कारण भय छोड़कर धर्म सुनने की इच्छा से यहाँ बैठे हुए हैं।

हे नरश्रेष्ठ! इस भव से आठवें भव में तुम ऋषभदेव तीर्थंकर भगवान होकर मोक्ष प्राप्त करोगे और उसी भव में ये सब भी सिद्ध होंगे – इसमें कोई सन्देह नहीं है और वहाँ तक ये पुण्यशाली जीव तुम्हारे साथ ही देव और मनुष्यों के उत्तम-उत्तम सुख का अनुभव करते रहेंगे। यह श्रीमती का जीव भी तुम्हारे तीर्थ में दानतीर्थ की प्रवृत्ति चलानेवाला श्रेयांस राजा होगा और उस भव में तुम्हारा गणधर होकर उत्कृष्ट कल्याण अर्थात् मोक्ष प्राप्त करेगा – ऐसा नि:सन्देह जान।

इस प्रकार चारणऋद्धिधारी मुनिराज के वचन सुनकर राजा वज्रजंघ का शरीर हर्ष से रोमांचित हो गया और ऐसा लगता था कि मानों प्रेम के अंकुरों से व्याप्त ही हो गया हो। तत्पश्चात् राजा वज्रजंघ, रानी श्रीमती तथा सिंह, बन्दर, नेवला और सुअर मृत्यु हो प्राप्त करके भोगभूमि में उत्पन्न हुए।

(पापभावों से तिर्यंच हुए जीव, मुनिराज के आहारदान की मात्र हर्ष से अनुमोदना करने से पुण्यबन्ध करके भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं और वहाँ सम्यग्दर्शन प्राप्त करके श्री ऋषभदेव के जीव के साथ-साथ आठ भवों तक रहकर गणधरादि होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। परम पूज्य गुरुदेवश्री जो फरमाते हैं कि कल का भारवाहक आज मोक्ष प्राप्त करता है – यह द्रव्यस्वभाव की अचिन्त्यता ऐसे समझ सकते हैं।)

– महापुराण में से संक्षिप्त सार

द्रोपदी के जीव की भवावली

20 देखो, देखो! विराधना का फल

एक बार महापराक्रमी पाण्डव, संसार से भयभीत चित्त होकर, धर्मश्रवण का आकांक्षा से भगवान श्री नेमिनाथ के समवसरण में पहुँचें। पल्लवदेश में समवसरण और चतुर्निकाय के देवों, तथा मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं की सभा के मध्य विराजमान जिनेन्द्र प्रभु को देखकर उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रभु के दर्शन और पूजन की। तत्पश्चात् श्री जिनेन्द्र प्रभु की दिव्यध्वनि में शुद्धात्मतत्त्व के स्वरूप का रसपान करके सभी अत्यन्त प्रमुदित हुए। तत्पश्चात् अपने पूर्व भव जानने की जिज्ञासा से उन्होंने प्रभु श्री के पूर्व भव सम्बन्धी प्रश्न किया। उसके उत्तर में प्रभु की दिव्यध्वनि में यह वर्णन आया–

★ ★ ★

इस भरतक्षेत्र में चम्पापुरी के राजा मेघवाहन की नगरी में सोमदेव ब्राह्मण और उसकी पत्नी सोमिला रहते थे। उनके तीन पुत्र थे, जिनके नाम सोमदत्त, सोमिल और सोमभूति थे। उनके मामा का नाम अग्निभूति, मामी का नाम अग्निला था; उनकी तीन पुत्रियाँ धनश्री, मित्रश्री और नागश्री थीं। इन तीनों का विवाह क्रमशः सोमदत्त, सोमिल, और सोमभूति के साथ हुआ। इस प्रकार सोमदेव का पूरा परिवार महाजिनधर्मी, संसार–शरीर से उदास और शास्त्रज्ञ था, किन्तु तीसरे भाई की पत्नी नागश्री धर्म से विमुख थी।

एक दिन धर्मरुचि नाम के मुनिराज, आहार के समय, श्रावक का घर जानकर बड़े भाई सोमदत्त के यहाँ आहार के लिए पधारे। किसी कार्य की आकुलतावश सोमदत्त अपने छोटे भाई की पत्नी नागश्री को आहारदान की आज्ञा करके चले गये। उस पापिन ने

www.vitragvani.com

अत्यन्त क्रूरभाव से मुनिराज को विषसहित आहार दिया। वे समभावी महामुनि तो उस आहार से समाधिमरणपूर्वक प्राण त्याग कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हो गये।

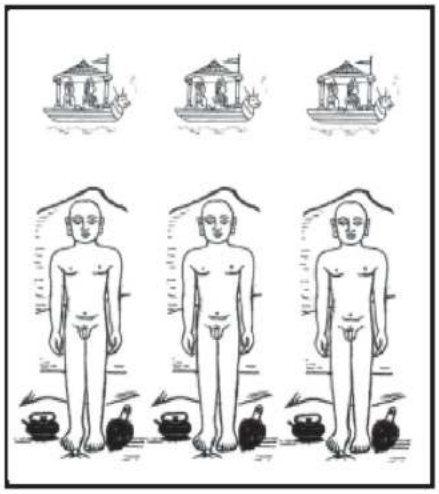

तीनों भाईयों ने नागश्री का यह कुकृत्य जानकर, वरण नामक मुनिराज के समीप जिनदीक्षा धारण कर ली और दोनों भाईयों की पत्नियाँ धनश्री व मित्रश्री ने गुणवती आर्यिका के समीप आर्यिका व्रत ग्रहण कर लिये। संसारवास से विरक्त होकर तीनों मुनि और दोनों आर्यिकाएँ रत्नत्रय की शुद्धता के लिए तपश्चरण में उद्यमवन्त हुए।

श्रीगुरु के मुख से दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद धारणकर सोमदत्त आदि तीनों भाई मुनि और दोनों आर्यिकाएँ आराधना आराधकर आरण-अच्युत स्वर्ग में बाईस सागर की आयु के धारक देव हुए।

❖ ❖ ❖

इधर तीसरे भाई की पत्नी नागश्री, जिसने मुनिराज को आहार में विष दिया था, मरकर पाँचवें नरक गयी। वहाँ सत्रह सागर तक महादु:ख भोगा। वहाँ से निकलकर तिर्यञ्च हुई तथा दो सागर तक त्रस-स्थावर योनियों में भ्रमण किया। तत्पश्चात् चम्पापुर में एक चाण्डाल की पुत्री हुई। वहाँ समाधिगुप्त मुनिराज का उपदेश प्राप्त कर, मद्य-माँस-मधु का त्याग किया। वहाँ से मरकर चम्पापुर में ही सुबन्धु नामक सेठ की सुकुमारिका नाम की पुत्री हुई, परन्तु पूर्व के पापोदय से शरीर रूपवान होने पर भी महादुर्गन्धयुक्त था; इस कारण कोई उससे विवाह नहीं करना चाहता था। दुर्गन्धयुक्त शरीर होने के कारण सब दुर्गन्धा कहते थे।

अहो! वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की विराधना का कैसा कष्टमय फल भोगना पड़ता है; अत: हमें भूलकर भी कभी सच्चे देव-गुरु-धर्म की विराधना नहीं करना चाहिए।

उसी चम्पापुरी में धनदेव नामक सेठ के दो पुत्र थे। उनमें से बड़े पुत्र जिनदेव के

www.vitragvani.com

साथ दुर्गन्धा की सगाई हुई, किन्तु वह इस सम्बन्ध में खेद-खिन्न होकर, मुनि हो गया। उसके छोटे भाई जिनदत्त ने परिवार के आग्रह से दुर्गन्धा के साथ विवाह तो कर लिया, परन्तु वह भी उसे छोड़कर देशान्तर चला गया। इस कारण दुर्गन्धा अपनी निन्दा करती हुई तप करने लगी। एक दिन उसके गृह में क्षाता नामक आर्यिका आहार के लिए पधारी। उन्हें आहार के पश्चात् उनके साथ दो नवयौवन आर्यिकाओं को देखकर दुर्गन्धा ने बड़ी अर्यिकाजी से पूछा – हे माताजी! ये दोनों आर्यिकाएँ अति रूपवान हैं, इनको नवयौवन में किस कारण वैराग्य हुआ है।

तब दयावान आर्यिका माताजी उनके वैराग्य का कारण दुर्गन्धा को प्रतिबोधनार्थ कहने लगी – 'हे सुकुमारी! जिस कारण से इन दोनों को वैराग्य हुआ, वह तू भी सुन –

❖ ❖ ❖

ये दोनों आर्यिकाएँ पूर्व भव में सौधर्म इन्द्र की देवियाँ थीं। एक का नाम विमला और दूसरी का नाम सुप्रभा था। एक दिन ये नन्दीश्वर द्वीप में जिनपूजा के लिए गयीं थीं, वहीं इनको वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब इन दोनों ने प्रतिज्ञा की कि देवगति में तो तप नहीं है, किन्तु हम मनुष्यभव पाकर महातप करेंगी, जिससे स्त्रीपर्याय का अभाव होकर भवभ्रमण का अभाव हो।'

इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध होकर, देवपर्याय से च्युत होकर, साकेतपुरी में राजा श्रीषेण की रानी श्रीकान्ता की पुत्रियाँ हुईं। जब ये दोनों यौवनवन्ती हुई, तब पिता ने इनका स्वयंवर रचा। उसी समय इन दोनों बहिनों को पूर्व जन्म की प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया और इससे ये परिवार का त्याग करके आर्यिका हुईं हैं।

आर्यिका माताजी के यह वचन सुनकर, वैराग्य उत्पन्न होने से दुर्गन्धा भी आर्यिका हो गयी। आर्यिका माताजी के साथ रहकर तपश्चरणादि करके उसने अपने शरीर को सुखा दिया, किन्तु मिथ्यात्व का परित्याग नहीं कर पायी।

www.vitragvani.com

एक दिन बसन्तसेना वेश्या वन में पाँच पुरुषों के साथ क्रीड़ा करने आई थी, उसे देखकर दुर्गन्धा को यह भाव उत्पन्न हुआ कि अहा! यह कैसी भाग्यवती है! ऐसा घृणित परिणाम उत्पन्न होने से अपयशप्रकृति का बन्ध हो गया, इसी कारण जगत के अज्ञानी लोग द्रोपदी को पञ्च भरतारी कहते हैं।

तत्पश्चात् वह तपस्विनी समाधिमरण करके, पूर्व के नागश्री के भव का पति, जो सोमभूति का जीव, स्वर्ग में देव था, उसकी देवी हुई।

वहाँ की आयु पूर्ण करके, वहाँ से च्युत होकर सोमदत्त, सोमदेव, सोमभूति – ये तीनों राजा पाण्डव की रानी कुन्ती के तीन पुत्र – युधिष्ठर, भीम, अर्जुन हुए और धनश्री, मित्रश्री के जीव, रानी माद्री के नकुल और सहदेव नाम के पुत्र हुए तथा नागश्री का जीव, राजा द्रुपद की रानी दृड़रथा के द्रोपदी नाम की पुत्री हुई। पूर्व भव के स्नेहवश अर्जुन के साथ उसका विवाह हुआ।

❖ ❖ ❖

पाण्डवों ने पूर्व भव का यह वृतान्त श्री नेमिजिनेन्द्र की दिव्यध्वनि से ज्ञात किया। उन्होंने यह भी जाना कि युधिष्ठर, भीम, अर्जुन – तीनों भाई तो इसी भव में मोक्ष जाएँगे और नकुल –सहदेव सर्वार्थसिद्धि जाकर, एक भव धारण करके मोक्ष प्राप्त करेंगे। द्रोपदी शुद्ध तप के प्रभाव से अच्युत स्वर्ग में देव होगी और वहाँ से मनुष्य होकर निरञ्जनधाम प्राप्त करेगी। इस प्रकार पूर्व की भवावली सुनकर उन्होंने संसार से विरक्त होकर तत्काल जिनेश्वर के समीप संयम अङ्गीकार किया। माता कुन्ती, द्रोपदी, सुभद्रा आदि अनेक रानियाँ भी राजमती आर्यिका के समीप आर्यिका हो गयीं।

द्रोपदी के जीव ने नागश्री के भव में क्रोधित होकर मुनिराज को विषमय आहार दिया, उन परिणामों का फल बाईस सागर तक नरकादि दु:खों को भोगा और दुर्गन्धा के भव में आर्यिका होने पर भी, वेश्या के साथ पाँच पुरुषों को देखकर, उसे सौभाग्यशाली का भाव आया, जिससे अपयशप्रकृति का बन्ध होने से लोक में पञ्च भरतारी कहलायी। इस वृतान्त को जानकर हमें यह बोध ग्रहण करना चाहिए कि अपने परिणाम नहीं बिगाड़ना। ●●

(-पाण्डव पुराण से)

21 प्रद्युम्नकुमार की कथा

एक दिन रात्रि के समय रानी रुक्मणी पलंग पर शयन कर रही थी। उसने स्वप्न में हंस-विमान पर चढ़कर अपने को आकाश में गमन करते देखा। जागृत होने पर वह अति प्रसन्न हुई। प्रात:काल श्रीकृष्ण से स्वप्न का फल पूछा। श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम्हें पुत्ररत्न प्राप्त होगा, जो भविष्य में महापुरुष होगा। पति के ये वचन सुनकर रुक्मणी अत्यन्त हर्षित हुई और तत्पश्चात् नव माह पूर्व होने पर रुक्मणी के सर्व लक्षणों से युक्त पुत्र का जन्म हुआ। उसी समय एक धूमकेतु नाम का असुर जो महाबलवान था; धूमकेतु अर्थात् अग्नि के समान प्रज्ज्वलित, उसका विमान रुक्मणी के महल के ऊपर आकर रुक गया, इस कारण कुअवधिज्ञान से उसने रुक्मणी के पुत्र को अपना शत्रु जानकर क्रोधपूर्वक विमान से नीचे उतरकर गुप्तरूप धारण करके रुक्मणी के प्रसूतिगृह में प्रवेश किया।

यद्यपि रुक्मणी के महल में कड़ी सुरक्षा व्यवस्था है, कोई आ सके ऐसा नहीं है, तथापि विद्याबल से रुक्मणी को निद्राधीन करके उसने बालक को अपने हाथ में उठा लिया और आकाश में ले गया। ऊपर जाकर विचार किया कि यह मेरा शत्रु है। पूर्व भव में इसने मेरी स्त्री का हरण किया है; इस कारण इसे हाथ से मसलकर मार दूँ या नख से चीरकर आकाश के पक्षियों को खिला दूँ अथवा समुद्र में डालकर मगरमच्छों को खिला दूँ अथवा यह तत्काल का जन्मा है, इसे मारने की अपेक्षा रक्षा किये बिना स्वयं स्वत: ही मर जाएगा। ऐसा विचारकर वह असुर आकाश में से उतरा। उसने एक गहन अटवी देखकर वहाँ एक भारी शिला के नीचे बालक को दबा दिया और वहाँ से अदृश्य हो गया।

❖ ❖ ❖

उस समय मेघकूट नामक नगर का अधिपति कालसंवर नाम का विद्याधर अपनी

www.vitragvani.com

कनकमाला नाम की रानीसहित विमान में बैठकर जा रहा था, किन्तु बालक के पुण्य से वहाँ उसका विमान रुक गया। उसने विचार किया कि विमान रुकने का क्या कारण है ? शीघ्र ही वह पृथ्वी पर उतरा, उसने बालक की श्वांस से शिला को हिलते देखा, तब विद्या के बल से शिला को उठा लिया और बालक को देखा कि जिसके अंग अखण्डित हैं, स्वर्ण समान, प्रभाव साक्षात् कामदेव के समान है। इस कारण उस दयालु विद्याधर ने बालक को लेकर अपनी रानी कनकमाला को देकर कहा कि – हे प्रिये ! तेरे पुत्र नहीं है न ! तो यह लो।

रानी कनकमाला ने बालक को छाती से लगाया और राजा–रानी दोनों ने पुत्रसहित मेघकूट नगर की ओर प्रस्थान किया। बालक अभी एक दिन का ही था और रात्रि के समय मिला था तथा राजा–रानी के अलावा अन्य कोई इस रहस्य को जानता नहीं था; अत: राजा ने नगर में जाकर कहा कि रानी को गूढ़ गर्भ था और मार्ग में बालक का जन्म हुआ है। राजा ने पुत्र के जन्मोत्सव का महान उत्सव किया। नगर में सभी को आनन्द हुआ। विद्याधरों ने भी खूब नृत्य और दान करके महान आनन्दोत्सव मनाया और पुत्र का नाम प्रद्युम्न रखा।

राजा कालसंवर के यहाँ अन्य रानियों के सैकड़ों कुमारों के साथ कुमार प्रद्युम्न वृद्धिगत होने लगा।

❖ ❖ ❖

इधर रुक्मणी जागृत हुई तो उसने पुत्र को वहाँ नहीं देखा। इस कारण वृद्ध बाई से पूछा कि – खोज करो, पुत्र कहाँ गया है ? खोजने पर भी जब कहीं पुत्र नहीं मिला तो माता विलाप करने लगी कि – हाय पुत्र ! किसी शत्रु ने तेरा हरण किया है। पूर्वोपाजित पुण्य ने मुझे निधि बताकर छीन ली। मैंने पूर्व भव में किसी के पुत्र का हरण किया होगा, उसका यह फल है। इस प्रकार रुक्मणी के विलाप करते देख सभी लोग विलाप करने लगे।

श्रीकृष्ण और बलदेव को जब पुत्र हरण का समाचार ज्ञात हुआ तो वे रुक्मणी के महल में आये। रुक्मणी आदि सर्व राज लोकों का रुदन सुनकर तीन खण्ड के स्वामी नारायण अपने भुजबल और असावधानी कि निन्दा करते हैं कि जगत् में दो पदार्थ हैं एक

www.vitragvani.com

देव और दूसरा पुरुषार्थ। उनमें देव (कर्मोदय) ही बलवान है। जो पुरुषार्थ का गर्व करते हैं, उसको धिक्कार है। यदि पुरुषार्थ ही बलवान होता तो मैं और वासुदेव नंगी तलवार के समान तेजस्वी, मेरे पुत्र को शत्रु कैसे ले जा सकता है? इत्यादि विचार करके फिर श्रीकृष्ण रुक्मणी से कहने लगे –

हे प्रिये! तू शोक न कर, धैर्य धारण कर। वह पुत्र स्वर्गलोक से आया है, पुण्य का अधिकारी है – अत: अल्पायुवाला नहीं हो सकता। मेरे समान पिता और तुम्हारे समान माता का पुत्र, हीन पुण्य और अल्पायुवाला नहीं हो सकता। यह कोई ऐसा ही भवितव्य होगा। ऐसे अनेक जीव अपहत होकर वापस आते हैं। तेरा पुत्र लोगों के नेत्रों के उत्सव का करता है, उसे मैं कहीं से भी खोजकर लाऊँगा।

इस प्रकार रुक्मणी को धैर्य बाँधकर, श्रीकृष्ण पुत्र की खोज का उपाय करते हैं। उसी समय नारदजी आते हैं और रुक्मणी के पुत्र के गुम हो जाने के समाचार सुनकर अत्यन्त दु:खी होते हैं। नारदजी, नारायण से कहते हैं कि तुम शोक मत करो, मैं शीघ्र ही तुम्हारे पुत्र के समस्त समाचार लेकर आता हूँ। अभी इस क्षेत्र में अतिमुक्तक नामक मुनि अवधिज्ञानी थे, वे केवलज्ञान प्राप्तकर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं और भगवान नेमिनाथ (गृहस्थादशा) भी तीन ज्ञान के धनी हैं परन्तु वे अवधिज्ञान का उपयोग नहीं करते। इस कारण मैं विदेहक्षेत्र जाकर सीमन्धर भगवान से पूछकर शीघ्र ही तुम्हारे पुत्र के समाचार लाता हूँ।

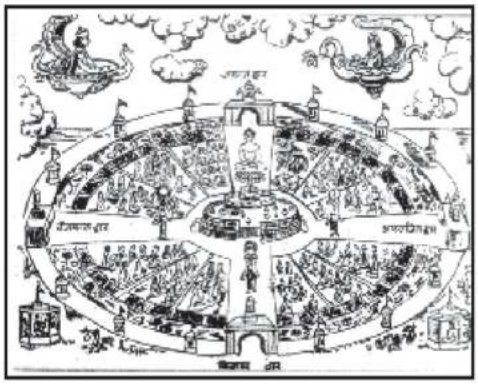

इस प्रकार रुक्मणी को सन्तोष उत्पन्न कराकर नारद, सीमन्धर भगवान के समवसरण में जाकर भगवान को नमस्कार करके बैठ गये। चक्रवर्ती ने पूछा कि हे भगवन्! यह पुरुषाकार किस जाति का कीड़ा है? भगवान ने कहा कि यह जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र का नौंवा नारद है। वासुदेव कृष्ण का मित्र है। पद्मरथ चक्रवर्ती ने पूछा कि हे प्रभो! नारद यहाँ किसलिए आये हैं? तब भगवान चक्रवर्ती से कहते हैं –

www.vitragvani.com

कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न को पूर्व भव का वैरी हरण करके ले गया है। वह सोलहवें वर्ष में सोलह लाभ प्राप्त करके माता-पिता से मिलेगा। रोहिणी, प्रज्ञप्ति और महाविद्याओं का धारक, प्रबल पराक्रमी, देवों के द्वारा भी अविजित होगा।

चक्रवर्ती ने पुन: प्रश्न किया – हे भगवन! उसका चरित्र कैसा है और हरण किस कारण से हुआ है?

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान, दिव्यध्वनि द्वारा नारदसहित पद्मरथ चक्रवर्ती को सम्पूर्ण वार्ता बताते हुए इस प्रकार कहने लगे –

❖ ❖ ❖

इस जम्बूद्वीप में मगध नामक देश में, शालीग्राम नगर में सोमदत्त नामक ब्राह्मण के अग्निला नाम की ब्राह्मणी पति को सुख प्रदायिनी थी। उसके दो पुत्र थे, एक का नाम अग्निभूति और दूसरे का नाम वायुभूति था। वे दोनों भाई वेद विद्या में प्रवीण थे। उन्होंने अपनी विद्या के बल से अन्य ब्राह्मणों की कान्ति मन्द कर दी थी। विद्या अभ्यास द्वारा उन्हें जाति का गर्व उत्पन्न हुआ था, वे बहुत बाचाल और माता-पिता के प्रेम के कारण भोगों में आसक्त थे। उनको ऐसा श्रद्धान था कि सोलह वर्ष की नारी का सेवन ही स्वर्ग है। वे परलोक की कथा में अत्यन्त द्वेषी थे, अर्थात् उनको परलोक सुधारने की बात नहीं रुचती थी।

एक दिन वहाँ विशाल संघसहित नंदिवर्द्धन नामक मुनिराज पधारे और उद्यान में संघसहित आकर विराजमान हुए थे। वे श्रुतरूपी सागर के पारगामी थे। गाँव के चारों वर्णों के मनुष्यों को उनकी वन्दना के लिये जाते देख ब्राह्मण पुत्रों ने उनसे पूछा – हे बन्धुवर! आप इतने उत्साहपूर्वक कहाँ जा रहे हैं?

एक सज्जन ब्राह्मण ने कहा कि हे वत्स! वन में मुनियों का संघ आया है, इसलिए हम लोग वन्दना के लिये जा रहे हैं।

ब्राह्मण पुत्रों ने विचार किया कि हमारे से अधिक कौन है? हम भी मुनियों का माहात्म्य देखें – ऐसा विचारकर वे दोनों भाई भी अभिमानसहित मुनियों के समीप गये।

मार्ग में एक सात्विक नामक मुनि, गुरु से अन्यत्र विराजमान थे। उन दोनों ब्राह्मण

www.vitragvani.com

पुत्रों को देखकर मुनिराज ने विचार किया कि ये दोनों अभिमानी हैं और क्रोधी भी हैं; इस कारण कदाचित् गुरु के समीप जाकर विवाद करेंगे। ये दोनों पाड़ा के समान हैं, अत: सभा में क्षोभ उत्पन्न करेंगे। मुनि की सभा सागर के समान हैं और श्रीगुरु धर्म का उपदेश करते हैं; इसलिए ये दोनों क्रोधी वहाँ नही जाना चाहिए।

इस प्रकार विचार करके, जिनके अवधिज्ञानरूपी नेत्र हैं, ऐसे सात्विक नामक मुनिराज उन ब्राह्मण पुत्रों से कहने लगे कि हे ब्राह्मणों! यहाँ आओ। तब दोनों भाई, सात्विक मुनि के पास जाकर बैठ गये। उन्हें वादरूप और गर्वसहित देखकर मुनि के पास अन्य अनेक लोग आकर एकत्रित हो गये। मुनि ने विप्रों से पूछा कि विप्रों! तुम कहाँ से आये हो? तब वे दोनों बोले कि हम इसी गाँव से आये हैं।

तब मुनि ने कहा कि यह तो मैं भी जानता हूँ कि तुम शालीग्राम के वासी हो परन्तु मैं तो यह पूछता हूँ कि इस संसार में भ्रमण करते हुए तुम किस गति में से आये हो?

तब विप्र बोले कि ऐसा ज्ञान तो किसी को नहीं होता।

मुनिराज ने कहा कि तुम कहाँ से आये हो – यह मैं कहता हूँ, उसे सुनो –

❖ ❖ ❖

तुम दोनों पूर्व भव में इसी गाँव के समीप शियाल थे। तुमको पूर्व भव में भी पारस्परिक प्रीति थी। एक बार प्रवर नामक किसान के खेत में सात दिन तक महावर्षा हुई, उल्कापात हुआ, इससे किसान के काथी (कृषि) के उपकरण भींग गये। तुम दोनों शियालों ने भूख की वेदना से उन्हें खा लिया और उससे तुम्हारे पेट में वायुशूल हुआ। उस असहनीय वेदना से मरण प्राप्त करके अकामनिर्जरा से मरकर तुम दोनों मनुष्य हुए हो।

इस गाँव में एक सोमदेव नामक ब्राह्मण की अग्निला नामक स्त्री के तुम दोनों अग्निभूति और वायुभूति नामक पुत्र हो। तुम कुल के गर्व से गर्वित हो। यह कुलमद झूठा है। जीव को पाप के उदय से दुर्गति और पुण्य के उदय से सुगति होती है। इस कारण कुल –जाति का गर्व करना व्यर्थ है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

शियालों के मरने के बाद प्रवर किसान खेत पर गया। उसने शियालों को मरा हुआ देखकर उनके चर्म से चरस बनाया था जो आज भी उसके घर में है तथा वह किसान मरकर अपने पुत्र का पुत्र हुआ है और उसे जातिस्मरण हुआ है – इस कारण वह अपने को पुत्र का पुत्र हुआ जानकर गूँगा होकर रहता है और अभी यहीं बैठा है। वह मेरी तरफ देख रहा है – ऐसा कहकर मुनिराज ने उस गूँगे को बुलाया और कहा कि तू प्रवर नाम का किसान है न? पुत्र का पुत्र होने के शोक को तजकर अब गूँगापन छोड़कर अमृतरूप वचन बोल।

अरे...रे...! इस संसार में जीव नट की तरह नृत्य करता है। स्वामी से सेवक और सेवक से स्वामी हो जाता है। जो पिता हो, वह पुत्र तथा पुत्र हो, वह पिता हो जाता है। माता हो, वह स्त्री और स्त्री हो, वह माता हो जाती है – ऐसा ही संसार का स्वरूप है। जैसे, रहंट का घड़ा ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर होता है; उसी प्रकार इस संसार में होता है। यह जीव अनादि काल से इसी प्रकार भ्रमण करता है; इसलिए हे पुत्र! सार वस्तु का संग्रह करके जिसका मूल दया है – ऐसे पञ्च महाव्रत धारण कर! इस प्रकार गूँगा, मुनिराज द्वारा सम्बोधन को प्राप्त करके उनकी प्रदक्षिण देकर मुनिराज के चरणों में गिर पड़ा, आनन्द के अश्रुपात से उसके नेत्र भर गये और उसने गद्गद् वाणी से बोलते हुए कहा –

हे मुनिराज! आप सर्वज्ञतुल्य हो, वस्तु के स्वरूप के प्रत्यक्ष दृष्टा हो! त्रिलोक की रचना आपसे छिपी नहीं है। हे श्रीगुरु! मेरे मनरूपी नेत्र अज्ञानरूपी पटल से आच्छादित थे, उन्हें आपने ज्ञानरूपी अञ्जन से उस अज्ञान पटल को दूर किया है। हे भगवान्! आप प्रसन्न होकर मुझे दिगम्बरी दीक्षा प्रदान करो – ऐसा कहकर किसान, मुनि हो गया।

विप्रों का ऐसा चरित्र देख-सुनकर कितने ही जीव श्रावक हुए और ये दोनों भाई अग्निभूति व वायुभूति भी लज्जित होकर अपने घर गये। उनके माता-पिता ने उन्हें बहुत फटकार लगाई, इससे ये दोनों भाई क्रोधित होकर रात्रि में मुनि को मारने के लिये गये। उस समय वे सात्विक मुनि एकान्त में कायोत्सर्ग करके खड़े थे। इन दोनों भाईयों ने मुनिराज के ऊपर तलवार चलाई, तब वन के अधिष्टाता यक्षदेव ने उन्हें बाँध दिया और प्रातःकाल होने पर लोगों ने उनका यह कृत्य देखकर बहुत निन्दा की। ये दोनों भाई भी मन ही मन अपने दुराचार की निन्दा करने लगे।

www.vitragvani.com

ये दोनों चित्त में चिन्तवन करने लगे कि मुनि का महाप्रभाव है। हमने विनयाचार का उल्लंघन किया है, इस कारण कीलित (बन्धनयुक्त) हुए हैं। हमने जिनधर्म का फल प्रत्यक्ष देख लिया है। अब यदि बन्धन से छूटेंगे तो जिनधर्म की आराधना करेंगे। दोनों भाई ऐसे विचार करते हुए खड़े हैं और उनके माता-पिता ने पुत्रों को बन्धन में पड़ा जाना, सो वे दोनों आकर मुनिराज के चरणों में आ गिरे और मुनिराज को प्रसन्न करने लगे। मुनि तो महादयावान, ध्यानस्थ होकर खड़े थे। यह सब कार्य यक्ष देव ने जाना। वह महा-विनयवान होकर मुनिराज के सामने खड़ा है। मुनिराज ने उससे कहा कि हे यक्षराज! इन ब्राह्मण पुत्रों को क्षमा करो। कर्म की प्रेरणा से जीव के शुभाशुभ कार्य होते हैं। ये दोनों नेमिनाथ प्रभु के कुल में जन्म लेकर उनके साथ ही मोक्ष जानेवाले हैं। इसलिए तुम इन पर करुणा करो। इस प्रकार जब मुनिराज ने आज्ञा की, तब यक्षराज ने कहा हे प्रभु! आप जैसी आज्ञा करेंगे, वैसा ही होगा। ऐसा कहकर उसने विप्र पुत्रों को बन्धन से मुक्त कर दिया। वे विप्र पुत्र भी मुनिराज के श्रीमुख से यति और श्रावक का धर्म श्रवण करके अणुव्रत ग्रहण करके श्रावक हो गये।

दोनों भाई चिरकाल तक सम्यक्त्वसहित श्रावक के व्रतों का पालन करके समाधिमरण करके पहले स्वर्ग में देव हुए और उनके माता-पिता जिन धर्म की अश्रद्धा करके मरण को प्राप्त हुए, इसलिए मिथ्यात्व के प्रभाव से दुर्गति में गये। वे दोनों भाई स्वर्गलोक का सुख भोगकर वहाँ से चयकर अयोध्यापुरी में समुद्रदत्त नामक सेठ के यहाँ धारिणी नामक सेठ-सेठानी के पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक पुत्र हुए, जो सम्यक्त्वसहित महाजिनधर्मी हुए।

एक दिन महेन्द्रसेन नामक मुनिराज के मुख से धर्म श्रवण करके उनके पिता समुद्रदत्त का संसार-शरीर-भोगों से वैराग्य हो गया और वे असार संसार का त्याग करके मुनि हो गये। उनके साथ ही नगर के राजा व अन्य अनेक लोगों ने भी मुनिधर्म अंगीकार किया।

❖ ❖ ❖

www.vitragvani.com

एक बार पूर्णभद्र और मणिभद्र रथ में बैठकर मुनिराज के दर्शन के लिये जा रहे थे। वहाँ मार्ग में एक चाण्डाल और कुत्ती को देखकर उन्हें स्नेह उत्पन्न हुआ। अत: वे गुरु के समीप जाकर वन्दन करके पूछने लगे कि प्रभो! हमे चाण्डाल और कुत्ती को देखकर स्नेह उत्पन्न होने का क्या कारण है ? अवधिज्ञानी मुनिराज कहने लगे – हे भव्य! ये विप्र के भव में तुम्हारे माता–पिता थे, पाप के उदय से दोनों नरक में गये थे। वहाँ के दु:ख भोगकर चाण्डाल और कुत्ती हुए हैं।

श्रीगुरु के वचन सुनकर पूर्णचन्द्र और मणिभद्र ने उनके समीप जाकर पूर्व भव के सम्बन्ध की कथा कहकर उन्हें धर्मोपदेश दिया। वे दोनों भी उपदेश सुनकर शान्तचित्त हुए। चाण्डाल की आयु मात्र एक माह शेष थी; अत: उसने श्रावक के व्रत ग्रहण करके चारों प्रकार के आहार के त्यागपूर्वक समाधिमरण किया। इस कारण वह नन्दीश्वर द्वीप का देव हुआ और उस कुत्ती ने भी श्रावक के व्रत पालन कर समाधिमरण किया और अयोध्या के राजा के घर राजपुत्री हुई। उसकी यौवनावस्था होने पर राजा ने स्वयंवर की रचना की। वह वरमाला हाथ में लेकर वर को निरखती थी, उसी समय नन्दीश्वर द्वीप का देव वहाँ आ निकला। उसने कन्या को देखते ही उसके कान में कहा कि हे अग्निला! तू नरक के भयंकर दु:ख भूलकर अब विवाह कर रही है, तुझे धिक्कार है।

देव के वचन सुनकर उस राजपुत्री ने संसार को असार जानकर सम्यक्त्व अङ्गीकार करके आर्यिका के व्रत धारण किये और परिग्रह का त्याग किया। इस प्रकार उसने नव यौवन में ही व्रत अङ्गीकार किये। पूर्णभद्र और मणिभद्र दोनों भाई भी श्रावक के व्रत पालन करके समाधिमरण करके स्वर्ग में देव हुए और स्वर्ग का सुख भोगकर, वहाँ से च्युत होकर राजा हेमनाथ की धरावती नामक रानी के मधु और कौठभ नामक पुत्र हुए।

दोनों पुत्रों के बड़े होने पर राजा हेमनाथ ने मधु को राज्य और कौटभ को युवराज पद देकर मुनिव्रत धारण कर लिया।

❖ ❖ ❖

मधु और कौठभ दोनों भाई सुखपूर्वक राज्य करने लगे। उसी समय एक भीमक नामक राजा का एक क्षुद्र सामन्त, जिसका एक पहाड़ पर गढ़ था, उसका गर्व करके राजा

www.vitragvani.com

मधु की आज्ञा नहीं मानकर राजा मधु के देश में उपद्रव करने लगा है। मधुराजा उसे वश करने के लिये जाता है, तब मार्ग में एक वटपुर नामक नगर में राजा वीरसेन है, वह राजा मधु का अतिभक्त है; अत: राजा मधु ने वटपुर में पड़ाव डाला। वहाँ राजा वीरसेन ने राजा मधु की अतिभक्ति और सम्मान किया। राजा वीरसेन की रानी चन्द्राभा अति रूपवती, सुन्दरी, मृदुभाषिणी थी। उसे देखकर राजा मधु अपना मन हार बैठा। यद्यपि राजा मधु की बुद्धि शास्त्रों में दृढ़ थी, तथापि चन्द्राभा को देखकर रागरूप हो गयी। जिस प्रकार चन्द्रकान्तमणि की शिला दृढ़ है तो भी चन्द्रमा को देखकर नरम हो जाती है।

राजा मधु मन में विचारने लगा कि यदि मैं इस रूप-सौभाग्य से युक्त रानीसहित राज्य करूँ तो राज्य सुखरूप है, इसके बिना यह राज्य विषतुल्य है। जैसे, चन्द्रमा कलंकी होने पर भी चाँदनी से शोभता है, वैसे ही मुझे परस्त्री हरण का कलङ्क तो लगेगा, फिर भी हरण करने का मन हुआ।

राजा मधु बुद्धिमान होने पर भी मन्दबुद्धि हो गया। तब उसके बुद्धिमान प्रधानमन्त्री ने कहा – हे राजन! इस समय राजा भीम को वश करना है; इस कारण अन्य उपद्रव मत करो। यह बात राजा मधु को भी ठीक लगी और वह राजा भीम को वश करके अयोध्या आ गया।

राजा मधु का मन चन्द्राभा के प्रति मन आसक्त है, इसलिए उसने बसन्त ऋतु का महोत्सव रचा, उसमें समस्त राजाओं को आमन्त्रित किया। उसके आज्ञाकारी समस्त राजागण अपनी रानियों सहित आये और राजा वीरसेन भी अपनी चन्द्राभा रानी सहित आया। महोत्सव की समाप्ति पर राजा मधु ने समस्त राजाओं को वस्त्राभरण देकर विदा कर दिया तथा राजा वीरसेन का अति शिष्ट सम्मान करके वटपुर के लिये विदा किया और उसकी रानी चन्द्राभा के योग्य आभूषण तैयार हो रहे हैं, वे थोड़े ही दिनों में तैयार हो जायेंगे, तब चन्द्राभा को विदा करूँगा – ऐसा कहा। राजा वीरसेन तो भोला था। उसे इस बात का विश्वास आ गया, इस कारण वह अकेला अपने राज्य की ओर प्रस्थान कर गया।

तत्पश्चात् राजा मधु ने चन्द्राभा को अपने घर में रख लिया और पटरानी का पद प्रदान कर दिया वह उसके साथ आनन्द क्रीड़ा करने लगा।

www.vitragvani.com

चन्द्राभा का पति राजा वीरसेन, रानी के वियोगरूप अग्नि से दु:खी हुआ और विलाप कर-करके पागल हो गया। पागल होकर चन्द्राभा की रट लगाते हुए पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा।

एक बार विलाप करता, घूमता-घूमता वह अयोध्या आ पहुँचा। उस समय रानी चन्द्राभा अपने महल के झरोखे में बैठी थी। वह अपने पति को देखकर दयावान होते हुए राजा मधु से कहने लगी - हे नाथ! मेरे पूर्व के पति को देखो! वह प्रलाप करके पागल हुआ घूमता है परन्तु राजा मधु ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।

उसी समय कोतवाल एक परस्त्री लम्पटी को पकड़कर राजा मधु के समीप लाया और कहा - देव! यह महापापी है, इसने महान अपराध किया है। परस्त्री सेवन का दण्ड हाथ-पैर और सिर का छेद करना कहा है। इसे क्या दण्ड दिया जाए?

कोलवाल की बात सुनकर रानी चन्द्राभा ने राजा से कहा - हे प्रभु! इसने ऐसा कौन-सा महापराध कर दिया है कि ऐसा दण्ड इसे देते हो?

राजा ने कहा - हे देवी! परस्त्री सेवन के समान अन्य कौन-सा बड़ा पाप है?

रानी चन्द्राभा ने कहा - इस पाप का दण्ड प्रजा को ही है या राजा को भी है?

राजा ने कहा - हे देवी! सबके लिये एक ही दण्ड है।

राजा के उत्तर पर रानी ने हँसकर अपना मुँह नीचा कर लिया। जिसका आशय यह था कि तुम भी परस्त्रीरत पापी हो। राजा भी मन ही मन इस अभिप्राय को समझकर हताश हो गया।

राजा मन में विचार करने लगा कि रानी ने मेरे कल्याण के लिये सत्य ही बात कही है। परस्त्री का हरण दुर्गति का कारण है; अत: राजा को वैराग्य उत्पन्न हुआ और रानी भी वैराग्यरूप हो गई। राजा को विरक्त जानकर रानी कहने लगी -

हे प्रभु! ऐसे अन्यायरूप भोग से क्या? यह परस्त्री का विषय किंपाकफल के समान दु:खदाई है, बाह्य में मनोज्ञ लगे उससे क्या? भोग तो स्वयं को और पर को संतापकारी है। समस्त विषय शास्त्र से विरुद्ध है। परस्त्री-परधन हरण तथा माँस भक्षण तो

www.vitragvani.com

महापाप है। ऐसे पाप करनेवाले नरक–निगोद में जाते हैं, इस प्रकार रानी चन्द्राभा ने राजा मधु को सम्बोधित किया।

❖ ❖ ❖

राजा मधु को वैराग्य हुआ। भोगरूपी मदिरा को तजकर अति आदर से राजा, रानी से कहता है – हे सत्यभासिनी! तूने सत्य ही कहा है। ऐसा कार्य भले पुरुष के योग्य नहीं है। उससे नरकादिक की पीड़ा उत्पन्न होती है। ऐसा करनेवाले महापापी इस भव में दु:खी होकर अपयश प्राप्त करते हैं और परभव में नरक में जाते हैं। जब मेरे जैसा राजा ही ऐसा निन्द्यकर्म करता है तो प्रजा को कौन रोकेगा? जो अपनी स्त्री में भी अधिक राग करता है, वह भी कर्मबन्ध का कारण है तो परस्त्री सेवन की तो बात की क्या? परस्त्री सेवन के समान अन्य कोई पाप नहीं है।

मनरूप मत्त हाथी को ज्ञानरूप अंकुश द्वारा रोकने पर भी यह खोटे मार्ग में जाता है। इस मनरूप मतङ्ग गज को तीव्रतपरूप अंकुश द्वारा खोटे मार्ग से वापस लाकर सही मार्ग में चलानेवाले धन्य हैं। काम–भोग की वासना से उन्मत्त हुए मनरूप हाथी को तप–संयमरूप दण्ड द्वारा जहाँ तक वापस नहीं मोड़ा जाता, वहाँ तक मद का अभाव कैसे होगा? जहाँ तक मनरूप मतङ्ग हाथी को वश में नहीं करे, वहाँ तक उस पर चढ़नेवाले को भय ही होता है, कुशलता नहीं – ऐसा कहकर राजा मधु ने मन का वेग रोककर ज्ञानरूपी जल से बुद्धि को निर्मल किया। राजा मधु भवताप की शान्ति के लिये मुनिव्रत धारण करने को उद्यमी हुआ।

उसी समय एक विमलवाहन नाम के मुनिराज अयोध्या के सहस्त्रामृत नामक वन में एक हजार मुनियों सहित पधारे। मुनियों का आगमन सुनकर राजा मधु और कौटभ दोनों भाई सपरिवार भक्तिपूर्वक साधुओं के समीप गये, विधिपूर्वक मुनिराज की पूजा करके मुनिराज के श्रीमुख से धर्म श्रवण किया।

मुनिराजश्री ने कहा – हे भव्यों! यदि संसार दु:ख से परिमुक्त होना चाहते हो तो श्रामण्यदशा अंगीकार करो। जिसे संसार, शरीर और भोगों से वैराग्य उत्पन्न हुआ है – ऐसे वे राजा मधु, कौटभ सहित मुनि हो गये और अन्य भी हजारों राजा, मधु राजा के साथ मुनि

www.vitragvani.com

हुए। चन्द्राभा आदि अनेक रानियाँ आर्यिका हुई। अनेक प्रकार से तप करके अन्तिम एक माह का संन्यास धारण करके शरीर त्याग करके राजा मधु तो सोलहवें स्वर्ग में इन्द्र और कौटभ देव हुआ, दोनों की आयु बाईस सागर थी। दोनों सम्यग्दृष्टि स्वर्गसुख को भोगकर, राजा मधु का जीव तो रुक्मणी की कोख में कृष्ण नामक नौवें नारायण का प्रद्युम्न नाम का पुत्र हुआ और दूसरा भाई कौटभ भी देवलोक से चयकर उसी का भाई माता जाम्बूवति का शम्भुकुमार नाम का पुत्र होगा। ये दोनों भाई जन्मान्तर से ही परस्पर हित में उद्यमी, महाधीर और चरमशरीरी हैं, इसी भव में मोक्ष प्राप्त करेंगे।

❖ ❖ ❖

पूर्व का राजा वीरसेन, जो चन्द्राभा का पति था, वह स्त्री के विरहरूप क्लेश से आर्त्तध्यान द्वारा चिरकाल तक संसार में भ्रमण करके मनुष्य हुआ और अज्ञानतप करके धूमकेतु नाम का असुर देव हुआ। उसने विभङ्ग अवधि से पूर्व भव के स्त्री हरण को जानकर वैरभाव से बालक प्रद्युम्न का हरण किया है। धिक्कार है ऐसे वैरभाव को, जो पाप को बढ़ानेवाला है। प्रद्युम्न पूर्व भव के पुण्य से कष्ट में भी रक्षित हुआ है।

❖ ❖ ❖

सीमन्धरदेव की दिव्यध्वनि में समागत इस कथा को सुनकर पद्मरथ चक्रवर्ती प्रमोदरूप हुआ। नारद भी यह कथा सुनकर हर्षित होकर तुरन्त आकाशमार्ग से गमन करके मेघकूट नगर गये। कालसंवर विद्याधर राजा ने नारद का बहुत विनय किया। नारद ने पुत्र को देखा। सैंकड़ों कुमार जिसकी सेवा करते हैं, उस प्रद्युम्नकुमार को देखकर नारद प्रसन्नता से रोमांचित हुए परन्तु अपने मन का भेद किसी को नहीं बताया। राजा-रानी, और कुँवर ने उन्हें प्रणाम किया। नारद उन सभी को आशीष देकर आकाशमार्ग से शीघ्र द्वारिका आ पहुँचे।

❖ ❖ ❖

द्वारिका पहुँचकर प्रद्युम्न की जो पूर्व भव की कथा जिनेन्द्रदेव के श्रीमुख से सुनी

www.vitragvani.com

थी, वह सब बताई और यादवों से यह भी कहा कि मैं स्वयं मेघकूटनगर में प्रद्युम्न को देखकर आ रहा हूँ। वहाँ से नारद सीधे रुक्मणी के महल में गये और उससे कहा – हे रुक्मणी! तेरा पुत्र मेघकूटनगर में राजा कालसंवर के यहाँ अनेक राजकुमारों के साथ क्रीड़ा करते मैंने देखा है। वह तो साक्षात् देवकुमार ही है। ऐसा रूपवान अन्य नहीं है। तेरा पुत्र सोलहवें वर्ष में सोलह लाभसहित प्रज्ञप्ति विद्या को लेकर आनन्दपूर्वक यहाँ आयेगा। जिस दिन वह आयेगा, उसी दिन तेरे मन्दिर के उपवन में सूखी हुई मणी बावड़ी जल से भर जायेगी और उसमें कमल खिलेंगे, अन्य भी अनेक चमत्कार होंगे, उन्हें देखकर तू अपने पुत्र का आगमन जानना। हे पुत्री! तू सीमन्धरस्वामी के वचन अन्यथा मत मानना।

इस प्रकार नारद के मुख से पुत्र की कथा सुनकर, श्रद्धा करके रुक्मणी, नारद से कहती है – हे भाई! ऐसा कार्य आपसे ही हो सकता है, अन्य से नहीं; मैं तो आपकी बालिका हूँ, मैं पुत्र के शोक में जल रही थी, मेरा कोई आलम्बन नहीं था। आपने हस्तावलम्बन देकर मुझे स्थिर किया। जो सीमन्धर भगवान ने कहा, वह सत्य ही है। मुझे अवश्य पुत्र के दर्शन होंगे। मैं जिनेन्द्र के वचन से जीवित हूँ। इस प्रकार उसने नारद को मधुर वचन कहे, तब नारद आशीष देकर विदा हुए।

इस प्रकार यह मोक्ष प्राप्त करनेवाले प्रद्युमन और शम्भुकुमार के पूर्व भव का चरित्र है।

❖ ❖ ❖

इधर प्रद्युम्नकुमार, राजा कालसंवर के यहाँ कनकमाला माता की गोद में, जो पूर्व भव की पत्नी चन्द्राभा थी, बड़ा हो रहा है और पुण्य के प्रभाव से आश्चर्यकारी साहस द्वारा देवों को पराजितकर सोलह दैवीय विधायें प्राप्त करता है और सोलह वर्ष का नव यौवनरूप सुन्दर होने पर पूर्व संस्कारवश माता कनकमाला को पुत्र के प्रति कामवासना जागृत होती है; इस प्रसङ्ग से कनकमाला के साथ विरोध होने पर पिता कालसंवर के साथ पुत्र का युद्ध होता है। वह पिता को पराजित करता है। उसी समय नारद वहाँ आते हैं और तू कृष्ण–रुक्मणी का पुत्र है, तेरा हरण होने से यहाँ बड़ा हुआ है –इत्यादि सारा वृतान्त उसे

www.vitragvani.com

बताते हैं, इससे वह माता-पिता के पास द्वारिका जाने हेतु तत्पर होता है। वह विद्याधर माता-पिता से क्षमा याचना करके द्वारिका जाने की आज्ञा लेता है, तत्पश्चात् विद्या द्वारा अनेक आश्चर्य करके द्वारिका के लोगों को मुग्ध करता है और माता रुक्मणी आदि से मिलता है। विद्या द्वारा बालक्रीड़ा आदि करके माता को प्रसन्न करता है। (इन सब का आश्चर्यकारी वर्णन प्रद्युमन चरित्र, पाण्डव पुराण, हरिवंश पुराण आदि से जानना चाहिए।)

इस कथा से यह प्रेरणा मिलती है कि एक शियाल जैसा तुच्छ प्राणी, मनुष्य होकर मुनिहिंसा करने जाता है और मुनि के प्रभाव से क्रूर परिणामों का परिवर्तन करके जैनधर्म को ग्रहण करके उन्नति क्रम में परिणामों को उज्ज्वल करके नेमीप्रभु के कुल में जन्म लेकर अनेक आश्चर्यकारी विद्याओं को साधकर, उनसे भी मोह त्यागकर मुनि होकर मोक्ष जाता है। अन्दर में शाश्वत् सिद्ध स्वरूप भगवान आत्मा विद्यमान है, उसकी श्रद्धा के बल से मोह का सर्वथा नाश करके सिद्ध हो जाता है।

(- श्री हरिवंश पुराण में से संक्षिप्त सार)

मुनिराज और सर्वज्ञ में भेद नहीं

मुनिराज इस प्रकार परिणमित हो गये हैं, **मानो वीतरागता की मूर्ति हों! राग-द्वेष के अंशरहित मात्र वीतरागता की मूर्ति हैं मुनिराज**! मुनि को तो तीन कषाय चौकड़ी का अभाव हुआ है, उन मुनिराज को शान्ति का सागर उछलता है। भगवान आत्मा स्वभाव से वीतरागमूर्ति है और **मुनिराज तो पर्याय में वीतराग की मूर्ति हैं।** श्री नियमसार के कलश में तो कहा है कि अरेरे! हम जड़मति हैं कि मुनिराज में और सर्वज्ञ में भेद मानते हैं। **अहाहा! मुनिराज तो मानों साक्षात् वीतराग की मूर्ति हों, इस प्रकार परिणमित हो गये हैं; उन्हें मुनि कहते हैं।**

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, ८९२, पृष्ठ २०४

22 श्वेतवाहन मुनिराज की कथा
देखो, परिणामों की विचित्रता!

बहुत समय पूर्व चम्पानगरी में राजा श्वेतवाहन राज्य करता था। एक बार भगवान महावीर का उपदेश सुनकर उसक हृदय वैराग्य से भर गया, इस कारण उसने अपने पुत्र विमलवाहन को राज्य का भार सौंपकर, अनेक राजाओं के साथ संयम धारण कर लिया। बहुत समय तक मुनियों के समूह के साथ रहकर अखण्ड संयम को साधते-साधते जब वे मुनिराज एक वृक्ष के नीचे विराजमान थे, उसी समय राजा श्रेणिक, भगवान महावीर के दर्शन करने जा रहे थे। रास्ते में एक वृक्ष के नीचे श्वेतवाहन मुनि को ध्यानस्थ देखकर राजा श्रेणिक ने उन्हें नमस्कार किया किन्तु नमस्कार करते हुए उनकी मुखमुद्रा विकृत दिखायी दी।

राजा श्रेणिक ने समवसरण में पहुँचकर गणधर भगवान से उसका कारण पूछा। उत्तर में गणधर प्रभु ने कहा – 'हे श्रेणिक, सुन! आज वे मुनिराज श्वेतवाहन एक माह के उपवास के बाद आहारचर्या के लिए नगर में गये थे, वहाँ तीन मनुष्य मिलकर उनके पास आये। उनमें से एक मनुष्य, मनुष्यों के लक्षण जाननेवाला था, उसने इन मुनिराज को देखकर कहा कि इसके लक्षण तो साम्राज्य पदवी के कारण है परन्तु यह तो भिक्षा के लिए भटक रहा है; इसलिए जो शास्त्र में कहा है, वह मिथ्या प्रतीत होता है।

उसके उत्तर में दूसरे मनुष्य ने कहा – भाई! शास्त्र में जो कहा है, वह मिथ्या नहीं है, ये मुनिराज तो साम्राज्य का त्याग करके ही मुनि हुए हैं। किसी कारण से विरक्त होकर इन्होंने राज्य का भार छोटे-से बालक पर डाल दिया है और स्वयं तपश्चरण कर रहे हैं।

यह सुनकर तीसरा मनुष्य बोला – तब तो इसका तप, पाप कारण है। इससे क्या

www.vitragvani.com

लाभ है ? यह बड़ा दुष्ट है; इस कारण दया छोड़कर, लोकव्यवहार से अनभिज्ञ असमर्थ बालक को राज्यभार सौंपकर केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये यहाँ तप कर रहा है और उधर इसके मन्त्री आदि सभी लोगों ने बालक को साँकल से बाँधकर राज्य का विभाग कर लिया है। अब वे पापी लोग अपनी इच्छानुसार स्वयं राज्य का उपभोग कर रहे हैं।

इस प्रकार तीसरे मनुष्य के वचन सुनकर, मुनिराज श्वेतवाहन, स्नेह और मान के कारण भोजन किये बिना ही नगर से वापिस वन में आकर वृक्ष के नीचे जा बैठे हैं। बाह्य कारण और अपनी योग्यता से उनके हृदय में तीव्र क्रोधकषाय उत्पन्न हुई है, संक्लेशपरिणामों से अशुभलेश्या वृद्धिङ्गत हुई है। जो मन्त्री आदि प्रतिकूल हुए हैं, उन्हें हिंसा आदि सर्व प्रकार से निग्रह करने का चिन्तन करने से वे मुनिराज इस समय संरक्षानामक रौद्रध्यान में दाखिल हुए हैं। यदि अब आगे अन्तर्मुहूर्त तक उनकी यही स्थिति रही तो वे नरकायु का बन्धन करने योग्य हो जाएँगे। अत: हे श्रेणिक! तू शीघ्र जाकर उन्हें सम्बोधित कर कि हे साधु! शीघ्र ही इस अशुभध्यान का परित्याग करके, क्रोधरूप अग्नि को शान्त करो! मोह की जाल को दूर करो! तुमने जो यह मोक्ष के कारणरूप संयम को धारण करके छोड़ा है, उसे वापिस अङ्गीकार करो। यह स्त्री, पुत्र तथा भाई आदि का सम्बन्ध तो अमनोज्ञ और संसार को बढ़ानेवाला है। इस प्रकार युक्तिपूर्ण सम्बोधन से तुम मुनिराज का स्थितिकरण करो। तुम्हारे उपदेश से वे पुन: स्वरूप में स्थिर होकर शुक्लध्यानरूप अग्नि से घातिकर्मरूपी सघन वन को भस्म कर देंगे और केवलज्ञान आदि लब्धियों से देदीप्यमान शुद्धस्वभाव के धारक हो जाएँगे।'

गणधर महाराज के ऐसे वचन सुनकर, राजा श्रेणिक शीघ्र ही उन मुनिराज के समीप गये और गणधर महाराज द्वारा बताये मार्ग से उन्हें प्रसन्न किया। उन मुनिराज ने भी

www.vitragvani.com

तुरन्त समस्त सङ्कल्प-विकल्पों का परित्याग करके, क्षपकश्रेणी आरोहण कर शुक्लध्यान के प्रभाव से केवलज्ञान प्राप्त किया।

देखो! परिणामों की कैसी विचित्र योग्यता है कि थोड़ी देर पहले सातवें नरक के योग्य परिणाम; और थोड़ी देर पश्चात् केवलज्ञान! इसलिए इन परिवर्तनशील अध्रुव परिणामों का व्यामोह तजकर, अपरिवर्तनशील त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकस्वभाव का ही अवलम्बन करना चाहिए।

(- उत्तरपुराण के आधार पर)

मुनिराज की क्रीड़ा और उनका क्रीड़ास्थल

जैसे कोई फूलों की सुगन्ध लेने बाग में जाए और वहाँ उनकी सौरभ में तल्लीन हो जाए, वैसे ही **मुनिराज राग की क्रीड़ा छोड़कर चैतन्य के बाग में खेलते-खेलते कर्म के फल का नाश करते हैं और अतीन्द्रिय आनन्द के फल का वेदन करते हैं, अनुभव करते हैं।** चैतन्य के बाग में क्रीड़ा करनेवाले मुनिराज को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक चारित्र हुआ है, आनन्दादि अनन्त गुण खिल उठे हैं, अन्तर्निमग्नदशा तीव्र प्रगट हुई है। **अहा! मुनिपना बड़ी अद्भुत वस्तु है!**

भाई! बाग में हजारों पुष्पवृक्ष होते हैं, उसी प्रकार मुनिराज को भगवान आत्मा के बाग में अनन्त गुण निर्मल पर्यायोंरूप से खिल उठे हैं, क्योंकि चारित्र है ना! मुनिराज आत्म-उद्यान में खेलते-खेलते, लीला करते-करते, किञ्चित दुःख बिना अन्तर में अनन्त आनन्द की धारा में निमग्न रहकर कर्म के फल का नाश करते हैं। वास्तव में तो उस समय कर्मफल उत्पन्न ही नहीं होता, उसे 'नाश करते हैं' – ऐसा कहा जाता है।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ २०९

23 भरत और त्रैलोक्यमण्डन हाथी की भवावली

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे नराधिपति! एक बार जिनका उपसर्ग वंशस्थलगिरि पर राम-लक्ष्मण ने निवारण किया था और जिनकी सेवा करने से गुरुड़ेन्द्र ने राम-लक्ष्मण पर प्रसन्न होकर उन्हें प्रदान किये गये अनेक दिव्य शस्त्रों से वे युद्ध में विजयी हुए थे - ऐसे सुर-असुरों से पूज्य लोकप्रसिद्ध दोनों केवली भगवान देशभूषण और कुलभूषण अयोध्या के नन्दनवन समान महेन्द्रोदय नामक वन में विशाल संघ सहित आकर विराजमान हुए। प्रभु के शुभागमन के समाचार ज्ञाता होते ही राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुध्न उनके दर्शन करने के लिए प्रात:काल ही हाथी पर बैठकर जाने को उद्यमी हुए।

जिसको जातिस्मरण हुआ है - ऐसा त्रैलोक्यमण्डल हाथी आगे-आगे चल रहा है, दोनों केवली जिस पर्वत पर विराजमान है वहाँ देव-समान शुभ चित्तवाले नरोत्तम पहुँचे। कौशल्या, कैकई, सुमित्रा और सुभद्रा - ये चारों मातायें भी साधु भक्ति में तत्पर, जिनशासन की सेविका, स्वर्गनिवासिनी देवियों के समान सैकड़ों रानियों के साथ चल निकली तथा सुग्रीव आदि समस्त विद्याधर भी महाविभूतिसहित वहाँ आये। दूर से ही केवली का स्थान देखकर राम आदि हाथी से नीचे उतर गये और उन्होंने करबद्ध होकर विनयसहित केवली प्रभु को नमस्कार करके केवली प्रभु की पूजा की और अपने-अपने योग्य स्थानों पर विनयपूर्वक बैठ गये। केवली भगवान की दिव्यध्वनि में इस प्रकार व्याख्यान आया कि-

धर्म ही पूज्य है। जो धर्म का साधन करता है, वही पण्डित है। यह दयामूल धर्म महाकल्याण का कारण है, जो जिनशासन सिवाय अन्य कहीं नहीं है। जो प्राणी जिनप्रणीत धर्म में रस लेता है, वह त्रैलोक्य के अग्रभाग में विराजमान होता है। यह जिनधर्म परम

www.vitragvani.com

दुर्लभ है। इस धर्म का मुख्य फल तो मोक्ष है और गौण फल स्वर्ग में इन्द्रपद; पाताल में नागेन्द्रपद; पृथ्वी पर चक्रवर्ती आदि नरेन्द्रपद है।

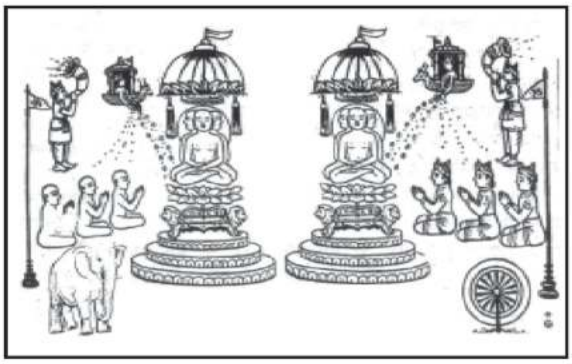

इस प्रकार केवली भगवान ने धर्म के स्वरूप और फल का निरुपण किया। केवली के वचन सुनकर सबके मन में प्रसन्नता हुई। ये वचन वैराग्य उत्पन्न करनेवाले थे क्योंकि रागादिभाव तो संसार का कारण है तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय मोक्ष का कारण है।

तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र प्रभु को वन्दन करके लक्ष्मण ने पूछा – हे प्रभो! त्रैलोक्यमण्डन हाथी गजबन्धन को तोड़कर अत्यन्त ही क्रोधित हुआ और फिर शीघ्र शान्त हो गया – इसका क्या कारण है ?

केवली भगवान ने कहा कि पहले तो इस हाथी को लोगों की भीड़ देखकर मदोन्मत्तता के कारण क्षोभ हुआ और तत्पश्चात् भरत को देखकर पूर्व भव का स्मरण होने से यह शान्त हो गया। यह सारा वृतान्त इस प्रकार है –

❖ ❖ ❖

तीसरे काल के अन्तिम चरण में भगवान ऋषभदेव हुए। उन्होंने राज्यादि समस्त परिग्रह का त्याग करके मुनिदीक्षा ग्रहण की। उनके साथ चार हजार राजा भी परिग्रह त्यागकर मुनि हुए किन्तु वे परीषह सहन नहीं कर पाने से व्रत-भ्रष्ट होकर स्वेच्छाचारी हुए। भरत चक्रवर्ती के पुत्र मारीचि ने भी भ्रष्ट होकर त्रिडण्डी का वेष धारण किया। उस समय सूर्योदय, चन्द्रोदय नामक दो राजपुत्रों ने दीक्षा लेकर चारित्र से भ्रष्ट होकर मारीचि का अनुसरणकर कुधर्म का सेवन करके अनेक भवों में जन्म-मरण किया।

एक बार चन्द्रोदय का जीव, कर्म के उदय से नागपुर नामक नगर में राजा हरिपति की रानी मनोलता के गर्भ से उत्पन्न हुआ। उसने कुलंकर नाम का राजा होकर बहुत समय तक राज्य किया। सूर्योदय का जीव अनेक भव भ्रमण करके उसी नगरी में विश्वनामा

www.vitragvani.com

ब्राह्मण की अग्निकुण्ड नाम की स्त्री के श्रुतिरथ नाम का पुत्र हुआ। इस प्रकार श्रुतिरथ पुरोहित पूर्व जन्म के स्नेह से राजा कुलंकर को प्रिय हो गया।

एक दिन राजा कुलंकर तपस्वियों के पास जा रहा था। मार्ग में उसे एक अभिनन्दन नामक मुनिराज के दर्शन हुए। वे मुनि अवधिज्ञानी थे और सर्व जन हितकारक थे। उन्होंने राजा से कहा कि तेरे दादा सर्प बने हैं, वे तापसियों की लकड़ियों के बीच में है। जब तापस लकड़ों को फाड़े, तब तू उनकी रक्षा करना।

कुलंकर राजा वहाँ गया और मुनि के कहे अनुसार सर्प को बचाया तथा तापसियों का मार्ग हिंसारूप जानकर उससे उदास होकर मुनिव्रत धारण करने की इच्छा हुई।

राजा के विचारों से अवगत होकर पापकर्मी श्रुतिरथ पुरोहित ने कहा – हे राजन! आपके कुल में तो वेदों का धर्म चला आया है और तापस ही आपके गुरु हैं; आप राजा हरिपति के पुत्र हैं; अत: वेदमार्ग का ही आचरण करो; जिनमार्ग का आचरण मत करो। आप अपने पुत्र को राज्य सौंपकर वेदोक्त विधि द्वारा तापस का व्रत धारण करो। मैं भी आपके साथ तप करूँगा। इस प्रकार पापी पुरोहित ने मूढ़मति कुलंकर का मन जिनमार्ग से विचलित कर दिया।

कुलंकर की स्त्री सुदामा परपुरुषासक्त थी। उसने विचार किया कि राजा मेरे कुकर्मों को जानकर दु:खी होकर तप धारण कर रहा है, अत: वह तप करे या नहीं करे, किन्तु कदाचित मुझे मार न दे, इससे पूर्व ही मैं उसको मार दूँ। इस प्रकार विचार करके उसने राजा और पुरोहित को भोजन में विष मिलाकर मार दिया। वे दोनों मरकर निकुंजिया नामक वन में पशुघातक पाप से सूअर बने; फिर दोनों मेढ़क हुए; चूहा हुए; मोर, सर्प, कूकड़ा आदि होकर तिर्यंच योनियों में परिभ्रमण किया।

पुरोहित श्रुतिरथ का जीव हाथी हुआ तथा राजा कुलंकर का जीव मेढ़क हुआ और हाथी के पैर के नीचे दबकर मरा और फिर मेढ़क होकर पानी रहित सरोवर में उत्पन्न हुआ। वहाँ कौओं ने उसे मारकर खा लिया। फिर वह कूकड़ा बना, और हाथी मरकर बिलाव बना, उसने कूकड़े को मारा। कुलंकर का जीव तीन जन्मों तक कूकड़ा हुआ और पुरोहित का जीव बिलाव हुआ और कुलंकर के जीव कूकड़ा को मारकर खा गया।

www.vitragvani.com

बहुत समय के बाद वे शिशुमार जाति के मच्छ हुए तो मछुआरे ने जाल में पकड़कर कुल्हाड़ी से मार दिया। दोनों मरकर राजगृही नगर में ब्राह्मश नामक ब्राह्मण की स्त्री उल्का के गर्भ से पुत्ररूप में उत्पन्न हुए। उन्होंने पुरोहित के जीव का नाम विनोद और कुलंकर के जीव का नाम रमण रखा। वे दोनों अत्यन्त गरीब और विद्यारहित थे; इस कारण रमण ने परदेश में जाकर विद्याध्ययन का विचार किया। उसने घर से निकलकर पृथ्वी पर चारों और भ्रमते-भ्रमते चारों वेद तथा वेदों के अंग सीख लिये और बहुत समय के बाद राजगृही नगर में आ पहुँचा। उसे अपने भाई से मिलने की तीव्र अभिलाषा थी परन्तु नगरी में पहुँचते-पहुँचते सूर्यास्त हो गया। आकाश में मेघपटल के योग से अत्यन्त अन्धकार छा गया, अत: वह एक पुराने भाग में प्राचीन यक्ष के मन्दिर में बैठ गया। उसके भाई विनोद की समिधा नाम की कुलटा स्त्री ने एक अशोकदत्त नामक पुरुष के साथ आसक्त होकर उसे मिलने के लिये यक्ष के मन्दिर में आने का संकेत किया था। अशोकदत्त को तो मार्ग में कोतवाल ने पकड़ लिया। अशोकदत्त के दुराचार का पता लगते ही विनोद हाथ में तलवार लेकर उसे मारने के लिये यक्ष के मन्दिर में आया और वहाँ बैठे हुए अपने भाई रमण को ही अशोकदत्त समझकर मार दिया। अन्धेरे में नजर भी नहीं आया कि कौन मरा है। इस तरह रमण मर गया और विनोद घर आ गया। थोड़े समय बाद विनोद भी मर गया। इस प्रकार दोनों अनेक भव धारण करते रहे।

तत्पश्चात विनोद का जीव तो सावलवन में जंगली पाड़ा हुआ और रमण का जीव अन्धा रीछ हुआ। दोनों दावानल में जलकर मर गये। मरकर दोनों के जीव गिरिवन में भील हुए। वहाँ से मरकर हिरण हुए तो भीलों ने जीवित पकड़ लिया क्योंकि दोनों अति सुन्दर थे। इधर तीसरे नारायण स्वयंभूति ने श्रीविमलनाथजी के दर्शन करके वापस आते हुए उन सुन्दर हिरणों (मृगों) को देखकर ले लिया और जिनमन्दिर के बाजु में उनको रख दिया। उनको राजद्वार से भोजन मिलता था और वे मुनियों के दर्शन और जिनवाणी का श्रवण करते। उनमें रमण का जीव (कुलंकर का जीव) हिरण था, वह तो समाधिमरण करके स्वर्गलोक में गया तथा विनोद का जीव (पुरोहित का जीव) आर्त्तध्यान से तिर्यञ्चगति में परिभ्रमण करने लगा।

❖ ❖ ❖

www.vitragvani.com

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कपिल्या नगर का धनदत्त वणिक बाईस करोड़ दीनार का स्वामी था। उस वर्णिक की वारुणी नाम की स्त्री के गर्भ से रमण का जीव, जो कि देव हुआ था, वह भूषण नाम का पुत्र हुआ। निमित्तज्ञानियों ने उसके पिता से कहा कि तुम्हारा यह पुत्र जिनदीक्षा धारण करेगा; इस कारण पिता चिन्तातुर हुए। पिता का पुत्र के प्रति अतिशय प्रेम था; इस कारण वे उसे घर में ही रखते, बाहर नहीं निकलने देते थे। उसके लिये हर प्रकार की सामग्री घर में ही मौजूद थी। वह भूषण, सुन्दर स्त्री का सेवन करता; वस्त्र, आहार, सुगन्धादि का विलेपन करके घर में सुख से रहता था। उसके पिता ने सैकड़ों मनोरथ करके और पाया था और एक ही पुत्र था; अत: पूर्व जन्म के स्नेह से वह पिता को प्राणों से भी अधिक प्रिय था। पिता था विनोद का जीव और पुत्र था रमण का जीव; पहले दोनों भाई थे और इस भव में पिता-पुत्र हुए।

अहो! संसार की गति बड़ी विचित्र है। यह प्राणी संसार में कठपुतली के समान नाचता है। संसार का चरित्र स्वप्न के राज्य के समान असार है।

❖ ❖ ❖

एक दिन प्रात:काल के समय दुन्दुभि के शब्दों की आवाज और आकाश में देवों का आगमन देखकर भूषण विबोध को प्राप्त हुआ। वह स्वभाव से कोमल चित्तवाला, धर्म के आचारों सहित महा हर्ष से युक्त दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करता हुआ श्रीधर केवली की वन्दना करने के लिये शीघ्रता से जा रहा था कि सीढ़ी से नीचे उतरते ही सर्प के काटने से मरकर चौथे स्वर्ग में महेन्द्र नाम का देव हुआ। वहाँ से चयकर पुष्कर द्वीप में चन्द्रादित्य नाम के नगर के राजा प्रकाशयश की रानी माधवी के गर्भ से जगद्युत नाम का पुत्र हुआ। यौवन अवस्था में उसे राज्यलक्ष्मी प्राप्त हुई, परन्तु संसार से अति उदास होने से उसका मन राज्य में नहीं लगा। उसके वृद्ध मंत्री ने कहा कि यह राज्य तुम्हारे कुलक्रम से चला आया है; अत: इसका पालन करो, तुम्हारे राज्य की प्रजा सुखी होगी। इस कारण मंत्री के हठ से उसने राज्य किया। वह राज्य के समय भी साधुओं की सेवा करता था। इस कारण मुनिदान के प्रभाव से मरकर देवकुरु भोगभूमि में उत्पन्न हुआ।

भोगभूमि की आयु पूर्ण करके वहाँ से ईशान नामक दूसरे स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ

www.vitragvani.com

चार सागर दो पल्य तक देवलोक के सुख भोगकर, वहाँ से चयकर जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह में अचल नामक चक्रवर्ती की रत्ना नाम की रानी का अभिराम नाम का पुत्र हुआ। वह महागुणवान और अतिसुन्दर था। उसको देखकर सब लोगों को आनन्द होता था। वह बाल्यावस्था में ही अतिविरक्त होकर जिनदीक्षा धारण करना चाहता था किन्तु उसके पिता उसे घर में ही रखना चाहते थे। उसका विवाह तीन हजार कन्याओं के साथ हुआ परन्तु वह विषय-सुख को विष के समान समझता था। उसकी एकमात्र इच्छा मुनि होने की थी, किन्तु उसके पिता उसे घर से बाहर नहीं निकलने देते थे।

वह महाभाग्य, महाशीलवान, महागुणवान, महात्यागी स्त्रियों में अनुरागी नहीं होता। स्त्रियाँ अनेक प्रकार के राग उत्पन्न करनेवाले वचन बोलें अथवा अनेक प्रकार से सेवा करें तो भी उसे संसार की माया कीचड़ के समान लगती थी। जैसे कीचड़ में पड़े हाथी को, उसे पकड़नेवाला मनुष्य अनेक प्रकार के प्रलोभन देता है, तथापि हाथी को कीचड़ नहीं रुचता है; उसी प्रकार उसे जगत की माया नहीं रुचती थी। वह शान्तचित्त पिता की इच्छा से अति उदास हुआ, घर में स्त्रियों के मध्य रहकर भी तीव्र असिधारा व्रत का पालन करता था। स्त्रियों के मध्य रहकर भी, शीलव्रत पालना उनका संसर्ग न करने का नाम असिधारा व्रत हैं। वह मोतियों का हार, बाहुबन्ध, मुकुटादि पहिनता था परन्तु उसे उन आभूषणों के प्रति प्रेम नहीं था।

वह महाभाग्य सिंहासन पर बैठकर अपनी स्त्रियों को जिनधर्म का उपदेश देते हुए कहता था - तीन काल में जिनधर्म के समान अन्य कोई धर्म नहीं है। यह जीव अनादि काल से संसार में भटका करता है, किसी पुण्यकर्म के योग से यह मनुष्य देह मिला है। यह बात जानकर कौन पुरुष संसार कूप में पड़ेगा अथवा कौन विवेकी (विषयों का) विष पियेगा? अथवा कौन बुद्धिमान पहाड़ के शिखर पर सोयेगा

www.vitragvani.com

अथवा मणि की प्राप्ति के लिये कौन पण्डित नाग के मस्तक का हाथ से स्पर्श करेगा? ज्ञानी को तो इन विनाश करनेवाले काम-भोगों के प्रति कहाँ राग उत्पन्न होगा? एक जिनधर्म का ही प्रेम महा प्रशंसा के योग्य तथा मोक्ष के सुख का कारण है - इत्यादि पारमार्थिक उपदेशरूप वाणी सुनकर स्त्रियों का मन भी शान्त हो गया, और उन्होंने भी नाना प्रकार के व्रत-नियम धारण किये।

शीलवान राजा ने अपनी स्त्रियों को भी शील में दृढ़ता रखना सिखाया। मन और इन्द्रियों को जीतकर उस निश्चल चित्त सम्यग्दृष्टि ने, चौसठ हजार वर्ष तक कठिन तप किया। बहुत समय पश्चात् समाधिमरण करके पंच नमस्कार मन्त्र का स्मरण करते-करते देह का परित्याग किया और छठवें ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में अपार ऋद्धि का धारक देव हुआ।

❖ ❖ ❖

भूषण के भव में जो उसका पिता धनदत्त सेठ (विनोद ब्राह्मण का जीव) था, वह मोह के योग में अनेक कुयोनियों में भ्रमण करता हुआ जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में पोदनपुर नगरी में अग्निमुख नामक ब्राह्मण की शकुना नाम की स्त्री में मृदुमति नाम का पुत्र हुआ। उसका नाम तो मृदु था परन्तु था वह स्वभाव से अतिकठोर, दुष्ट, महाजुआरी, अविनयी तथा अनेक प्रकार के दुराचारों से भरा।

लोगों के कहने से माता-पिता ने उसको घर से निकाल दिया। वह घूमते-घूमते एक बार पोदनपुर नगर में आया। किसी एक ब्राह्मण के घर में पानी पीने के लिये अन्दर गया तो वहाँ एक ब्राह्मणी रो रही थी। उसने रोते-रोते पानी पिलाया। ठण्डा-मीठा पानी पीकर उसने ब्राह्मणी से पूछा कि तू किसलिए रोती है? तब उस ब्राह्मणी ने कहा कि तेरे जैसा ही मेरे भी एक पुत्र था। मैंने उसे क्रोध करके घर से निकाल दिया है। तुझे देखकर अपने पुत्र की याद आने से आँसू आ रहे हैं। तब वह रोते-रोते कहने लगा कि हे माता! तू रो नहीं, तेरा वह पुत्र मैं ही हूँ। ब्राह्मण ने उसे अपना पुत्र जानकर रख लिया और मोहवश उसके स्तनों में से दूध झरने लगा। वह मृदुमति तेजस्वी, रूपवान, स्त्रियों के मन को हरनेवाला, धूर्तों का शिरोमणि, सदा जुएँ का ज्ञाता, हर कला को जाननेवाला, काम-भोगों में आसक्त एक बसन्तबाला नाम की वैश्या को अतिप्रिय था।

www.vitragvani.com

एक दिन मृदुमति शशांक नगर के राजमहल में चोरी करने गया। राजा नन्दिवर्धन का मन चन्द्रमुख स्वामी के मुख से धर्मोपदेश सुनकर वैराग्य से भर गया। उसने अपनी रानी से आकर कहा कि हे देवी! मैंने मुनि के मुख से मोक्षसुख प्रदाता धर्मोपदेश सुना है। उन्होंने अपने उपदेश में कहा था ये इन्द्रियों के विषय विषम, दु:खदायी है, इनका फल नरक-निगोद है। अत: मैं तो अब जिनेश्वरी दीक्षा धारण करूँगा। तू दु:खी मत होना।

इस प्रकार राजा को अपनी स्त्रियों को शिक्षा देते हुए सुनकर मृदुमति चोर अपने मन में विचारने लगा कि देखो, यह राजऋद्धि छोड़कर मुनिव्रत धारण कर रहा है और मैं पापी अन्य का धन चोरी करता हूँ। धिक्कार है मुझे! ऐसा विचार करके वह निर्मल चित्त होकर सांसारिक विषय भोगों से उदास हुआ और स्वामी चन्द्रमुख के पास जाकर समस्त परिग्रह का त्याग करके जिनदीक्षा धारण कर ली। वह महाकठिन तप करता और अत्यन्त अल्प आहार ग्रहण करता था।

❖ ❖ ❖

दुर्गनाभगिरि के शिखर पर गुणनिधि नामक मुनि चार महीने से उपवास कर रहे थे। वे सुर-असुरों और मनुष्यों द्वारा स्तुति करने योग्य महा ऋद्धिधारी चारण मुनि थे। वे तो चातुर्मास के चार माह पूर्ण करके आकाशमार्ग से अन्यत्र गमन कर गये, किन्तु मृदुमति मुनि आहार के लिये दुर्गनाभगिरि के समीप आलोक नगर में आये। वे पृथ्वी पर देखते हुए चले जा रहे थे। नगरवासियों ने जाना कि ये तो वे मुनिराज हैं जो गिरि-शिखर पर तप कर रहे थे - ऐसा जानकर नगरजनों ने उनकी बहुत भक्ति-पूजा की और अत्यन्त सुन्दर अहार प्रदान करके बहुत स्तुति की।

मृदुमति मुनि को लगा कि गुणनिधि मुनिराज गिरि पर रहे थे, उनके भरोसे मेरी प्रशंसा हो रही है, तथापि उन्होंने मायावश मौन धारण किया और लोगों से यह नहीं कहा कि मैं वह महामुनि नहीं हूँ, वे मुनि अन्य हैं। गुरु के पास जाकर भी उन्होंने माया दूर नहीं की, न प्रायश्चित ही लिया। इस कारण उनका वह भाव तिर्यञ्चगति का कारण हुआ। तप बहुत किया था, इस कारण वह पर्याय पूरी करके छठवें देव लोक में, जहाँ अभिराम (रमण का जीव) देव हुआ था, वहाँ गये। पूर्व जन्म के स्नेह से इनके अत्यन्त प्रेम उत्पन्न हुआ।

www.vitragvani.com

दोनों समान ऋद्धिधारक, बहुत सी देवांगनाओं के मध्य सुख सागर में मग्न सागरों तक सुखपूर्वक रहे। वहाँ से चयकर अभिराम का जीव भरत हुआ है और मृदुमति का जीव मायाचार के दोष से जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में यह अति सुन्दर हाथी हुआ है।

समुद्र की गाज समान जिसकी गर्जना है और पवन समान जिसकी गति है, अति मदोन्मत्त तथा चन्द्रमा के समान उज्ज्वल जिसके दाँत हैं और जो गजराजों के समस्त गुणों से सम्पन्न हैं, जिस विजयादिक हस्तिवंश में इसने जन्म लिया है, महाकांति का धारक, ऐरावत समान, स्वच्छंद सिंह-बाघ आदि को हरनेवाला, महावृक्षों को उखाड़नेवाला, पर्वतों के शिखरों को तोड़नेवाला, विद्याधरों से भी न पकड़ा जाए तो भूमिगोचरियों की तो बात ही क्या! जिसके वास से सिंहादि भी निवास छोड़कर भाग गये- ऐसा प्रबल गजराज गिरि या वन में नाना प्रकार के फल-फूल का भोजन करता, मान सरोवर में क्रीड़ा करता, अनेक हाथियों के साथ विहार करता, कभी कैलाश में विलास करता तो कभी गंगा के मनोहर पानी में क्रीड़ा करता तथा अनेक वन, गिरि, नदी, सरोवरों में सुन्दर क्रीड़ा करता, हजारों हथनियों के साथ क्रीड़ा करता, अनेक हाथियों के समूह का शिरोमणि स्वच्छन्द विचरता, मेघसमान गर्जना करता, मद झरता - ऐसा यह हाथी एक दिन लंकेश्वर ने देखा तथा विद्या के पराक्रम से इसे वश में किया और इसका नाम त्रैलोक्यमंडन रखा।

अभिराम का जीव भरत और मृदुमति का जीव यह हाथी-इनके चन्द्रोदय सूर्योदय के जन्म से लेकर अनेक भवों का सम्बन्ध है; इसलिए इस भव में भी भरत को देखकर पूर्व भव का स्मरण होने से यह हाथी शान्त हो गया।

यह भरत भोगों से दूर रहा, मोह से दूर रहा, अब मुनिपद धारण करना चाहता है और यह इसी भव में निर्वाण प्राप्त करेगा। ऋषभदेव के समय में ये दोनों सूर्यादय-चन्द्रोदय नाम के दो भाई थे। मारीचि के बहकावे में आकर मिथ्यात्व का सेवन करके बहुत काल तक इन्होंने संसार में परिभ्रमण किया है, त्रस-स्थावर योनियों में भी जा आये हैं।

चन्द्रोदय का जीव कितने ही भव बाद राजा कुलंकर, फिर रमण ब्राह्मण, बहुत भवों के बाद समाधिमरण करनेवाला मृगदेव, फिर भूषण नाम का वैश्यपुत्र, फिर स्वर्ग, फिर जगद्युति नाम का राजा, वहाँ से चयकर भोगभूमि में, वहाँ से दूसरे स्वर्ग में देव, वहाँ से

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

महा विदेहक्षेत्र में चक्रवर्ती का पुत्र अभिराम, वहाँ से छठवें स्वर्ग में देव और देव से भरत नरेन्द्र हुआ है। यह चरम शरीरी है, अब अन्य भव धारण नहीं करेगा।

सूर्योदय का जीव भी बहुत काल तक परिभ्रमण करते हुए राजा कुलंकर का श्रुतिरत नाम का पुरोहित हुआ तथा बहुत जन्मों के बाद विनोद नाम का विप्र हुआ, वहाँ से आर्त्तध्यान से मरकर मृग हुआ। बहुत जन्मों के बाद भूषण का पिता धनदत्त नाम का वणिक, वहाँ से मृदुमति नाम का मुनि हुआ, परन्तु अपनी प्रशंसा सुनकर मानवश मायाचार करके लोगों की शंका दूर नहीं की – इस कारण तप के प्रभाव से पहले छठवें स्वर्ग में देव हुआ तथा फिर वहाँ से आकर त्रैलोक्यमंडन हाथी हुआ है। अब श्रावक के व्रत धारण करके देव होगा।

इस प्रकार जीवों की गति–दुर्गति जानकर, इन्द्रियों का सुख विनाशीक जानकर उसका परित्याग करके ज्ञानी जैनधर्म की आराधना करते हैं। जो प्राणी दुर्लभ मनुष्यदेह प्राप्त करके भी जिनभाषित धर्म नहीं करता है, वह अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण करता हुआ आत्मकल्याण से दूर रहता है। जिनवर के मुख से प्रवाहित दयाधर्म मोक्ष प्राप्त कराने में समर्थ है, इसके समान अन्य कोई धर्म नहीं है।

–श्री पद्मपुराण में से संक्षिप्त सार

मुनिराज का निज वैभव

सम्यग्दर्शन होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का अल्प स्वाद आता है, परन्तु मुनि को उसका अतिप्रचुर आस्वादन होता है। समयसार की पाँचवी गाथा की टीका में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने निजवैभव बतलाते हुए कहा है कि **कैसा है निजवैभव?** निरन्तर झरते हुए सुन्दर आनन्द की मुद्रा अर्थात् छापवाला अतीन्द्रिय प्रचुर स्वसंवेदन से आचार्य भगवान का निजवैभव उत्पन्न हुआ है। **आत्मवस्तु स्वभाव से तो वीतरागस्वरूप है, परन्तु मुनिराज को पर्याय में भी अतिशय वीतरागता-समताभाव है।** *– पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ २५०*

24 जल से भिन्न कमल है
(श्रीराम के भाई वैरागी भरत)

स्वर्गलोक को भी शर्मिन्दा करनेवाली ऐसी अयोध्यापुरी में भरत को (श्रीराम-लक्ष्मण के भाई को) इन्द्र समान भोग-भोगने पर भी उनमें रति नहीं है, वे निरन्तर राज्यलक्ष्मी से उदास हैं, हमेशा भोगों की निन्दा करते हैं। भरत का मन्दिर अनेक मन्दिरों से मण्डित, अनेक प्रकार के रत्नों से जड़ित, मोतियों की माला शोभित है जहाँ वृक्ष फल-फूल रहे हैं, जो अनेक आश्चर्यों से भरा है, हर प्रकार की ऋतुओं से विलास युक्त जहाँ वीणा-मृदंगादि अनेक वाजिन्त्र बजते हैं, देवांगना समान अतिसुन्दर स्त्रियों से परिपूर्ण जिसकी चारों तरफ मदोन्मत्त हाथी गरजते हैं, महारमणीक उद्यान क्रीड़ा का स्थान जिसमें देवों को भी रुचि हो, परन्तु भरत संसार से भयभीत, उदास हैं, उन्हें संसार के किसी भी भोग में रुचि नहीं है।

जैसे शिकारी से भयभीत हुआ मृग कहीं भी विश्राम नहीं लेता; उसी प्रकार भरत विचारता है कि मैंने यह मनुष्यदेह अति कठिनता से प्राप्त की है, जो कि पानी की बूँद के समान क्षणभंगुर है तथा यह यौवन, ओस की जल बिन्दु के समान अति असार, दोषों से भरा हुआ तथा रसरहित ये भोग-इनमें कहीं सुख नहीं है। यह जीवन स्वप्न के समान और परिवार का सम्बन्ध जैसे वृक्ष पर पक्षियों का मिलाप - रात्रि में सब इकट्ठे हैं और प्रात: होते ही दशों दिशाओं में उड़ जाए - ऐसा है। यह जानकर भी यदि मैं मोक्ष का कारणरूप धर्म नहीं करूँ तो बुढ़ापे से जर्जरिज होकर दु:खरूप अग्नि में ही जलना है।

यह यौवन मूढ़ जीवों को ही प्रिय होता है। इसमें कौन विवेकी पुरुष राग करेगा ? यह आपदाओं के समूह का निवास तथा सायंकाल के उद्योत के समान विनश्वर है। यह

www.vitragvani.com

शरीररूपी यन्त्र बहुत प्रकार की व्याधियों का घर, पिता के वीर्य और माता के रुधिर से उत्पन्न है, इसमें प्रीति योग्य क्या है? जिस प्रकार अग्नि, ईंधन से कभी तृप्त नहीं होती; समुद्र कभी पानी से तृप्त नहीं होता; उसी प्रकार इन्द्रिय-विषयों से तृप्ति नहीं होती। यह विषय तो अनादि से भोगे हैं परन्तु तृप्ति नहीं हुई। काम में आसक्त यह मूढ़ जीव भला-बुरा कुछ नहीं जानता और पतंगों के समान विषयरूप अग्नि में पड़ कर भयंकर दु:ख प्राप्त करता है। भोग तो रोग के समान है। ये तो अति खेदरूप दु:ख का निवास है, इनमें विलास क्या करना? नारी का शरीर मल-मूत्रादि से पूर्ण विष्ठा का घड़ा है, उसका संयोग अति भयंकर, अति लज्जाकारी, महादु:खरूप है, उसमें मूढ़ जीव सुख मानता है। देवों को भोगों की इच्छा होते ही तुरन्त पूर्ण हो जाती है, तथापि जब वहाँ भी जीव को तृप्ति नहीं हुई तो मनुष्यों के भोगों में क्या तृप्ति होगी?

जिस प्रकर लकड़ियाँ बेचनेवाला सिर पर भार लेकर दु:खी होता है; उसी प्रकार राज्य का भार उठानेवाला दु:खी होता है। हमारे कुल में एक राजा सौदान्स उत्तम भोजन करके भी तृप्त नहीं होने पर, वह पापी माँसादि अभक्ष्य का आहार करके राज्य भ्रष्ट हुआ। जैसे गंगा के प्रवाह में माँस का लोभी कौआ, हाथी का शव चूसते हुए भी तृप्त नहीं हुआ और समुद्र में डूब मरा; उसी प्रकार यह विषयाभिलाषी जीव, भवसमुद्र में डूब मरता है। यह लोक मेंढ़क के समान लोभरूपी कीचड़ के मग्न मोहरूपी सर्प का ग्रास होकर नरक में पड़ता है।

इस प्रकार चिन्तन करते-करते शान्तचित्त भरत के कितने ही दिन अति उदासीनता से व्यतीत हुए। जिस प्रकार महासमर्थसिंह पिंजरे में खेदखिन्न होकर पड़ा रहता है, उसको वन में जाने की इच्छा होती है, उसी प्रकार भरत महाव्रत धारण करने की इच्छा से घर में हमेशा उदास रहता है। महाव्रत सर्व दु:खों का नाशक है।

एक दिन भरत शान्तचित्त से विचार करके घर छोड़ने के लिये तैयार हुआ। तब

www.vitragvani.com

कैकेई के कहने से राम-लक्ष्मण उसे रोकते हुए अति स्नेह से कहने लगे हे भाई! जब पिता वैराग्य को प्राप्त हुए, तब तुझे ही पृथ्वी का राज्य दिया और सिंहासन पर बिठाया। अत: तू हम सब रघुवंशियों का स्वामी है। तू इस पृथ्वी को नारी के समान भोग! मैं तेरे सिर पर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल छत्र लेकर खड़ा रहूँगा। भाई शत्रुध्न चँवर ढॉलेगा और लक्ष्मण तेरा सुन्दर मन्त्री होगा। यदि तू हमारे वचन नहीं मानेगा तो मैं विदेश चला जाऊँगा और हिरण की तरह वन-उपवन में रहूँगा। मैं तो राक्षसों के तिलक रावण को जीतकर तुझसे मिलने आया हूँ; अत: तू निश्चिन्त होकर राज्य कर। कुछ समय बाद मैं भी तेरे साथ मुनिव्रत धारण करुँगा। इस प्रकार शुभचिन्तक राम, भरत से कहने लगे।

श्रीराम की बात सुनकर विषयरूपी विष से अति उदास निस्पृह भरत कहने लगा - हे देव! मैं शीघ्र राज्य सम्पदा तज देना चाहता हूँ, जिसे तजकर शूरवीर पुरुष मोक्ष गये हैं। हे नरेन्द्र! अर्थ एवं काम, अति चंचल महा दु:ख के कारण हैं, ये जीवों के शत्रु और महापुरुषों के लिये निन्दनीय है। अत: मूढ़ जीव ही इनका सेवन करते हैं। हे हलायुध! मुझे इन क्षणभंगुर भोगों की तृष्णा व इच्छा नहीं है। आपके आशीर्वाद से अपने घर में ये स्वर्ग के समान भोग हैं, तथापि मुझे इनमें रुचि नहीं है। यह संसार सागर महा भयानक है। जहाँ महा विषम मृत्युरूप पातालकुण्ड हैं तथा जन्मरूप कल्लोल / तरंगे उठती हैं, इनमें राग-द्वेषरूपी अनेक प्रकार के भयंकर जलचर प्राणी हैं तथा यह रति-अरतिरूपी क्षार जल से भरा है; जहाँ शुभ-अशुभरूपी चोर रहते हैं; अत: मैं मुनिव्रतरूपी जहाज में बैठकर इस संसार सागर को पार करना चाहता हूँ।

हे राजेन्द्र! मैंने अनेक प्रकार की योनियों में अनन्त बार जन्म-मरण धारण किया है और नरक-निगोद में अनन्त कष्ट सहन किये हैं। गर्भवास में खेद-खिन्न हुआ हूँ।

भरत के ऐसे वचन सुनकर कितने ही राजाओं की आँखों में आँसू बहने लगे। अति

www.vitragvani.com

आश्चर्ययुक्त गद्गद् वाणी से वे कहने लगे हे महाराज! पिता के वचन का पालन करो, थोड़े दिनों तक राज्य करो। तुम इस राज्य लक्ष्मी को चंचल जानकर उदास हुए हो तो थोड़े दिनों के पश्चात् मुनिव्रत धारण करना। अभी तो आपके बड़े भाई आये हैं, इनके मन को शन्ति प्रदान करो।

तब भरत ने कहा कि मैंने पिता के वचनानुसार तो बहुत समय तक राज्य सम्पदा भोगी है, प्रजा के दु:ख दूर किये हैं, पुत्र की तरह प्रजा का पालन किया है। दान, पूजादि गृहस्थ धर्म का पालन किया है, साधुओं की सेवा की है। अब पिताजी ने जो किया है, वही मैं करना चाहता हूँ। आप सब भी मेरी इस भावना की अनुमोदना क्यों नहीं करते? प्रशंसा योग्य कृत्य में विषाद किसलिए?

हे श्रीराम! हे लक्ष्मण! तुमने महा भयंकर युद्ध में शत्रुओं को जीतकर पूर्व में हुए बलभद्र-वासुदेव के समान लक्ष्मी प्राप्त की, तो तुम्हारे पास जैसी दैवीय लक्ष्मी है, वैसी अन्य मनुष्यों के पास नहीं है, तथापि राज्य लक्ष्मी मुझे नहीं रुचती, मुझे तृप्त नहीं करती। अब मैं शीघ्र ही तत्वज्ञान के मार्ग में प्रर्वतन करुँगा। इतना कहकर भरत अत्यन्त विरक्त होकर राम-लक्ष्मण को पूछे बिना ही वैराग्य के लिये उठ गया।

वह शीघ्र ही मनोहर चाल चलनेवाले मुनिराजों के समीप जाने के लिये तैयार हो गया, तब लक्ष्मण ने अत्यन्त प्रेम से उसे रोका और वे भरत का हाथ पकड़कर खड़े हो गये।

उसी समय माता कैकई आँसू बहाते हुए आई और राम की आज्ञा से दोनों भाईयों की रानियाँ भी आई। जिनका रूप लक्ष्मी के समान है, पवन के समान चंचल और कमल के समान नेत्र हैं, वे आकर भरत को समझाने लगी। उसके बाद सीता, उर्वशी, भानुमति, विशल्या, सुन्दरी, रत्नवती, लक्ष्मी, गुणवती बन्धुमति, सुभद्रा, कुबैरा, नलकुवरा, कल्याणबाला, चंदिणी, मदमान सोत्सवा, मनोरमा, प्रियनन्दा, कलावती, रत्नस्थली, श्रीकान्ता, सरस्वती, गुणसागरी, पद्मावती इत्यादि समस्त रानियाँ आई। जिनके रूप और गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता, जो बड़े कुलों में उत्पन्न हुई है, जिनका रूप मन को मोहित करनेवाला है, वे दिव्य वस्त्र तथा आभूषण पहिनकर भरत के चारों और खड़ी हो गई, मानों

www.vitragvani.com

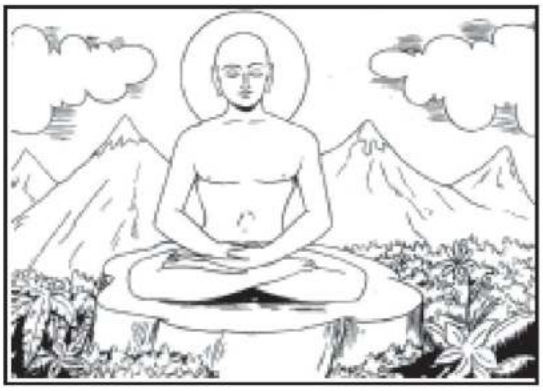

चारों और कमल के फूल खिल रहे हों। वे सब भरत का मन राज्य सम्पदा में लगाने का प्रयत्न करती हुई भरत से अत्यन्त आदरपूर्ण शब्दों में कहने लगी – हे देवर! हमारा कहना मानो, कृपा करके आज सरोवर में जलक्रीड़ा करने के लिये चलो और चिन्ता को दूर करो। तुम्हारे भाईयों और माता को दु:ख न हो वैसा करो, हम तुम्हारी भाभियाँ हैं; अत: हमारी विनती स्वीकार करो। तुम विवेकी, विनयवान हो – ऐसा कहकर वे भरत को सरोवर में ले गई। भरत का चित्त तो जलक्रीड़ा से विरक्त था। वे सरोवर के किनारे पर खड़े हुए ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो गिरिराज ही हो। रानियाँ अनेक प्रकार की जलक्रीड़ा करने लगी। तब उत्तम चेष्टा के धारक वे भरत निर्मल जल में स्नान करके सरोवर के किनारे पर स्थित जिनमन्दिर में भगवान की पूजा करने लगे और फिर दीक्षित होकर केवलज्ञान प्राप्त किया। *-श्री पद्म पुराण में से*

वस्तुस्वरूप की गर्जना करनेवाले मुनिराज

आ...हा..हा! जङ्गल में रहनेवाले वीतरागी सन्तों को तो देखो। जङ्गल में जैसे सिंह गर्जन करता है, वैसे ही मुनिराज वस्तुस्वरूप की गर्जना करते हैं। सिद्ध भगवान जैसा आत्मानुभव करते हैं, ठीक वैसा ही आत्मानुभव मुनिराज भी करते हैं। सिद्ध तथा साधक दोनों एक ही जाति का अतीन्द्रिय आनन्द अनुभवते हैं; उसमें कुछ भी अन्तर नहीं है।.... यही मोक्षमहल का सीधा मार्ग है।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, योगसार प्रवचन, पृष्ठ-१०९, ११०

25 मृगसेन मछुआरे की कथा
वीतरागी सन्तों की अकारण करुणा

अवन्ति देश में शिरोष नाम का एक छोटा सा गाँव था, जिसकी सुन्दरता तथा सुख-समृद्धि की स्पर्द्धा स्वर्ग को भी पराजित करती थी। वहाँ मृगसेन नाम का एक मछुआरा रहता था। एक दिन वह अपने कन्धे पर जाल लटकाकर मछलियाँ मारने के लिए शिप्रा नदी की तरफ जा रहा था। महाभाग्य से उसे मार्ग में यशोधर नामक मुनिराज के दर्शन हुए। अनेक राजा-महाराज जिनके चरणों की उपासना करते थे, उन मुनिराज के पास वस्त्राभूषण नहीं थे, परन्तु उनके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपी अमूल्य रत्नों से विभूषित शरीर (ज्ञानशरीर) में से तेज किरणें निकल रही थीं।

मुनिराज को देखते ही मछुआरे के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह कन्धे से जाल को दूर करके मुनिराज के समीप गया और उनके चरणों में भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर, प्रार्थना करने लगा - 'हे भगवन्! आप मुझे कोई व्रत दें, जिससे मेरा जीवन सफल हो जाए।' इतना कहकर वह विनयपूर्वक मुनिराज के समीप बैठ गया।

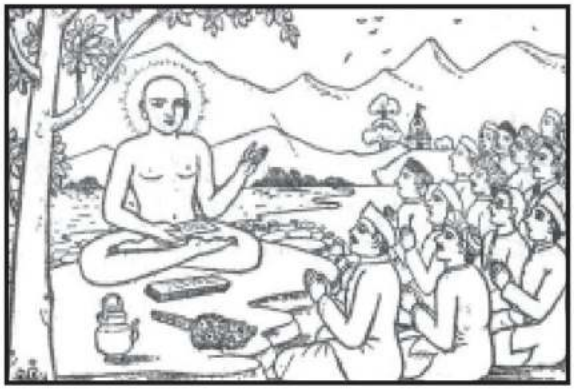

मुनिराज ने उसकी तरफ देखा और विचार किया कि इस महाहिंसक के परिणाम आज अचानक कोमल कैसे हो गये? सत्य है कि भविष्य में जो कुछ इष्ट-अनिष्ट होना होता है, उस अनुसार ही जीवों का मन भी क्रमशः पवित्र-अपवित्र बनता है। तत्पश्चात् अवधिज्ञान से आगामी घटनाक्रम

www.vitragvani.com

को जानते हुए मुनिराज को उस पर अत्यन्त करुणा उत्पन्न हुई। उन्हें ज्ञात हुआ कि अब इस मछुआरे की जीवनलीला थोड़े ही समय में समाप्त होनेवाली है; अत: उन्होंने दया-द्रवित होकर करुणा से कहा -

'हे भव्य! मैं तुझे एक उपदेश देता हूँ, उसका पालन तू जीवन भर करना। वह यह कि तेरी जाल में पहली बार जो जीव आये, उसे छोड़ देना और वह पहली बार छोड़ा हुआ जीव जितनी बार तेरे जाल में आवे, उसे छोड़ देना। बस, इसी एक नियम से तू पाप से दूर रहेगा।'

मछुआरे ने मुनिराज के मोक्षदायक शब्दों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक यह व्रत स्वीकार कर लिया। अहा! जो गुरु-आज्ञा को समझकर पालन करते हैं तथा विश्वास रखते हैं, वे अवश्य पृथ्वी पर सब प्रकार के सुख को पाकर अन्त में मोक्षसुख को प्राप्त करते हैं।

व्रत धारण करके मृगसेन, नदी के किनारे आया और नदी में अपनी जाल डाली। भाग्यवश उस समय एक बड़ी मछली जाल में फँस गयी। उसने जाल में से निकालकर अपने गुरु की आज्ञानुसार उस मछली के कान में कपड़े की ध्वजा बाँधकर वापस नदी में छोड़ दिया। उसने दुबारा अपनी जाल फेंकी तब भी वही बड़ी मछली उसकी जाल में आयी। इस प्रकार पाँच बार वह मछली आई और उसने उसे छोड़ दिया। इस प्रकार उसने मन में दु:खी न होकर, दृढ़तापूर्वक अपने व्रत का पालन किया।

इधर सन्ध्याकाल का समय हो गया था। पक्षीगण भी अपने-अपने घोंसलों में शरण लेने जा रहे थे। निरुपाय होकर मृगसेन भी अपने घर की ओर चल दिया। रास्ते भर वह गुरु प्रदत्त मन्त्र का स्मरण करता रहा। उसकी पत्नी उसे खाली हाथ आया देखकर अत्यन्त दु:खी हुई। उसने क्रोधित होकर दरवाजा बन्द कर लिया और अन्दर चली गयी। सत्य है कि पति का प्रेम होने पर भी नीच स्त्रियों का व्यवहार ऐसा ही होता है।

अपनी स्त्री का ऐसा दुर्व्यवहार देखकर मृगसेन कर्तव्यविमूढ़ होकर घर के बाहर एक पुरानी लकड़ी पर पञ्च नमस्कार मन्त्र का स्मरण करके सो गया। आयु पूर्ण हो जाने से रात्रि में सर्प के डसने के कारण उसकी मृत्यु हो गयी।

www.vitragvani.com

अरे रे! सूर्यास्त के साथ-साथ उसकी पत्नी का सौभाग्यसूर्य भी अस्त हो गया। जब प्रात:काल उठकर पत्नी ने पति को देखा तो उसके दु:ख का पार नहीं रहा। वह छाती पीट-पीटकर रोने लगी। रात्रि में कालरूपी अन्धकार ने उसके पति के जीवन का अन्त कर दिया था; अत: उसने निदान किया कि दूसरे जन्म में भी यही मेरा स्वामी हो। तत्पश्चात् उसने अपने पति के साथ अग्नि में प्रवेश करके अपघात कर अपनी जीवनयात्रा समाप्त कर ली।

❖ ❖ ❖

विशाल नगरी में राजा विशम्भर राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम विश्वगुणा था। उसी राज्य में गुणपाल नाम का एक सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम धनश्री और पुत्री का नाम सुबन्धु था। धनश्री सुन्दर तथा गुणवती थी। पुण्योदय से मृगसेन का जीव, धनश्री के गर्भ में आया।

उसी राजा का नर्मभर्म नाम का एक मन्त्री था, उसके पुत्र का नाम नर्मधर्म था। मन्त्री ने राजा से प्रार्थना की कि हे राजन्! सेठ गुणपाल की पुत्री सुबन्धु के साथ मेरे पुत्र का विवाह करा दो।

राजा ने मन्त्री-पुत्र के लिए गुणपाल से इस सम्बन्ध के लिए आग्रह किया परन्तु गुणपाल अपनी पुत्री का विवाह नर्मधर्म के समान कुकर्मी से नहीं करना चाहता था और राजा से बचने का उपाय तो राज्य परित्याग के सिवाय अन्य कुछ था नहीं। अत: उसने अपने मित्र श्रीदत्त के पास अपनी सगर्भा पत्नी को छोड़कर पुत्री तथा थोड़े-से धन के साथ राज्य का परित्याग करके, कौशाम्बी नगरी में जाकर शरण ली।

श्रीदत्त के घर के समीप एक जैन श्रावक रहता था। एक दिन शिवगुप्त और मुनिगुप्त नामक दो मुनिराज आहार के लिए पधारे। जब आहार करके मुनिराज वापस जङ्गल में जाने लगे तो अनायास ही मुनिगुप्त की दृष्टि धनश्री पर पड़ गयी। वह उस समय शोचनीय दशा में श्रीदत्त के आँगन में खड़ी थी।

कुकवि की कविता के समान उसकी दयनीय दशा देखकर मुनिगुप्त ने शिवगुप्त मुनिराज से कहा - 'प्रभो! इसकी दुर्दशा देखकर लगता है कि निश्चित् ही इसके गर्भ से किसी अभागे का जन्म होना है।'

www.vitragvani.com

शिवगुप्त ने मुनिगुप्त मुनिराज से कहा – तुम्हारा यह अनुमान मिथ्या है। इसके गर्भ से तो एक प्रबल प्रतापी महात्मा, जिनधर्म के पूर्ण ज्ञाता पुत्र का जन्म होगा, जो राज सम्मान का पात्र होगा। यद्यपि उसका जन्म वैश्य कुल में होगा, तथापि उसका विवाह राजा विशम्बर की राजपुत्री के साथ होगा और राजवंश उसकी सेवा करेगा।'

मुनिराज की यह भविष्यवाणी सुनकर ईर्ष्यालु श्रीदत्त हृदय से कोसने लगा। यद्यपि वह सेठ गुणपाल का मित्र था, तथापि जाति भाईयों की महत्ता नहीं देख सका और उसने जन्मते ही बालक को मारने का निश्चय कर लिया। सत्य ही कहा है कि – दुर्जन शत्रु अकारण मित्र बन जाते हैं।

पहले तो श्रीदत्त विचारी धनश्री को अत्यन्त दु:खी करता था, परन्तु अब वह उसके साथ अत्यन्त प्रेम का व्यवहार करने लगा। प्रसवकाल का समय आने पर धनश्री ने पुत्र को जन्म दिया, परन्तु वह प्रसव की वेदना से मूर्च्छित हो गयी। पापी श्रीदत्त तो इसी अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने विचार किया कि बालक तेजस्वी है और आश्रय देनेवालों का विनाश करनेवाला है; अत: इसे मार ही देना चाहिए। उसने प्रसिद्ध कर दिया कि धनश्री के मरा हुआ पुत्र उत्पन्न हुआ है। फिर उसने बालक को एक हरिजन को देकर कहा कि इसे ले जाकर मार दे। हरिजन उसे ले गया, परन्तु बालक का तेज देखकर उसके प्रति दया आयी, इस कारण उसे सुरक्षित स्थान पर रखकर अपने घर आ गया।

❖ ❖ ❖

सेठ श्रीदत्त की एक बहन थी, उसका विवाह सेठ इन्द्रदत्त के साथ हुआ था। उनके कोई सन्तान नहीं थी। बालक के पूर्वोपार्जित पुण्य के उदय से सेठ इन्द्रदत्त माल बेचकर उसी मार्ग से निकल रहा था, जिस मार्ग पर उक्त बालक था। रास्ते में ग्वाले के मुख से उस बालक की हालत सुनकर, जहाँ बालक था, वहाँ गया। बालक का अनुपम सौन्दर्य और तेज देखकर सेठ बहुत प्रसन्न हुआ और हर्षपूर्वक बालक को गोद लेकर घर ले आया। जैसे, आँख प्राप्त होते ही अन्धे को, खोई हुई मणि मिलने से मणिधर सर्प को सुख होता है; उसी प्रकार बालक की प्राप्ति से प्रसन्नता के उपलक्ष्य में सेठ ने उसका नाम धनकीर्ति रखा, बहुत उत्सव किया तथा याचकों को दान दिया।

www.vitragvani.com

अहो! पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभाव से प्राणियों की आपत्ति भी सम्पत्तिरूप में परिवर्तित हो जाती है।

जब इस घटनाक्रम का पता पापी श्रीदत्त को लगा तो वह अपने बहनोई के घर गया और मायाचारी से भरपूर बातें बनाकर बहिन तथा भानेज (धनकीर्ति) को अपने घर ले आया। यह अक्षरश: सत्य है कि दुष्ट लोगों के मन में कुछ रहता है और वे करते कुछ हैं। सज्जनों का मन, वचन और कर्म एक समान होता है – यही सज्जनों और दुर्जनों में अन्तर है। पापी श्रीदत्त भी इसी श्रेणी का दुष्ट था। अत: वह नि:सहाय बालक के खून का प्यासा हो गया था। इस बार भी उसने एक चाण्डाल को कुछ लोभ देकर बालक को मारने के लिए सौंप दिया परन्तु चाण्डाल को बालक की सुन्दरता पर दया आई और उसने उसे पहाड़ की गुफा में जाकर रख दिया।

सन्ध्या के समय जब ग्वाले गायों को चराकर वापस आ रहे थे, तब थोड़ी-सी गायें उसी गुफा की ओर चली गयी। उस सयम लोगों ने देखा कि गायें बालक को घेर कर खड़ी हैं और उनके थनों में से दूध टपक रहा था। ये समाचार उन्होंने अपने मुखिया गोविन्द को दिये। उसके भी कोई सन्तान नहीं थी, अत: वह बालक को अपने घर ले आया और पुत्रवत् उसका पालन-पोषण करने लगा। वह बालक रूप में रतिपति कामदेव को भी लज्जित करता था। नीलकमल के समान उसके विकसित नेत्रों को देखकर भ्रमर भी अपनी मधुर झंकार से पराग के भ्रम में हमेशा उसके कान के पास गूँजते थे। चन्द्र के समान उसकी कीर्ति तथा सूर्य के समान उसका तेज देखकर लगता था कि मानो पृथ्वी भी एक दूसरे स्वर्ग के समान है। इस प्रकार जैसे-जैसे वह बालक दूज के चन्द्रमा के समान वृद्धिगत होता गया, वैसे-वैसे समस्त कलाएँ, उसके पास आती जा रही थी।

एक दिन पापी श्रीदत्त, गोविन्द के यहाँ घी लेने के लिए आया। धनकीर्ति पर नजर पड़ते ही वह उसे पहिचान गया और थोड़ी-सी जो शङ्का थी, वह लोगों से पूछकर दूर हो गयी। वह दुष्ट उसे मारने का षड़यन्त्र करने लगा। उसने गोविन्द से कहा – 'भाई! मुझे एक अत्यन्त आवश्यक कार्य है, यदि आज्ञा दो तो मैं तुम्हारे पुत्र के हाथ मेरे घर एक पत्र भेज दूँ।' गोविन्द ने सहजभाव से आज्ञा दे दी। सत्य है कि सरल चित्त लोगों को दुष्ट लोगों की दुष्टता का पता शीघ्र नहीं पड़ता।

www.vitragvani.com

पापी श्रीदत्त ने पत्र में लिखा 'पुत्र महाबल! यह पत्रवाहक भविष्य में अपने कुल को भस्मीभूत करनेवाला है। यह मलय अग्नि के समान भयङ्कर है, जो सामर्थ्यवान होते ही अपना सर्व नाश करेगा; अत: तू गुप्त रीति से तलवार या मूसल से इसका काम तमाम कर देना। यह कार्य अत्यन्त सावधानी से करना, जिससे किसी को पता नहीं चले।'

कुमार धनकीर्ति ने पत्र को लेकर अपने गले में पहिने हुए हार के साथ बाँध लिया और निर्भय होकर वहाँ से चल निकला। चलते-चलते थक जाने से मार्ग में एक वृक्ष के नीचे सो गया। उसी समय एक अनंगसेना नामक वेश्या वहाँ फूल तोड़ने आई। उसने कुमार के गले में एक पत्र देखा। उसकी इच्छा हुई कि इस पत्र में क्या लिखा है, जरा पढ़ूँ तो सही! पत्र पढ़ते ही वह चकित रह गयी। उसने कुमार की सुन्दरता और पत्र प्रेषक की निष्ठुरता पर बहुत देर तक विचार किया।

अन्त में उसने उन लिखे हुए अक्षरों को अत्यन्त सावधानीपूर्वक मिटाकर उनके स्थान पर अपनी आँख में आँजे हुए काजल को सली से निकालकर ऐसा लिखा - हे प्रिय! अगर तू सच में ही मुझे अपना स्वामी मानती है और पुत्र महाबल! तू मुझे अपना पिता मानता है तो इस पत्रवाहक के साथ शीघ्र ही अपनी बहिन श्रीमती का विवाह करा देना। ऐसे सुयोग्य वर की प्राप्ति महाभाग्य से हुई है। इस कार्य में मेरी जरा भी अपेक्षा नहीं रखना क्योंकि सम्भव है कि मुझे वहाँ आने में विलम्ब हो जाए। ध्यान रहे, वर के मान-सम्मान में किसी प्रकार की कमी नहीं होना चाहिए।

इस प्रकार पत्र लिखकर अनंगसेना ने उसे यथास्थान बाँध दिया और वापस अपने घर चली आई। उसके जाने के बाद कुमार की आँख खुली। वह शीघ्रता से श्रीदत्त के घर की ओर चलने लगा। वहाँ पहुँचकर उसने श्रीदत्त की पत्नी के हाथ में वह पत्र दिया, उस पत्र को श्रीदत्त के पुत्र महाबल ने भी पढ़ा। पढ़कर उन दोनों के आनन्द की सीमा नहीं रही और उन्होंने शुभ मुहुर्त में श्रीमती के साथ कुमार धनकीर्ति का विवाह कर दिया।

देखो, वस्तुस्वभाव के परिणाम की स्वतन्त्रता! जो होना है, वह होकर रहता है; उसमें कोई फेरफार नहीं कर सकता।

www.vitragvani.com

जब श्रीदत्त को इस घटना का परिज्ञान हुआ तो वह घबराकर शीघ्र दौड़ा चला आया। उसने रास्ते में ही धनकीर्ति को मारने की युक्ति विचार ली। गाँव के बाहर पार्वती का एक मन्दिर था, वहाँ उसने एक मनुष्य के साथ धनकीर्ति को मारने का निश्चय किया। घर आकर उसने पार्वती की पूजा के लिए सामग्री देकर कुमार को भेजा परन्तु जिसकी आयु शेष हो, उसे कोई मार नहीं सकता और जिसका मरण काल आ जाता है, उसे कोई बचा नहीं सकता है – यह शाश्वत् सत्य सिद्धान्त है।

धनकीर्ति तुरन्त आज्ञा शिरोधार्य करके नगर के बाहर गया, परन्तु रास्ते में उसका साला महाबल आ रहा था। उसने कुमार को पूजा की सामग्री के साथ वापस घर भेज दिया। एक कहावत है कि पिता के पुण्य से सन्तान की वृद्धि होती है और पिता के अधर्म से सन्तान का अध:पतन होता है। श्रीदत्त के पाप ने पुत्र पर हाथ साफ कर दिया। पिता के पापाचरण से निरपराध महाबल मन्दिर में जाते ही मारा गया।

पुत्र की मृत्यु से श्रीदत्त अत्यन्त दु:खी हुआ। उसने अपनी पत्नी से धनकीर्ति को मारने की युक्ति पूछी। पत्नी ने कहा कि तुम निश्चिन्त रहो, अब तुम सठिया गये हो, तुम्हारी बुद्धि शिथिल हो गयी है, मैं उसका काम तमाम कर दूँगी – ऐसा कहकर उसने दो प्रकार के लड्डू बनाये। एक तो उज्ज्वल और एक कुछ मटमैले। उज्ज्वल लड्डू दिखने में तो सुन्दर थे, परन्तु उनमें विष मिला हुआ था। भोजन के समय उसने अपनी पुत्री श्रीमती से कहा – 'बेटी! मैं स्नान करने जा रही हूँ, अत: तू अपने पिता और पति को भोजन कराना, इनमें से उज्ज्वल लड्डू तेरे पति को देना और मटमेले पिता को' – ऐसा कहकर वह चली गयी।

भोलीभाली श्रीमती, पिता और पति को भोजन कराने बैठी। उसको पिता के सामने पति को उज्ज्वल लड्डू और पिता को मटमैले लड्डू परोसते हुए शर्म महसूस हुई, अत: उसने ठीक इसका उल्टा कर दिया। भाग्य की गति विचित्र है। किसी को पता नहीं कि कब, किसका क्या होगा? लड्डू खाते ही श्रीदत्त मरण की शरण हो गया, उसकी दुष्टता का अन्त आ गया।

जब श्रीमती की माता स्नान करके वापस आई तो उसके दु:ख का पार नहीं रहा,

www.vitragvani.com

उसने बहुत विलाप किया और स्वयं ने भी एक जहरीला लड्डू खाकर अपना अन्त कर लिया। सत्य ही है कि जो दुसरों का बुरा चाहता है, उसका बुरा होता ही है - यह अटल और अविचल नियम है। यदि कोई तुम्हारी बुराई करता है, उसकी भी तुम भलाई करो। तुम्हें अच्छी भलाई का प्रतिफल अवश्य प्राप्त होगा और उसको उसकी बुराई का।

❖ ❖ ❖

धनकीर्ति की प्रतिष्ठा और सरलता का परिचय महाराज विशम्बर के कानों तक पहुँच गया। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी पुत्री का विवाह धनकीर्ति के साथ कर दिया। राजा ने उसे दहेज में बहुत धन-सम्पत्ति तो दी ही, राजसेठ पद पर भी उसको नियुक्त कर दिया। सत्य ही है कि संसार में ऐसी कोई वस्तु साध्य नहीं है, जो जिनधर्म के प्रभाव से प्राप्त न हो।

❖ ❖ ❖

जब धनकीर्ति के वास्तविक पिता सेठ गुणपाल को अपने भाग्योदय के समाचार ज्ञात हुए तो वह शीघ्र कौशाम्बी से उज्जैन के लिए रवाना हो गया। काफी लम्बे समय के बाद पिता-पुत्र का मिलन हुआ। अब धनकीर्ति अनेक भोगों का भोग करता हुआ, सुख-चैन से अपना जीवन व्यतीत करने लगा। साथ ही साथ अपने कर्तव्य से भी विचलित नहीं हुआ। दीन-दुखियों की सहायता, देवराधन, स्वाध्याय, अध्ययन आदि उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया था।

एक दिन धनकीर्ति के पिता सेठ गुणपाल अपनी पत्नी, पुत्र, बन्धु, बान्धवों आदि को साथ लेकर यशोध्वज मुनिराज की वन्दना के लिए गये। भाग्य से वेश्या अनंगसेना

www.vitragvani.com

भी वहाँ आयी। मुनिराज की वन्दना करने के बाद गुणपाल सेठ ने उनसे पूछा – 'प्रभो! आपको त्रिकाल का ज्ञान है; अत: कृपा करके हमें यह बतलाने का अनुग्रह करें कि मेरे पुत्र धनकीर्ति ने पूर्व भव में ऐसा क्या पुण्य किया था, जिसके फलस्वरूप इसे बालपन में ही भयङ्कर कष्टों पर विजय प्राप्त करके यह अचल कीर्तिवान, प्रचूर धनी, सुकर्मी, दानी तथा दयालु हुआ?

सेठ के प्रश्न के उत्तरस्वरूप परम करुणाशील, चार ज्ञान के धारी यशोध्वज मुनिराज ने मृगसेन धीवर की कथा सुनाते हुए कहा – 'धनकीर्ति पूर्व भव में धीवर था, उसकी स्त्री का नाम घटा था, जो इस जन्म में श्रीमती नाम की सुलक्षणा गुणवती स्त्री है। वह मछली, जिसे पाँच बार पकड़कर इसने छोड़ दिया था, वह इस जन्म में अनंगसेना बनी है। गुणपाल! यह सब अहिंसाव्रत धारण करने का फल है। यह अहिंसाव्रत का प्रर्वतक जिनधर्म ऐसा धर्म है, जिससे सज्जनों को क्या नहीं मिलता?'

मुनिराज के श्रीमुख से कुमार धनकीर्ति की यह कथा सुनकर सबको जिनधर्म पर अटल श्रद्धा हो गयी। धनकीर्ति, श्रीमती, अनंगसेना को अपने-अपने पूर्व भवों की बातें स्मरण हो आई। उसे उस समय मुनिराज द्वारा दिये गये उपदेश वाक्यों का पूर्णत: स्मरण हो गया, जिससे उसका चित्त वैराग्य से ओत-प्रोत हो गया।

वैराग्यचित्त कुमार धनकीर्ति ने मुनिराजश्री से कहा – हे प्रभो! मैं इस संसार में जन्म-मरण के कष्ट भोगते-भोगते थक गया हूँ। अब कृपा करके मुझे शाश्वत् सुखप्रदायिनी जिनदीक्षा प्रदान कर अनुगृहीत करें।

धनकीर्ति के उत्तम विचारों से प्रसन्न होकर मुनिराजश्री ने कहा – हे भव्य! तूने निजहित के लिए यह उत्तम विचार किया है। वस्तुत: इस अशरण संसार में एकमात्र निज शुद्धात्मा ही सारभूत शरणभूत तत्त्व है। तू निज शुद्धात्मा की उत्कृष्ट आराधना के लिए जिनदीक्षा अंगीकार कर।

गुरु के अनुगृह से धनकीर्ति ने अपने हाथों से केशलोंच करके मिथ्यात्व कषायादि अन्तरंग और वस्त्रादि बाह्य परिग्रह का त्याग करके जिनदीक्षा धारण कर ली। धनकीर्ति की यह दशा देखकर श्रीमती और अनंगसेना ने भी अपने हृदय में से विषयवासना का भाव

www.vitragvani.com

छोड़कर आर्यिका दीक्षा अङ्गीकार कर ली। जिनधर्म के प्रभाव से धनकीर्ति ने समाधिपूर्वक प्राण त्याग कर सर्वार्थसिद्धि का श्रेष्ठ सुख प्राप्त किया और आगामी भव में मनुष्य होकर मोक्ष प्राप्त करेगा। इसी प्रकार श्रीमती और अनंगसेना ने भी स्वर्ग प्राप्त किया। सत्य है कि जिनधर्म की आराधना से किसको सुख नहीं मिला? वस्तुत: जिनधर्म कल्पतरु के समान मनवांछित फल देनेवाला है।●●

(- आराधना कथा कोश, भाग-2 में से सार संक्षेप)

ऐसे होते हैं हमारे जैन मुनि महाराज!

मुनिराज को वीतरागता फली-फूली है; जिस प्रकार फूल की कली खिल उठती है, उसी प्रकार वीतरागता खिल उठी है। श्रेणिक राजा ने यशोधर मुनि के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया था; करोड़ों चीटियाँ शरीर पर चढ़ गयी और जगह-जगह काटा – ऐसे उपसर्ग के समय भी मुनि खेद-खिन्न नहीं हुए थे, परन्तु अन्तर में वीतरागी आनन्द में क्रीड़ा करते थे। चेलना रानी कहने लगी – **देखो! ऐसे होते हैं हमारे जैन मुनि! अन्तर आनन्द की मस्ती में उपसर्ग के प्रति उनका लक्ष्य नहीं जाता।** अन्तर में एकदम अतीन्द्रिय आनन्द की मस्ती में उपसर्ग के प्रति उनका लक्ष्य ही नहीं जाता। अन्तर में एकदम अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति में लीन हो गये हैं। **यहाँ तो कहते हैं कि मुनिराज को प्रतिकूलता में खेद नहीं है और अनुकूलता में हर्ष नहीं है।**

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ २५२

26 भगवान महावीर की वैराग्य और पुरुषार्थ प्रेरक कथा

भगवान महावीर का जीव अनादि काल से चार गतियों, चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करते-करते एक बार वन में भीलों का राजा पुरुरवा हुआ। उस वन में सागरसेन नामक मुनिराज को देखकर, उन्हें मृग समझकर वह भील उनको बाण मारने के लिए तैयार हुआ। उसी समय उसकी स्त्री ने कहा कि हे देव! इन्हें बाण मत मारना, यह तो वन देवता हैं। यह जानकर भील प्रसन्न हुआ और उसने मुनिराज के पास जाकर भक्ति से उनको नमस्कार किया और मुनिराज का उपदेश सुनकर शान्तचित्त हुआ। मुनिराज ने अपने उपदेश में माँस भक्षणादि के दोषों का वर्णन किया, जिन्हें सुनकर उसने माँस आदि तीन प्रकार के त्याग का व्रत धारण किया और आदर पूर्वक जीवन्त पर्यन्त उस व्रत का पालन किया। आयु के अन्त में भील की पर्याय का त्याग करके सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयुवाला देव हुआ। वहाँ विविध इन्द्रिय सुख भोगकर, उस स्वर्ग की आयु पूर्ण करके अयोध्या नगरी में भरत चक्रवर्ती का पुत्र मारीचकुमार हुआ।

ऋषभदेव की दीक्षा के समय गुरुभक्ति से प्रेरित होकर मारीचकुमार ने कच्छ आदि राजाओं के साथ जिनदीक्षा अङ्गीकार कर ली। बहुत समय तक तपश्चरण का क्लेश और क्षुधादि परीषह सहन किये, परन्तु संसारवास की दीर्घता के कारण वस्त्र, फल आदि को ग्रहण करने लगा। मुनिवेष में यह दुष्कृत्य देखकर देवताओं ने कहा कि निर्ग्रन्थ मार्ग में यह सब नहीं चल सकता; अत: अन्य वेष धारण करो। देवों का यह वचन सुनकर प्रबल मिथ्यात्व से प्रेरित होकर उसने सांख्यमत के परिव्राजक की दीक्षा ले ली और परिव्राजक शास्त्रों का ज्ञान भी उसे प्रगट हो गया।

www.vitragvani.com

तीर्थङ्कर भगवान की दिव्यध्वनी सुनकर भी उसने सन्मार्ग ग्रहण नहीं किया। उसने विचार किया कि जिस प्रकार दादा ऋषभदेव ने परिग्रहों का त्याग करके तीन लोक में क्षोभ उत्पन्न करने की सामर्थ्य प्रगट की है, उसी प्रकार में भी संसार में स्वयं के द्वारा दूसरा मत चलाकर इन्द्र द्वारा पूजा प्राप्त करूँगा। इस प्रकार मानकषायवश मिथ्यामार्ग चलाया और कपिल आदि शिष्यों को बहुत काल तक उपदेश दिया।

देखो! जीव की उपादानगत योग्यता! तीर्थंकर परमात्मा जैसा उत्कृष्ट मुक्तिमार्ग का निमित्त सामने होने पर भी स्वयं की विपरीत योग्यतावश मिथ्यात्व का पोषण कर अनन्त संसार के द्वार खोल लिये।

इस भव की आयु के अन्त में मरकर ब्रह्मस्वर्ग में दश सागर की स्थितिवाला देव हुआ। देवायु को पूर्ण करके अयोध्या में जटिल नाम का ब्राह्मण हुआ और तापस होकर परिव्राजक का मत चलाकर आयु के अन्त में मरकर सौधर्म स्वर्ग में दो सागर की स्थितिवाला देव हुआ। वहाँ की आयु पूर्ण करके स्थूणागार नगर में पुष्पमित्र नाम का ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी परिव्राजक का मिथ्यामत चलाया और आयु के अन्त में कषायों की मन्दता होने से मरकर सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की स्थितिवाला देव हुआ। वहाँ से मरकर सूतिका नगर में अग्निसह नाम का ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी पहले की तरह दीक्षा लेकर परिव्राजक मत फैलाया। आयु के अन्त में मरकर देव हुआ। वहाँ सात सागर की आयु भोगकर, वहाँ से मरकर मन्दिर नामक ग्राम में अग्निमित्र नाम का ब्राह्मण हुआ। वहाँ भी पूर्व की भाँति परिव्राजक की दीक्षा लेकर अपना सांख्यमत चलाया और मरकर महेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ की आयु को पूर्ण करके मन्दिर नगर में भारद्वाज नाम का जगत प्रसिद्ध ब्राह्मण हुआ और त्रिदण्ड से शोभित अखण्ड दीक्षा का आचरण करके महेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयुवाला देव हुआ। वहाँ से आयु पूर्ण करके कुमार्ग को प्रगट करने के फलस्वरूप अधोगति में जाकर महान दु:खों को भोगा।

इस प्रकार असंख्यात वर्षों तक त्रस-स्थावर योनियों में परिभ्रमण करके बहुत ही खेदखिन्न हुआ। तत्पश्चात् मगधदेश में राजगृही नगर में वेदों का ज्ञाता स्थावर नाम का ब्राह्मण हुआ और परिव्राजक मत की दीक्षा लेकर मारीच की तरह ही मिथ्यामार्ग का प्रचार

www.vitragvani.com

किया परन्तु कषाय मन्दता के कारण महेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयुवाला देव हुआ। फिर वहाँ से मरकर राजगृह नगर में विश्वभूति राजा का विश्वनन्दि पुत्र हुआ।

❖ ❖ ❖

राजा विश्वभूति के विशाखभूति नाम का एक छोटा भाई था। उसके विशाखनन्द नाम का मूर्ख पुत्र था। एक दिन राजा विश्वभूति को वैराग्य होने पर उसने अपने छोटे भाई विशाखभूति को राज्य दिया और पुत्र को युवराज पद देकर स्वयं दीक्षित हो गया।

एक दिन युवराज विश्वनन्दि अपने सुन्दर बाग में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहा था। यह देखकर काका के पुत्र विशाखनन्द ने उस बाग को अपने आधीन करने की भावना से अपने पिता से कहा – हे तात! विश्वनन्दि का सुन्दर बाग है, वह मुझे दो, अन्यथा मैं देश छोड़कर चला जाऊँगा।

आचार्य कहते हैं कि जो न्याय से विरुद्ध विषयों का भोग चाहते हैं, वे आगामी भवों में होनेवाले महान् दु:खों को भोगते हैं।

पुत्र मोहवश पिता विशाखभूति ने भतीजे विश्वनन्दि के साथ मायाचार करके उसे अन्य देश में युद्ध हेतु भेज दिया और अपने पुत्र को बाग दे दिया। जब विश्वनन्दि युद्ध में विजयी होकर घर आया, तब अपने बाग में काका के पुत्र को क्रीड़ा करते देखा तो उसने समझ लिया है कि काका ने मेरे साथ छल किया है। क्या अपने पुत्र के लिये उन्होंने मुझसे बाग माँगा होता तो मैं तुरन्त ही नहीं दे देता? बाग क्या वस्तु है? इनकी कुचेष्टा मेरी सज्जनता भंग करती है – ऐसा सोचकर वह काका के पुत्र को मारने दौड़ा। काका का पुत्र वृक्ष पर चढ़ गया तो विश्वनन्दि ने मूलसहित वृक्ष को उखाड़ दिया। काका का पुत्र पत्थर के स्तम्भ पर चढ़ा तो विश्वनन्दि ने स्तम्भ उखाड़ दिया, जब काका का पुत्र भागने लगा तो विश्वनन्दि ने काका के पुत्र से कहा भाई! डर नहीं; इतना ही नहीं, अपितु उसे बुलाकर बाग भी दे दिया।

इस घटना से विश्वनन्दि ने संसार की दु:खमय स्थिति का विचार करके सम्भूत नामक गुरु के समीप जिनदीक्षा धारण कर ली, क्योंकि नीच जनों द्वारा किया हुआ अपकार भी सज्जनों के लिये उपकारभूत होता है। तत्पश्चात् काका विशाखभूति को भी अपने दोष

www.vitragvani.com

का पश्चाताप हुआ कि अहो! मैंने भी बहुत खोटा पाप किया है। इस कारण उन्होंने भी प्रायश्चितस्वरूप जिनदीक्षा धारण कर ली।

घोर तपश्चरण करने से विश्वनन्दि का शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। एक बार वह मथुरा नगरी में आहार के लिये गया, किन्तु पैर शक्तिहीन होने से डगमगाते थे। उस समय एक गाय द्वारा तूफान मचाकर विश्वनन्दि मुनि को धक्का मारने से वे गिर गये। उस समय उनके काका का पुत्र विशाखनन्द वहाँ आया हुआ था। उसने विश्वनन्दि मुनि को गिरते देखकर व्यंग किया कि मुझे स्तम्भ लेकर मारने दौड़नेवाला तुम्हारा वह पराक्रम कहाँ गया? यह सुनकर मुनि के मन में क्रोध हुआ और मन में हुआ कि इस मजाक का फल तू अवश्य पायेगा। अन्त में निदानसहित संन्यास मरण करके वह (विश्वनन्दि मुनि) महाशुक स्वर्ग में देव हुआ और उसका काका विशाखभूति भी मुनि होकर समाधिमरण करके महाशुक स्वर्ग में देव हुए। दोनों सोलह सागर की आयु पूर्ण करके वहाँ से च्युत हुए।

❖ ❖ ❖

काका विशाखभूति का जीव पोदनपुर में प्रजापति राजा की जयावती रानी से विजय नाम का बलभद्र पुत्र हुआ। उसके पश्चात् विश्वनन्दि का जीव प्रजापति राजा की अन्य रानी मृगावती के त्रिपुष्ट नामक पुत्र हुआ, जो होनेवाला अर्द्धचक्री था।

विशाखनन्द काका का पुत्र बहुत काल तक संसार में भ्रमण करके विजयार्द्धपर्वत पर अलकानगरी के मयूरग्रीव राजा की निलंजना रानी का अश्वग्रीव नाम का पुत्र हुआ जो प्रति नारायण बना।

विजयार्द्धपर्वत के स्थनपुर चक्रवाल नगर के ज्वलनजटी राजा की वायुवेगा रानी के स्वयंप्रभा नाम की सुन्दर पुत्री थी। उसका विवाह त्रिपुष्ठ के साथ हुआ।

प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव को गुप्तचरों द्वारा ज्ञात हुआ कि ज्वलनजटी ने अपनी सुन्दर पुत्री का विवाह त्रिपुष्ठ के साथ कर दिया है, तो यह जानकर वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने त्रिपुष्ट पर चढ़ाई कर दी। अनेक प्रकार से आमने-सामने युद्ध होने पर अश्वग्रीव ने त्रिपुष्ट पर सुदर्शनचक्र चला दिया। चक्र त्रिपुष्ट की प्रदक्षिणा करके उसके हाथ में आ गया। तत्पश्चात् त्रिपुष्ट ने उसी चक्र से अश्वग्रीव की गर्दन काट दी। इस

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

प्रकार युद्ध में विजय प्राप्त करके त्रिपुष्ट ने अर्द्धचक्रवर्ती पद प्राप्त किया। (त्रिपुष्ट के बड़े भाई विजय बलभद्र, अश्वग्रीव के पूर्व भव के पिता थे और इस भव में पिता-पुत्र का युद्ध हुआ।)

त्रिपुष्ट बहुत काल तक राज्यलक्ष्मी का भोग करके, अतृप्ति के कारण मरकर सातवें नरक गया। वहाँ तैंतीस सागर तक महादु:ख वेदना भोगकर आयु पूर्ण करके सिंहगिरि पर सिंह हुआ। उस सिंह पर्याय में भी तीव्र पाप करके रत्नप्रभा नरक में एक सागर की स्थिति के दु:ख भोगकर, आयु पूर्ण करके हिमवत्पर्वत के शिखर पर सुशोभित सिंह हुआ।

❖ ❖ ❖

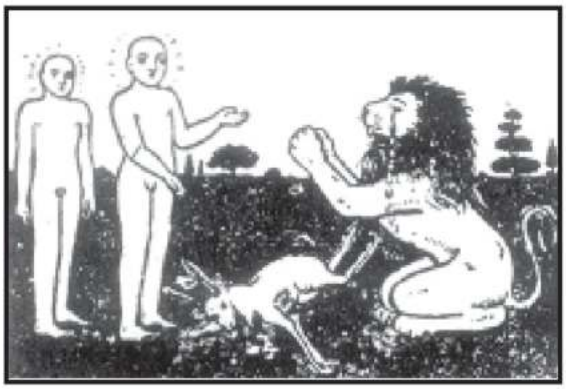

एक बार वह सिंह एक हिरण को पकड़कर खा रहा था। उस समय दयालु अजितजय नामक चारणमुनि अमितगुण नामक मुनि के साथ आकाश मार्ग से जा रहे थे। उन्हें उस सिंह को देखकर तीर्थङ्कर के वचनों का स्मरण हो गया। वे दयावश आकाश से उतरकर सिंह के पास आये और शिला पर बैठकर जोर-जोर से धर्म के वचन कहने लगे।

उन्होंने कहा - हे वनराज! तूने पूर्व में त्रिपुष्ठ के भव में पाँच इन्द्रियों के सुन्दर विषयों का अनुभव किया है, उन सब विषयों का सुख भोगकर भी तुझे सन्तोष नहीं हुआ और सम्यग्दर्शन व व्रतरहित मरण करके तू सातवें नरक गया, वहाँ तैंतीस सागर तक नरक के भयङ्कर दु:ख भोगकर, आयु पूर्ण करके वहाँ से निकलकर सिंह हुआ और वहाँ प्राणी हिंसा करके माँस भक्षण की क्रूरता से मरकर पहले नरक की एक सागर की स्थिति में गया। वहाँ से भयङ्कर दु:ख भोगकर, आयु पूर्ण होने पर यहाँ पुन: सिंह हुआ। अभी भी क्रूरता करके भावि दु:ख भोगने में उत्साह कर रहा है। अरे पापी! तू अज्ञान के प्रभाव से तत्व को कुछ नहीं जानता। इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर सिंह को तुरन्त

www.vitragvani.com

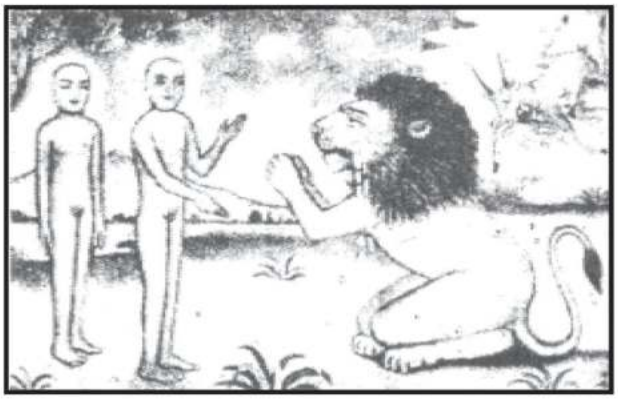

जातिस्मरणज्ञान हुआ। संसार के भयङ्कर दु:खों के भय से उसका शरीर काँपने लगा और आँखों से आँसू बहने लगे। इस प्रकार बहुत समय तक उसके आँसूधारा बहती हुई देखकर मुनिराज को लगा कि इसके हृदय में सम्यक्त्व को स्थान देने के लिये मिथ्यात्व निकल रहा है। जिसको पूर्व भव का ज्ञान हुआ है – ऐसे निकट भव्य को पश्चाताप से जो शोक होता है, वह शोक संसार में किसी को नहीं होता।

जब मुनिराज ने देखा कि सिंह का हृदय शान्त हो गया है, तब उन्होंने कहा कि तू पुरुरवा भील था, वहाँ से सौधर्म का देव होकर दुर्मति मारीच हुआ और तब तूने सन्मार्ग को दूषित करके भगवान ऋषभदेव के वचनों के अनादर के फलस्वरूप संसार के महादु:खों को भोगकर, बारम्बार त्रस-स्थावर योनियों में असंख्यात वर्षों तक भ्रमण किया है। किसी कारण से तूने विश्वनन्दि की पर्याय प्राप्त करके संयम तो धारण किया, परन्तु निदान करके त्रिपुष्ट नारायण हुआ।

हे भव्य! अब तू दसवें भव में भरतक्षेत्र का अन्तिम तीर्थङ्कर होगा – ऐसा मैंने श्रीधर तीर्थङ्कर के समीप सुना है। हे बुद्धिमान! आज से तू संसार अटवी में भटकानेवाले मिथ्यामार्ग से विरक्त होकर आत्महित के मार्ग में प्रीति कर।

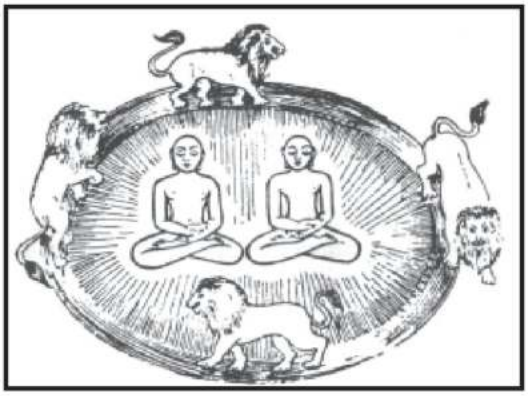

इस प्रकार सिंह ने मुनिराज के वचनों को हृदय में धारण करके दोनों मुनिराजों की भक्तिभावपूर्वक प्रदक्षिणा करके बारम्बार प्रणाम किया और काललब्धि के पक जाने से तुरन्त सम्यग्दर्शन को प्राप्त करके मन की स्थिरतापूर्वक श्रावक के व्रत धारण किये।

मुनिराज के वचन सुनकर सिंह की

www.vitragvani.com

क्रूरता दूर हो गयी और उसमें दया का प्रवेश हुआ। सत्य ही है कि काल का बल (वर्तमान योग्यता) प्राप्त किये बिना ऐसा कौन है जो शत्रु (मोह) को दूर कर सके?

जैसे मरा हुआ सिंह हो – ऐसा जानकर शियाल उसे नोंचकर माँस खाते, तथापि सिंह तो निश्चल रहता। सिंह का आहार माँस के अतिरिक्त अन्य न होने से उसने अनाहार व्रत ग्रहण किया। आचार्य कहते हैं कि उसने निराहार व्रत धारण किया – इससे अधिक साहस और क्या हो सकता है? तिर्यञ्चों में संयमासंयम (श्रावकदशा) से आगे कोई व्रत नहीं हो सकता, अन्यथा तो वह अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेता। सिंह समस्त जीवों के लिये ऐसा शान्त हो गया मानो वह चित्रपट का सिंह ही हो।

इस प्रकार वह सिंह समाधिमरणपूर्वक मृत्यु को प्राप्त करके सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नाम का देव हुआ। वहाँ दो सागर तक स्वर्ग के सुख भोगकर घातकी खण्ड में कनकप्रभ नगर के कनकपुंज विद्याधर का कनकांजलव नाम का पुत्र हुआ।

❖ ❖ ❖

एक दिन राजकुमार कनकांजलव अपनी कनकवंती स्त्री के साथ मंदगिरि पर्वत पर गया। वहाँ उसे प्रियमित्र नामक अवधिज्ञानी मुनिराज के दर्शन हुए। उनके द्वारा धर्म का उपदेश सुनकर वह संसार से विरक्त हुआ और जिनदीक्षा लेकर तपश्चरण करके अन्तिम समय में संन्यास मरण करके सातवें स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ तेरह सागर तक स्वर्ग के सुख भोगकर, आयु पूर्ण करके जम्बूद्वीप में साकेतनगर के राजा वज्रसेन का हरिषेण नाम का पुत्र हुआ। कितना ही समय राज्य भोग में बिताकर, संसार सुख को असार जानकर श्रुतसागर मुनि के समीप दीक्षा लेकर तपश्चरण आदि करके आयु के अन्त में महाशुक स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ सोलह सागर प्रमाण आयु स्वर्ग के सुख भोगकर वहाँ से च्युत होकर घातकीखण्ड के पुण्डरीकिणी नगर के राजा सुमित्र और रानी मनोरमा के प्रियमित्र नाम का पुत्र हुआ। वहाँ चक्रवर्तीपने का सुख भोगकर क्षेमंधर जिनेन्द्र का उपदेश सुनकर संसार के सर्व पदार्थों की अनित्यता जानकर राज्य का भार अपने सर्वमित्र पुत्र को

www.vitragvani.com

सौंपकर संसार से विरक्त होकर जिनदीक्षा लेकर महाव्रतादि का पालन करके आयु के अन्त में सहस्त्रागार स्वर्ग में सूर्यप्रभ नाम का देव हुआ। अठारह सागर की आयु के दैवी भोग भोगकर बिजली के चमकार की तरह आयु पूर्ण करके जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर के नंदिचर्धन राजा की वीरवती स्त्री के नन्द नाम का सज्जन पुत्र हुआ। अभिलाषित राज्य का उपभोग करके, राज्य की नि:सारता जानकर विरक्त होकर प्रोष्ठिल नामक मुनिराज के समीप संयम लिया और तुरन्त ही ग्यारह अङ्ग का ज्ञान प्राप्त किया व तीर्थङ्करप्रकृति के बन्ध की कारणभूत दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारणभावनाओं का चिन्तवन करके तीर्थङ्करप्रकृति का बंध किया। आयु के अन्त में संन्यास धारण करके अच्युत स्वर्ग में पुष्योत्तर विमान में बाईस सागर की स्थितिवाला बड़ा इन्द्र हुआ।

❖ ❖ ❖

जब स्वर्ग की छह माह की आयु शेष रही तब कुण्डलपुर नगर के राजा सिद्धार्थ के आँगन में साड़े सात करोड़ रत्नों की महावर्षा होने लगी। आषाढ़ शुक्ला छठमी के दिन रानी त्रिशला रत्नों के पलङ्ग पर शयन कर रही थी, तब रात्रि के अन्तिम पहर के अन्त में उन्हें सोलह स्वप्न आये और उसके पश्चात् मुख में प्रवेश करता हुआ हाथी देखा।

प्रात:कालीन क्रियायें करके रानी ने राजा सिद्धार्थ के पास जाकर स्वप्नों से उन्हें अवगत कराया और राजा ने उनका फल तीर्थंकर पुत्र की प्राप्ति बतलाया, जिसे सुनकर रानी को उसी समय पुत्र की प्राप्ति के समान आनन्द हुआ।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

नव माह पूर्व होने पर चैत्र शुक्ला तेरस के दिन पुत्र का जन्म होने पर आनन्द अश्रुओं के समान आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और तीनों लोकों में आनन्द छा गया। स्वर्ग से सौधर्मादि इन्द्र अपनी सात प्रकार की सेना लेकर आये और बाल तीर्थङ्कर का अभिषेक करने के लिये सुमेरुपर्वत पर ले गये। अभिषेक करके बाल प्रभु को माता को सौंप दिया और आनन्द नामक आश्चर्यकारी नाटक किया। इन्द्र द्वारा प्रभु के भोग-उपभोग की सामग्री निरन्तर आती है। बालप्रभु की आयुवाले देवकुमार प्रभु के साथ खेलते हैं।

❖ ❖ ❖

पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर के दो सौ वर्ष पश्चात् महावीर प्रभु ने जन्म लिया। उनकी आयु बहत्तर वर्ष की थी और वे सर्व सुलक्षणों से सुशोभित था। उनका सात हाथ ऊँचा शरीर था।

एक बार संजय और विजय नामक दो चारणऋद्धि मुनियों को किसी विषय में सन्देह उत्पन्न होने पर महावीर के दर्शन होनेमात्र से उनका सन्देह दूर हो गया। इस कारण उन्होंने महावीर का अन्य नाम सन्मति रखा।

एक दिन इन्द्र की सभा में चर्चा चल रही थी कि वर्द्धमान स्वामी सबसे शूरवीर हैं। ऐसा सुनते ही संगम नाम का देव परीक्षा करने आया। महावीर अनेक राजकुमारों के साथ एक वृक्ष के ऊपर चढ़कर खेल रहे थे। उसी समय संगम देव बड़े सर्प का रूप धारण करके वृक्ष की जड़ से अन्त तक लिपट गया। यह देखकर अन्य बालक तो भयभीत होकर वृक्ष से नीचे कूदकर भाग गये। वह सर्प लपलपाती हुई एक सौ जीभों से महा-भयङ्कर दिखता था। महावीर निर्भय होकर उसके ऊपर क्रीड़ा करते थे, जैसे बालक माता के पलंग पर क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार। यह देखकर संगमदेव प्रसन्न हुआ और कुमार की स्तुति करके महावीर नाम रखकर अपने स्थान को गया। इस प्रकार बाल्यावस्था पार करके प्रभु यौवनावस्था को प्राप्त हुए।

❖ ❖ ❖

एक दिन महावीर को पूर्व भव का जातिस्मरणज्ञान प्रगट होने पर वे संसार से विरक्त हुए। उस समय लोकोतिक देवों ने आकर प्रभु के वैराग्य की अनुमोदना की। सौधर्मेन्द्र आदि देवों ने आकर भक्ति-पूजासहित भगवान का दीक्षाकल्याणक मनाया और

www.vitragvani.com

वीर प्रभु को पालकी में बैठाकर वन में ले गये। प्रभु ने वस्त्राभूषण उतारकर केशलोंच करके मगसर कृष्ण दशमी के दिन तेला का नियम करके संयम धारण किया। भगवान पारणा के लिये वन से निकले और कुलगाम की नगरी में कुल नामक राजा ने अत्यन्त उल्लास से नवधाभक्तिपूर्वक आहारदान दिया। देवों ने पञ्चाश्चर्य किये। पश्चात् भगवान एकान्त स्थान में तप करने लगे।

❖ ❖ ❖

एक बार भगवान उज्जैनी के अतियुक्तक नामक श्मशान में प्रतिमायोग धारण करके विराजमान थे। उस समय महोदय नामक रुद्र ने उनके धैर्य की परीक्षार्थ अतिदुष्टता से अनेक प्रकार के अतिभयङ्कर उपसर्ग किये परन्तु वीरप्रभु विचलित नहीं हुए। इससे रुद्र ने अनेक प्रकार की भक्ति की, नृत्य किया और द्वेषभाव छोड़ दिया तथा भगवान को अतिवीर और महावीर ऐसे दो नाम दिये।

भगवान महावीर बारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहे। एक दिन ऋजुकुला नदी के किनारे मनोहर वन में रत्नमई शिला पर शाल वृक्ष के नीचे बैला का नियम लेकर प्रतिमायोग से विराजमान हुए। वैशाख शुक्ल दशमी को परिणामों की विशुद्धता बढ़ने पर क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हुए। उस समय शुक्लध्यान के बल से चार घातिकर्मों का नाश करके केवलज्ञान से सुशोभित हुए। इन्द्रों ने तुरन्त ही आकर केवलज्ञान की पूजा की, ज्ञानकल्याणक मनाया और समवसरण की अद्भुत रचना की।

जब छयासठ दिन तक प्रभु की दिव्यध्वनि नहीं खिरी तो इन्द्र अवधिज्ञान से जानकर पात्र जीव गौतम ब्राह्मण को भगवान के पास लाया और भगवान का अतिशय देखकर गौतम का अभिमान गल गया। उनको तुरन्त ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति हुई; सात प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट हुई और तत्क्षण ही प्रभु की दिव्यध्वनि खिरने

www.vitragvani.com

लगी। गौतमस्वामी ने गणधर पद प्राप्त करके द्वादशांग की रचना की। इस प्रकार भगवान महावीर के गौतमस्वामी आदि ग्यारह गणधर हुए।

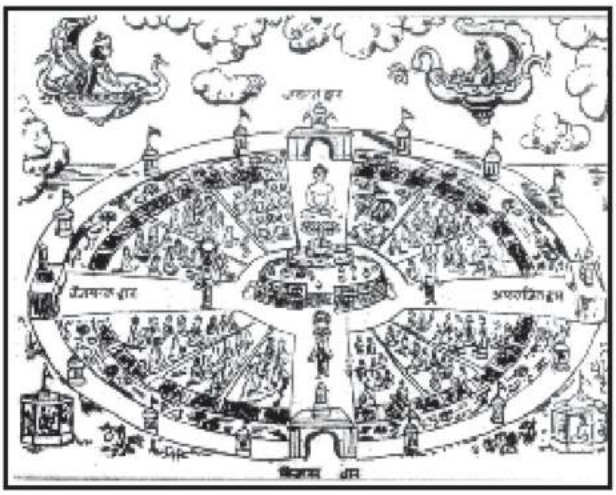

भगवान के समवसरण में अवधिज्ञानी, मन:पर्ययज्ञानी, केवलज्ञानी, विक्रिया-ऋद्धिधारी आदि चौदह हजार मुनियों की संख्या थी। चन्दना आदि छत्तीस हजार आर्यिकायें थीं। एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें थीं। असंख्यात देव-देवी थे और संख्यात तिर्यञ्च थे। सभी मिलकर भगवान की वाणी सुनते थे।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन पावापुरी में प्रभु निर्वाण-मोक्ष पधारे। इन्द्रों आकर निर्वाण कल्याणक मनाया। तभी से दीपावली महोत्सव मनाया जाता है।

❖ ❖ ❖

साधर्मी जनों! भगवान महावीर की एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम की कथा सुनकर, भव्य जीवों को वैराग्य और पुरुषार्थ की पावन प्रेरणा मिलती है। तदुपरान्त कृपालु पूज्य गुरुदेवश्री के क्रमबद्धपर्याय, योग्यता, निमित्त का अकिञ्चित्करपना, उपादानकारण की प्रभुता, द्रव्यदृष्टि के विषयभूत पर्यायवेष से निर्लेप-द्रव्यस्वभाव और उसकी सामर्थ्य आदि सिद्धान्त इस कथा द्वारा सरलरूप में समझ में आ सकते हैं।

तीर्थङ्कर ऋषभदेव दादा का प्रबलनिमित्त प्राप्त होने पर भी, मारीच के जीव ने योग्यता के अभाव में कोड़ाकोड़ी सागर तक परिभ्रमण किया अर्थात् जब तक स्वयं जीव को योग्यता नहीं पकती, वहाँ तक तीर्थङ्कर दादा भी किसी का हित नहीं कर देते।

उपादान में निमित्त आकिञ्चित्कर है - यह बात पूज्य गुरुदेवश्री बारम्बार फरमाते हैं, वह इस कथा द्वारा सरलता से समझ में आती है।

योग्यता तैयार होने पर अर्थात् उपादान का काल पकने पर निमित्त सामने चलकर

www.vitragvani.com

आता है – मुनिराज आकाश से उतरकर सिंह को सम्बोधित करते हैं। योग्यता तैयार होने पर सिंह मुनिराज का उपदेश प्राप्त करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है – यह 'योग्यता सर्वत्र शरणम्' – पूज्य गुरुदेवश्री की इस प्ररुपणा को ही प्रसिद्ध करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री बारम्बार कहते हैं कि ज्ञायक तो सदा ज्ञायक ही है, उसको संसार की गन्ध भी नहीं लगती अथवा राग की भी उसमें बिलकुल गन्ध नहीं है। वे सब भाव तो पानी के ऊपर तैरते हुए तेल की बूँद की तरह ज्ञायक से अत्यन्त भिन्न होने से द्रव्यस्वभाव तो सदा ऐसा का ऐसा ही है – यह बात पुरुरवा भील के भव की कथा से स्पष्ट समझ में आती है।

पूज्य बहिनश्री भी कहती हैं कि ज्ञायकभाव को कोई पर्याय वेष नहीं। ये सब मूलभूत सिद्धान्त इस कथा से स्पष्ट समझ में आते हैं।

(– उत्तर पुराण में से संक्षिप्त सार)

श्रमण अर्थात् साक्षात् मोक्षतत्त्व

जो श्रमण, त्रिलोक के मुकुटमणि के समान निर्मल विवेकरूपी दीपक के प्रकाश द्वारा, यथास्थित पदार्थ के निश्चय द्वारा, उत्सुकता को छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो गये हैं, आनन्द की धारा में मस्त हो गये हैं, उपशमरस के साँचे में ढल गये हैं और उसमें से बाहर आने में निरुद्यमी हो गये हैं; वन में बाघ, सिंह और भेड़िये चिंघाड़ते हो, तथापि निर्भय होकर स्वरूप के शान्तरस का, अतीन्द्रिय आनन्द का पान करते हैं, चूसते हैं, एक स्वरूप में ही अभिमुख होकर वर्तते हैं, उन श्रमण को साक्षात् मोक्षत्तत्व कहते हैं।

– पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, ४८४, पृष्ठ ११५

27 सत्मार्ग का प्रेरक ही सच्चा मित्र

(सगर चक्रवर्ती का वैराग्य)

जम्बूद्वीप के प्रसिद्ध तथा सुन्दर विदेहक्षेत्र की पूर्व दिशा में सीता नदी के पश्चिम तरफ वत्सकावती नाम का एक देश है। उसकी राजधानी पृथिकी नगर के राजा का नाम जयसेन था। जयसेन की रानी जयसेना थी। उनके रतिषेण और घृतिषेण नामक दो पुत्र थे। दोनों भाई सुन्दर और गुणवान थे। रतिषेण अचानक मर गया। राजा जयसेन पुत्र के शोक से दु:खी होकर घृतिषेण को राज्य देकर मारुत तथा मिथुन राजा के साथ यशोधर मुनि के समीप दीक्षा लेकर मुनि हो गये। उन्होंने बहुत दिनों तक तपस्या की और अन्त में संन्यासपूर्वक शरीर का त्याग करके स्वर्ग में महाबल नाम का देव हुए। उनके साथ दीक्षित मारुत भी उसी स्वर्ग में मणिकेतु नाम का देव हुआ। एक दिन दोनों ने धर्म-प्रेमवश प्रतिज्ञा की कि हम दोनों में से जो पहले मनुष्य जन्म धारण करेगा, उसको स्वर्ग में रहनेवाला देव जाकर सम्बोधित करेगा और संसार से उदासीन करके जिनदीक्षा के सन्मुख करेगा।

महाबल की आयु बाईस सागर की थी। वह इच्छित स्वर्गसुख भोगकर आयु के अन्त में पुण्य के अभाव से अयोध्या के राजा समुद्रविजय की रानी सुरक्ता के सगर नाम का पुत्र हुआ। उसकी उम्र सत्तर लाख पूर्व वर्षों की थी। उसके सुवर्ण समान चमकते शरीर की ऊँचाई साढ़े चार सौ धनुष अर्थात् १५७५ हाथ की थी। उसकी अनुपम सुन्दरता देखकर सभी प्रसन्न होते थे। सगर ने राज्यश्री प्राप्त करके पृथ्वी के छह खण्ड जीत लिये; अपने बाहुबल से दूसरे चक्रवर्ती का मान प्राप्त किया।

❖ ❖ ❖

एक बार वन में-सिद्धवन में चतुर्मुख मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। स्वर्ग के देव,

www.vitragvani.com

विद्याधर तथा राजा महाराजा उनकी पूजा के लिये आये। उस समय चक्रवर्ती सगर भी भगवान के दर्शन के लिए गया था।

सगर को आया देखकर मणिकेतु ने कहा – हे राज राजेश्वर! क्या अच्युत स्वर्ग की बात याद है? जहाँ हम दोनों ने प्रतिज्ञा की थी कि 'हम दोनों में से जो पहले मनुष्य जन्म लेगा, स्वर्ग का देव उसे जाकर समझायेगा और संसार से उदासीन करके संयम के सन्मुख करेगा।' तुमने बहुत समय तक राज्यसुख भोगा है, अब तुमको इसे छोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए। विषय-भोग दु:ख का और संसार-परिभ्रमण का कारण है। तुम स्वयं बुद्धिमान हो, मैं विशेष क्या समझाऊँ? मैंने तो अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये तुमसे प्रार्थना की है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम इन क्षणभंगुर विषयों से विरक्त होकर, जिनभगवान का परम पवित्र तप मार्ग स्वीकार करोगे।

मणिकेतु के इस उपदेश का पुत्र मोही सगर पर कुछ असर नहीं हुआ। मणिकेतु ने देखा कि यह सांसारिक मायाजाल में इतना फंसा है कि इसको विषय भोगों से वंचित करना मुश्किल ही नहीं, असम्भव है। आगे देखेंगे। – ऐसा विचार करके मणिकेतु अपने स्थान पर चला गया क्योंकि काललब्धि बिना कल्याण किस प्रकार हो?

❖ ❖ ❖

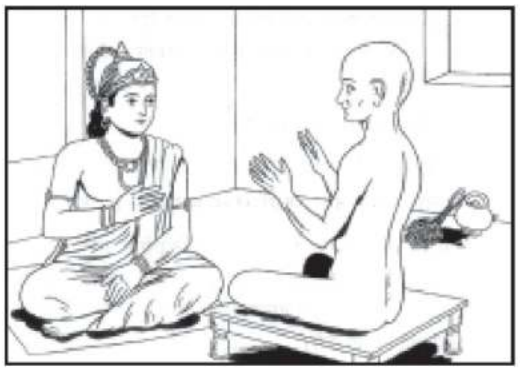

थोड़े समय बाद फिर मणिकेतु के मन में विचार आया कि अब दूसरे प्रयत्न से सगर को तपस्या के सन्मुख करना चाहिए। अत: वह चारणमुनि का वेष धारण करके सगर के जिन मन्दिर में आया और भगवान के दर्शन करके वहीं ठहर गया। उसकी छोटी उम्र और सुन्दरता देखकर सगर को बहुत आश्चर्य हुआ।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सगर ने पूछा कि मुनिराज! आपने इस छोटी उम्र में अभी संसार का कोई सुख नहीं देखा तो ऐसे कठिन योग को किस कारण धारण किया है ? मुझे तो आपको योगी देखकर बहुत आश्चर्य हो रहा है।

मुनिवेश धारक मणिकेतु ने जवाब दिया – हे राजन्! मेरा विश्वास है कि संसार में सुख है ही नहीं; मैं जहाँ देखता हूँ, वहाँ दु:ख और अशान्ति ही नजर आती है।

यह जवानी पलभर में बिजली की तरह चमक कर अस्त हो जायेगी। ये विषय भोग सर्प के समान भयंकर हैं। संसाररूपी अथाह समुद्र नाना प्रकार के दु:खरूपी जलचर जीवों से भरा हुआ है, जिसको पार करना जीवों के लिये महान दुष्कर है; अत: पुण्योदय से जो यह मुक्ति साधना के योग्य मनुष्य शरीर मिला है, उसे प्राप्त करके भी इस आत्मा को इस अथाह भव समुद्र में डूब जाने दें या जिनेन्द्र भगवान कथिप तपरूपी नाव द्वारा इसे भवसागर से पार करने का यत्न करें ? मैं तो इस असार संसार से पार होने का प्रयत्न करना ही मेरा कर्तव्य और दुर्लभ मनुष्य देह मिलने का फल समझता हूँ। और तुम्हें भी सही सलाह देता हूँ। इस नाशवान माया ममता को छोड़कर कभी नहीं नष्ट होने योग्य मोक्षलक्ष्मी के प्राप्ति का यत्न करो।

मणिकेतु ने बहुत दृष्टान्तों से सगर को समझाने का प्रयत्न किया परन्तु सब जानते होने पर भी पुत्र–मोहवश वह संसार का परित्याग नहीं कर सका। मणिकेतु को बहुत दु:ख हुआ कि सगर को अभी भी संसार की तुच्छता भाषित नहीं होती, उल्टे यह इसी में फँसता जा रहा है। लाचार होकर वह वापस स्वर्ग में चला गया।

❖ ❖ ❖

एक दिन चक्रवर्ती सगर राज्यसभा में सिंहासन पर बैठा था। उस समय उसके पुत्रों ने आकर प्रार्थना करते हुए कहा – पिताजी! आज तक आपकी आज्ञानुसार हमने सब भोग भोगे परन्तु अब आप हमको कुछ कार्य प्रदान कीजिये।

www.vitragvani.com

सगर ने उनके आग्रह को देखकर कहा – हे पुत्रों! यद्यपि मेरी इच्छा नहीं है कि तुमको कोई कष्ट हो, परन्तु तुम्हारी इच्छा है; अत: एक काम बताता हूँ, वह यह कि श्रीमान् भरत सम्राट ने कैलाशपर्वत पर चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस मन्दिर बनवाये हैं, वे सब सुवर्णमयी है, उनमें अपार धन खर्च हुआ है। उनमें जो भगवान की प्रतिमाएँ हैं, उनकी रक्षा करना बहुत आवश्यक है। अत: तुम कैलाश के चारों तरफ एक गहरी खाई खोदकर उसमें गंगा का पानी भर दो, जिससे कोई भी मन्दिरों को क्षति नहीं पहुँचा सके।

सगर के पुत्र अपने पिता की आज्ञा सुनकर प्रसन्न हुए और उन्हें नमस्कार करके अत्यन्त उत्साहपूर्वक कार्य के लिये निकल पड़े। कैलाश पर पहुँचकर कितने ही वर्षों के कठिन परिश्रम से और चक्रवर्ती के दण्डरत्न की सहायता से उन्होंने अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त की।

❖ ❖ ❖

जिस समय सगर के साठ हजार पुत्र खाई खोदकर गंगा का प्रवाह लाने के लिये हिमवान पर्वत पर गये तथा दण्डरत्न द्वारा पर्वत को तोड़ने के लिये उस पर चोट की, उस समय मणिकेतु ने महाविषधर सर्प का रूप धारण किया, जिसकी हुँकार मात्र से मीलों तक के जीव जन्तु मरकर भस्म हो जाए – ऐसी जहरीली हवा बिखेरी। देखते ही देखते सभी पुत्र मूर्छित हो गये – मरे हुए के समान हो गये।

सत्पुरुष अन्य की भलाई करने के लिय उसका ही सांसारिक अहित करके उसे ही आत्मिक हित में प्रेरित करते हैं।

मन्त्रियों को राजपुत्रों के मरने के समाचार ज्ञात हुए परन्तु उन्होंने राजा से बात नहीं की क्योंकि राजा, पुत्रों के मरण के महान दु:ख को सहन नहीं कर सकता था। तब मणिकेतु स्वयं एक ब्राह्मण का रूप धारण करके सगर के समीप आया और दु:ख के साथ रोते-रोते बोला – राजाधिराज! आप जैसे न्यायप्रिय राजा के होने पर भी मुझे अनाथ होना पड़ा। मेरी आँखों का एक मात्र तारा, पापी लोग बलजोरी मुझसे छीनकर ले गये; मुझे घर-घर का भिखारी बना दिया – इससे बड़ा दु:ख क्या होगा? प्रभु आज दुष्टों ने मुझे बे-मौत मारा है। आप मेरी रक्षा करो।

www.vitragvani.com

सगर ने उसे आश्वासन देकर कहा कि हे ब्राह्मणदेव! डरो मत, बात क्या है – मुझसे कहो; मैं तुम्हारा दु:ख दूर करने का प्रयत्न करुँगा।

ब्राह्मण ने कहा – महाराज! क्या कहूँ? कहते हुए मेरा हृदय फटा जाता है – ऐसा कहकर वह रोने लगा।

ब्राह्मण की करुणदशा देखकर चक्रवर्ती को दु:ख हुआ। उसके द्वारा आग्रह किये जाने पर ब्राह्मण रूपधारी मणिकेतु ने कहा – अच्छा! तो मेरी दु:ख कहानी सुनो! मेरा एक पुत्र था, जो मुझे कमाकर खिलाता-पिलाता था, परन्तु आज मेरा भाग्य फूट गया। उसे कालरूपी लुटेरा बलजोरी से मेरे हाथों से छीनकर ले गया। मैं बहुत रोया, गिड़गिड़ाया, दया की भीख माँगी, परन्तु उस पापी ने मेरी और आँख उठाकर देखा भी नहीं। आप मेरे पुत्र को उस पापी के पास से छुड़ाकर ले आओ; अन्यथा तो मेरे प्राण निकल जायेंगे।

सगर को काल लुटेरे का नाम सुनकर हँसी आई। उसने कहा ब्राह्मणदेव! तुम बहुत भोले हो। भला जिसको काल ले जाता है, क्या वह पुन: जीवित आ सकता है? काल तो अपना कार्य करता जाता है। चाहे कोई वृद्ध हो, जवान हो, बालक हो – उसका तो सबके प्रति समान भाव है। तुम तो अपने पुत्र के लिये रोते हो, परन्तु वह शीघ्र ही तुम्हें भी ले जायेगा। यदि तुम उससे अपनी रक्षा करना चाहते हो तो मुनि हो जाओ।

हाँ, महाराज! एक आवश्यक बात करना तो मैं भूल ही गया; क्षमा करें। जब मैं रास्ते में आ रहा था तो लोग आपस में बातें कर रहे थे कि महाराज के पुत्र कैलाश पर्वत की रक्षा के लिए खाई खोदने गये थे, वे सब एक साथ सर्प के विष से मर गये।

ब्राह्मण का यह वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि सगर मूर्छित होकर नीचे गिर पड़ा। ऐसे भयंकर समाचार सुनकर किसको मूर्छा नहीं आयेगी? जब उपचारों से सगर को होश

www.vitragvani.com

में लाया गया, तब मौका देखकर ब्राह्मण वेशधारी मणिकेतु ने संसार की ऐसी स्थिति बताकर बहुत उपदेश दिया। इस समय उसका प्रयत्न सफल हुआ। सगर ने भगीरथ को राज्य देकर दृढ़धर्म केवली के समीप जिनदीक्षा अंगीकार कर ली; जो कि संसारचक्र से छुड़ानेवाली थी।

❖ ❖ ❖

सगर के दीक्षा लेने के बाद मणिकेतु कैलाशपर्वत पर पहुँचा और सगर के पुत्रों को मायामयी मूर्च्छा से सचेत करके बोला – सगर पुत्रों! तुम्हारी मृत्यु के समाचार सुनकर तुम्हारे पिता को अत्यन्त दु:ख हुआ और वे संसार को असार समझकर साधु हो गये हैं। महाराज के दीक्षा लेने के बाद मैं तुमको खोजने निकला हूँ। अच्छा हुआ जो तुम मुझे मिल गये। अब तुम शीघ्र राजधानी में चलो।

अपने पिता के दीक्षित हो जाने की बात सुनकर सगरपुत्रों ने मणिकेतु से कहा – हे ब्रह्म! पिताजी राजपाट छोड़कर मुनि हो गये तो क्या हम आराम भोगेंगे? पूज्य पिताजी ने जिस मार्ग को उत्तम जानकर ग्रहण किया है, वही मार्ग हमारे लिये भी अनुकरणीय है। आप कृपा करके भाई भगीरथ से कहना कि वह हमारे लिये चिन्ता नहीं करें। ऐसा ब्राह्मण से कहकर वे सभी भाई भी दृढ़धर्म केवली भगवान के समवसरण में आये और पिता की तरह दीक्षा लेकर मुनि हो गये।

❖ ❖ ❖

भगीरथ को भी भाईयों का वृतान्त सुनकर वैराग्य हो गया। उसकी इच्छा भी योगी बनने की हुई परन्तु उस पर राज्य का भार होने से वह दीक्षा नहीं ले सका। उसने मुनियों से जिनधर्म का उपदेश सुनकर श्रावक के व्रत धारण किये। जब मणिकेतु के ये सब कार्य सफल हो गये, तब वह प्रकट हुआ और उन नवदीक्षित मुनियों को नमस्कार करके बोला

www.vitragvani.com

– हे मुनिवर! मैंने आपका बहुत बड़ा अपराध किया है। आप लोग जैनधर्म के सच्चे तत्त्व के ज्ञानी हो; अत: इस सेवक को क्षमा करो।

तत्पश्चात् मणिकेतु ने पूर्व की घटना कह सुनाई। जिसे सुनकर सबको बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा कि देवराज! इसमें तुम्हारा क्या अपराध है, जिसके लिये तुम्हें क्षमा करें। तुमने तो हमारा महान उपकार किया है, जिसके लिये हम तुम्हारे ऋणी हैं। मित्र के सम्बन्ध में तुमने जो कार्य किया है, उसे करने के लिये तुम्हारे अलावा अन्य कौन समर्थ है, अर्थात् कोई नहीं। तुम जिनेन्द्र भगवान के सच्चे भक्त हो। सगर पुत्रों का ऐसा सन्तोषप्रद उत्तर सुनकर मणिकेतु बहुत प्रसन्न हुआ और उनको नमस्कार करके स्वर्ग चला गया। वह मुनि संघ भी विहार करते–करते तीर्थराज सम्मेदशिखर आया। वहाँ कठिन तपस्या करके उन मुनि भगवन्तों ने निर्वाण प्राप्त किया।

जब भगीरथ को अपने भाईयों को मोक्षमगन के समाचार ज्ञात हुए तो उसे भी वैराग्य हो गया। उसने अपने वरदत्त पुत्र को राज्य सौंपकर कैलाश पर्वत पर जाकर शिवगुप्त मुनिराज के समीप जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। मुनि होकर भगीरथ ने गंगा तट पर कभी प्रतिमा योग से, कभी आतापन योग से अलग–अलग प्रकार के आसनों द्वारा घोर तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर देवताओं ने क्षीर समुद्र के जल से भगीरथ के चरणों का अभिषेक किया। उस अभिषेक के जल का प्रवाह गंगा में गया, तभी से गंगा तीर्थरूप प्रसिद्ध हुई और उसमें स्नान करना पुण्य माना जाने लगा। अन्त में तप बल से कर्मों का नाश करके भगीरथ ने जन्म–जरा मरण से रहित मोक्ष प्राप्त किया।

(–उत्तर पुराण में से)

28 राजा दण्डक की कथा

वनवास के समय राजा दशरथ के पुत्र श्रीराम, अपने लघु भ्राता लक्ष्मण और सहधर्मिणी सीता के साथ दक्षिण दिशा के सुभद्र की ओर चले। कैसे हैं दोनों भाई ? परम सुख के भोक्ता हैं। उन्होंने नगर, गाँवों से भरे हुए अनेक देशों को लाँघकर वन में प्रवेश किया। ऐसा स्थान देखकर दोनों कहने लगे – 'अहो! यह सुन्दर वन! यह सुन्दर नदी!' – ऐसा कहकर वृक्षों की रमणीय छाया में सीतासहित बैठ गये। थोड़ी देर वहाँ बैठकर, वहाँ के रमणीय स्थान देखकर जलक्रीड़ा करने लगे। तत्पश्चात् रसोई के साधनरूप मिट्टी के बर्तन बनाये। सीता ने वन के धान्य से सुगन्धित आहार तैयार किया, अनेक मीठे पके हुए फलों का भोजन बनाया। भोजन के समय दोनों वीर, मुनिराज के आगमन की अभिलाषा से बाहर पड़गाहन करने के लिए खड़े हो गये।

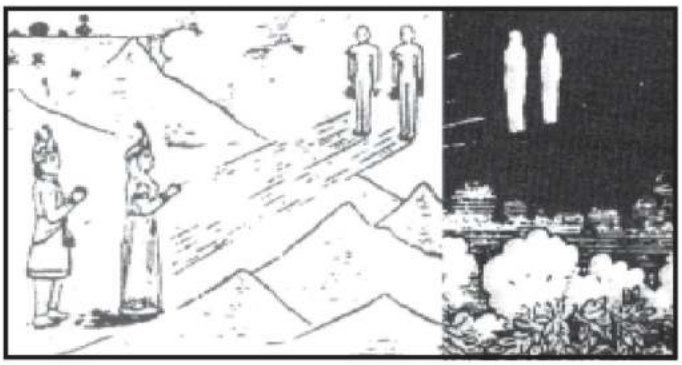

उस समय दो चारणमुनि पधारे, जिनके नाम सुगुप्ति और गुप्ति थे। उनका शरीर ज्योतिपटल से संयुक्त था। दोनों ने उनके दर्शन किये। वे मुनि मति, श्रुत, अवधिज्ञान के धारी थे। महाव्रत के धारक परम तपस्वी, किसी भी वस्तु की अभिलाषा से रहित, निर्मल मनवाले, मासोपवासी अत्यन्त धीर-वीर शुभचेष्टा के धारक, भत्यों को आनन्द प्रदाता, शास्त्रोक्त आचार संयुक्त ऐसे वे मुनिराज आहार के लिए पधारे।

www.vitragvani.com

सीता ने दूर से उनको देखा। अत्यन्त हर्षपूर्वक पुलकित आँखों और रोमाञ्चित शरीर से वह अपने पति से कहने लगी – 'हे नाथ! हे नरश्रेष्ठ! देखो, देखो! तप से बने दुर्बल शरीरवाले दिगम्बर कल्याणरूप चरण युगल पधारे हैं।'

राम ने कहा – 'हे प्रिये पण्डिते! धन्य है तुम्हारे भाग्य को! तुमने निर्ग्रन्थ युगल को देखा। अरे! इनके दर्शन से तो जन्म-जन्म के पाप मिटते हैं और भक्तिवन्त पुरुष का परम कल्याण होता है।'

राम के वचन सुनकर रोमाञ्चित होते हुए सीता कहने लगी – 'वे आये! वे आये!!'

उसी समय दोनों मुनिराजों पर राम की नजर पड़ी। वे मुनिराज जीवदया के पालक, ईयासमितिसहित, समाधानरूप मनवाले थे। श्रीराम ने सीतासहित उनके सन्मुख जाकर नमस्कार किया और अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसहित मुनियों का पड़गाहन करके आहारदान दिया। वन की गाय और भैसों का दूग्ध, पर्वत की द्राक्ष, नाना प्रकार की वन-धान्य, सुन्दर घी युक्त मिष्ठान्न इत्यादि से विधिपूर्वक मुनिराजों का पारणा कराया।

वे मुनि, भोजन की लोलुपतारहित निरन्तराय आहार करने लगे। जब राम-सीता ने भक्ति से आहारदान किया, तब पञ्चाश्चर्य हुए। जिस समय उन्होंने मुनियों को आहारदान दिया, उस समय वन में गीद्ध पक्षी वृक्ष पर बैठा हुआ था। अतिशयसंयुक्त मुनियों को देखकर उसे अपने पूर्व भव का ज्ञान हो गया। उसने जाना कि 'कुछ भव पूर्व मैं मनुष्य था। मैंने प्रमाद और अविवेक से अपना जन्म व्यर्थ गँवाया। मेरे महा पापकर्म के विचार से मैं अन्तर में जलता हूँ। अब, अपने दुःखों के निवारण के लिए इन साधुओं की शरण ग्रहण करूँ, क्योंकि ये सर्व सुख के दाता हैं।'

इस प्रकार पूर्व भव के स्मरण से पहले तो उसे बहुत शोक हुआ; फिर मुनिराजों के दर्शन से तत्काल अत्यन्त हर्षित होकर अपने दोनों पंख फैलाकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से अत्यन्त विनयपूर्वक वृक्ष के नीचे आ गिरा। पक्षी बहुत बड़ा होने से उसके गिरने की आवाज से सीता का चित्त व्याकुल हो गया। देखो, गीद्ध पक्षी मुनियों के चरणों में कहाँ से आकर पड़ा। उसने कठोर आवाज करके बहुत रोका परन्तु वह पक्षी मुनियों के चरण के प्रक्षालन में आकर पड़ा। चरणोदक के प्रभाव से क्षणभर में उसका शरीर रत्नों की राशि के समान

www.vitragvani.com

नाना प्रकार के तेज से मण्डित हो गया। पैर तो सुवर्ण की प्रभा धरने लगे, दोनो पंख वैदूर्यमणि के समान हो गये। वह पक्षी अत्यन्त हर्षित हुआ और मधुर स्वर से नृत्य करने के लिए तैयार हो गया। जिसकी आवाज देवों की दुन्दुभी समान है, वह नेत्रों से आनन्दाश्रु बहाता हुआ शोभित होने लगा। जैसे, मेघ के आगमन से मोर नृत्य करते हैं, उसी तरह वह मुनियों के आगे नृत्य करने लगा।

महामुनि विधिपूर्वक पारणा करके वैदूर्यमणि के समान शिला पर विराजमान हो गये। पद्मरागमणि के समान हैं नेत्र जिसके – ऐसा वह पक्षी, पंखों को सञ्कुचित कर मुनियों के चरणों के समीप आगे आकर बैठ गया।

श्रीराम खिले हुए कमल के समान नेत्रों से पक्षी को प्रकाशरूप देखकर स्वयं ही अत्यन्त विस्मित हुए। उन्होंने मुनिराजों के चरणों में नमस्कार करके पूछा – 'हे भगवन! यह पक्षी पूर्व की अवस्था में अत्यन्त कुरुप था, वह क्षणभर में सुवर्ण और रत्नों की मूर्ति बन गया! अशुद्धरूप और माँस का भक्षण करनेवाला – यह गिद्ध पक्षी आपके चरणों के समीप बैठकर अत्यन्त शान्त हो गया, इसका क्या कारण है?'

❖ ❖ ❖

सुगुप्ति नामक मुनि ने कहा – 'हे राजन! पहले इस स्थान पर एक सुन्दर दण्डक नाम का देश था। यहाँ कुर्णकुण्डल नामक अति मनोहर नगर में इस पक्षी का जीव दण्डक राजा था। वह प्रतापी प्रचण्ड पराक्रमी, जिसने शत्रुरूपी काँटों को भङ्ग कर दिया था – ऐसा महामानी, विशाल सेना का स्वामी था। उस मूढ़ ने अधर्म को श्रद्धारूप मिथ्याशास्त्र का सेवन किया। जैसे, कोई घी की प्राप्ति के लिए पानी को बिलोता है – ऐसा वह प्रयत्न था। इसकी स्त्री दण्डी जाति के संन्यासी की भक्त थी। रानी को संन्यासी के प्रति बहुत अनुराग था। उसके सङ्ग से राजा भी उसी पथ का अनुगामी हो गया। **अरे... रे...! स्त्री के वश हुआ पुरुष क्या-क्या अकृत्य नहीं करता?**

एक दिन राजा दण्डक अपने नगर से बाहर निकला, तब उसने वन में कायोत्सर्ग करके ध्यान में बैठे हुए एक मुनि को देखा। उस निर्दय राजा ने मुनि के गले में एक मरा हुआ साँप डाल दिया। दण्डक राजा पाषाण के समान कठोर हृदयवाला था। उन मुनि ने

www.vitragvani.com

ध्यान धरकर मौन रहकर ऐसी प्रतिज्ञा की कि जब तक मेरे गले में से सर्प दूर नहीं होगा, तब तक में हलन-चलनरहित योगरूप ही रहूँगा। इस प्रकार कितने ही दिनों के बाद राजा उसी मार्ग से निकला, उस समय किसी भले मनुष्य ने सर्प को दूर किया और वह मुनि के पास बैठा था।

राजा ने उससे पूछा – 'मुनि के गले से सर्प किसने निकाला?' तब उस मनुष्य ने उत्तर दिया – 'हे नरेन्द्र! किसी नरकगामी ने ध्यानारुढ़ मुनि के गले में मरा हुआ सर्प डाला था। उस सर्प के संयोग से साधु के शरीर में अनेक छिद्र हो गये थे, इन्होंने तो कोई उपाय किया नहीं; आज मैंने उस सर्प को दूर किया है।' तब राजा ने मुनि को शान्तस्वरूप कषायरहित जानकर प्रणाम किया। तभी से वह मुनिभक्ति का अनुरागी हो गया।

❖ ❖ ❖

जब रानी ने दण्डियों के मुख से यह वृतान्त सुना कि राजा जैनधर्म का अनुयायी हो गया है, तब उस पापिन ने क्रोधपूर्वक मुनिराज को मारने का उपाय किया। जो दुष्ट जीव होता है, वह अपने जीवन का प्रयत्न छोड़कर अन्य का अहित करता है। उस पापिन ने अपने गुरुओं से कहा कि तुम निर्ग्रन्थ मुनि का रूप धारण करके मेरे महल में आओ और विकार चेष्टा करो। रानी के कथनानुसार उन पापियों ने वैसा ही किया।

मुनियों का वेष धारण करके कपटी दण्डी साधुओं द्वारा की गयी विकारमय कुत्सित चेष्टा को भ्रम से मुनियों की चेष्टा जानकर, राजा दण्डक मुनियों के प्रति क्रोधित हो गया और उसके मन्त्री आदि दुष्ट मिथ्यादृष्टि, जो सदा मुनियों की निन्दा ही करते थे; उन्होंने राजा को भ्रमित किया; तब उस पापी राजा ने मुनियों को घानी में पीलने की आज्ञा दे दी और आचार्यसहित समस्त मुनियों को घानी में पील दिया। एक मुनि बाहर गये हुए थे, वे वापस आ रहे थे। उन्हें देखकर किसी दयालु व्यक्ति ने कहा – 'हे प्रभो! पापी राजा ने अनेक मुनियों को घानी में पील दिया है; अत: आप वहाँ मत जाओ। आपका शरीर, धर्म का साधन है; अत: अपने शरीर की रक्षा करो।'

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

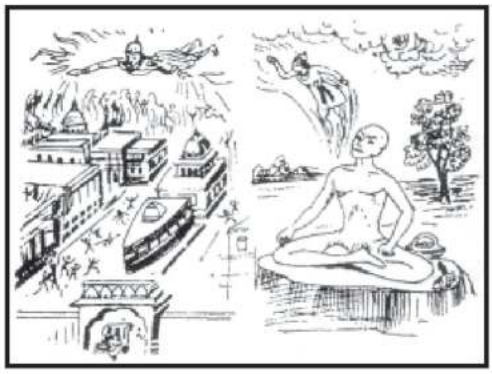

यह समाचार सुनकर मुनिसंघ के शोक से जिनको दु:खरूपी शीत का आघात लगा है - ऐसे वे मुनि थोड़ी देर तक तो वज्र के स्तम्भ के समान निश्चल हो गये; फिर असह्य दु:ख से क्लेश को प्राप्त हुए। तत्पश्चात् उन मुनिरूप पर्व की समभावरूप गुफा में से क्रोधरूप केसरी सिंह निकला, लाल नेत्र हुए, तप्तायमान मुनि के सम्पूर्ण शरीर में से पसीने की बूँदें फूट निकली, फिर काल-अग्नि के समान प्रज्ज्वलित अग्नि का पुतला निकला और धरती आकाश अग्निरूप हो गये। लोग हाहाकार करते हुए मरण को प्राप्त हुए। जैसे, बाँस का वन जलता है; वैसे ही सारा देश भस्म हो गया। न राजा बचा, न अन्त:पुर, न पुर, न ग्राम, न पर्वत, न नदी, न वन, न कोई प्राणी; देश में कोई नहीं बचा।

महान ज्ञान-वैराग्य के योग से बहुत समय से मुनि ने जो समभावरूप धन उपार्जित किया था, वह तत्काल क्रोधरूप लुटेरे ने हर लिया। दण्डक देश का दण्डक राजा पाप के प्रभाव से नष्ट हुआ और देश भी नष्ट हो गया। अब यह दण्डक वन कहलाता है।

कुछ समय तक तो यहाँ घास भी नहीं उगती थी। बहुत समय के बाद यहाँ मुनियों का विहार हुआ, उसके प्रभाव से वृक्षादि हुए। यह वन देवों को भी भय उपजानेवाला है, विद्याधरों की तो बात ही क्या ? दण्डक वन सिंह, बाघ, अष्टापद आदि अनेक जीवों से भरा और भाँति-भाँति के पक्षियों की आवाज से गूँजता था।

वह राजा दण्डक प्रबल शक्तिशाली था। वह मुनि हिंसा के महापाप से नरक-तिर्यञ्च योनियों में भटककर यह गीद्ध पक्षी हुआ है। अब इसके पापकर्म की निवृत्ति हुई है। हमें देखकर इसे पूर्व भव का स्मरण हुआ है और ऐसा जानकर यह संसार, शरीर, भोगों से विरक्त हो गया है।

अन्य जीवों का जो दृष्टान्त है, वह अपने को शान्तभाव की उत्पत्ति का कारण है। इस पक्षी को अपने पूर्व भव की चेष्टा याद आ जाने से यह काँप रहा है।

❖ ❖ ❖

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पक्षी के प्रति दया करते हुए मुनि कहने लगे – 'हे भव्य! अब तू भय मत कर। जिस समय जो होना होता है, वह होता है। तू रुदन किसलिए करता है? होनहार को मिटाने में कोई समर्थ नहीं है। अब तू समताभाव धारण करके सुखी हो, पश्चाताप छोड़! देख, कहाँ यह वन और कहाँ सीता के साथ श्रीराम का आना और कहाँ हमारी वनचर्या का अभिग्रह कि वन में श्रावक द्वारा आहार मिलेगा तो लूँगा और कहाँ तेरा हमें देखकर प्रतिबद्ध होना! कर्मों की गति विचित्र है, कर्मों की विचित्रता से जगत की विचित्रता है।'

मुनिराज ने पक्षी को वैराग्य के लिए संसार की कथा सुनाई। उसे सुनकर पक्षी भव-दु:ख से भयभीत हुआ और धर्मग्रहण की वाञ्छा से बारम्बार आवाज करने लगा। तब श्रीगुरु ने कहा – 'हे भद्र! तू भय मत कर! श्रावक के व्रत अङ्गीकार कर, जिससे पुन: दु:ख की परम्परा प्राप्त न हो। अब तू शान्तभाव धारण कर!'

इस प्रकार जब मुनियों ने आज्ञा की, तब पक्षी ने बारम्बार नमस्कार करके मुनिराज से श्रावक के व्रत धारण किये। सीता ने जब जाना कि यह उत्तम श्रावक हो गया है; इस कारण उसने आनन्दित होकर अपने हाथ से उस पक्षी के प्रति बहुत प्रेम व्यक्त किया। उसको विश्वास उत्पन्न करके दोनों मुनियों ने कहा – 'यह पक्षी अब शान्त चित्तवाला तपस्वी बन गया है, अब यह कहाँ जाएगा? गहन वन में अनेक क्रूर जीव हैं; अत: तुम इस सम्यग्दृष्टि पक्षी की सदा रक्षा करना।'

गुरु के यह वचन सुनकर उन्हें पालन की इच्छावाली सीता ने उस पक्षी के प्रति अनुग्रह करके उसे रखा। राम-लक्ष्मण भी उसे जिनधर्मी जानकर अत्यन्त अनुराग करने लगे। उसकी जटा हेम और रत्नों की शोभा से शोभित थी; इस कारण उसका नाम 'जटायु' रखा गया। जब राम-सीता, लक्ष्मण, जिनेन्द्रभक्ति करते, तब जटायु हर्षित होकर नृत्य करता था।

[इस प्रकार दण्डक राजा, मुनियों की हिंसा के महापाप से नरक आदि के महादु:ख भोगकर, मुनियों के समागम से गीद्ध पक्षी की अवस्था में धर्म प्राप्त करके राम-सीता के सङ्ग आत्मा साधना में आगे बढ़ा।]

(– महापुराण में से संक्षिप्त सार)

29 वैरभाव दुःखदायी भव-भव
(दो मुर्गों का एक प्रसंग)

एक बार धनरथ तीर्थंकर पुत्र पौत्र आदि सब प्रकार की सुख सामग्री का अनुभव करते हुए सिंहासन पर विराजमान होकर इन्द्र जैसी लीला कर रहे थे। एक दिन प्रियतमा की दासी सुषेणा एक धनकुण्ड नामक मुर्गे को लेकर आई और सबको बताकर कहने लगी कि जिसका मुर्गा हमारे मुर्गे को जीत लेगा, उसे एक हजार दीनार दी जायेगी।

सुषेणा की यह बात सुनकर छोटी रानी की दासी कांचना उससे लड़ाने के लिये ब्रजकुण्ड नामक मुर्गे को ले आई। ऐसे जीवों को युद्ध करने में परस्पर दोनों को दुःख होता है और देखनेवालों को भी हिंसा में आनन्द मानने से रौद्रध्यान होता है। रौद्रध्यान से महापाप होता है और पाप से नरक मिलता है। नरक में दुःख सहन करने पड़ते हैं; अतः धर्मात्माओं को ऐसा युद्ध देखना भी अयोग्य है।

इस बात को स्मरण करके वे धनरथ तीर्थकर (राज्यावस्था में) भी भव्य जीवों को समझाने के लिये और अपने पुत्र मेघरथ की महिमा प्रगट करने के लिये अपनु पुत्र-पौत्रादिक के साथ बिना मन (बेमन) यह युद्ध देख रहे थे। वे दोनों दुष्ट मुर्गे पूर्व जन्म की शत्रुता के कारण परस्पर क्रोध करके आश्चर्यकारक और दुःख देनेवाला महायुद्ध करने लगे।

यह देखकर धर्मरथ तीर्थंकर ने मेघरथ पुत्र से पूछा कि इन दोनों का युद्ध क्यों हो रहा है? क्या इसमें कोई पूर्व जन्म की शत्रुता कारण है? पिता की यह बात सुनकर अवधिज्ञानी पुत्र मेघरथ समस्त जीवों का हित करनेवाली और कानों को सुख देनेवाली मधुर वाणी से कहने लगा – हे कुटुम्बीजनों! अपने मन को स्थिर करके सुनो! मैं इन दोनों

www.vitragvani.com

मुर्गों के पूर्व जन्म की शत्रुता की कथा कहता हूँ।

❖ ❖ ❖

इस जम्बूद्वीप के ऐरावतक्षेत्र में रत्नपुर नगर में दो भाई रहते थे, परन्तु दोनों मूर्ख थे। दोनों गाड़ी वाहक का काम करते थे। उनका नाम भद्र और धन था। एक दिन वे दोनों निर्दयी भाई लोभ में पड़कर एक बैल के लिये लड़ने लगे। वे दोनों पापी श्रीनदी के किनारे लड़ते-लड़ते एक दूसरे को भारी चोट लगने से मर गये।

दोनों भाई आर्त्तध्यानरूप महापाप करके मरकर श्वेतकर्ण और तांब्रकर्ण नामक हाथी हुए। वे दोनों क्रोधी थे, बलवान थे। वहाँ भी पूर्व जन्म की शत्रुता के कारण परस्पर लड़कर मर गये और भैंसा हुए। वहाँ भी पूर्व जन्म के वैर से दोनों परस्पर युद्ध करके मर गये। वे दोनों मरकर शक्तिसेन और वरसेन नामक वज्र के समान मजबूत शिरवाले मेंडा हुए। वहाँ भी पूर्व जन्म के वैर के कारण परस्पर बहुत काल तक लड़ते-लड़ते मरे और पापकर्म के उदय से ये मुर्गे हुए हैं।

अत: हे सभासदों! यह निश्चित है कि पूर्व जन्म के संस्कारों से मनुष्यों की शत्रुता और मित्रता दोनों ही अनेक भवों तक बराबर साथ चलती है। इसलिए हे सभासदों! बुद्धिमान लोगों को प्राणों का नाश होने पर भी हीन अथवा दीन के साथ अनेक दु:ख देनेवाला वैर कभी नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार विद्वान मेघरथ ने दोनों मुर्गों की पूर्व जन्म की कथा कहकर समस्त सभासदों को आश्चर्य उत्पन्न किया और सबको सन्तुष्ट किया।

वे दोनों मुर्गे भी पापकर्म के उदय से प्राप्त हुए अनेक प्रकार के दु:ख देनेवाले पूर्व भवों की समस्त शत्रुता सुनकर अपने मन में अपनी निन्दा करने लगे। उन दोनों ने सुख देनेवाला वैराग्य धारण किया। परस्पर में शत्रुता का परित्याग करके, जीवनपर्यन्त अनशनव्रत धारण किया और अपनी शक्ति के अनुसार भूख-प्यास आदि परीषह सहन किये। श्री जिनेन्द्रदेव का स्मरण करके समाधिपूर्वक प्राणों का त्याग करके भूतारण्य वन में तांब्रचूल और कनकचूल नामक व्यन्तर जाति के देव हुए। दिव्य गुणों से सुशोभित उन्होंने उसी समय अपने अवधिज्ञान से पूर्व का सारा वृतान्त जान लिया। वे दोनों विचार करने लगे कि

www.vitragvani.com

कहाँ तो हम माँसभक्षी निंद्य और हीन पक्षी थे। कहाँ हमको राजकुमार मेघरथ ने (शान्तिनाथ के पूर्व भव के जीव ने) जीवों की दया पालन का उपदेश दिया। यदि हम वहाँ जाकर उस धर्मात्मा का प्रत्युपकार नहीं करें तो हमारे जैसा नीच इस संसार में अन्य कौन होगा? इस प्रकार विचार करके वे दोनों देव, मेघकुमार के पास आये और अत्यन्त प्रेम से प्रणाम किया तथा वस्त्र, माला, आभूषणादि से उनकी पूजा (सन्मान) की।

अब हम आपका केवल एक प्रकार का प्रत्युपकार करना चाहते हैं कि आपको मानुष्योत्तर पर्वत के अन्दर में समस्त ही मनोहारी स्थानों और तीर्थस्थानों आदि तथा समुद्रादि की यात्रा करावें। यह कहकर उन दोनों देवों ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, तब कुमार मेघरथ ने कहा कि ठीक; तुम्हारी भावना स्वीकार्य है।

यह सुनकर उन दोनों देवों ने अनेक प्रकार की ऋद्धि से शोभायमान एक विशाल विमान बनाया और उसमें गुरुजनों के साथ देव के समान कुमार मेघरथ को विराजमान किया; अढ़ाई द्वीप के समस्त दर्शनीय तथा पूजनीय स्थानों की अपूर्व यात्रा कराकर सन्तोष प्राप्त किया। अन्त में मेघरथ को नमस्कार करके वे दोनों देव अपने स्थान को चले गये। ●●

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

30 चिलातपुत्र

एक बार राजगृही नगरी के राजा उपश्रेणिक घोड़े पर बैठकर पर्यटन के लिये वन की ओर गये। उनका घोड़ा अत्यन्त चपल था; अत: वह उन्हें भयानक जङ्गल में ले गया। उस वन का रक्षक यमदण्ड नामक भील था। उसकी पुत्री तिलकवती अत्यन्त रूपवती थी। जिसे देखकर राजा उपश्रेणिक उस पर आसक्त हो गये और उसके पिता से विवाह की इच्छा व्यक्त की। यमदण्ड ने कहा – 'महाराज! यदि आप तिलकवती से उत्पन्न सन्तान को युवराज बनाने का वचन दें तो मैं अपनी पुत्री का विवाह सहर्ष आपके साथ करने को तैयार हूँ।' राजा ने यह शर्त मन्जूर करके तिलकवती के साथ विवाह कर लिया और प्रसन्नतापूर्वक राजगृही आ गये।

कुछ समय बाद तिलकवती ने एक पुत्र को जन्म दिया, उसका नाम चिलात रखा गया। पूर्व की रानियों से भी राजा के अनेक पुत्र थे, तथापि राजा उपश्रेणिक, चिलात को युवराज बनाने के लिए वचनबद्ध थे। साथ ही उन्हें यह भय भी था कि इसके शासन में राज्य का नाश तो नहीं होगा न! किन्तु राजा अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करने के लिए तैयार नहीं थे। इसी विचार से उन्होंने एक दिन ज्योतिषियों को बुलाकर पूछा –

हे विज्ञ! मेरे इन समस्त पुत्रों में से राज्य का स्वामी कौन होगा?

ज्योतिषियों ने विचारकर कहा – हे महाराज! इसका निर्णय परीक्षा से होगा। आप अपने समस्त पुत्रों को खीर खाने के

www.vitragvani.com

लिए बैठायें और उन पर कुत्ते छोड़ दें। इस प्रसङ्ग पर भी जो सिंहासन पर बैठकर नँगारा बजाते हुए भोजन भी करता जाए, वह राजा होने की योग्यता रखता है। दूसरी परीक्षा आग लगाना है। जो पुत्र छत्र, चँवर सिंहासन आदि राजकीय वस्तु की आग से रक्षा कर सके, वह राजा होगा।

उपश्रेणिक ने ज्योतिषियों के कथनानुसार राजपुत्रों की परीक्षा की, उनमें कुमार श्रेणिक ही उत्तीर्ण हुआ। इससे उपश्रेणिक को विश्वास हो गया कि यह श्रेणिक ही राजा होने योग्य है; इस कारण उन्हें उसकी रक्षा की चिन्ता होने लगी। वे विचारने लगे कि कहीं चिलात के समर्थकों द्वारा श्रेणिक की हत्या न हो जाए? उसलिए उन्हें एक युक्ति सूझी; 'श्रेणिक ने कुत्तों का झूठा खाया है', इस कारण अब यह परिवार में अथवा राज्य में रहने योग्य नहीं है; अत: उन्होंने श्रेणिक को देश से निष्कासित कर दिया। पिता की आज्ञा होते ही श्रेणिक राजगृही से निकल गया और द्रविड़ देश के कोचिन नगर में रहने लगा। श्रेणिक ने स्वयं बुद्धिमान होने से वहाँ भी रहने की उत्तम व्यवस्था कर ली।

❖ ❖ ❖

कुछ काल बाद किसी वैराग्य प्रेरक प्रसङ्ग को पाकर राजा उपश्रेणिक संसार से उदास हो गये। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञानुसार चिलात को राज्य देकर जिनदीक्षा अङ्गीकार कर ली। यद्यपि चिलात राजा तो हो गया, परन्तु उसके जाति स्वभाव में परिवर्तन नहीं हुआ; इस कारण वह प्रजा को वृथा ही दण्ड देने लगा, जिससे प्रजा में असन्तोष व्याप्त हो गया और उसके प्रति घृणा का वातावरण निर्मित हो गया।

जब श्रेणिक को पता चला कि राजा चिलात, प्रजा के प्रति अन्याय कर रहा है तो उसे बहुत दु:ख हुआ और वह राजगृही आया। चिलात के आतङ्क से त्रस्त प्रजा, श्रेणिक के साथ मिल गयी। प्रजा का सहयोग पाकर श्रेणिक ने चिलातपुत्र को राज्य से हटाकर स्वयं राज्य सम्भाल लिया। चिलातपुत्र राजगृही से भागकर एक पहाड़ी पर किला बनाकर छोटे-बड़े गाँवों में बलजोरी से कर वसूली करने लगा।

चिलातपुत्र का एक भर्तु नाम का मित्र था। उसके मामा के सुभद्रा नाम की एक पुत्री थी। भर्तुमित्र ने उसका विवाह चिलातपुत्र के साथ करने के लिए मामा से प्रार्थना की,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

परन्तु मामा रुद्रदत्त ने चिलात के कुलक्षणों के कारण विवाह करने से साफ इन्कार कर दिया। इससे क्रोधित होकर चिलातपुत्र, गुप्तरीति से राजगृही आया और सुभद्रा को उठाकर ले गया। जब श्रेणिक को यह बात ज्ञात हुई तो वह चिलातपुत्र को पकड़ने के लिए उसके पीछे पड़ गया। चिलातपुत्र को लगा कि अब बचना मुश्किल है तो उसने सुभद्रा को मार दिया और भागते हुए बैभार पर्वत पर चढ़ गया। उस पर्वत पर मुनियों का एक संघ विराजमान था।

मुनिराज की परम शान्त वीतरागरस झरती मुद्रा देखकर चिलातपुत्र के परिणामों में एकदम परिवर्तन आ गया। क्रूरपरिणाम से **वह शान्तभाव में परिवर्तित हो गया।** वह संघाचार्य मुनि के समीप गया और उनको नमस्कार करके प्रार्थना की कि – 'हे भगवान! मैं इस असार संसार के परिभ्रमण से त्रस्त हो गया हूँ। अब इस परिभ्रमण का अन्त करने के लिए मैं निज शुद्धात्मस्वरूप में लीन होना चाहता हूँ। हे प्रभु! मुझ पर अनुग्रह करके आप मुझे सर्व कष्ट निवारक जिनदीक्षा प्रदान करो, जिससे मैं अपनी आत्मा का हित कर सकूँ।

मुनिराज ने कहा – हे भव्य! निज हित के लिए तूने बहुत उत्तम विचार किया है। अब तेरी आयु मात्र आठ दिन ही शेष है। अत: शीघ्र ही आत्महित कर लेने योग्य है।

मुनिराज द्वारा अपने थोड़े जीवन की बात सुनकर चिलातपुत्र ने उसी समय जिनदीक्षा अङ्गीकार कर ली और तुरन्त ही प्रायोपगमन संन्यास लेकर आत्मभावना में लीन हुआ। उसे पकड़ने के लिए आनेवाले श्रेणिक को यह देखकर चिलातपुत्र की धीरता पर अत्यन्त आश्चर्य हुआ और वह उसके साहस की प्रशंसा करता हुआ उन मुनिराज के चरणों में वन्दन करके वापस राजगृही चला गया।

इधर चिलातपुत्र द्वारा मारी गयी

www.vitragvani.com

सुभद्रा, व्यन्तर देवी हुई थी और उसने अपना बदला लेने के लिए पक्षी का रूप धारण किया। पूर्व बैर के वश होकर वह चिलातमुनि के सिर पर बैठकर उन्हें कष्ट देने लगी। उसने अपनी चोंच से मुनि की दोनों आँखें निकाल दी और फिर मधुमक्खियाँ बनकर उन्हें काटने लगी। इस प्रकार उसने लगातार आठ दिनों तक चिलात मुनि को बेहद कष्ट दिया परन्तु चिलातमुनि स्वरूपाराधना से विचलित नहीं हुए और अन्त में समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग में देवपर्याय को प्राप्त हुए।

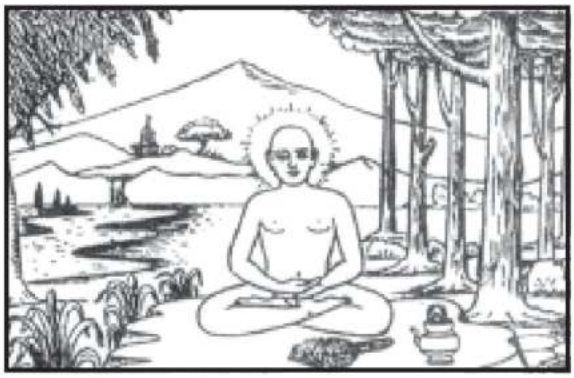

अहो! यह परिणामों का कैसा विचित्र चक्र है! थोड़ी देर पहले हत्या के क्रूरपरिणामवाला जीव कुछ ही देर में मुनिदशा के योग्य शान्तभावरूप परिणमित हो गया। जीवों के परिणामों की इस विचित्र परिस्थिति का बोध होने से ज्ञानीजन परिणामों की चक्रीयता में व्यामोहित नहीं होते, अपितु परिणामों से पार त्रिकाली ध्रुव में अपनापन स्थापित करके सादि-अनन्त काल तक पूर्ण सुखी रहते हैं। *(- आराधना कथा कोष में से)*

णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व साहूणं

जिस प्रकार व्यापारी लोग, दीपावली आदि के अच्छे मौसम में व्यापार की धूम मचाकर थोड़े ही समय में बहुत कमाई कर लेते हैं; उसी प्रकार धर्मात्मा जीव, धर्मसाधना के मौसमरूप चारित्रदशा में धर्म की धूम मचाकर महान मोक्ष का वैभव प्राप्त कर लेते हैं। **धर्मसाधना का मौसम ही साधुपद कहलाता है।** उसी के लिए बारह भावनाएँ हैं। धर्मीजीव भावना भाता है कि अहा! चारित्रदशा किसे अच्छी न लगेगी? **हम तो ऐसी चारित्रदशावन्त मुनियों के दास हैं। उन्हें हम 'णमो लोए त्रिकालवर्ती सव्व साहूणं' कहकर अत्यन्त बहुमान से नमस्कार करते हैं।**

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वीतराग-विज्ञान, भाग ५, पृष्ठ ११२

31 उपसर्गजयी कार्तिकेय मुनि

कार्तिकपुर के राजा का नाम अग्निदत्त था। उसकी पत्नी का नाम वीरवती था, दोनों के कृतिका नाम की पुत्री थी। एक बार कृतिका ने अष्टाह्निका महापर्व में आठ दिन का व्रत धारण किया। अन्तिम दिन वह भगवान की पूजा में लगी रही। जब पूजा समाप्त हुई, तब वह प्रसन्नतापूर्वक अपने पिता के समीप आयी। पुत्री की अनुपम सुन्दरता देखकर उसका पिता अग्निदत्त कामातुर हो गया। राजा अग्निदत्त ने कुछ अन्य धर्मी तथा जैन साधुओं को बुलाकर पूछा – 'हे नरश्रेष्ठ! मेरे घर में उत्पन्न हुए रत्न का उपभोग मैं कर सकता हूँ या अन्य कोई?' समस्त मनुष्यों ने एक ही स्वर में कहा – 'राजन! उस रत्न के स्वामी आप ही हो सकते हो', किन्तु विशिष्ट प्रज्ञा के धनी जैन साधुओं ने विचार करके कहा – 'राजन्! तुम्हारे घर में उत्पन्न रत्न के स्वामी तो तुम ही हो सकते हो परन्तु कन्यारत्न के स्वामी कदापि नहीं हो सकते।'

राजा तो कामी था ही, उसने अपने अभिप्राय के प्रतिकूल उत्तर पाकर, क्रोधित होकर जैन मुनियों को देश से बाहर निकाल दिया। अरे...रे! इस विषयाभिलाषा को धिक्कार है! जहाँ एक पिता ही अपनी पुत्री को कामवासना की दृष्टि से देखता है! रे संसार!! तत्पश्चात् राजा अग्निदत्त ने अपनी ही कन्या से विवाह कर लिया। सत्य है – कामान्ध मनुष्यों में धर्म, बुद्धि, नीति, सदाचार को स्थान कहाँ?

कुछ वर्षों के बाद कृतिका के गर्भ से एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुए। पुत्र का नाम कार्तिकेय और पुत्री का नाम वीरमती रखा गया। वीरमती अत्यन्त सुन्दर थी। उसका विवाह राजा कौंच के साथ सम्पन्न हुआ। वह रोहड़नगर का अधिपति था। वीरमती वहाँ जाकर सुखपूर्वक रहने लगी। तब तक कार्तिकेय भी चौदह वर्ष का किशोर हो गया था।

www.vitragvani.com

एक दिन कार्तिकेय अपने साथी अन्य राजकुमारों के साथ खेल रहा था। उन राजकुमारों ने अपने ननिहाल से आये हुए वस्त्राभूषण पहने हुए थे। जब कार्तिकेय ने पूछा तो पता पड़ा कि ये वस्त्राभूषण उनके नाना के यहाँ से आये हैं। यह सुनकर कार्तिकेय को दु:ख हुआ। उसने घर जाकर अपनी माँ से पूछा – 'हे माँ! मेरे साथियों के लिए तो उनके नाना-मामा सुन्दर वस्त्र और आभूषण भेजते हैं, तो मेरे नाना-मामा मेरे लिए वस्त्राभूषण क्यों नहीं भेजते?'

अपने प्रिय पुत्र के मुख से ऐसी बात सुनकर कृतिका का हृदय दु:खी हो गया और उसकी आँखों से आँसूओं की धारा बहने लगी। वह इस कोमल बालक को क्या कहकर सन्तोष दे – यह उसकी समझ में नहीं आया। अत: उसने हारकर सत्य घटना कह सुनाई। रोते-रोते उसने कहा – 'बेटा! इस घोर पाप की बात मैं तुझसे किस प्रकार कहूँ? कहते हुए भी मेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

हे पुत्र! तेरे जन्म सम्बन्धी एक असम्भव घटना है। जो मेरे पिता हैं, वे ही तेरे भी पिता हैं। मेरे पिता ने कामातुर होकर बलजोरी से मेरे साथ विवाह कर लिया। उन्होंने मेरे पवित्र जीवन में कलंक लगा दिया। तू उसका ही फल है।'

अपनी माता के मुख से यह बात सुनकर कार्तिकेय सुन्न हो गया। लज्जा और ग्लानि से उसका कोमल हृदय क्षोभित हो उठा... परन्तु यह तो बीती हुई घटना थी, जो अब अपरिवर्तनीय है।

खिन्न हृदय कार्तिकेय ने माँ से पूछा – 'माँ! ऐसा अनर्थ करते हुए मेरे पिता का किसी ने विरोध नहीं किया? क्या सबकी आँखें बन्द थी?'

माँ ने कहा – 'बेटा! सबने विरोध किया, जैन मुनियों ने विरोध किया, परन्तु मेरे पिता ने मुनियों को देश से बाहर निकाल दिया।

कार्तिकेय फिर पूछने लगा – 'माँ! वे गुणवान जैन महामुनि कैसे होते हैं?'

माँ ने कहा – 'बेटा! वे शान्तचित्त होते हैं, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करते; कोई गाली दे तो भी उन्हें क्रोध नहीं आता। बेटा! वे महान पण्डित होते हैं, उनके पास धन-सम्पत्ति तो क्या? एक कोढ़ी भी वे नहीं रखते और उनके पास वस्त्र का एक डोरा भी नहीं

www.vitragvani.com

होता। चाहे सर्दी हो या गर्मी या वर्षा – वे हमेशा एक समान रहते हैं। कोमल आकाश ही उनका वस्त्र है। वे नग्न दिगम्बर होते हैं। स्वप्न में भी कभी किसी को दु:ख नहीं देते। वे जीव-दया के लिए हमेशा मोरपिच्छी रखते हैं, जिससे बैठने के लिए जगह साफ / जीवरहित करते हैं। एक लकड़ी का कमण्डलु, जिसमें शौचादि के लिए प्रासुक जल रखते हैं। यद्यपि वे भिक्षा (आहार) के लिए श्रावक के घर जाते हैं परन्तु माँगते नहीं। यदि कोई आहार नहीं कराता तो वापस तपोवन में आ जाते हैं। कभी-कभी 15-15 दिन के उपवास कर लेते हैं। बेटा! मैं उनके आचार-विचार सम्बन्धी बातें क्या कहूँ? तू समझ ले कि संसार के समस्त साधुओं में ये साधु सच्चे हैं।'

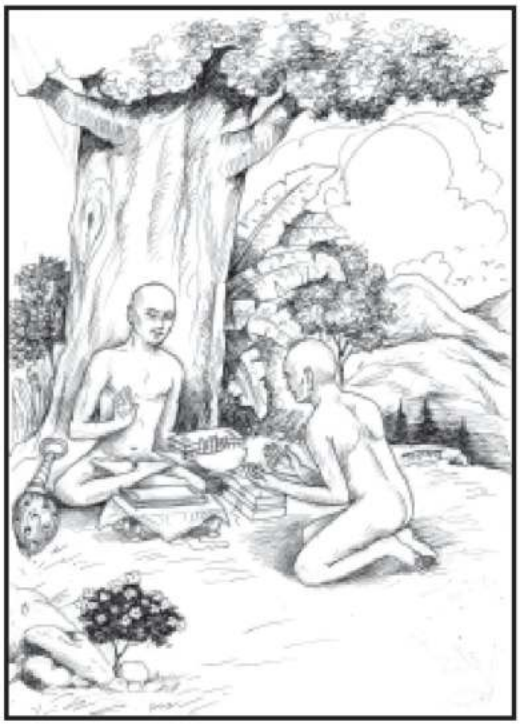

अपनी माता द्वारा जैन साधुओं की प्रशंसा सुनकर कार्तिकेय को उनके प्रति अपार श्रद्धा हो गयी। अपने पिता के दुष्कृत्य को जानकर उसे वैराग्य तो पहले ही हो गया था, अब माता का उपदेश सुनकर वह अधिक अटल हो गया। वह समस्त मोह ममता का परित्याग करके उसी समय घर से निकल गया और मुनियों के स्थान तपोवन में जा पहुँचा। वहाँ मुनियों का संघ देखकर उसे अपार प्रसन्नता हुई और उसने मुनियों को प्रणाम करते हुए दीक्षा के लिए प्रार्थना की। संघ के आचार्य ने उसे दीक्षा देकर मुनि बना दिया। थोड़े ही दिनों में तो कार्तिकेय मुनि, विद्याभ्यास करके महाविद्वान् हो गये।

कार्तिकेय की माता ने मुनियों की प्रशंसा तो की थी परन्तु उसे यह पता नहीं था कि उसके पुत्र पर इसका ऐसा असर होगा और वह भी दीक्षा ले लेगा। जब उसे ज्ञात हुआ कि कार्तिकेय मुनि हो गया है तो उसे बहुत दु:ख हुआ। वह कार्तिकेय के पास जाकर बहुत रोई, आँसू बहाये, परन्तु वह उन्हें डगमगा नहीं सकी। पुत्र के वियोग से उसका स्वास्थ्य

www.vitragvani.com

खराब होने लगा और अन्त में पुत्र-वियोग से उसका मरण हो गया। वह पुत्र के आर्त्तध्यान से मरकर व्यन्तर देवी हुई।

❖ ❖ ❖

एक बार विहार करते हुए कार्तिकेय मुनि रोहड़नगर जा पहुँचे। यहीं उनकी बहन का विवाह हुआ था। ज्येष्ठ का महिना था, अत्यन्त तीव्र गर्मी पड़ रही थी। अमावश्या के दिन कार्तिकेय मुनि, आहारचर्या के लिए नगर में गये। वे राजमहल के नीचे से जा रहे थे कि महल में बैठी वीरमती की नजर मुनि पर जा पड़ी। वह दौड़कर भाई के पास आयी और प्रेमवश उनके चरणों में गिर पड़ी। जब राजा कौंच ने देखा कि रानी एक नङ्गे भिखारी के चरणों में पड़ी है तो वह महाक्रोधित हुआ। वह आकर मुनि को मारने के लिये उन पर प्रहार करने लगा; जिससे मुनि मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। अरे रे! पापी, मिथ्यात्वी तथा जैनधर्म का विरोधी जीव क्या नीच कर्म नहीं करता?

कार्तिकेय को मूर्च्छित अवस्था में देखकर उनकी माँ, जो इस जन्म में व्यन्तरी हुई है, वह एक मोरनी का रूप धारण करके उनके समीप आयी और उसने अत्यन्त यत्नपूर्वक कार्तिकेय मुनि को उठाकर शीतलनाथ भगवान के मन्दिर में छोड़ दिया। मुनि की अवस्था खराब हो गयी थी। सचेत होने के बाद उन्होंने समाधि ले ली। जब वे शरीर को त्यागकर स्वर्गधाम पधारे तो देवों ने आकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। उस दिन से उस स्थान का नाम कार्तिकेय तीर्थ रखा। वे वीरमती के भाई थे, अत: 'भाई दूज' के नाम से दूसरा पर्व प्रसिद्ध हुआ।●●

(आराधना कथाकोश से)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

32 मत करो किसी से वैर

बहुत वर्षों पूर्व श्रावस्तिनगरी में जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। उसके पुत्र का नाम था मृगध्वज। उसी नगरी में एक सेठ कामदत्त निवास करता था। एक दिन वह अपनी गायों-भैंसों को देखने आया, तब भैंस का एक बच्चा भैंसा (पाड़ा) महादीन होकर सेठ के पैरों में गिर पड़ा।

सेठ ने ग्वाले से पूछा – 'यह क्या आश्चर्य है ?'

ग्वाले ने कहा – 'यह भैंसा जिस दिन जन्मा, उस दिन मेरे पैरों में भी पड़ा, तब मुझे इसके प्रति अत्यन्त करुणा उत्पन्न हुई। इस कारण मैंने वन में मुनिराज को नमस्कार करके पूछा – 'हे प्रभु! इस भैंसे के प्रति मुझे अति करुणा उत्पन्न होती है, उसका क्या कारण है ?'

मुनिराज ने कहा – 'रे ग्वाल! सुन, तेरी इस भैंस के गर्भ में इस भैंसे ने पाँच बार जन्म लिया है और तूने इसे मारा है, अब इसने छठवीं बार इसी भैंस के गर्भ से जन्म लिया है और तुझे देखकर इसे पूर्व भव का स्मरण हुआ है, इसलिए डरकर तेरे पैरों में पड़ रहा है कि अब तू मुझे मत मारना।'

मुनिराज के वचन सुनकर मैंने इसका पुत्र की तरह पालन किया। अब भी यह जीने के लिए तुम्हारे पैरों में पड़ रहा है। ग्वाले का यह वचन सुनकर सेठ ने दया करके राजा से उस भैंसे को अभयदान दिलाया।

एक दिन पूर्व भव के वैर से राजा के पुत्र मृगध्वज ने भैंसे का एक पैर काट दिया। अपने पुत्र के इस कृत्य से क्रोधित होकर राजा ने राजाज्ञा भङ्ग करने के अपराध में मृगध्वज को मृत्युदण्ड की आज्ञा दी। राजा का मन्त्री बुद्धिमान था। वह कपट करके कुँवर को वन

www.vitragvani.com

में ले गया और वन में मुनिराज के दर्शन करके उसे मुनिदीक्षा अङ्गीकार करा दी। यह भैंसा भी पैर टूटने से अठारह दिन बाद शुभभाव से मरण को प्राप्त हुआ और राजकुमार ने भी मुनि होने के पश्चात् बाईस दिन बाद शुक्लध्यान के प्रभाव से केवलज्ञान को प्राप्त किया।

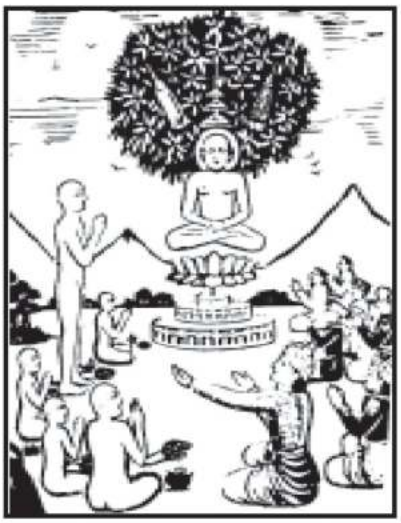

उन केवली भगवान की पूजा के लिए चारों प्रकार के देव और मनुष्य भी आये। राजा जितशत्रु भी आये। उन्होंने केवली से भैंसे के प्रति वैर का कारण पूछा। राजा द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में मृगध्वज केवली ने कहा – 'पहला नारायण त्रिपुष्ट था, उसका शत्रु अश्वग्रीव, अल्कापुरी का पति, विद्याधरों का ईश्वर, पहला प्रतिनारायण था, उसका मन्त्री हरिश्मश्री तर्कशास्त्र का पाठी नास्तिक मतवाला था। जब त्रिपुष्ट नारायण और अश्वग्रीव का युद्ध हुआ, तब नारायण त्रिपुष्ट के द्वारा प्रतिनारायण अश्वग्रीव मारा गया और विजय नाम बलभद्र ने मन्त्री हरिश्मश्री को मार दिया। अश्वग्रीव और हरिश्मश्री दोनों मरकर नरक में गये। चिरकाल तक संसार में परिभ्रमण करके अश्वग्रीव का जीव तो मैं मृगध्वज हुआ हूँ और हरिश्मश्री का जीव यह भैंसा हुआ है। पहले जन्म के दोष से कोप करके मैंने इस भैंसे का पैर तोड़ा था, वह अकामनिर्जरा से लोहित नाम का महा असुर हुआ। वह भी यहाँ वन्दन-भक्ति के लिए आया है।

हे राजन्! इस लोक में सभी जीवों के साथ मित्रभाव रखना चाहिए। क्रोध का सम्बन्ध, जीव को अन्धा कर देता है।'

इस कारण से हे राजन्! जो मोक्षाभिलाषी है, उसे क्रोध को वश करके शान्तभाव अङ्गीकार करना चाहिए। शान्तभाव ही शिवपद का कारण है भूलकर भी कभी किसी के प्रति वैरभाव नहीं करना चाहिए।

यह कथा सुनकर राजा आदि अनेक जीवों ने वैराग्य प्राप्त करके मुक्तिदायिनी जिनदीक्षा अङ्गीकार कर ली और मृगध्वज केवली प्रभु भी आयु पूर्ण करके परमधाम पधारे।●●

33 राजा कीचक और द्रोपदी की भवावली

एक विराट नाम का नगर था। वहाँ राजा विराट राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सुदर्शना था। उसके यहाँ पाँच पाण्डव और द्रोपदी गुप्तवेष (अज्ञातवास) में रहे। युधिष्ठर तो पण्डित बनकर रहे, भीम रसोईया बनकर रहे, अर्जुन नृत्याङ्गना बनकर रहे, नकुल-सहदेव घोड़ों को सम्भालनेवाले बनकर रहे और द्रोपदी मालिन बनकर रही। राजा विराट के सन्मानसहित एवं यथाशक्ति सुख-शान्ति से सावधानी से गुप्त वेष में रहते हैं।

❖ ❖ ❖

एक चूलिका नाम की नगरी थी। उस नगरी का राजा चूलिका था। उसकी रानी का नाम विकचा था। उनके एक सौ पुत्र थे। उन एक सौ भाईयों में कीचक सबसे बड़ा था और दुराचार में भी बड़ा था। उसको रूपमद, यौवनमद, चातुर्यमद, शूरवीरता का मद और धन का मद था। ऐसे मदों से वह उन्मत्त था। राजा विराट की रानी सुदर्शना, कीचक की बहिन होती थी। कीचक अपनी बहिन से मिलने के लिए विराटपुर आया। वह द्रोपदी को देखकर उस पर कामासक्त हो गया। उस पापी ने यह नहीं जाना कि यह महासती है।

कैसी है द्रोपदी? महासुगन्धित है शरीर जिसका। उस शरीर की सुगन्ध से दसों दिशाएँ सुगन्धित हो जाती है और रूप-लावण्य सौभाग्य गुण से युक्त है। उसके दर्शनमात्र से ही कीचक महामानी होने पर भी, उसका मन द्रोपदी में आसक्त हुआ और दीनता से अनेक उपाय करके द्रोपदी को लोभ दिखाने लगा परन्तु वह महासती, जिसको परपुरुष तृण समान है; उस दुष्ट की बलजोरी से आक्रान्त होकर उसने भीमसेन को सम्पूर्ण वृतान्त से अवगत कराया। भीमसेन के निर्देशानुसार उसने कीचक से झूठी वार्ता करके विश्वास उत्पन्न किया।

www.vitragvani.com

महाधीर भीमसेन रात्रि में द्रोपदी का वेष धारण करके कीचक ने जहाँ सङ्केत दिया था, वहाँ एकान्त में गया। महा कामासक्त कीचक उसी को द्रोपदी समझकर तुरन्त ही उसके पास आया। जैसे हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के वश में होकर गड्डे में गिरने आता है, वैसे ही वह भीमसेन को द्रोपदी समझकर उसके पास आया। भीम ने दोनों हाथो से उसका गला पकड़ा और वहीं जमीन पर पछाड़ दिया, पैरों से मसला, मुक्कों का प्रहार किया और जैसे पर्वत पर वज्र पड़ते हैं, उसी प्रकार कीचक पर भीम की मुट्ठी पड़ी। उस परदारारत कामी कुशील के अभिलाषी को अन्याय का फल दिखाकर भीम ने छोड़ दिया। जो दयावन्त उज्ज्वल मन हैं, वे ऐसे पापी को भी नहीं मारते; समस्त जीवों पर दयाभाव रखते हैं।

कीचक भी पाप का फल प्रत्यक्ष देखकर विषय से विरक्त हुआ और उसके मन में अपने दुष्कृत्य के पश्चाताप के साथ-साथ वैराग्यभाव हिलोरें लेने लगा।

देखो! परिणामों की विचित्रता!! थोड़ी देर पहले विषयाभिलाषा के तीव्र पापपरिणाम और थोड़ी देर बाद शान्तभावरूप वैराग्य परिणाम!

❖ ❖ ❖

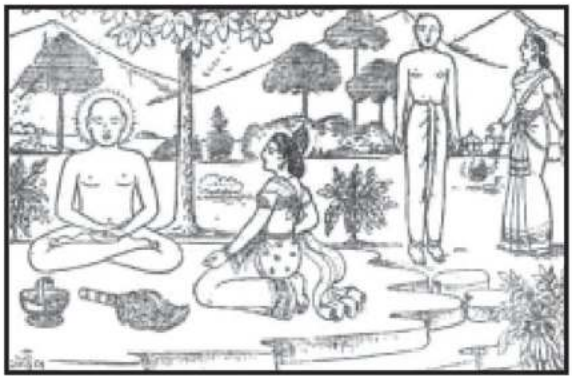

वैरागी परिणाम से युक्त कीचक ने रतिवर्धन नाम के मुनि के समीप जाकर मुनिव्रत अङ्गीकार कर लिया और भावों की शुद्धता से भावना भाकर शुद्धरत्नत्रय का आराधन करके वन में ध्यानारूढ़ हुआ।

एक समय एक यक्ष ने उसे ध्यानावस्था में देखा, तब यक्ष ने विचार किया कि यह द्रोपदी के प्रति कामासक्त थे; अत: अब देखूँ कि इनके वैराग्य में कैसी दृढ़ता है ? इस विचार से उस यक्ष ने कीचक मुनि की परीक्षा के लिए अर्द्धरात्रि में द्रोपदी का रूप दिखाया और कामयुक्त, उन्मादरूप मीठे शब्द सुनाये, परन्तु वे मुनिराज तो उसके शब्द सुनकर भी बहरे के समान हो गये, उसका रूप देखकर भी अन्ध के समान हो गये।

www.vitragvani.com

रूप महामनोहर विलासरूप, परन्तु अन्धा कैसे देखे ? महासुन्दर शृङ्गाररस से युक्त शब्द, परन्तु बहरा कैसे सुने ?

कैसे हैं कीचक मुनि ? जिन्होंने इन्द्रियसमूह को वशीभूत किया है, जिनका मन शुद्ध हुआ है। उसी समय कीचक मुनि को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। तब यक्षदेव ने उन्हें नमस्कार करके क्षमायाचना की और पूछने लगा कि 'प्रभो ! आपका द्रोपदी के प्रति मोह होने का क्या कारण है ?' तब कीचक केवली अपने और द्रोपदी के कितने ही पूर्व भव इस प्रकार कहने लगे –

❖ ❖ ❖

'हे यक्ष ! यह तरङ्गिणी नाम की नदी, जिसमें वेगवती नाम की नदी का मिलाप हुआ है, उस नदी के किनारे महादुष्ट क्षुद्र नाम का म्लेच्छ था। वह महापापी, गरीब, जीवों का वैरी था। वह मैं, साधु के दर्शन से शान्त हुआ और मरकर उत्तम मनुष्य हुआ। वहाँ मेरा नाम कुमारदेव था और धनदेव (सोमभूति – अर्जुन का जीव) मेरा पिता और सुकुमारी (नागश्री – द्रोपदी का जीव) मेरी माता थी। उस पापिन ने मुनि को आहार में विष देकर मारा और मुनि हत्या के पाप से नरक में महादु:ख भोगकर तिर्यञ्च हुई। इस प्रकार अनेक भव नरक–तिर्यञ्च के किये। मैं कुमारदेव उसका पुत्र, म्लेच्छ से मरकर उत्तम कुल को तो पाया, परन्तु यति अथवा श्रावक के व्रतों का पालन नहीं किया और अज्ञान से अनेक भवों में भ्रमण किया।

एक सीत नामक तापस था, उसकी मृगसंगिनी नाम की तापसी का मैं मधु नाम का पुत्र हुआ। उस तापस के आश्रम में मैं बड़ा हुआ। एक विनयदत्त नाम के मुनि को किसी एक भाग्यवान पुरुष ने आहारदान दिया, उसके पञ्चाश्चर्यों का अतिशय देखकर मैं मुनि हुआ और वहाँ से स्वर्ग में गया, वहाँ से आकर कीचक हुआ हूँ।

कुमारदेव की पर्याय में सुकुमारी (नागश्री) नाम की मेरी माता ने चिरकाल तक संसार भ्रमण करके दुर्भगा, दुर्गन्धा, अनुमति नामक मनुष्यनी होकर महादु:ख भोगा। तत्पश्चात् आर्यिका होकर निदानसहित तप किया। जिसके प्रभाव से देवयोनि पाकर फिर द्रोपदी हुई। अनेक भव में उसके और हमारे सम्बन्ध हुए। किसी जन्म में माता, कभी

www.vitragvani.com

बहिन, कभी पुत्री और कभी स्त्री हुई; इस कारण मुझे उसके प्रति मोह हुआ।

यहाँ गौतमस्वामी, राजा श्रेणिक से कहते हैं कि 'हे श्रेणिक! इस संसारचक्र के परिभ्रमण में संयोग का वियोग होता है। माता मरकर बहिन होती है, बेटी होती है और स्त्री होती है और स्त्री मरकर माता होती है, बहिन होती है, बेटी होती है। – यह संसारचक्र का चरित्र है – ऐसी संसारचक्र की विचित्रता जानकर भव्य जीव, वैराग्य को अङ्गीकार करके मोक्ष के लिए महातप करने का प्रयत्न करो।'

(कीचक ने विषय-वासना के तीव्र प्रभाव से मरणतुल्य मार खाई और उससे तीव्र वैराग्यभाव प्राप्त करके मुनिदीक्षा लेकर उग्र आराधना में उपसर्ग से चालित न होकर केवलज्ञान और मुक्ति की साधना की। जीव अज्ञानभाव से कैसे-कैसे आत्मघातक भाव करता है और सम्यग्ज्ञान के बल से कैसे अपने को संसार से बचाकर मुक्ति को प्राप्त करता है – इस तथ्य का बोध इस कथा से प्राप्त होता है।) ●●

आचार्यदेव के कथन में केवलज्ञान की झङ्कार

अहो! महान सन्त-मुनिवरों ने जङ्गल में रहकर आत्मस्वभाव का अमृत -निर्झर प्रवाहित किया है। **आचार्यदेव तो धर्म के स्तम्भ हैं, जिन्होंने पवित्र धर्म को जीवन्त कर रखा है... गजब का काम किया है!** साधकदशा में स्वरूप की शान्ति का वेदन करते हुए परीषहों को जीतकर, परम सत् को अक्षुण्णरूप से जीवन्त रखा है। **आचार्यदेव के कथन में केवलज्ञान की झङ्कार गूँजती है –** ऐसे महान शास्त्रों की रचना कर उन्होंने बहुत जीवों पर असीम उपकार किया है। उनकी रचनायें तो देखो! पद-पद में कितना गम्भीर रहस्य भरा है। यह तो सत्य का शङ्खनाद है, इसके संस्कार होना कोई अपूर्व महा भाग्य की बात है तथा उसकी समझ तो मुक्ति का वरण करने जाने के लिए श्रीफल समान है; जो समझे उसका तो मोक्ष ही होनेवाला है।

– पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, जिणसासणं सव्वं, १००६, पृष्ठ ७७

34 लोभ : पाप का बाप
(लुब्धक की कथा)

सर्व ज्ञानमय त्रिलोक स्वामी जिन भगवान को प्रणाम करके लोभ कषायासक्त लुब्धक सेठ की कथा लिखी जाती है।

अभयवाहन चम्पापुरी का राजा था। उसकी रानी पुण्डरिका थी। उसके नेत्र पुण्डरीक कमल जैसे थे। उस नगर में लुब्धक सेठ अपनी पत्नी नागवसु तथा दो हँसमुख पुत्र गरुड़दत्त और नागदत्त के साथ रहता था।

लुब्धक अत्यन्त धनी था। बहुत धन खर्च करके उसने यक्ष, पक्षी, हाथी, ऊँटा, घोड़ा, सिंह, हिरन आदि पशुओं की सेना की एक-एक जोड़ी बनाई। उनके सींग, पूँछ, खुर इत्यादि में बहुमूल्य हीरे, माणिक, मोती इत्यादि रत्नों को जड़ाकर उसने इन दर्शनीय वस्तुओं का संग्रह किया। जो कोई भी इस प्रदर्शनी को देखता, वह लुब्धक की प्रशंसा करता। स्वयं लुब्धक भी उस जगमगाती प्रदर्शनी को देखकर अपने को धन्य मानता था। उसको एक बात का दु:ख था कि वह बैल की जोड़ी बना पाया था। उसने एक बैल बनाकर उस पर सोना मँड रहा था, परन्तु सोना बचता नहीं होने से दूसरा बैल नहीं बना सका था, इसकी चिन्ता उसको सतत रहा करती थी। वह इस कमी को पूरी करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहा करता था।

❖ ❖ ❖

www.vitragvani.com

एक दिन लगातार सात दिनों तक पानी गिरने से सभी नदी-नाले भर गये। कर्मवीर लुब्धक ऐसे समय में भी अपने दूसरे बैल के लिये लकड़ियाँ लेने स्वयं नदी के किनारे गया। उसने बहती नदी में से लकड़ियाँ लेकर गट्ठर बाँधा और सिर पर लेकर घर आया। सत्य है कि तृष्णा कभी पूरी नहीं होती।

रानी पुण्डरिका महल में बैठे-बैठे प्रकृति की शोभा देख रही थी। महाराज भी उसके साथ बैठे हुए थे। रानी ने बरसात में लुब्धक को भार लाते हुए देखकर राजा से कहा - प्राणनाथ! तुम्हारे राज्य में यह कोई बहुत दरिद्री है। देखो, बरसात में भी लकड़ियों का गट्ठर लेकर आ रहा है। आप इसकी कुछ सहायता करो, जिससे इसका दु:ख दूर हो।

राजा ने उसी समय लुब्धक को बुलाया और कहा - लगता है कि तुम्हारे घर की हालत ठीक नहीं है, इसलिए तुम्हें जितने रुपयों की आवश्यकता हो, उतने खजाने में से ले जाओ।

लुब्धक ने कहा - महाराज! मुझे अन्य कुछ नहीं चाहिए, सिर्फ एक बैल की जरूरत है।

जब राजा ने अपने बैलों में से एक बैल ले जाने को कहा, तब राजा के समस्त बैलों को देखकर लुब्धक ने राजा से कहा - पृथ्वीपति! आपके बैलों में मेरे बैल जैसा एक भी नहीं है।

यह सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। उसने लुब्धक से कहा - भाई! तेरा बैल कैसा है ? मैं देखना चाहता हूँ।

लुब्धक प्रसन्नता से राजा को अपने घर ले गया और अपना सोने का बैल दिखाया।

राजा ने जिसे बहुत दु:खी माना था, उसे बहुत धनवान देखकर राजा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

लुब्धक की पत्नी नागवसु ने राजा को अपने घर आया देखकर उनको भेंट देने के लिये स्वर्ण थाल को बहुमूल्य रत्नों से सजाकर अपने पति के हाथ में देकर कहा - हे प्रभो! इस थाल की भेंट महाराज को प्रदान करो।

थाल को रत्नों से भरा देखकर लुब्धक की छाती फटने लगी, परन्तु महाराज समीप

www.vitragvani.com

में ही होने से उसे थाल हाथ में लेना पड़ा। थाल हाथ में लेते ही उसके हाथ थर-थर काँपने लगे। जैसे, ही उसने थाल महाराज को देने के लिये हाथों को लम्बाया कि महाराज को उसके हाथ की अंगुलियाँ सर्प के फण-समान ज्ञात होने लगी। जिसने किसी को एक कोड़ी भी नहीं दी हो, उसका मन अन्य की प्रेरणा से क्या दान दे सकता है ? नहीं। राजा को उसके बर्ताव से बहुत नफरत हुई और उन्हें वहाँ एक पल भी रहना अच्छा नहीं लगा। वे उसका नाम फणहस्त रखकर अपने महल में आ गये।

❖ ❖ ❖

लुब्धक की दूसरे बैल की इच्छा पूरी नहीं होने से वह धन कमाने के लिये सिंहलद्वीप गया। वहाँ उसने लगभग चार करोड़ का धन कमाया। जब वह अपना धन / माल जहाज पर रखकर वापस आ रहा था तो समुद्र में तूफान आने से वाहन डूबकर समुद्र के विशाल गर्भ में समा गया। लुब्धक वहाँ ही आर्तध्यान से मरकर अपने धन का रक्षक सर्प हुआ। तब भी वह उसमें से किसी को एक कोड़ी भी नहीं लेने देता था।

सर्प को धन पर बैठा हुआ देखकर लुब्धक के बड़े पुत्र गरुड़दत्त को बहुत गुस्सा आया। उसने उसी समय उसे मार दिया। मरकर वह चौथे नरक में गया, जहाँ पापकर्मों से महा कष्ट भोगना पड़ता है।

इस प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभादि के वश होकर जीव अनन्त काल तक दु:ख भोगता है; अत: सुखाभिलाषियों को लोभादि का परित्याग करके जिनेन्द्र भगवान के आदेश अनुसार धर्म का आचरण करना चाहिए, जो धर्म, मोक्ष प्रदायक है।

यह कथा हमें बोध देती है कि जीव, लोभादि कषायों के वश होकर कैसे-कैसे दु:ख भोगता है; अत: इन कषायभावों का अभाव करने के लिए निज अकषायस्वरूप आत्मतत्त्व की दृष्टि और अनुभूति प्रगट करने का पुरुषार्थ करना चाहिए। ●●

- आराधना कथा कोष में से संक्षिप्त सार

35 अभयदान का फल

(बाईस हजार पुत्रों सहित चक्रवर्ती का वैराग्य)

महाविदेहक्षेत्र में स्वर्ग के समान पुण्डरीक देश में त्रिभुनानन्द था। नगर में राजा चक्रधर चक्रवर्ती राज्य करता था। उसकी पुत्री का नाम अनंगशरा गुण ही जिसके आभूषण हैं – ऐसी वह कन्या अत्यन्त रूपवान थी। स्त्रियों में उसके समान रूप अन्य किसी का नहीं था।

प्रतिष्ठितपुर का एक राजा पुनर्वसु विद्याधर (भावी लक्ष्मण का जीव) चक्रवर्ती की सामन्त कन्या को देखकर कामबाण से पीड़ित हो गया और कन्या को विमान में बिठाकर अपहरण करके ले गया। चक्रवर्ती ने क्रोधायमान होकर दूत भेजे और उसके साथ युद्ध करने लगा, उसका विमान तोड़ दिया। तब पुनर्वसु ने व्याकुल होकर कन्या को आकाश में से नीचे डाल दिया।

शरद के चन्द्रमा की ज्योति के समान पुनर्वसु की पर्णलघु विद्या से कन्या अटवी में जा गिरी। वह अटवी दुष्ट जीवों से महा भयानक थी। उस अटवी का नाम श्यापद शैरव था, जहाँ पर विद्याधरों का भी प्रवेश नहीं था, वृक्षों के समूह से महाअन्धकारपूर्ण, नाना प्रकार की बैलों से घिरी हुई तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से युक्त वह अटवी, जहाँ सूर्य की एक किरण भी प्रवेश नहीं कर सकती थी। चीता, बाघ, सिंह, गेंडा, रीछ इत्यादि अनेक प्रकार के वनचर जहाँ विचरते थे और ऊँची-ऊँची भूमि में बड़े-बड़े गड्ढे थे, जिनमें वह चक्रवर्ती की कन्या अनंगशरा बालिका आ पड़ी। महा भयंकर वन में अत्यन्त दु:खी होती हुई वह चारों दिशाओं में नजर दौड़ाती, माता-पिता को याद करती, रुदन करती है – कि हाय! मैं चक्रवर्ती की पुत्री, मेरे पिता इन्द्र के समान, जिनकी मैं लाडली; देव योग से ऐसी दशा में

www.vitragvani.com

आ पड़ी। अब मैं क्या करुँ ? इस वन का तो कोई छोर / अन्त है नहीं। इस प्रकार उस भयानक वन देखकर दु:खी होती।

हाय पिता! महा पराक्रमी, आप सम्पूर्ण लोक में प्रसिद्ध है। मैं इस वन में असहाय पड़ी हूँ। मेरी दया कौन करेगा ? हाय माता ! तूने अत्यन्त दु:ख सहन करके मुझे गर्भ में रखा, अब क्यों मेरी दया नहीं करती ? हे मेरे परिवार के मनुष्यों ! तुम मुझे एक क्षणमात्र के लिये भी अकेला नहीं छोड़ते थे, अब मुझे क्यों तज दिया है ? अरे ! मैं जन्म लेते ही क्यों नहीं मर गई ? अब किस कारण ऐसा दु:ख पड़ा कि चाहते हुए भी मृत्यु नहीं मिलती। मैं क्या करुँ, कहाँ जाऊँ ? मैं पापिन किस प्रकार छूटूँ। यह स्वप्न है या साक्षात् है ? इस प्रकार बहुत समय तक विचार करके विह्वल हुई ऐसी विलाप करने लगी कि उसके सन्मुख आते हुए दुष्ट पशु भी उसे सुनकर कोमल हो गये। वह भूख-प्यास से दु:खित होकर शोक के सागर में मग्न होती हुई फल पत्तों से पेट भरने लगी।

❖ ❖ ❖

इस प्रकार उस कन्या ने कर्म के योग से कितने ही शीतकाल व्यतीत किये। कैसा है शीतकाल ? कमल के वन की शोभा को नष्ट करनेवाला है। उसने अनेक ग्रीष्म के आताप सहन किये। वर्षाकाल भी बहुत व्यतीत किये हैं। उस समय जलधारा के अंधकार से सूर्य की ज्योति दब गई, इससे कन्या का शरीर वर्षा से धोये हुए चित्राम की पुतली जैसा हो गया है। कांतिरहित दुर्बल बिखरे हुए केश, मलयुक्त शरीर, लवण्यरहित ऐसा हो गया है कि जैसे सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा की कला का प्रकाश क्षीण हो जाता है। कैल का वन फलों से नम्रीभूत है, वहाँ बैठकर पिता का स्मरण करके रुदन करते हुए विचार करने लगी - अरे ! मेरा जन्म चक्रवर्ती के यहाँ तो हुआ परन्तु पूर्व जन्म के पापोदय से ऐसी दु:खी

www.vitragvani.com

अवस्था में आ पड़ी हूँ। इस प्रकार दु:खों को याद कर-करके आँसुओं की धारा मानों बरसात बरसती हो, ऐसे रुदन करती थी।

इस प्रकार वन में रहकर वृक्षों से जो फल सूखकर गिरते, उनका भोजन करती और बेला-तेला उपवास करते रहने से शरीर सूख गया है तथा जल और फल पी-खाकर पारणा करती है। वे जल और फल भी एक ही समय खाती है। यह चक्रवर्ती की पुत्री पुष्पों की शैया पर सोनेवाली तथा जिसको अपने केश भी चुभते थे, अभी विषम भूमि पर दु:खी होकर शयन करती है। पिता के अनेक गुणीजन उसे प्रेम करते और उसके वचन सुनकर प्रसन्न होते थे। अभी वह भी भयंकर वन में शियाल आदि भयानक वनचरों के भयानक आवाजें सुनते हुए रात्रि व्यतीत करती हैं।

इस प्रकार उसने वन में रहकर तीन हजार वर्ष तक तप किया। सूखे फल, सूखे पत्र तथा शुद्ध जल का आहार किया। महा वैराग्य को प्रगट करके खान-पान का त्याग करके धीरता धारण करके सल्लेखना मरण का आरम्भ किया। उसने नियम किया कि एक सौ हाथ भूमि से आगे नहीं जाऊँगी - यह नियम धारण करके वहाँ रही।

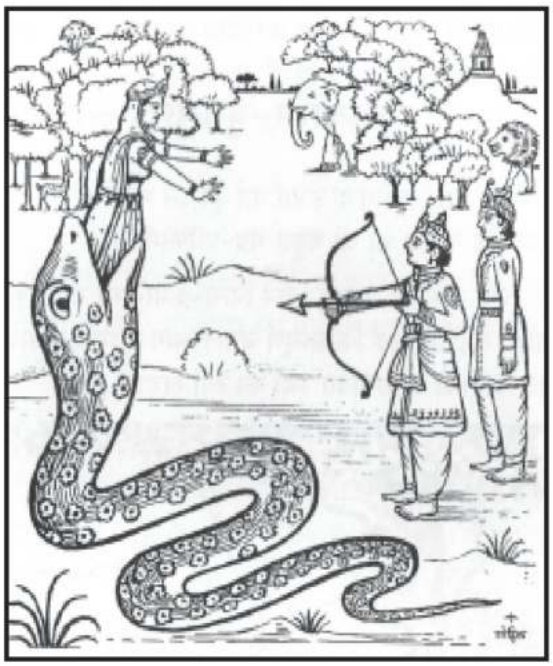

अन्त में जब उसकी आयु के छह दिन शेष थे, तब एक अर्हतदास विद्याधर सुमेर की वन्दना करते हुए वहाँ से निकला। उसने चक्रवर्ती की पुत्री को देखकर उसके पिता के यहाँ ले जाने का विचार किया परन्तु सल्लेखना होने से कन्या ने इन्कार कर दिया।

तब अर्हतदास शीघ्र ही चक्रवर्ती के पास जाकर, चक्रवर्ती को साथ लेकर कन्या के पास आया। उसी समय एक अजगर इस कन्या को निगल रहा था। कन्या ने पिता के द्वारा अजगर को अभयदान दिलाया और

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

स्वयं समाधिमरण करके शरीर त्याग करके तीसरे स्वर्ग में गई। पुत्री के पुरुषार्थपूर्वक देह छोड़ने के साहस को देखते चक्रवर्ती पिता बाईस हजार पुत्रों के साथ अत्यन्त वैराग्य प्राप्त करके मुनि हुआ। कन्या ने अजगर को क्षमा करके उसे पीड़ा नहीं होने दी।

उस पुनर्वसु विद्याधर को जब खोजते-खोजते भी अनंगशरा नहीं मिली, तो वह अत्यन्त दु:खी हुआ और संसार से विरक्त होकर दूनसेन मुनि के समीप जाकर मुनि होकर महातप करके अन्तिम समय में समाधिमरण करके स्वर्ग में देव हुआ। फिर स्वर्ग से आकर महासुन्दर लक्ष्मण हुआ तथा वह चक्रवर्ती की पुत्री अनंगशरा स्वर्गलोक से आकर द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या हुई। पुनर्वसु ने ऐसा निदान किया था; इस कारण लक्ष्मण उसे वरता है तथा जिनेन्द्र शासन की श्रद्धा और भक्ति से दोनों जीव क्रमश: मोक्ष जायेंगे।●●

छोटे से सिद्ध भगवान....

अहा! आठ वर्ष का छोटा-सा राजकुमार, जब दीक्षा लेकर मुनि हो, तब वैराग्य का वह अद्भुत दृश्य! आनन्द में लीनता!! **मानों छोटे-से सिद्ध भगवान ऊपर से उतरें हों! वाह रे वाह! धन्य यह मुनिदशा!**

जब वे छोटे से मुनिराज दो-तीन दिन में आहार के लिए निकलें, तब आनन्द में झूलते-झूलते धीरे-धीरे चले आ रहे हों और योग्य विधि का मेल मिलने पर आहार ग्रहण के लिए छोटे-छोटे हाथों को अञ्जलि जोड़कर खड़े हों। **अहा! वह दृश्य कैसा होगा!!**

बाद में वे आठ वर्ष के मुनिराज, आत्मा के ध्यान में लीन होकर केवलज्ञान प्रगट करके सिद्ध हो जाएँ – ऐसी आत्मा की शक्ति है। **वर्तमान में भी विदेहक्षेत्र में श्री सीमन्धरादि भगवान के पास आठ-आठ वर्ष के राजकुमारों की दीक्षा के ऐसे प्रसङ्ग बनते रहते हैं।** *- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, गुरुदेवश्री के वचनामृत, १८९, पृष्ठ ११६*

36 शूरवीर सुकौशल मुनिराज की कथा

राजा कीर्तिधर कालक्रम से चले आये राज्य को प्राप्त करके, अपने समस्त शत्रुओं को जीतकर देव के समान उत्तम भोग भोगने लगा। एक दिन प्रजा का बन्धु, शत्रुओं को भय उत्पन्न करनेवाला राजा कीर्तिधर सिंहासन पर इन्द्र के समान विराजमान था। उस समय सूर्यग्रहण देखकर वह अपने चित्त में विचारने लगा – देखो, यह विषयाभिलाषी जगत का जीव रंग के समान मोहपाश में बँधा हुआ अवश्य काल के मुख में पड़ेगा। ऐसा विचार करके वह महाभाग्य संसार की अवस्था को क्षणभंगुर जानकर मंत्री, पुरोहित, सेनापति और सामन्त से कहने लगा – हे सामन्तों! इस समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के राज्य की तुम अच्छी तरह रक्षा करना। मैं तो अब मुनिव्रत धारण करता हूँ।

राजा की बात सुनकर सब विनती करने लगे – हे राजन्! आपके बिना हमसे यह पृथ्वी सुरक्षित नहीं रहेगी। आप शत्रु को जीतनेवाले हो, लोक के रक्षक हो, आपकी उम्र भी युवा है, आप ही इस राज्य के अद्वितीय पति हो, यह पृथ्वी आपसे ही शोभित है; अत: कुछ समय तक इस इन्द्रतुल्य राज्य का भोग करके जिनदीक्षा का विचार करना।

तब राजा ने कहा – यह भवरूप अटवी अति दीर्घ है, इसको देखकर मुझे अत्यन्त भय उत्पन्न होता है। कैसी है यह भवरूप अटवी? अनेक दु:खरूपी फलों वाले कर्मरूप वृक्षों से भरी है और जन्म, जरा,

www.vitragvani.com

मरण, रोग, शोक, रति, अरति, इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोगरूप अग्नि से प्रज्ज्वलित हैं।

राजा के परिणाम विरक्त जानकर मन्त्रियों ने बुझे हुए अङ्गारे लाकर रखे और उनके मध्य वैडूर्यमणि ज्योति का पुञ्ज, जो अति मूल्यवान था, उसे लाकर रखा। उस मणि के प्रताप से कोयले प्रकाशमयी हो गये। फिर वह मणि हटाते ही कोयले प्रकाशरूप नहीं रहे। तब मन्त्रियों ने राजा से विनती की कि हे देव! जैसे यह काष्ट के कोयले रत्न के बिना शोभित नहीं होते, वैसे ही आपके बिना हम सब शोभित नहीं होते। हे नाथ! आपके बिना प्रजाजन अनाथ होकर मर जायेंगे, लुट जायेंगे और प्रजा का नाश होने पर धर्म का भी अभाव होगा। अत: जैसे आपके पिता आपको राज्य देकर मुनि हुए थे, वैसे ही आप भी अपने पुत्र को राज्य देकर जिनदीक्षा ले लीजिये।

इस प्रकार प्रधान मनुष्यों की विनती सुनकर राजा ने ऐसा नियम किया कि मैं जिस दिन पुत्र-जन्म के समाचार सुनूँगा, उसी दिन मुनिव्रत ले लूँगा। - ऐसी प्रतिज्ञा करके वह इन्द्र के समान भोग भोगने लगा। उसने प्रजा को शान्ति प्रदान करते हुए राज्य किया। उसके राज्य में प्रजा को किसी प्रकार का भय उत्पन्न नहीं होता था। राजा का चित्त समाधानरूप था।

❖ ❖ ❖

समय पाकर रानी सहमति गर्भवती हुई और नव माह पश्चात् उसने सम्पूर्ण गुणों का पात्र और पृथ्वी के प्रतिपालन में समर्थ पुत्र को जन्म दिया। पुत्र-जन्म का समाचार सुनते ही पतिदेव दीक्षा ग्रहण कर लेंगे - इस भय से पुत्र के जन्म की बात प्रगट नहीं की और कितने ही दिनों तक इस बात को गुप्त रखा.... परन्तु जैसे सूर्य के उदय को कोई नहीं छिपा सकता, वैसे ही राजपुत्र का जन्म छिपा किस प्रकार रह सकता था? किसी दरिद्री मनुष्य ने धन के लोभ में राजा के सामने यह बात प्रगट कर दी- इस कारण राजा ने मुकुटादि सर्व आभूषण उतारकर उसे दे दिये और घोषशाखा नाम का महारमणीय, बहुत धन की उत्पत्ति हो - ऐसा गाँव भी उसे प्रदान कर दिया। पन्द्रह दिन का पुत्र, माता की गोद में सो रहा था, उसको तिलक करके राज्यपद दे दिया। अयोध्या का दूसरा नाम कौशल भी है; इस कारण उस राजकुमार का नाम सुकौशल प्रसिद्ध हुआ।

www.vitragvani.com

राजा कीर्तिधर ने सुकौशल को राज्य देकर गृहरूपी बन्दीगृह में से निकलकर तपोवन की ओर गमन किया। वहाँ पहुँचकर श्रीगुरु के निकट सर्व दु:ख निवारक मुनिव्रत अंगीकार किया और तप से उत्पन्न हुए तेज से, जैसे मेघपटल रहित सूर्य शोभता है, वैसे शोभयमान होने लगे।

पृथ्वी के समान जिनकी क्षमा थी, जिनके मान-मत्सर दूर हुए हैं, जिनका चित्त उदार था, तप से जिनके सर्व अंग सूख गये हैं, आँखें ही जिनका आभूषण थी। जिनके हाथ नीचे लटकते थे, जो चार हाथ प्रमाण जमीन देखकर नीची नजर से चलते थे। जैसे मत्त हाथी गजेन्द्र मन्द-मन्द गमन करता है, उसी प्रकार जो जीव दया के हेतु धीरे-धीरे गमन करते हैं। सर्व विकार रहित, महासावधान, ज्ञानी, महाविनयवान, लोभरहित, पंचाचार, के पालक, जिनका चित्त जीवदया से निर्मल है, स्नेहरूप कीचड़ से रहित, शरीरादि के स्नानादि संस्कारों से रहित और मुनिपद की शोभा से मण्डित हैं - ऐसे वे कीर्तिधर मुनि कितने ही वर्षों के बाद बहुत दिनों के उपवास के पश्चात् आहार के निमित्त से अपने नगर में पधारे।

दूर से ही मुनिराज को आता हुआ देखकर उनकी पापी स्त्री मन में विचार करने लगी कि इनको देखकर मेरा पुत्र भी वैराग्य को प्राप्त हुआ तो ? इस कारण अत्यन्त क्रोध से जिसका मुख लाल हो रहा है, ऐसी उस रानी ने चित्त में दुष्टता लाकर द्वारपाल से कहा कि यह यति नग्न, महामलीन और घर को लूटनेवाला है, इसे नगर में से निकाल दो, यह फिर से नगर में नहीं आना चाहिए। मेरा पुत्र सुकुमार है, भोला है, उसका चित्त कोमल है, यह उसकी नजर में नहीं पड़ना चाहिए। हे द्वारपाल! यदि इस विषय में भूल हुई तो मैं तुझे दण्ड दूँगी। जब से यह निर्दय, बालक पुत्र को तजकर मुनि हुआ है, तभी से मुझे इस लिंग के प्रति आदर नहीं रहा है। यह राज्य लक्ष्मी निन्द्य है - ऐसा कहकर यह लोगों को वैराग्य प्राप्त कराता है, भोगों को छुड़ाकर योग सिखाता है।

अरे...रे...! धिक्कार है इस मोह को! पुत्र-मोहवश रानी पूर्व में अपने ही पति एवं अब निर्मोह जिनमुद्रा के धारी वीतरागी सन्त का अनादर करके अपने लिए दुर्गति के द्वार खोल लेती है!!

www.vitragvani.com

रानी के वचन सुनकर उस क्रूर द्वारपाल ने, जिसके हाथ में सूत से मँडा डण्डा है, मुनि को दुर्वचन कहकर नगर में से बाहर निकाल दिया और जो भी अन्य साधु आहार के लिये नगर में पधारे थे, उन सबको भी निकाल दिया।

'मेरा पुत्र कभी धर्म श्रवण न कर ले' – इस अभिप्राय से रानी द्वारा कीर्तिधर मुनि का अविनय हुआ देखकर राजा सुकौशल की धाय अत्यन्त शोकपूर्वक रुदन करने लगी। जब राजा सुकौशल ने धाय को रोते देखा तो उन्होंने अत्यन्त व्यग्रतापूर्वक धाय माता से पूछा – हे माता! तेरा अपमान करे ऐसा कौन है? मेरी माता ने तो मुझे मात्र गर्भ में ही धारण किया है, परन्तु मेरा शरीर तो आपके दूध से पुष्ट हुआ है – वृद्धिगत हुआ है। अत: आप मेरे लिये माता से भी अधिक है। जो मौत के मुख में प्रवेश करना चाहता हो, वही आपको दु:ख दे। यदि मेरी माता ने भी आपका अपमान किया हो तो मैं उसका भी अविनय करूँगा, अन्य की तो बात ही क्या?

तब बसन्तमाला धाय कहने लगी कि हे राजन! तुम्हारे पिता तुम्हें बाल अवस्था में ही राज्य सौंपकर, संसाररूप कष्ट के पिञ्जर से भयभीत होकर तपोवन में चले गये थे। वे आज इस नगर में आहार के लिये पधारे थे, परन्तु तुम्हारी मता ने द्वारपालों को आज्ञा देकर उनको नगर से निकाल दिया है। हे पुत्र! वे हम सभी के स्वामी हैं, उनका अपमान कौन करे? 'साधुओं को देखकर मेरा पुत्र वैराग्य प्राप्त करेगा' – ऐसा जानकर रानी ने नगर में मुनियों का प्रवेश निषिद्ध किया है, परन्तु तुम्हारे गोत्र-कुल में यह धर्म परम्परा से चला आया कि पुत्र को राज्य देकर पिता विरक्त होता है; साथ ही आपके घर में से आहार लिये बिना साधु कभी भी वापस नहीं गये हैं।

यह वृतान्त सुनकर राजा सुकौशल, मुनिराज के दर्शन करने के लिये महल से नीचे उतरकर चँवर, छत्र, वाहन इत्यादिक राज्य चिह्न छोड़कर कमल से भी अति कोमल नंगे पैरों दौड़ पड़ा। दौड़ते-दौड़ते वह लोगों से पूछता जाता है कि तुमने मुनि को देखा है? तुमने मुनि को देखा है? इस प्रकार मुनिदर्शन की परम अभिलाषासहित अपने पिता कीर्तिधर मुनि के समीप आ पहुँचा। उसके पीछे-पीछे चँवर, छत्र आदि वाले सब दौड़े-दौड़े आये।

महामुनि उद्यान में शिला पर विराजमान थे, वहाँ राजा सुकौशल, जिसके नेत्र

www.vitragvani.com

आसुओं से भरे थे, जिसकी भावना शुभ थी, हाथ जोड़कर नमस्कार करके अत्यन्त विनयपूर्वक मुनिराज के सामने खड़ा हो गया। द्वारपालों ने उन्हें दरवाजे से निकाल दिया था, इस कारण अत्यन्त लज्जायुक्त होकर वह महामुनि से विनती करने लगा – हे नाथ! जैसे कोई पुरुष अग्नि से धधकते घर में मोहनिद्रा से युक्त होकर सो रहा हो, उसे कोई मेघ की गड़गड़ाहट के समान ऊँचे स्वर से जगाये, उसी प्रकर संसाररूप गृह में जन्म-मृत्युरूप अग्नि से प्रज्ज्वलित घर में मैं मोहनिंद्रा युक्त होकर सो रहा था, उससे आपने मुझे जगाया। अब कृपा करके मुझे यह दिगम्बरी दीक्षा प्रदान करके जन्म-मरण के कष्टरूप इस सागर संसार में से मुझे पार करो।

जब राजा सुकौशल ने मुनि से ऐसे वचन कहे तो उसी समय सभी सामन्त भी वहाँ आ गये और रानी विचित्रमाला जो कि गर्भवती थी वह भी अतिकष्ट से विषादयुक्त समस्त राजपरिवार के साथ आई। सुकौशल को दीक्षा के लिये तैयार हुआ देखकर अन्त:पुर और प्रजा के समस्त मनुष्य महाशोक को प्राप्त हुए। राजा सुकौशल ने कहा कि इस रानी विचित्रमाला के गर्भ में पुत्र है, उसको मैं राज्य देता हूँ – ऐसा कहकर निस्पृह हुए, और आशारूप फाँसी को छेदकर, स्नेहरूप पिञ्जर को तोड़कर, स्त्रीरूप बन्धन से छूटकर जीर्ण तृण के समान राज्य का त्याग कर दिया। समस्त वस्त्राभूषण तजकर, बाह्याभ्यन्तर, परिग्रह का त्याग करके केशलोंच किया और पद्मासन धारण करके बैठ गये।

❖ ❖ ❖

इस प्रकार पिता कीर्तिधर मुनिन्द्र के समीप सुकौशल ने जिनदीक्षा अंगीकार की। वे सुकौशल मुनिराज पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, तीन गुप्ति अंगीकार करके गुरु के साथ विहार करने लगे। कमल के समान आरक्त चरणों से पृथ्वी को शोभायमान करते हुए वे धरती तल पर विचरण करने लगे।

www.vitragvani.com

सुकौशल की माता सहदेवी पुत्र वियोगरूप आर्त्तध्यान से मरकर तिर्यञ्च योनि में बाघिन हुई। ये पिता-पुत्र दोनों मुनि महा वैराग्यवान थे। ये दोनों एक स्थान में नहीं रहते थे, दिन के अन्तिम पहर में निर्जन प्रासुक स्थान देखकर आत्म-आराधना में लगे रहते थे। चातुर्मास में साधुओं को विहार नहीं करना होता है - इस कारण चातुर्मास में एक स्थान में रहकर अपनी आत्माराधना करते थे।

इस प्रकार कार्तिक पूर्णिमा व्यतीत होने पर तपोधन मुनिराज जैन तीर्थों के दर्शनार्थ विहार करने लगे। मुनिराज कीर्तिधर और सुकौशल मुनि, जिनका चातुर्मास पूर्ण हुआ है, वे शास्त्रोक्त ईर्यासमितिसहित पारणा के निमित्त से नगर की और विहार करने लगे। अब वह (सुकौशल की माता सहदेवी) जो मरकर बाघिन हुई थी, वह पापिन महाक्रोध से भरी हुई, जिसके केश खून से लाल हैं, विकराल जिसका मुख है, जिसकी दाड़ तीक्षण है, जिसकी आँखें पीली हैं, जिसने शिर पर पूँछ डाल रखी है, जिसने अनेक जीवों का विदारण किया है। वह, भयंकर

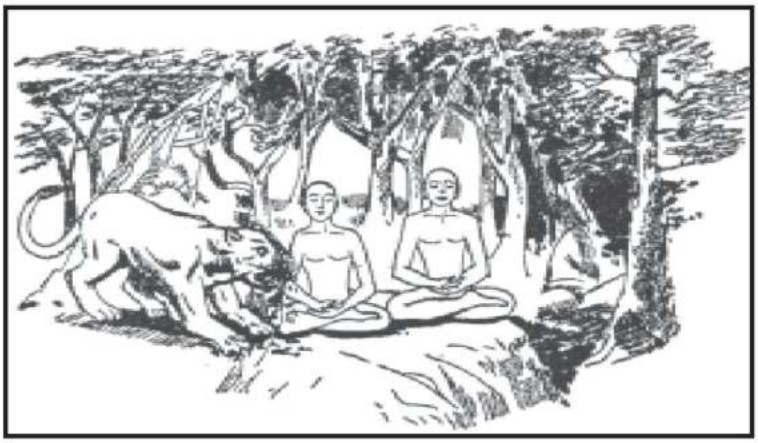

गर्जना करती हुई सामने आई, मानो कि हत्यारी ही शरीर को धारण करके आई हो। जिसकी लाल जीभ का अग्र भाग लपलपा रहा है, जो मध्याह्न के सूर्य समान आतापकारी है, वह पापिन सुकौशल स्वामी को देखकर महावेग से उछली। उसे आती देखकर सुन्दर चारित्रवाले ये दोनों मुनि सर्व आलम्बनरहित कायोत्सर्ग धारण करके विराजमान हो गये। वह पापी बाघिन सुकौशल स्वामी के शरीर का नखों से विदारण करने लगी।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन! यह संसार का चित्र देख! जहाँ माता ही पुत्र के शरीर का भक्षण करने के लिये तैयार होती है। इससे अधिक अन्य कष्ट क्या होगा? जन्मान्तर के स्नेही बान्धव भी कर्म के उदय से वैरी होकर परिणमते हैं।

www.vitragvani.com

उस समय सुमेरु से भी अधिक स्थिर सुकौशल मुनि को, शुक्लध्यान के प्रभाव से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। वे अन्त:कृत केवली हुए। इन्द्रादिक देवों ने आकर उनकी देह की कल्पवृक्षादिक के पुष्पों से पूजा की और चतुरनिकाय के सभी देव इस अवसर पर आये और उन्होंने निर्वाणमहोत्सव मनाया।

❖ ❖ ❖

कीर्तिधर मुनिराज ने बाघिन को धर्मवचनों से सम्बोधित करते हुए कहा – 'हे पापिनी! तू सुकौशल की माता सहदेवी थी और तुझे पुत्र के प्रति अत्यन्त स्नेह था, उसी के शरीर का तूने नखों से विदारण किया है।'

मुनिराज के वचन सुनकर उस बाघिन को जातिस्मरण हुआ और उसने श्रावक के व्रत धारण किये। संन्यास धारण करके शरीर का त्याग करके वह स्वर्ग लोक में गई। तत्पश्चात् कीर्तिधर मुनि को केवलज्ञान प्रगट हुआ। अत: सुर-असुर उनके केवलज्ञान की पूजा करके अपने-अपने स्थान को गये।

अहो! देखो औदयिकभावों की विचित्रता!! जिस पुत्र मोह के कारण रानी नगर में मुनिराजों का प्रवेश तक निषिद्ध कर देती है, वही बाघिन बनकर उसी पुत्र का भक्षण करती है। कुछ समय पूर्व मुनि के भक्षण का तीव्र पाप परिणाम तो कुछ समय बाद श्रावकधर्म का ग्रहण!!

परिणामों की इस अध्रुवता को पहचान कर, नित्य ध्रुवस्वरूप चैतन्यसत्ता के अवलम्बन से परिणामों के व्यामोह का परित्याग करना ही इस कथा का सार है।●●

– पद्म पुराण से

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

37 धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि!

एक बार आचार्य सूर्यमित्र धर्मोपदेश देते हुए अनेक स्थानों पर विहार करके कौशाम्बी नगरी में आहार के लिये पधारे। वहाँ उनके गृहस्थाश्रम का भानजा अग्निभूति, मामा सूर्यमित्र की निर्ग्रन्थ अवस्था को देखने पर दुर्लभ सम्पत्ति की प्राप्ति के समान आनन्दित होकर, नवधाभक्तिपूर्वक आहारदान देकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

जब मुनिराज वीतरागभाव से आहार लेकर जाने लगे, तब अग्निभूति ब्राह्मण ने प्रार्थना की – 'हे भगवन्! मेरा भाई वायुभूति क्रोध, मायाचार आदि पाप करता है और आपकी निन्दा करता है, आप उस दुष्ट को जाकर समझाइये!'

आचार्य महाराज ने कहा – 'भाई! उसके पास जाना ठीक नहीं है, क्योंकि वह स्वभाव से ही कठोर हृदयवाला है।'

फिर भी अग्निभूति के विशेष आग्रह करने पर वे वायुभूति के पास गये। पापी वायुभूति ने मुनिराज को देखते ही क्रोधपूर्वक उनकी बहुत निन्दा की, परन्तु मुनिराज तो समताधारी थे; इस कारण समताभावपूर्वक वे वन में चले गये।

छोटे भाई वायुभूति ने मुनिराज की बहुत कठोर वचनों से निन्दा की थी, इससे बड़े भाई अग्निभूति को बहुत दु:ख हुआ। उसे लगा – 'मेरे कारण ही मुनिराज की निन्दा हुई है, इसलिए मैं भी इस पाप का भागीदार हूँ। अब इस पाप की शुद्धि के लिए कारागृह के समान घर का त्याग करके मुनिराज के समीप जाकर मैं भी जिनदीक्षा ग्रहण करूँगा।'

इस प्रकार जिनदीक्षा अङ्गीकार करने का दृढ़ निश्चय करके उसने जङ्गल में पहुँचकर आचार्य सूर्यमित्र से जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

अग्निभूति के जिनदीक्षा के समाचार जानकर उसकी पत्नी सोमदत्ता को बहुत

www.vitragvani.com

दु:ख हुआ। उसने अपने देवर वायुभूति के पास जाकर कहा – 'हे भाई! तुमने दुष्टता से मुनि की निन्दा की है, इससे मेरे पति को वैराग्य उत्पन्न हुआ है; अत: हमें वन में जाकर उन्हें समझाकर वापस घर लाना चाहिए।'

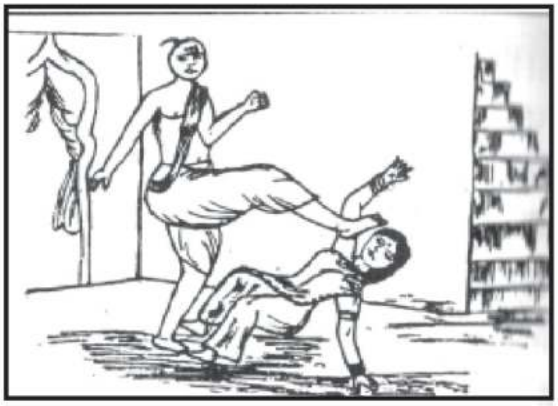

सोमदत्ता की यह बात सुनकर वायुभूति को बहुत क्रोध आया। उसने क्रोध में अन्ध होकर सोमदत्ता के पेट में लात मार दी। इस अपमान से सोमदत्ता अत्यन्त क्षुब्ध हुई और उसने निदानबन्ध किया – 'अभी तो मैं अबला हूँ; इसलिए कुछ भी प्रतिकार करने में समर्थ नहीं हूँ; परन्तु आगामी भव में मैं तुम्हारे पैर का भक्षण करके इस अपमान का बदला लूँगी।'

इधर मुनि की निन्दा के फलस्वरूप वायुभूति को सात दिनों में ही भङ्ककर कोढ़ हो गया। उसकी असह्य पीड़ा से मरकर वह उसी नगर में गधी पर्याय में उत्पन्न हुआ।

देखो, देव-शास्त्र-गुरु की, साधर्मी की निन्दा करने से जीव की कैसी दुर्गति होती है। इसलिए हे भाई! भले ही प्राण छूटने का प्रसङ्ग बने तो भी कभी धर्मात्माओं की निन्दा नहीं करनी चाहिए।

वह गधी भूख, प्यास आदि बहुत दु:ख भोगकर, वहाँ से मरकर सूकरी हुई। वहाँ भी बहुत दु:ख सहन किये और मरकर क्रूर मुखवाली कुत्ती हुई और वहाँ भी बहुत ही दु:ख सहन करके चाण्डाल के यहाँ जन्म लेकर अन्धी और दुर्गन्धयुक्त चण्डालनी हुई।

❖ ❖ ❖

एक बार सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनिराज विहार करते-करते चम्पानगरी में आये। अग्निभूति मुनिराज आहार के लिए गाँव में आ रहे थे, तब एक वृक्ष के नीचे दु:ख से पीड़ित इस चण्डालनी को खड़ा देखा। उसे देखते ही अग्निभूति महाराज को कुछ स्नेह और दु:ख से आँख में आँसू आ गये। इस कारण मुनिराज आहार के विकल्प का परित्याग करके वापस वन में चले गये।

www.vitragvani.com

उन्होंने गुरु महाराज को नमस्कार करके पूछा – 'हे प्रभो! रास्ते में चण्डालनी को देखने से मुझे शोक और आँसू क्यों आये?'

सूर्यमित्र महाराज ने कहा – 'वह चण्डालनी तुम्हारे छोटे भाई वायुभूति का ही जीव है। मुनि की निन्दा करने से उसकी यह दुर्गति हुई है। पूर्व जन्म के स्नेह-बन्धन से तुझे शोक और आँसू आये हैं। हे भद्र! प्राणियों के जन्म-जन्मान्तर सम्बन्ध से स्नेह और वैरभाव प्रगट हुआ ही करता है।

अब चण्डालनी की आसन्न भव्यता निकट है। आज ही उसकी मृत्यु होनेवाली है। इस कारण तुम वापस जाकर युक्तिपूर्ण वचनों से उसे समझाकर, उसके कल्याण के लिए व्रतपूर्वक संन्यास धारण कराओ।'

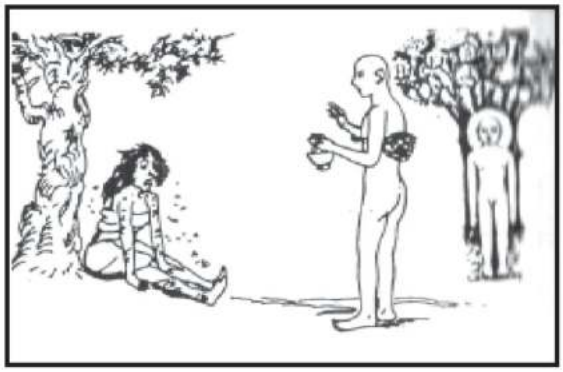

अग्निभूति मुनिराज ने चण्डालनी के पास जाकर कहा – 'बेटी! तू देव-गुरु-धर्म की निन्दा करने के फलस्वरूप ऐसे तीव्र दु:ख भोगती रही है। अब धर्म की शरण लेकर, पाँचों पापों के परित्यागपूर्वक आहार का त्याग कर दे। आज ही तेरी मृत्यु होनेवाली है, इसलिए इस कार्य में विलम्ब मत कर!!'

मुनिराज के मधुर सम्बोधन से प्रमुदित उस चण्डालनी ने उसी समय व्रत धारण किये और आहार का परित्याग करके समाधिपूर्वक प्राण-त्याग करके नागशर्मा ब्राह्मण के यहाँ नागश्री नाम की पुत्री हुई।

नागश्री के भव में उसने पाँच अणुव्रत लिए और मुनियों के सत्समागम से आर्यिका होकर उग्र तपश्चर्या की और अन्त समय में समाधिमरण करके अच्युत स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ।

वायुभूति के जीव का सुकुमाल के रूप में अवतरण

उस समय उज्जयिनी नगरी में वृषभाङ्क नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगरी में सुरेन्द्रदत्त नाम का महान धनाढ्य सेठ था। उसकी पत्नी का नाम यशोभद्रा था। अच्युत

www.vitragvani.com

स्वर्ग में देव बना वायुभूति का जीव वहाँ के सुख भोगकर, वहाँ से च्युत होकर सेठ सुरेन्द्रदत्त का पुत्र हुआ; उसका नाम **सुकुमाल** रखा गया, लेकिन पुत्र का मुख देखकर सेठ सुरेन्द्रदत्त दीक्षित हो गये। सुकुमाल बहुत ही रूपवान और पुण्यवान था।

'यह मुनि के दर्शन होते ही अथवा मुनि के वचन सुनते ही तुरन्त दीक्षा ले लेगा' – ऐसा अवधिज्ञानी मुनिराज ने कहा तो उसकी माता यशोभद्रा ने सुकुमाल को बाहर नहीं जाने देने के लिए महल के बगल में ही बाग-बगीचा, जिन-मन्दिर आदि सब निर्मित करा दिया। आगे जाकर सुकुमाल के महल के नजदीक ही उसकी बत्तीस पत्नियों के लिए बत्तीस महल बनाये गये। अपने महल में अत्यन्त सुखपूर्वक रहते हुए सुकुमाल को काफी समय व्यतीत हो गया।

सुकुमाल के अतुल वैभव और सुकुमार स्वभाव की ख्याति सुनकर, एक दिन राजा वृषभाङ्क सुकुमाल से मिलने हेतु उनके महल में पहुँच गये। सेठानी यशोभद्रा ने राजा का अत्यन्त हर्षपूर्वक उचित सम्मान किया और अकारण उनके आने का उद्देश्य जानने हेतु जिज्ञासा व्यक्त की।

राजा वृषभाङ्क ने कहा – 'मैं आपके पुत्र सुकुमाल को देखने के उद्देश्य से यहाँ आया हूँ।'

उसी समय सुकुमाल भी वहाँ पहुँच गया। सुकुमाल का कामदेवतुल्य रूप एवं सुकुमारता से अत्यन्त प्रभावित महाराज वृषभाङ्क ने उसे अपने समीप ही बिठा लिया।

औपचारिक चर्चा-वार्ता के पश्चात् सेठानी यशोभद्रा के वात्सल्यपूर्ण अनुरोध पर राजा वृषभाङ्क ने सुकुमाल के साथ ही भोजन ग्रहण किया।

भोजनोपरान्त अपने महल की ओर प्रस्थान करने से पूर्व अत्यन्त खिन्न मन से राजन् ने कहा – 'हे देवी! आपके पुत्र से मिलकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है; परन्तु...'

'परन्तु क्या राजन्... ?' सेठानी ने आकुलित होते हुए पूछा।

'लगता है यह आपकी उपेक्षा का शिकार है; देखो न, इसे अपने आसन पर स्थिर होकर बैठना नहीं आता, इसकी आँखों में से निरन्तर पानी बहता रहता है और अच्छी तरह

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पकाये हुए चावल का एक-एक दाना चुगकर खाता है — ये तीन महा व्याधियाँ हैं फिर भी आपकी लापरवाही... - यह उचित नहीं है।'

मुस्कराते हुए सेठानी यशोभद्रा ने कहा - 'राजन्! इनमें से कोई भी व्याधि कुमार को नहीं हैं। बात यह है कि यह सदा दिव्य शय्या पर ही सोता है और मणिरत्न के प्रकाश में ही रहता है। आज आपके शुभागमन के उपलक्ष्य में आप पर क्षेपित किये गये सरसों के दाने आसन पर बिखरे पड़े होने से इसे चुभ रहे हैं - यही कारण है, इसके बार-बार आसन बदलने का।'

'और आँखों में पानी...' विस्मित स्वर में राजा ने पूछा।

'दीपक से आपकी आरती उतारी गई थी न, उसी का धुँआ सहन न कर पाने से इसकी आँखों में से पानी आ रहा है।' - सेठानी ने उत्तर दिया

'पर चावल के दाने...'

'महाराज! यह कुमार सूर्यास्त के समय कमल में रखे हुए सुगन्धित चावलों का सेवन करता है; पर आज आपके निमित्त से उनमें कुछ अन्य चावल मिलाकर भोजन तैयार किया था - इसी कारण यह एक-एक चावल चुग-चुगकर खा रहा था।'

सेठानी के उत्तर से विस्मित राजा वृषभाङ्क ने सुकुमाल का **अवन्ति सुकुमार** नाम रखकर अपने महल की ओर प्रस्थान किया।

इस प्रकार सुकुमाल का अमूल्य जीवन भोगों की मग्नता में ही व्यतीत हो रहा था। माँ की ममता और भोगों की प्रचुरता में निमग्न होकर वह अपने चरम लक्ष्य से पतित हो रहा था। आह! तीव्र पुण्योदय की कलङ्किनी विषय-मदिरा में मदमस्त इस जीव के जीवन का अन्त अत्यन्त निकट आ गया।.... परन्तु तभी...

पूर्व-जन्म से चले आ रहे सम्बन्ध से सुकुमार के मामा यशोभद्र मुनिराज ने सुकुमाल के हित के लिए

www.vitragvani.com

उनके उद्यान में स्थित जिनमन्दिर में चातुर्मास स्थापित किया और चातुर्मास पूर्ण होने पर कार्तिक सुदी पूर्णिमा की रात्रि के अन्तिम क्षणों में जब मुनिराज ने देखा कि सुकुमाल की नींद खुली हुई है तो वे उसे सुनाने के लिए स्वर्ग के भव का, अनेक ऋद्धियों का विविध प्रकार से वर्णन करने लगे, जिसे सुनकर उसी समय सुकुमाल को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। अपने पूर्वभव का ज्ञान होने से उन्हें महावैराग्यभाव जागृत हुआ। वे मुनिदीक्षा लेने के प्रबल भाव होने से अपने महल से उतरने के लिए कपड़े की डोरी बनाकर खिड़की से नीचे उतरकर मुनिराज के पास पहुँच गये।

मुनिराज ने कहा – 'हे सुकुमाल! अब तेरी आयु मात्र तीन दिन की ही शेष है, अत: संयम ग्रहण कर!'

इस प्रकार गुरु के उपदेश से सुकुमाल संयमसहित दीक्षा लेकर जङ्गल में चले गये। सुकुमाल मुनिराज ने उत्कृष्ट समाधिमरण अङ्गीकार कर लिया और आत्मध्यान करने लगे।

उसी समय पूर्वभव की भाभी जो सियालिनी हुई थी, वह अपने बच्चों के साथ आकर सुकुमाल के पैरों को खाने लगी। तीन दिन तक खाते-खाते अन्त में पेट फाड़कर आँतों को चबाने लगी। उपसर्ग की इस भीषण परिस्थिति में धीर-वीर मुनिराज सुकुमाल बारह भावनाओं का चिन्तवन करके, आत्म-एकाग्रता में निश्चल रहकर, स्वसन्मुख उग्रता से उपसर्ग को जीतकर समाधिपूर्वक देह छोड़कर सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग में गये और वहाँ तैंतीस सागर की आयु पूर्ण करके मनुष्य होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

देखो, सुकुमाल ने वायुभूति के भव में क्रोधपूर्वक कठोर वचन कहकर मुनि की निन्दा की, उसके फल में दुर्गतियों के महा दु:ख भोगे और दुर्गन्धयुक्त चण्डालनी के भव में एक अनशनपूर्वक देहत्याग करके नागश्री होकर, आर्यिका व्रत ग्रहण करके अच्युत स्वर्ग में देव होकर सुकुमाल के भव में मात्र तीन दिन के संयम और घोर उपसर्ग सहकर सर्वार्थसिद्धि में गये। अहा! मुनिराजों की शूरवीरता और समताभाव को धन्य है!! ●●

(सुकुमाल चारित्र से)

38 गुरुदत्त मुनि

हस्तिनापुर का राजा विजयदत्त धर्मात्मा था। उसकी रानी का नाम विजया था। गुरुदत्त उनका पुत्र था। उसकी प्रवृत्ति बालवय से ही सरल और गम्भीर थी। उसकी सुन्दरता भी बहुत थी। अपने पिता विजयदत्त के मुनिदीक्षा लेने के पश्चात् राज्य का भार पुत्र गुरुदत्त पर आ गया था। उसके द्वारा जिम्मेदारीपूर्वक राज्य की सम्भाल करने से प्रजा प्रसन्न थी। प्रजा को दु:ख होने पर गुरुदत्त चिन्तापूर्वक मिटाता था।

समीप ही द्रोणीपर्वत था। वहाँ एक विकराल सिंह रहता था। उसके भय से सारा नगर त्रास पाता था और सदा ही भय बना रहता था कि न जाने कब किस समय सिंह हमला कर दे। इस कारण उससे बचने के लिये समस्त नगर के लोगों ने गुरुदत्त से प्रार्थना की कि महाराज! पर्वत पर रहनेवाले हिंसक सिंह से हम सदा भयभीत रहते हैं, अत: आप कोई ऐसा प्रयत्न करो कि हमारा भय दूर हो जाए।

ग्राम के लोगों को आश्वासन देकर राजा गुरुदत्त, वीर योद्धाओं को लेकर पर्वत पर गया और सिंह को चारों तरफ से घेर लिया परन्तु सिंह वहाँ से भागकर एक अन्धेरी गुफा में जाकर छिप गया। गुरुदत्त ने यह मौका देखकर गुफा के चारों तरफ लकड़ियों का ढेर करके उसमें आग लगा दी। सिंह इस गुफा में से निकल नहीं सका और वहीं जलकर मर गया। मृत्यु के समय सिंह को बहुत कष्ट हुआ। मृत्यु के पश्चात् सिंह के जीव ने चन्द्रपुरी नगर में ब्राह्मण के घर जन्म लिया, उसका नाम कपिल था।

जिनेन्द्रभक्त राजा गुरुदत्त संसार से विरक्त होकर जिनदीक्षा लेकर मुनि हुए। वे अपनी वैराग्य दशा प्रगट करते-करते अनेक देशों में विहार करते हुए एक बार चन्द्रपुरी में आये। एक दिन की बात है कि गुरुदत्त मुनि, कपिल के खेतों में कायोत्सर्ग करके खड़े

www.vitragvani.com

थे। उस समय कपिल खेत में आया, वह अपनी पत्नी से कहकर आया था कि मैं खेत पर जा रहा हूँ; अत: तुम भोजन लेकर खेत पर आ जाना, परन्तु कपिल ने खेत में एक मुनि को ध्यान करते देखकर खेत को जोतना उचित नहीं समझा; इसलिए वह दूसरे खेत पर चला गया। जाते समय मुनि से कहता गया कि थोड़ी देर बाद मेरी पत्नी भोजन लेकर आयेगी; आप उससे कहना कि कपिल दूसरे खेत में गया है।

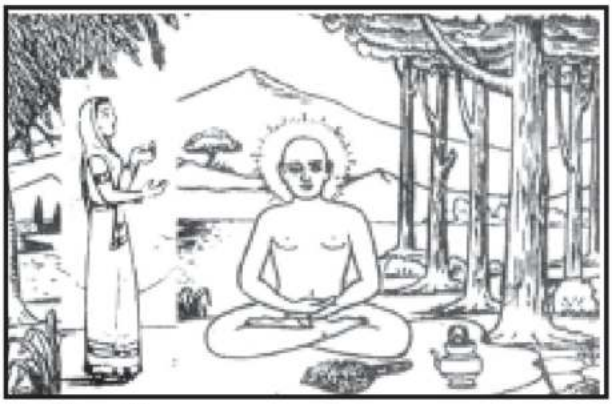

सत्य ही है कि मुनियों के मार्ग को नहीं समझनेवाले अनर्थ कर बैठते हैं। तत्पश्चात् कपिल की पत्नी भोजन लेकर खेत में आई तो वहाँ अपने पति को नहीं देखा; अत: मुनि से पूछा कि महाराज! मेरे पतिदेव यहाँ से कहाँ गये हैं परन्तु मुनि ने कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर नहीं मिलने से वह स्त्री वापस घर चली गयी।

समय अधिक हो जाने पर कपिल ब्राह्मण भूख से बहुत व्याकुल हो रहा था, इसलिए उसे पत्नी पर क्रोध आ गया। उसने घर आकर गुस्से में पत्नी को फटकार लगाई कि मैं तो भूख से मर रहा था और तेरा भोजन लाने का ठिकाना ही नहीं है। तब ब्राह्मणी घबराकर कहने लगी कि मेरा अपराध क्या है ? मैंने तो उस साधु से पूछा था परन्तु उनने कोई उत्तर नहीं दिया, इसलिए मैं घर चली आई।

यह बात सुनकर कपिल ब्राह्मण का क्रोध बहुत बढ़ गया, उसने दाँत पीसकर कहा कि क्या उसने तुझे जवाब नहीं दिया ? ठीक है, मैं अभी खेत पर जाकर उसकी खबर लेता हूँ।

कपिल पूर्व जन्म में सिंह था और उसकी मृत्यु गुरुदत्त द्वारा उसी अवस्था में हुई थी। अब, शत्रुता को जागृत करने के लिए यह घटना सहायक बनी।

कपिल क्रोधित होकर मुनि के पास आया और उसने गुरुदत्तमुनि को रुई में लपेटकर आग लगा दी। मुनि पर कठोर उपसर्ग हुआ परन्तु मुनि ने उसे धीरता से सहन

www.vitragvani.com

किया। अन्त में शुक्लध्यान के प्रभाव से समस्त घातिकर्मों का अभाव करके मुनिराज गुरुदत्त ने केवलज्ञान प्रगट किया। उसी समय देवों ने आकर उनकी पूजा करके केवलज्ञान का महान उत्सव मनाया।

यह सब घटना देखकर कपिल को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने विचार किया कि मैंने साधु को अत्यन्त निर्दयता से जलाया है। इस प्रकार उसको आत्मग्लानिपूर्वक बहुत पश्चाताप हुआ और भक्तिपूर्वक भगवान के पास अपने अपराध की क्षमा माँगी। भगवान का उपदेश सुनकर उस पर बहुत प्रभाव पड़ा और अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए कपिल ब्राह्मण ने मुनिदीक्षा अङ्गीकार कर ली।

यह कहानी जहाँ हमें मुनिराज गुरुदत्त के उदाहरण से समताभाव की सीख देती है, वहीं कपिल ब्राह्मण की परिणति में परिवर्तन की घटना पर्याय की परिवर्तनशीलता का भी बोध कराती है। हमें ज्ञात होता है कि क्षण भर पहले का पापी, क्षणभर बाद धर्मात्मा बन सकता है।

इस प्रकार पर्याय की परिणमनशीलता में व्यामोहित न होकर, विषम परिस्थितियों में भी गुरुदत्त मुनिराज की तरह मेरु-सम अचल स्वभाव परिणति का बोध प्राप्त करना ही इस कथा का तात्पर्य है।

देखो! सत्पुरुषों का सङ्ग सदा सुखदायी होता है। एक महाक्रोधी ब्राह्मण क्षणभर में सब त्याग करके योगी हो गया। इसलिए भव्य जीवों को सदा अपने को सत्सङ्ग से पवित्र करते रहना चाहिए।●●

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

वीतरागी सन्त पर मिथ्या आक्षेप का फल

39 सीताजी को मिथ्या आक्षेप क्यों ?

वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु का अवर्णवाद, दर्शनमोह के बन्ध का कारण तो है ही; साथ ही इस दुष्कृत्य से होनेवाले पापबन्ध के फलस्वरूप अनेक विषम परिस्थितियाँ भी निर्मित होती हैं। सती सीताजी पर लगे मिथ्या आक्षेप के कारण में यही कृत्य रहा है। इस सम्बन्ध में पद्मपुराण में समागत कथा हमें वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु के अवर्णवाद / अविनय से बचने की पावन प्रेरणा देती है।

सीताजी पर झूठा दोष-आक्षेप-कलङ्क क्यों लगा ? इसके विषय में केवली भगवान कहते हैं - कि जब सीताजी का जीव, पूर्व में वेदवती के भव में था, उस समय लक्ष्मण का जीव वेदवती का पिता श्रीभूति पुरोहित महाजिनधर्मी था और उसकी पुत्री वेदवती महासुन्दर, रूपवती थी। राजा का पुत्र शम्भूकार वेदवती को चाहता था परन्तु वह विधर्मी था और वेदवती के पिता जिनधर्मी के अतिरिक्त अन्य किसी को अपनी पुत्री नहीं देना चाहते थे; इसलिए शम्भूकार ने वेदवती के पिता को मारकर वेदवती के साथ बलात्कारपूर्वक मैथुन सेवन किया।

इस दुष्कृत्य से क्षुब्ध कुमारी ने क्रोधित होकर शम्भूकार से कहा - रे नीच, पापी! तूने मेरे साथ बलात्कार करके, मेरा शीलभङ्ग किया है; इसलिए अगले भव में मैं तेरे नाश का कारण होऊँगी - ऐसा कहकर उसने आर्यिका माताजी के समीप आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली और तप करके स्वर्ग में गयी। वहाँ से चयकर जनक-पुत्री सीता होकर रावण के नाश का कारण हुई।

उसने गुणवती के भव में भी मुनि की निन्दा की थी और वेदवती के भव में भी जब एक बार मुनिराज सुदर्शन वन में आये तो उन मुनिराज की बहिन जो कि आर्यिका थी, उसे

www.vitragvani.com

मुनिराज के समीप धर्मश्रवण करते देखकर वेदवती ने गाँव के लोगों के पास जाकर उनकी निन्दा की कि मैंने मुनि को अकेली स्त्री के समीप बैठे देखा है। वेदवती के इस आक्षेप को कुछ लोगों ने सत्य माना और कुछ समझदार मनुष्यों ने नहीं माना परन्तु गाँव में मुनि का अपवाद हो गया। मिथ्या अपवाद से क्षुब्ध मुनिराज ने प्रतिज्ञा की कि यह मिथ्या अपवाद दूर होगा तो आहार के लिए निकलूँगा, वरना नहीं निकलूँगा।

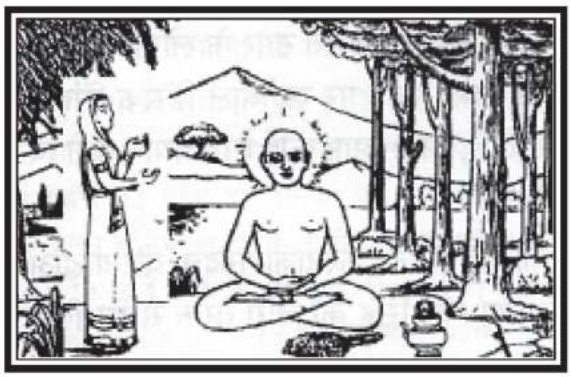

उस समय नगर की देवी ने वेदवती के मुख से गाँव के समस्त लोगों से कहलवाया कि मैंने मुनि का मिथ्या अपवाद किया था, वास्तविकता तो यह है कि वे दोनों तो भाई-बहिन हैं; इतना ही नहीं, वेदवती ने मुनिराज के पास जाकर क्षमा याचना करते हुए कहा - हे प्रभो! मुझ पापिन ने जो मिथ्या वचन कहे थे, उन्हें आप क्षमा करें।

क्षमा के सागर मुनिराज तो शान्तस्वरूपी होते ही हैं, उन्होंने वेदवती के प्रति किञ्चित् भी कषाय परिणाम नहीं किये। मुनिराज के इस क्षमाभाव से वेदवती को अपने दुष्कृत्य का महा पश्चाताप हुआ।

इस प्रकार सीताजी के जीव ने पूर्वभव में निर्दोष मुनि की निन्दा की थी; इसलिए सीताजी पर मिथ्या आरोप लगा और तत्पश्चात् पश्चाताप करते हुए मुनिराज से क्षमा याचना की, इसलिए सीताजी का अपवाद दूर हुआ।

इस कथानक से शिक्षा ग्रहण करते हुए जो जिनमार्गी हैं, वे कभी भी पर-निन्दा नहीं करें। ज्ञानी तो किसी में सच्चा दोष हो तो भी उसे सार्वजनिकरूप से नहीं कहते, कोई कहता हो तो उसको रोकते हैं; अन्य का दोष सर्वथा ढँकते हैं और सम्भव हो तो उसका स्थितिकरण करने का प्रयास करते हैं।

जो कोई पर-निन्दा करते हैं, वे अनन्त काल तक संसार वन में दु:ख भोगते हैं। सम्यग्दृष्टि का बड़ा गुण यह है कि वह अन्य के अवगुण सर्वथा ढाँके। अन्य का सच्चा

www.vitragvani.com

दोष भी निन्दा के भाव से कहनेवाला तो अपराधी है और अज्ञान से, मत्सरभाव से अन्य का मिथ्यादोष प्रगट करे, उसके समान अन्य कोई पापी नहीं है। अपने दोष, गुरु के समीप प्रकाशित करना और अन्य के दोष सर्वथा ढाँकना चाहिए।

केवली के मुख से यह मिथ्या दोषारोपण की बात सुनकर सभा के लोग महा दु:ख के भय से कम्पायमान हुए और उन्होंने दोषारोपण के भावों का त्याग किया। कितने ही जीव प्रतिबोध को प्राप्तकर मुनि हुए और कितने ही मिथ्यादृष्टि थे, वे सम्यग्दृष्टि हुए।

(इस प्रकार सीताजी के अपवाद का कारण मुनिनिन्दा का फल जानकर देव-शास्त्र-गुरु और साधर्मी के प्रति वैरभाव-मत्सरभाव से सावधान होने का बोध यह कथा देती है।) ●●

[- श्री पद्मपुराण के आधार से]

मुनिराज की अन्तर-साधना

अतीन्द्रिय आनन्द में झूलनेवाले मुनिराज, छठवें-सातवें गुणस्थान में रहने के काल में भी आत्मशुद्धि की दशा में आगे बढ़े बिना, वहीं के वहीं नहीं रहते। छठवें-सातवें गुणस्थान में रहते हुए भी आत्मशुद्धि की दशा विकसित होती ही रहती है। केवलज्ञान न हो, तब तक मुनिराज शुद्धि की वृद्धि करते ही जाते हैं। **यह तो मुनिराज की अन्तर-साधना है; जगत के जीव मुनिराज की इस अन्तर-साधना को नहीं देख पाते।** साधना कोई बाह्य से देखने की वस्तु नहीं है, क्योंकि यह तो अन्तर की दशा है।

वन में अकेले विचरण करते हों, बाघ-सिंह की दहाड़ गूँजती हो, सिर पर जोरदार पानी बरसता हो व शरीर में रोग हो तो भी मुनिराज को इनका बिल्कुल भान नहीं रहता; वे तो अन्तर में एकाग्र रहते हैं – ऐसे मुनिराज की अन्तरशुद्धि तो वृद्धिगत होती ही है; अन्तर में शुद्धता के लिए चलनेवाला पुरुषार्थ भी उग्र होता जाता है।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, जिणसासणं सव्वं, पृष्ठ ४०

40 युगप्रभाविका महासती चन्दना पर विपत्तियाँ क्यों ?

समवसरण में एक बार राजा श्रेणिक, गौतम स्वामी से पूछते हैं – 'हे प्रभो! महासती चन्दना को इतने अधिक दु:ख क्यों सहन करने पड़े ?' इस प्रश्न के उत्तर में गौतमस्वामी कहते हैं कि 'हे राजन! जीवों को अपने कर्मोदय के अनुसार ही इष्टानिष्ट संयोगों की प्राप्ति होती है। महासती चन्दना को प्राप्त कष्टों में भी इसके द्वारा किये गये परिणाम एवं तदनुसार हुआ कर्मबन्ध ही निमित्तकारण है। इस सम्बन्धी सम्पूर्ण वृतान्त इस प्रकार है –

मगधदेश में अग्निमित्र नाम का ब्राह्मण रहता था, उसके दो स्त्रियाँ थीं। उनमें एक ब्राह्मणी थी, उसके शिवभूति नाम का पुत्र था और दूसरी वैश्य थी, उसके चित्रसेना नाम की पुत्री हुई। शिवभूति के शोमिला नाम की स्त्री थी। पुत्री चित्रसेना का विवाह देवशर्मा नाम ब्राह्मण के साथ हुआ था। एक बार देवशर्मा की मृत्यु होने से चित्रसेना विधवा होने से अपने पुत्रों के साथ भाई शिवभूति के घर रहने गयी।

शिवभूति अपनी बहिन चित्रसेना और उसके पुत्रों का भरण-पोषण प्रेमपूर्वक करता था परन्तु पापी शोमिला (भावी चन्दना) को यह सहन नहीं हुआ; इसलिए उसने क्रोधित होकर मिथ्या आक्षेप किया कि मेरा पति अपनी बहिन चित्रसेना के साथ कुत्सित व्यवहार करता है। इस मिथ्या आक्षेप से चित्रसेना को बहुत दु:ख हुआ, अत: उसने क्रोधित होकर निदान किया कि इसने मुझ पर मिथ्या आरोप लगाया है, इसलिए मैं मरकर अगले भव में इसका बदला लूँगी।

एक बार शोमिला ने शिवगुप्त मुनिराज को आहारदान किया, तब उसके पति शिवभूति ने दान की अनुमोदना की। समय बीतने पर शिवभूति मृत्यु प्राप्त कर कान्तपुर

www.vitragvani.com

नगर में राजा सुवर्णवर्मा के यहाँ महाबल नामक पुत्र हुआ और शोमिला मृत्यु प्राप्तकर चम्पानगरी के श्रीषेण राजा की कनकलता नाम की (भावी चन्दना) पुत्री उत्पन्न हुई। पूर्व भव के स्नेह से महाबल का विवाह कनकलता के साथ हुआ। दोनों पति—पत्नी प्रेमपूर्वक रहते थे। एक बार वे उद्यान में विहार कर रहे थे, वहाँ मुनिगुप्त मुनिराज को आहार देने का भक्तिपूर्वक लाभ प्राप्त हुआ।

एक बार चैत्र माह में महाबल वन में घूम रहा था, वहाँ वह सर्प के डसने से मृत्यु को प्राप्त हुआ। पति की मृत्यु होने से कनकलता भी तलवार से अपना घात करके मृत्यु को प्राप्त हुई।

❖ ❖ ❖

उज्जयिनी नगरी में धनदेव नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम धनमित्रा था। महाबल का जीव उनके यहाँ नागदत्त नाम का पुत्र हुआ। नागदत्त के अर्धस्वामिनी नाम की एक छोटी बहिन थी। जो कि पूर्वभव में भी चित्रसेना नाम की बहिन थी।

पलाश नगर में महाबल नाम का राजा था, उसके काञ्चनलता नाम की रानी थी। कनकलता का जीव मरकर उनकी पद्मलता नाम की पुत्री हुई।

धनदेव सेठ ने एक अन्य स्त्री के साथ विवाह करके पहली पत्नी धनमित्रा का परित्याग कर दिया; इसलिए धनमित्रा अपने पुत्र-पुत्रियों के साथ परदेश चली गयी। वहाँ शिवगुप्त मुनिराज को अपना पुत्र नागदत्त शास्त्राभ्यास कराने के लिए सौंप दिया। कुछ ही समय में नागदत्त, महापण्डित हो गया तथा राज्य मान्य होने से, अच्छा धन प्राप्त होने से, माता और बहिन भाई अपनी आजीविका चलाने लगे।

एक बार नागदत्त, धन कमाने के लिए पलाश नगर गया। वहाँ पद्मलता (पूर्वभव की पत्नी कनकलता) के साथ विवाह हुआ और धर्म की आराधना करके संन्यास मरण करके दोनों पति-पत्नी स्वर्ग में देव-देवी हुए। वहाँ से च्युत होकर (देव तो) विद्याधरों का राजा पवनवेग का पुत्र मनोवेग हुआ और देवी, अर्थात् पद्मलता का जीव, राजा चेतक की पुत्री चन्दना हुई। शिवभूति के भव में उसकी बहिन चित्रसेना पर चन्दना के जीव ने मिथ्या आक्षेप किया था; वह चित्रसेना, मनोवेग की पत्नी मनोवेगा हुई। मनोवेग ने पूर्व भव

www.vitragvani.com

के स्नेह से वश होकर राजा चेतक की पुत्री चन्दना का हरण किया है। पूर्व भव में शिवभूति की स्त्री शोमिला ने अपनी ननद चित्रसेना पर मिथ्या आरोप लगाया, इसलिए चित्रसेना ने दूसरे भव में बदला लेने का निदान किया था। चित्रसेना के जीव ने मनोवेगा होकर चन्दना को जङ्गल में फिकवाकर बहुत दु:ख का कारण होकर पूर्व भव का वैर लिया है।

चन्दना का हरण करनेवाला विद्याधर मनोवेग इसी भव में मोक्ष जाएगा और चन्दना भी समाधिमरण करके अच्युत स्वर्ग में देव होगी। वहाँ से मनुष्य होकर वह देव, मुक्ति प्राप्त करेगा।

इस प्रकार करुणासागर गौतमस्वामी के श्रीमुख से महासती चन्दना के पूर्व भवों की भवावली जानकर सभाजन वैराग्य को प्राप्त हुए। कालान्तर में भगवान महावीर निर्वाण पधारे और चन्दना का जीव, देव हुआ, जहाँ से चयकर आगामी काल में मुक्ति प्राप्त करेगा। ●●

(- उत्तर पुराण के आधार पर)

मुनिदशा के बिना मुक्ति नहीं

मुनिराज, निर्मल विज्ञानघन में निमग्न हैं। अहा! कैसी भाषा का प्रयोग किया है। साधुपना कोई अलग ही है भाई! विज्ञान का घन ऐसा जो निज भगवान आत्मा, उसमें वे अन्तर्निमग्न हैं। निमग्नपना, वह पर्याय है, परन्तु वह पर्याय त्रैकालिक एकाकार विज्ञानघनस्वभाव में निमग्न है, डूबी हुई है। अहा! इस **दशा के बिना मुक्ति नहीं** है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण चतुर्थ गुणस्थान में होते हैं, परन्तु इतने से ही सम्पूर्ण मुक्ति नहीं होती। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक प्रचुर स्वसम्वेदनस्वरूप निर्ग्रन्थ चारित्रदशा आये, उससे मुक्तिदशा प्राप्त होती है। बाह्य में वेष धारण कर ले, नग्नता ले ले और पञ्च महाव्रतादि का पालन करे, वह कोई मुनिदशा नहीं है।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, वचनामृत प्रवचन, पृष्ठ १८४

41 दृढ़ शीलवन्त : अनन्तमती

भूमण्डल में किसी समय अङ्ग देश एक प्रसिद्ध देश रहा है। उसमें वसुवर्धन नाम का राजा राज्य करता था। उस समय उस देश की राजधानी का नाम चम्पापुरी था। उस राजा के लक्ष्मीमति नाम की रानी थी। उनके पुत्र का नाम प्रियदत्त था। रानी का सरल स्वभाव अनुकरणीय था। वह धर्म परायण महिला थी। उसे जैनधर्म के प्रति बहुत श्रद्धा थी; अत: माता के धार्मिक जीवन का प्रभाव पुत्र प्रियदत्त पर भी पड़ा, इसलिए वंश परम्परानुसार प्रियदत्त की पत्नी अङ्गवती भी पति के अनुकूल धर्ममार्ग की अनुगामिनी थी। उस अङ्गमती की कन्या का नाम अनन्तमती था, जो कि गुणों की खान और सर्वाङ्ग सुन्दरी थी।

एक बार अष्टाह्निका के पवित्र शुभ अवसर पर प्रियदत्त ने धर्मकीर्ति नामक महामुनि के पास जाकर मात्र आठ दिन के लिए ब्रह्मचर्य व्रत लिया, साथ ही अपनी कन्या अनन्तमती को भी ब्रह्मचर्य व्रत दिला दिया। यद्यपि उसने विनोदभाव से ही ऐसा किया था परन्तु वह विनोदभाव अन्त में सत्य सिद्ध हुआ। अपने पूज्य पिताश्री द्वारा दिलाये गये ब्रह्मचर्य व्रत ने कन्या अनन्तमती के मन पर गहरा प्रभाव दिखलाया।

❖ ❖ ❖

जब प्रियदत्त ने कन्या को विवाह योग्य देखा तो उसके विवाह की तैयारी प्रारम्भ करने लगा। घर में विवाह की धूमधाम देखकर अनन्तमती ने पिता से सादर निवेदन किया –

www.vitragvani.com

'पिताजी! आपने तो मुझे ब्रह्मचर्य व्रत से दीक्षित किया है, तो अब विवाह की तैयारी किसलिए?'

कन्या की बात सुनकर प्रियदत्त चौंक उठा। वह कहने लगा – 'हे पुत्री! क्या मैंने तुम्हें ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था? मैंने तो मजाक किया था। क्या तू उसे सच्चा मानती है?'

कन्या ने निर्भयता से उत्तर दिया – 'हे तात! आप मुझे क्षमा करें! धर्म और व्रत-विधान में मजाक की बात नहीं होती।'

पिताजी ने दु:खी होकर कहा – 'मेरे पवित्र कुल को उज्ज्वल करनेवाली कन्या! मैं मानता हूँ कि मजाक में दिया गया व्रत भी सत्य है परन्तु वह तो मात्र आठ दिनों के लिये ही था, जबकि तू तो विवाह से ही इन्कार कर रही है।'

'पिताजी! आपका कथन सत्य है; मैं मानती हूँ कि आपने मात्र आठ दिन के लिये ही वह व्रत दिलाया था परन्तु आपने अथवा आचार्यश्री ने उस समय मुझसे व्रत के समय के सम्बन्ध में क्यों नहीं कहा? पिताजी! मैं तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगी। इस जन्म में मेरा विवाह असम्भव है।'

कन्या की भीष्म प्रतिज्ञा के आगे पिता हार गया और लाचार होकर कन्या को धार्मिक, पवित्र जीवन व्यतीत करने के लिए सुन्दर पुस्तकों का प्रबन्ध कर दिया, जिससे कि उसका जीवन शान्तिपूर्वक व्यतीत हो सके।

❖ ❖ ❖

अनन्तमती प्रसन्नता से शास्त्र स्वाध्याय में लीन होकर पवित्र जीवन व्यतीत करने लगी। इसी प्रकार उसने यौवन के आँगन में प्रवेश किया। उसके रोम-रोम से जवानी टपकने लगी। वह सुन्दर तो थी ही परन्तु जवानी ने उसे देवकन्या से भी अधिक सुन्दर बनाकर अपना परिचय दिया। उसकी सुन्दरता का वर्णन करना उसका अपमान करने जैसा है। उसके मुख की सुन्दरता के समक्ष चन्द्रमा भी लज्जित हो जाता था। अनन्तमती के सौन्दर्य के समक्ष स्वर्गलोक की सुन्दरियाँ भी फीकी लगती थीं।

एक दिन की बात है कि अनन्तमती अपनी फुलबाड़ी (बगीचे) में मनोरञ्जन के लिए झूला झूल रही थी। इतने में कुण्डलमण्डित नाम का विद्याधर अपनी पत्नी के साथ

www.vitragvani.com

वायुयान से जा रहा था। उसकी नजर झूला झूलती हुई अनन्तमती पर जा पड़ी। वह अनन्तमती की सुन्दरता पर मुग्ध हो गया परन्तु उस समय उसकी स्त्री बाधक बन रही थी। वह शीघ्रता से विमान को घर ले गया और अपनी स्त्री को विमान से उतारकर शीघ्र वापस आया परन्तु उसकी स्त्री ने उसके मन का भाव जान लिया। जब विद्याधर विमान लेकर रवाना हुआ तो वह भी उसके पीछे-पीछे चल दी। कुण्डलमण्डित जबरदस्ती अनन्तमती को विमान में बैठाकर ले जाने लगा, तभी उसकी नजर अपनी पत्नी पर पड़ी, जिससे वह भयभीत गया और अनन्तमती को पर्णलब्धि नामक विद्या के सुपुर्द करके वहाँ से गमन कर गया।

उस विद्या ने अनन्तमती को घोर जङ्गल में छोड़ दिया। वह उस निर्जन वन में अकेली रोने लगी। इतने में शिकारी भीलराज वहाँ आ पहुँचा। वह वासना के विचार से अनन्तमती को अपने घर ले गया।

अनन्तमती के जीव में जीवन आया और वह विचारने लगी कि अब मेरे प्राणों बचेंगे, मैं अपने घर पहुँच जाऊँगी, परन्तु वह भ्रम में थी। भीलराज, अनन्तमती से कहने लगा - 'देवी! तू कितनी भाग्यशाली है कि मैं एक राजा तेरे सौन्दर्य पर मोहित हुआ हूँ, मैं तेरे चरणों में गिरकर वरदान माँगता हूँ कि मेरे साथ भोग भोगकर आनन्द प्राप्त कर, मैं तुझे अपनी पटरानी बनाऊँगा। मुझ पर कृपा कर।'

अनन्तमती उसकी दुष्टतापूर्ण बातें सुनकर फूट-फूटकर रोने लगी परन्तु इस घोर जङ्गल में उसका रोना सुननेवाला कोई नहीं था। सत्य ही है कि पापियों के हृदय में दया का नाम भी नहीं होता। उसने अनन्तमती पर साम-दाम और दण्ड-नीति से काम लेना शुरु किया।

अनन्तमती ने अपने हृदय में दृढ़ निश्चय कर लिया कि इस दुष्ट के आगे विनती, विनय और नम्रता से काम नहीं चलेगा, तब उसने भीलराज को धिक्कारा। सती-साध्वी के नेत्रों से क्रोध की चिंगारियाँ निकलने लगीं परन्तु उस राक्षस पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। उसी समय अनन्तमती के शील से प्रभावित होकर वनदेवी ने आकर उसकी रक्षा की। देवी, भीलराज से क्रोधपूर्ण शब्दों में कहने लगी - 'नराधम! तू इस देवी को नहीं

www.vitragvani.com

पहिचानता; यह पवित्र आत्मा है। दुष्ट! याद रख, संसार भर में यह महान देवी है, इसकी तरफ कुत्सित दृष्टि की तो तेरी खैर नहीं है।'

इस प्रकार वनदेवी उसे धमकाकर चली गयी। वनदेवी की प्रताड़ना सुनकर भीलराज डर गया। देवी के डर से उसने अनन्तमती को एक सेठ को सौंपकर कहा – 'हे सेठजी! इसे घर पहुँचा देना।'

भील के वचन सुनकर साहूकार प्रसन्न हो गया परन्तु वह भी पापी था। वह अनन्तमती के समान दुर्लभ सुन्दर स्त्री को पाकर प्रमुदित होकर विचारने लगा कि देखो! बिना परिश्रम के कैसी सुन्दरी मिली है। अगर यह मेरा कहना मानेगी तो ठीक, अन्यथा मुझसे छूटकर कहाँ जाएगी?

इस प्रकार अपने मन में विषयवासनायुक्त विचार करके दुष्टतापूर्वक अनन्तमती से कहने लगा – 'देवी! तेरे भाग्य की क्या प्रशंसा करूँ, एक दुष्ट राक्षस के हाथ से तेरा छुटकारा हुआ है। मेरे पास आकर तेरा भाग्य चमक उठा है। कहाँ तो तेरा चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखड़ा और कहाँ भयङ्कर भील! मैं अपने भाग्य को कैसा धन्य मानूँ? धन्य है मेरा भाग्य, जिससे तुझ समान देव दुर्लभ सुन्दर स्त्री प्राप्त हुई है।' सत्य है, भाग्यशाली को ही सुन्दर स्त्री प्राप्त होती है। तेरे जैसी स्त्रीरत्न का मिलना महाभाग्य का लक्षण है। हे देवी! मैं अनन्त धन, सुख, वैभव का स्वामी हूँ और तू विश्व प्रसिद्ध अपूर्व सुन्दरी; अत: मैं तेरे चरणों का दास बनना चाहता हूँ। तू मुझे अपना ले और हृदय में स्थान दे। मैं भी अनुभव करता हूँ कि मेरे साथ ही तेरा जीवन भी कृतकृत्य हो जाएगा।'

सेठ के कुत्सित विचारों से अनभिज्ञ सरल चित्त अनन्तमती अपने कोमल, निष्कलङ्क हृदय में दुष्टों से छुटकारा मिलने का विचार कर रही थी। वह सोच रही थी कि यह सेठ भला और सज्जन है, अब मैं शीघ्र ही अपने पिता के पास पहुँच जाऊँगी, अब डरने की कोई आवश्यकता नहीं परन्तु....।

सत्य ही है कि सदाचारी लोग संसार को भी उसी दृष्टिकोण से देखते हैं। निर्दोष अनन्तमती भी जिसे देखती, उसे सत्य पात्र ही मानती। उसके हृदय में पाप का नाम नहीं था, परन्तु साहूकार की वासनापूर्ण बातें सुनकर उसने प्रार्थना करते हुए कहा —

www.vitragvani.com

'मान्यवर! मैं आपके पास आकर अपने को सुरक्षित समझती रही, मैं आपको अपने पिता के समान समझती रही कि आप मुसीबत में मेरी पिता के समान रक्षा करोगे, परन्तु आपके कामुकतापूर्ण व्यवहार ने मेरे सामने धरती कम्पित कर दी है। मैं किस पर विश्वास करूँ? अरे! मैं आपको अपना रक्षक समझी परन्तु आप तो मेरे भक्षक बन गये। मुझे दु:ख होता है कि आपके समान सज्जन ऐसी नीचतापूर्ण बातें करते हैं। मैं आपका चरित्र देखकर निश्चयपूर्वक कहती हूँ कि आपका धन और भोग-विलास के साधनों को धिक्कार है, धिक्कार है... लाखों बार धिक्कार है; जिसमें जन्म लेकर नीचता का परिचय दे रहे हो, आपके उस वंश को मैं नफरत की नजर से देखती हूँ। रे नराधम! तू मनुष्य नहीं, मनुष्य के रूप में राक्षस है... जो धोखा देकर विश्वासघात करता है, वह पापी है; उसे देखने से भी पाप लगता है। अधम नरपिशाच को जितना धिक्कारे, उतना कम है।' इस प्रकार दु:खी होकर निन्दा करके अनन्तमती चुप हो गयी।

वह साहूकार अनन्तमती की स्पष्ट बातें सुनकर स्तब्ध रह गया। सती-साध्वी के तेज के आगे उसका बोलने का साहस नहीं हुआ, परन्तु उस दुष्ट ने अनन्तमती को कामसेना नामक वैश्या के फन्दे में फँसाकर अपने अपमान का बदला लिया।

❖ ❖ ❖

मनुष्य को अपने कर्म का फल तो भोगना ही पड़ता है। कर्म की गति विचित्र है। 'कोई नहीं कर्म लेख मेटनहारा' की उक्ति सत्य ही है। वहाँ वैश्या के हाथ में पड़कर अनन्तमती के दु:खों का पार नहीं रहा। उस सती को भाँति-भाँति के प्रलोभन बताये गये। उस दुष्टा ने अनन्तमती को दु:खी करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। वह चाहती थी कि अनन्तमती को भी भ्रष्ट कर दे, परन्तु अनन्तमती तो सती स्त्री थी, उसके शील के साथ खेल करना, अग्नि के साथ खेल करने जैसा था; अत: उस वैश्या ने लाख प्रयत्न किये, परन्तु अनन्तमती मेरु के समान अचल-अडिग रही। उसके सतीत्व को डगमगाना असम्भव था।

जो संसार के दु:खों से घबरा जाता है, वह पथभ्रष्ट हो जाता है, परन्तु जो सदाचार के पथ के पथिक हैं, उन्हें पथभ्रष्ट करना, लोहे के चने चबाने जैसा है। जब वैश्या समस्त

www.vitragvani.com

प्रयत्नों में असफल रही, तब उसने अनन्तमती को सिंहराज नामक एक व्यभिचारी राजा को सौंप दिया।

हाय रे भाग्य! किस कुघड़ी में वह पैदा हुई थी कि जहाँ जाए, वहाँ दुष्टात्माओं से ही भेंट होती है!

पापी सिंहराज ने अनन्तमती के साथ दुराचार करने का विचार प्रगट किया, परन्तु सती साध्वी अनन्तमती रञ्चमात्र भी विचलित नहीं हुई। जब उस दुष्टात्मा की इच्छा पूर्ण नहीं हुई तो उसने बलात्कार करने का प्रयत्न किया परन्तु सती के सतीत्व को लूट लेना कोई खेल नहीं था... किसकी भुजाओं में इतनी सामर्थ्य है कि सती के सतीत्व को मिटा सके! सती की रक्षार्थ वनदेवी प्रगट होकर कहने लगी – 'रे पापी! खड़ा रह। यदि सती के सामने आँख भी ऊँची की तो तेरा सर्वनाश निश्चित है।'

इस प्रकार देवी उसे दण्ड देकर चली गयी। देवी का भयङ्कर स्वरूप देखकर सिंहराजा के होश उड़ गये, उसका कलेजा थर-थर काँपने लगा। देवी चली गयी परन्तु सिंहराजा को खबर नहीं पड़ी। देवी के चले जाने के बाद उस दुष्ट ने अनन्तमती को एक घोर जङ्गल में छोड़ देने की आज्ञा सेवकों को दे दी।

❖ ❖ ❖

संसार में परिभ्रमण करते हुए जीवों को अपने पुण्य-पाप के उदयानुसार अनुकूल-प्रतिकूल संयोग प्राप्त होते रहते हैं। संयोगों की प्राप्ति में कोई अपूर्वता नहीं है; उन संयोगों का लक्ष्य छोड़कर, आत्मस्वभाव की आराधना में ही अपूर्वता है।

अनन्तमती घोर जङ्गल में पहुँचकर विचारने लगी कि कहाँ जाऊँ? उसे मार्ग का पता नहीं था। अन्त में वह जङ्गल के फल खाती और पञ्च परमेष्ठी की आराधना करती हुई, अनेक जङ्गलों और पहाड़ों को पार करती हुई,

www.vitragvani.com

अयोध्या नगरी में जा पहुँची। वहाँ उसकी भेंट पद्मश्री आर्यिका से हुई। उस आर्यिका ने अनन्तमती का परिचय पूछा। अनन्तमती ने सम्पूर्ण आपबीती कह सुनाई। उसकी आपबीती सुनकर आर्यिका को बहुत वैराग्य हुआ और उन्होंने अनन्तमती को सती शिरोमणी समझकर अपने पास रख लिया। सत्य है, अच्छे लोगों के लिए परोपकार ही व्रत है।

❖ ❖ ❖

इधर प्रियदत्त अपनी पुत्री के गुम हो जाने के समाचार सुनकर अत्यन्त दु:खी हुआ। उसने पुत्री वियोग से घबराकर वैराग्य धारण किया। जब मनुष्य दु:खी होता है, तब घर-बार भी श्मशानवत् लगते हैं। उसे भी सारा संसार सूना-सूना लगने लगा। घर में एक क्षण एक वर्ष के समान लगता था। उसका घर में मन ही नहीं लगता था, अत: वह घर से बाहर निकल गया। लोगों के बहुत समझाने पर भी उसने अपना निर्णय नहीं छोड़ा। इस कारण परिजन भी उसके साथ चल निकले। सभी अनेक सिद्धक्षेत्रों तथा अतिशयक्षेत्रों की यात्रा करते हुए अयोध्यानगरी में आ पहुँचे। वहाँ प्रियदत्त का साला जिनदत्त रहता था। उसने अत्यन्त प्रेम से प्रियदत्त का स्वागत किया और परिजनों के कुशल समाचार पूछे। उसने अनन्तमती सम्बन्धी सारी घटना सुनी, जिससे वह (जिनदत्त) अत्यन्त दु:खी हुआ, परन्तु कर्मफल के सामने सब लाचार हो गये।

दूसरे दिन एक ऐसी घटना हुई कि पिता-पुत्री का मिलन हो गया। बात यह हुई कि जिनदत्त की सहधर्मिणी, आर्यिका संघ के साथ रहनेवाली स्त्री (अनन्तमती) को भोजन कराने के लिए तथा चौक पुराने के लिए बुला लाई। अनन्तमती चौक पूरकर चली गयी। इतने में प्रियदत्त अपने साले के साथ जिनालय में दर्शन करके वापस आया। जिनदत्त के घर में चौक पूरित देखकर उसे अपनी प्रिय कन्या अनन्तमती की याद आ गयी और वह रोने लगा। उसने काँपते स्वर में कहा कि जिसने यह चौक पूरा है, उससे मेरा मिलाप कराओ। उसका साला अपनी पत्नी से चौक पूरनेवाली कन्या का स्थान पूछकर पद्मश्री आर्यिका के समीप पहुँच गया और अनन्तमती को साथ लेकर अपने घर आया।

बहुत दिनों के बाद अपनी कन्या को देखकर पिता का गला भर गया। पिता ने पुत्री को देखकर, अपने हृदय से लगाया। प्रियदत्त ने अत्यन्त प्रेम से पुत्री के कुशल समाचार

www.vitragvani.com

पूछे। कन्या ने सिसकते हुए सम्पूर्ण आप-बीती कह सुनाई। प्रियदत्त, पुत्री की कष्ट कथा सुनकर काँप उठा और आश्चर्य के साथ कहने लगा कि मेरी कन्या ने असह्य कष्ट सहकर भी किस प्रकार अपने सतीत्व की रक्षा की है!

अन्त में उसे अपनी कन्या से मिलकर हृदय में आनन्द का जैसा अनुभव किया, वह शब्दों से अगोचर है। वहीं जिनदत्त भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ और इसी प्रसन्नता में जिनेन्द्रदेव की रथयात्रा निकालने की तैयारी की, सबको सम्मानित करके दान दिया। कन्या से मिलकर प्रियदत्त ने अपने को धन्य माना, उसकी प्रसन्नता का कोई पार नहीं था।

❖ ❖ ❖

अब, प्रियदत्त घर जाने को तैयार हो गया और उसने अपनी पुत्री से घर चलने को कहा। अनन्तमती ने हाथ जोड़कर पिता से प्रार्थना कि – 'हे पूज्य पिताश्री! मैंने संसार के समस्त नाटक देख लिये हैं। हाय! उन्हें स्मरण करके मेरा आत्मा काँप उठता है। पिताजी! मैं सांसारिक कष्टों को देखकर डरती हूँ; अत: आपसे सादर प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे घर आने को न कहें। आपसे मेरी प्रार्थना है कि मुझे जैनधर्म में दीक्षित होने की आज्ञा प्रदान करें। बस, आपकी पुत्री की एक ही अभिलाषा है।'

कन्या की बात सुनकर प्रियदत्त डर गया। उसने लड़खड़ाती आवाज में कहा – 'पुत्री! तेरा शरीर कोमल है, तू तप के कठिन कष्टों को किस प्रकार सहन करेगी? दीक्षा लेकर अत्यन्त कष्ट सहन करने पड़ते हैं, जिन्हें तू सहन नहीं कर सकती; अत: थोड़े दिन घर में रहकर साधना करो, तत्पश्चात् तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी।'

यद्यपि प्रियदत्त ने प्रेमवश कन्या को दीक्षा लेने से इन्कार किया, परन्तु अनन्तमती के रोम-रोम में वैराग्य के भाव छा रहे थे। उसने गृह-परिवार, माता-पिता की ममता को ठोकर मारकर पद्मश्री आर्यिका के समीप जाकर आर्यिका दीक्षा अङ्गीकार कर ली। उसने दृढ़तापूर्वक तपस्या करना प्रारम्भ कर

www.vitragvani.com

दिया। वह कठिन से कठिन कष्ट भी धैर्य के साथ सहन करती थी। लोग उसकी कठिन तपस्या देखकर आश्चर्य व्यक्त करते थे। उसने आजीवन दृढ़तापूर्वक व्रतों का पालन किया और अन्त में वह अपनी अमर ज्योति फैलाती हुई सन्यास द्वारा मरण को प्राप्त करके सहस्त्रावर स्वर्ग में जाकर देव हुई।

वह देव, स्वर्ग में भी नये-नये वस्त्राभूषण धारण करता है और अनेक देवांगनाएँ उसकी सेवा करती हैं, उसके सुख और ऐश्वर्य की कोई सीमा नहीं है। सत्य ही है, जब पुण्योदय होता है, तब उसके प्रताप से जीवों को क्या-क्या नहीं मिलता! यद्यपि अनन्तमती के पिता ने उसको खेल-खेल में ब्रह्मचर्य दिलवाया था, परन्तु उसने इतने मात्र से ही उसका पालन किया। उसे संसार में किसी भी सुख का लालच नहीं था, उसने अपने उग्र तप के प्रभाव से स्वर्ग-सुख प्राप्त किया। वहाँ भी उसका जीवन जिन भगवान की आराधना में व्यतीत होता है।●●

मुनिराज की परिणति में वैराग्य का ज्वार

जैसे पूर्णमासी के दिन पूर्णचन्द्र के योग से समुद्र में ज्वार आता है; उसी प्रकार **मुनिराज को पूर्ण चैतन्यचन्द्र के एकाग्र अवलोकन से आत्मसमुद्र में ज्वार आता है; वैराग्य का ज्वार आता है, आनन्द का ज्वार आता है, सर्व गुण-पर्याय का यथासम्भव ज्वार आता है।** यह ज्वार बाहर से नहीं, भीतर से आता है। पूर्ण चैतन्यचन्द्र को स्थिरतापूर्वक निहारने पर अन्दर से चेतना उछलती है, चारित्र उछलता है, सुख उछलता है, वीर्य उछलता है; सब कुछ उछलता है। **धन्य है वह मुनिदशा।**

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, जिणसासणं सव्वं, ४०३, पृष्ठ ११३

42

जिनधर्म की दृढ़ श्रद्धावन्त श्रेष्ठी कन्या बन्धुश्री की कथा

कसौटी : धर्मश्रद्धा की

इस भरतक्षेत्र के मालव देश में अमरावती के समान सुन्दर उज्जैन नगर है। वहाँ के राजा विश्वन्धर थे, उनके राज्य में गुणपाल नाम का एक राजश्रेष्ठी था। उनकी इन्द्राणी के समान सुन्दर धनश्री नाम की स्त्री थी। उन दोनों के लक्ष्मी और सरस्वती के संगमरूप गुणवान बन्धुश्री नाम की पुत्री थी।

एक दिन राजा विश्वन्धर, वनक्रीड़ा के लिए जा रहा था। मार्ग में उसने अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा करती हुई श्रेष्ठी कन्या बन्धुश्री को देखा। उस अनिद्य सुन्दरी को देखते ही राजा कामपीड़ित हो गया। वह विचार करने लगा कि इस देवांगना के समान सुन्दरी के अभाव में मेरा जीवित रहना निरर्थक है। ऐसा विचारकर उसने एक दासी को बुलाकर कहा – 'हे दासी! सेठ गुणपाल के घर जा और उन्हें यह सन्देश दे कि राजा आपकी कन्या बन्धुश्री के साथ विवाह करना चाहता है और शीघ्र शुभ मुहूर्त में विवाह की तैयारी करने की आज्ञा दी है; अत: आज्ञा का पालन किया जाए।'

दासी, गुणपाल सेठ के घर पहुँची। सर्व प्रथम उसने सेठ को नमस्कार कर अत्यन्त मधुर स्वर में कहा – 'हे श्रेष्ठीवर्य! मैं आपको प्रसन्नता के शुभ समाचार देने आई हूँ। आपका भाग्य जगा है कि महाराज विश्वन्धर आपकी पुत्री के साथ विवाह करना चाहते हैं। अरे! महाराज जैसा दामाद मिलना – यह कम गौरव की बात नहीं है। आप महा भाग्यशाली हो, आपकी कन्या के सौभाग्य की तो क्या प्रशंसा करूँ? बन्धुश्री तो अब राजा की पटरानी बनेगी।'

गुणपाल सेठ, दासी के वचन सुनकर विचारने लगे कि कन्या सदा जिनधर्मी /

www.vitragvani.com

साधर्मी को ही देना चाहिए; विधर्मी को कन्या देना महान पाप है। राज जैनधर्मी नहीं, विधर्मी है; इसलिए कुछ भी हो, मैं विधर्मी राजा को अपनी कन्या नहीं दूँगा। अरे! सांसारिक सुख के लिए धर्म को नहीं बेचा जा सकता। धर्म ही संसार से उद्धार करनेवाला है, धर्म ही जीव का साथी है; इसके बिना जीवन व्यर्थ है।

जो व्यक्ति सांसारिक प्रयोजन में आकर विधर्मी को अपनी कन्या देता है, वह निन्दनीय है। आज तक बन्धुश्री ने वीतरागी देव की सेवा, पूजा, उपासना, भक्ति आदि की है; अब, वह विधर्मी के यहाँ जाने पर अपने धर्म की रक्षा किस प्रकार कर सकेगी? क्या विषय-वासना के लिए धर्म को बेचा जा सकता है? नहीं, नहीं; कदापि धर्म नहीं बेचा जा सकता। मैं अपनी कन्या का विवाह जैन धर्मावलम्बी के साथ ही करूँगा, भले ही वह गरीब ही क्यों नहीं हो। धन तो सांसारिक वस्तु है। आज है, वह कल भी रहेगा - इसका क्या भरोसा? परन्तु दिगम्बर जैनधर्म शाश्वत वस्तु है। वही आत्मा का साथी है, उसे छोड़कर कोई भी पदार्थ अपना नहीं है; इस प्रकार विचार सागर में मग्न होकर सेठ गुणपाल व्यथित हो गया। उसने राजा की दासी को मीठे वचनों से समझाकर विदा किया।

विचारों के भँवर जाल में फँसे हुए सेठ गुणपाल अपनी पत्नी को बुलाकर उसका अभिप्राय जानने के लिए कहने लगा - 'हे प्रिये! महाप्रतापी महाराज विश्वन्धर अपनी पुत्री बन्धुश्री के साथ विवाह करना चाहते हैं - यह अपने लिए कितने गौरव की बात है! बन्धुश्री पटरानी बनेगी, राजदरबार में अपना मान रहेगा; अत: हमें शीघ्र ही बन्धुश्री के विवाह की तैयारी करना चाहिए।'

सेठ गुणपाल के आन्तरिक अभिप्राय से अपरिचित सेठानी धनश्री कहने लगी - 'हे स्वामिन! आज आपको क्या हो गया है? आप अपने मुख से कैसी विचित्र बातें कर रहे हैं? राजा विश्वन्धर विधर्मी है, मिथ्यादृष्टि है। उसके साथ मेरी पुत्री का विवाह कभी

www.vitragvani.com

नहीं हो सकता। वीतरागी प्रभु की सेवा के बिना रूप, लावण्य, विद्या, धन, वैभव आदि सब व्यर्थ है। मदोन्मत्त हाथी के पैर के नीचे दबकर मरना ठीक है, परन्तु विधर्मी के साथ कन्या का विवाह करना ठीक नहीं है। जो व्यक्ति, धर्म की अपेक्षा राज्य और वैभव को अधिक महत्त्व देता है, वह निम्न कोटि का है क्योंकि दिगम्बर जैनधर्म के समक्ष राज्य वैभव तो अत्यन्त तुच्छ है; अत: उस क्षणिक वैभव की तुलना दिगम्बर जैनधर्म के साथ नहीं हो सकती।

हे स्वामी! आश्चर्य की बात तो यह है कि आप दिगम्बर जैनधर्म के मर्मज्ञ होने पर भी ऐश्वर्य को महत्त्व दे रहे हैं! आपने अनित्य सुख को हितकर मान लिया है। क्या आप बन्धुश्री को नरक में डालना चाहते हैं? आपकी पुत्री अत्यन्त धर्मानुरागी है। यदि उसका विवाह विधर्मी के साथ होगा तो उसका उद्धार होना असम्भव है। संसार में अनन्त काल से परिभ्रमण करते-करते दिगम्बर जैनधर्म की प्राप्ति कठिनता से होती है, जो व्यक्ति इस अपूर्व अवसर को पाकर अपना कल्याण नहीं करता, उसके समान मूर्ख दूसरा कौन हो सकता है? विधर्मी राजा के साथ अपनी कन्या का विवाह करना तो कन्या, सिंह को समर्पित करने के समान है। समझ में नहीं आता कि आप सम्पत्ति में मुग्ध कैसे हो गये? धन, वैभव की प्राप्ति में कुछ भी मेहनत नहीं करनी पड़ती, परन्तु धर्म प्राप्त करने में तो बहुत मेहनत करनी पड़ती है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि संसार में दिगम्बर जैनधर्मी को वैभव स्वयं प्राप्त होता है; विभूतियाँ उसके चरणों की दासी बन जाती है। **जो क्षणिक ऐश्वर्य को देखकर जैनधर्म को छोड़ देता है, वह काँच का सौन्दर्य देखकर माणिक को छोड़ देनेवाले के समान है।**

मिथ्यादृष्टि का वैभव स्थिर नहीं रहता। उसकी सम्पत्ति थोड़े ही दिनों में नष्ट हो जाती है और वह दर-दर का भिखारी बनकर भटकता है। ऐश्वर्य होना, वह कोई बड़प्पन नहीं है, परन्तु सत्य दिगम्बर जैनधर्म को धारण करने से ही मनुष्य बड़ा / महान गिना जाता है।

आप बुद्धिमान हो, धर्मात्मा हो, धर्म के वास्तविक स्वरूप को जाननेवाले हो, तो भी आपको ऐसा भ्रम क्यों हुआ? आप स्वयं विचार करो, मेरी बात कैसी लगती है? मैं आपको क्या उपदेश दे सकती हूँ? आप विशेषज्ञ हो, शास्त्र की मर्यादा के ज्ञाता हो; इस

www.vitragvani.com

कारण मुझे आपकी आज्ञा ही शिरोधार्य है। मैंने तो मात्र अपने विचार आपके समक्ष प्रस्तुत किये हैं। आप स्वयं समझदार हैं, सोच-समझकर उचित निर्णय करें।'

अपनी सहधर्मिणी की यह सब बात सुनकर सेठ गुणपाल अपनी पत्नी से कहता है – 'हे देवी! तुम्हारी बुद्धि और उच्च विचार जानकर मेरे हृदय में अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। मैंने तो मात्र तुम्हारी परीक्षा ली थी। विधर्मी को कन्या देने के पक्ष में मैं भी सर्वथा नहीं हूँ। मेरा विचार कन्या का विवाह साधर्मी के साथ ही करने का है।

मेरा विचार है कि अब बन्धुश्री को बुलाकर उसके विचार जान लेना चाहिए, क्योंकि विवाह में कन्या की सलाह लेना भी आवश्यक है।'

सेठ गुणपाल ने बन्धुश्री को बुलाकर प्रेमपूर्वक कहा – 'बेटी! तुम्हारे समान पुण्यवान कौन होगा! अरे! मालव नरेश ने ही स्वयं तेरे साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेजा है और विवाह होने के तुरन्त बाद तुझे पटरानी का पद अर्पण करेंगे। तू समस्त राज्यसुख भोगेगी। हमारा भी भाग्य जागेगा और समस्त देश हमारा सम्मान करेगा। राजा भी मुझे उच्चासन देगा। जब तेरे पुत्र को राज्य शासन मिलेगा, तब हमारी प्रतिष्ठा तो बहुत ही बढ़ जाएगी। बेटी! हम धन्य हैं कि हमें तेरे समान कन्या प्राप्त हुई। आज हमारे समान सौभाग्यशाली कौन होगा? ऐसा सुअवसर तो पुण्यात्माओं को ही प्राप्त होता है।'

पिताश्री के ऐसे उल्टे शब्द सुनकर बन्धुश्री खेदपूर्वक कहती है – 'पिताजी! क्षमा करना, आज आपको यह क्या हो गया है? आप मुझे सांसारिक वैभव में लुभाना चाहते हैं। आप विधर्मी के साथ मेरा विवाह करके मेरे धर्म को नष्ट करना चाहते हैं? मैं वासना-लोलुपी नहीं हूँ। धर्म को कोड़ी के मोल में बेचना, यह बुद्धिमानी नहीं है। क्या आप नहीं जानते कि यह दिगम्बर जैनधर्म ही समस्त प्राणियों का हितकारक है? यह धर्म ही त्रिभुवन में उत्तम, पूज्य और वन्दनीय है। समस्त सुख प्रदाता यह दिगम्बर जैनधर्म ही है। इस उत्तम धर्म को धारण करने से ही मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त होती है – ऐसा जैनधर्म महान पुण्योदय से ही प्राप्त होता है।'

पिताजी! ध्यानपूर्वक सुनना, मैं आपको दिगम्बर जैनधर्म की दृढ़ता का एक प्रसङ्ग सुनाती हूँ – ऐसे तो अनेक प्रसङ्ग पूर्व में बन गये हैं।

❖ ❖ ❖

www.vitragvani.com

महारानी चेलना, राजगृही में आकर महाराज श्रेणिक के साथ परिणय-सूत्र में बँधती हैं। अचानक उनका ध्यान जाता है कि महाराज श्रेणिक का घर परम पवित्र जैनधर्म से रहित है। हाय! पुत्र अभयकुमार ने महान बुरा किया! मेरे नगर में छल से जैनधर्म का वैभव बताकर मुझ भोलीभाली को ठग लिया। अहा! जिस घर में पवित्र जिनधर्म की प्रवृत्ति है, वही घर वास्तव में उत्तम है परन्तु जहाँ पवित्र जैनधर्म की प्रवृत्ति नहीं है, वह घर, राजमहल होने पर भी कभी उत्तम नहीं कहा जा सकता। वस्तुत: ऐसा घर तो पक्षियों के घोंसले के समान है।

अरे! संसार में धर्म हो और धन न हो तो, धर्म के पास धन का न होना तो ठीक है, परन्तु धर्म के बिना अतिशय मनोहर सांसारिक सुख का केन्द्र - ऐसा चक्रवर्तीपना भी उत्तम नहीं है। भयङ्कर वन में निवास करना उत्तम है, अग्नि में जलना और विष से मृत्यु होना भी उत्तम है तथा समुद्र में मरण हो, वह भी ठीक है, परन्तु जैनधर्मरहित जीव का जीवन अच्छा नहीं है। पति भले ही कदाचित् बहुत गुणों का भण्डार हो, तथापि वह जिनधर्मी न हो तो किस काम का? क्योंकि कुमार्गगामी पति के सहवास से इस भव, पर भव में अनेक प्रकार के दु:ख ही भोगने पड़ते हैं। हाय! मैंने पूर्व भव में ऐसे कौन से घोर पाप किये थे कि जिससे मुझे इस भव में जिनधर्म से विमुख रहना पड़ा?

इस प्रकार जिनधर्मी चेलना पवित्र जैनधर्मरहित घर और पति मिलने पर विलाप करती है।

❖ ❖ ❖

महारानी चेलना के जीवन का यह प्रसङ्ग सुनकर बन्धुश्री कहने लगी -

'पिताजी! मुझे महान आश्चर्य हो रहा है कि आप गृहीत मिथ्यादृष्टि के साथ मेरा विवाह करने के लिए किस प्रकार तैयार हो गये? क्या आप मेरा हित नहीं चाहते? हितैषी होकर भी विधर्मी के साथ मेरा विवाह करने को तैयार हुए हो? मेरे लिए धर्म के समक्ष राज-वैभव तो राख के समान है। आज आपको अपने सम्मान का ख्याल आता है, परन्तु विधर्मी के साथ मेरा विवाह करने की अपेक्षा आप मेरी हत्या कर दें तो बहुत श्रेष्ठ है। अरे रे! आप पिता होकर भी मेरा अनिष्ट करने के लिए तैयार हो गये हो। क्या इस समय

www.vitragvani.com

कोई मेरी रक्षा नहीं करेगा ?' – ऐसा कहकर बन्धुश्री रुदन करने लगी।

बन्धुश्री की धर्मश्रद्धा देखकर गुणपाल सेठ, बन्धुश्री से कहता है – 'हे पुत्री ! तुझे धन्य है, आज मेरा जीवन सफल हुआ। तुझ जैसी पुत्री पाकर मैं बहुत गौरव का अनुभव कर रहा हूँ। बेटी ! यह तो मात्र तेरी परीक्षा ही थी, इसमें तू पूर्णरूपेण सफल हुई है। बेटी ! जब तक मैं जीवित हूँ, वहाँ तक तेरा विवाह विधर्मी के साथ कभी नहीं होने दूँगा।'

❖ ❖ ❖

गुणपाल सेठ विचार करने लगा कि यहाँ रहने से राजा बलपूर्वक मेरी कन्या के साथ विवाह कर लेगा और राजाज्ञा उल्लङ्घन का दण्ड भी भोगना पड़ेगा; अत: यह नगर छोड़कर चले जाने से ही पुत्री की रक्षा हो सकेगी। इस प्रकार विचार करके सेठ गुणपाल अपनी एक अरब, आठ करोड़ की सम्पत्ति और अपना देश छोड़कर रातोंरात पुत्री के साथ वहाँ से निकल पड़े।

जब राजा को ज्ञात हुआ कि सेठ गुणपाल अपनी समस्त सम्पत्ति ज्यों की त्यों छोड़कर, अपनी पुत्री को लेकर चले गये हैं तो वह विचारने लगा कि वह धर्मात्मा, मुझ पापी, कुकर्मी को कन्या देना उचित नहीं समझता; इस कारण यहाँ से चुपचाप रातों – रात चला गया। अहो ! वास्तव में दिगम्बर जैनधर्म जीवों का कल्याण करनेवाला है। मैंने कुधर्म का सेवन करके अपना जीवन बर्बाद किया है। इस प्रकार विचार करने पर राजा की बुद्धि / रुचि कुधर्म से परिमुक्त हो गयी और उसने जिनधर्मानुयायी सेठ गुणपाल को खोजने के लिए चारों तरफ अपने अनुचर भेज दिये। ●●

(– नयसेनाचार्य रचित धर्मामृत के आधार से)

43 विरक्त चक्रवर्ती श्रीपाल

(पिता-केवली, पुत्र-चक्रवर्ती, प्रपौत्र-तीर्थङ्कर)

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेहक्षेत्र की पुण्डरीकिणी नगरी में पुण्यशाली भव्यात्मा तद्भव मोक्षगामी गुणपाल नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम कुबेरश्री था। राजा गुणपाल, संसार को असार जानकर गृहस्थ अवस्था का त्याग कर शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अङ्गीकार कर आत्मसाधना करने लगे। उनके दोनों पुत्र वसुपाल और श्रीपाल जब अपनी माता कुबेरश्री के साथ रहते हुए अपने राज्य का भली प्रकार सञ्चालन कर रहे थे, तभी एक दिन पुण्योदय से माता कुबेरश्री को वनपाल ने आकर यह शुभ एवं कल्याणकारी समाचार सुनाया कि सुरगिरि नामक पर्वत पर गुणपाल मुनिराज (जो इसी भव में कुबेरश्री के पति थे) को केवलज्ञान प्रगट होने से सर्वत्र आनन्द छाया हुआ है।

यह मङ्गलकारी समाचार सुनकर उन्होंने प्रथम तो उन केवली भगवान को सात पैड़ चलकर नमस्कार किया, पश्चात् वनपाल को पारितोषिक देकर विदा किया और स्वयं अपने दोनों पुत्रों व सम्पूर्ण नगरवासियों सहित केवली भगवान के दर्शन-वन्दन हेतु चल पड़ीं।

मार्ग में वे सभी एक उत्तम वन में पहुँचे जो कि अच्छे-अच्छे वृक्षों से सुशोभित हो रहा था और जिसमें किसी समय किसी वट वृक्ष के नीचे खड़े होकर महाराज जगतपाल चक्रवर्ती ने संयम धारण किया था। आज उसी वृक्ष के नीचे एक दर्शनीय नृत्य हो रहा था, उसे दोनों भाई बड़े उत्साह से देखने लगे। देखते-देखते कुमार श्रीपाल ने कहा - 'यह स्त्री का वेष धारण कर पुरुष नाच रहा है और पुरुष का वेष धारण कर स्त्री नाच रही है। यदि यह स्त्री, स्त्री के ही वेष में नृत्य करती तो बहुत ही अच्छा नृत्य होता।'

www.vitragvani.com

श्रीपाल की बात सुनकर नटी मूर्च्छित हो गयी। उसी समय अनेक उपायों से नटी को सचेत कर कोई अन्य स्त्री (नट का रूप करनेवाली स्त्री की माँ, जिसका नाम प्रियरति है) उस होनहार चक्रवर्ती श्रीपाल से विनयपूर्वक इस प्रकार कहने लगी – 'सुरम्य देश के श्रीपुर नगर के राजा का नाम श्रीधर है, उसकी रानी का नाम श्रीमती है और उसकी जयावती नाम की पुत्री है। उसके जन्म के समय ही निमित्तज्ञानियों ने कहा था कि यह चक्रवर्ती की पट्टरानी होगी और उस चक्रवर्ती की पहचान यही है कि जो नट और नटी के भेद को जानता हो, वही चक्रवर्ती होगा। हम लोग उसी की परीक्षा करने के लिए आये हैं, पुण्योदय से हम लोगों ने आपके दर्शन किये हैं। मेरा नाम प्रियरति है, यह पुरुष का आकार धारण कर नृत्य करनेवाली मदनवेगा नाम की मेरी पुत्री है और स्त्री का धारण करनेवाला यह वासव नाम का नट है।' यह सुनकर राजा ने सन्तुष्ट होकर उस स्त्री को योग्यतानुसार सन्तोषित किया; पश्चात् सभी अपने पिता केवली गुणपाल की वन्दना के लिए सुरगिरि नामक पर्वत की ओर चल दिये।

इधर मार्ग में कोई पुरुष घोड़ा लेकर आ रहा था, उस पर आसक्तचित्त हो श्रीपाल ने सवारी की और उस घोड़े को दौड़ाया। कुछ दूर तक तो वह घोड़ा पृथ्वी पर दौड़ा, फिर अपना विद्याधर का आकार प्रगट कर उसे आकाश में ले उड़ा। वहाँ रहनेवाले वनदेवता ने उस विद्याधर को ललकारा, देवता की ललकार से डरे हुए उस अशनिवेग नाम के विद्याधर ने अपनी भेजी हुई पर्णलघु विद्या से उस कुमार श्रीपाल को रत्नावर्त नाम के पर्वत के शिखर पर छोड़ दिया परन्तु उस देव ने भी श्रीपाल को वहाँ से सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के बजाय वहीं छोड़ दिया, क्योंकि उस देव को अपने ज्ञान से यह पता चल गया था कि श्रीपाल को इस रत्नावर्त पर्वत पर अनेक प्रकार से धन, यश, स्त्री आदि का लाभ होनेवाला है।

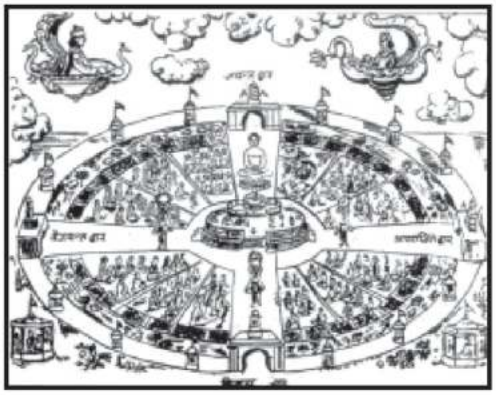

श्रीपाल की माता कुबेरश्री एवं भाई वसुपाल अपने निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार श्री गुणपाल केवली के दर्शन करने पहुँच गये। वहाँ

www.vitragvani.com

वसुपाल ने अपने भाई श्रीपाल के हरण के सम्बन्ध में केवलीप्रभु से समाधान चाहा, तब केवली भगवान की दिव्यवाणी में आया – 'श्रीपाल अनेक प्रकार के लौकिक लाभ अर्जित कर शीघ्र ही वापिस आयेंगे।'

'केवली के वचन कभी मिथ्या नहीं होते, यह बात जग प्रसिद्ध है क्योंकि वे एक समय में ही तीन काल – तीन लोक के समस्त चराचर पदार्थों को उनके द्रव्य-गुण-पर्यायसहित जान लेते हैं।' – ऐसा विचार कर वसुपाल निश्चिन्त हो, केवली प्रभु की दिव्यध्वनि का लाभ लेने में मग्न हो गये।

केवली के वचनानुसार श्रीपाल कुछ ही समय में अनेक रानियों और वैभव के साथ केवली भगवान के दर्शनार्थ सुरगिरि पर्वत पर आ पहुँचे। उन्होंने वहाँ गुणपाल जिनेन्द्र की वन्दना-स्तुति करने के पश्चात् अपनी माता व भाई वसुपाल का भी आशीर्वाद प्राप्त किया। अपने साथ आयी हुई रानी सुखावती का अपनी माता व भाई से यह कहकर परिचय कराया – 'मैं इसके प्रभाव से ही कुशलतापूर्वक आपके पास आ सका हूँ।' सो ठीक ही है, सज्जन पुरुष अपने ऊपर किये हुए उपकारों को कभी नहीं भूलते।

पश्चात् वे सात दिन में सुखपूर्वक अपने नगर में प्रविष्ट हुए। सो ठीक ही है, क्योंकि प्रबल पुण्य का उदय होने के कारण पुरुषों पर आयी आपत्तियाँ भी सम्पत्ति व सम्मान लेकर आती हैं।

इस प्रकार अनेक प्रकार के जगत् सुख भोगते हुए श्रीपाल को एक दिन रूपवान व गुणवान जयावती रानी के उदर से पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। वह गुणों की खान होने से, ज्योतिषियों ने उसका नाम 'गुणपाल' ही रख दिया तथा उसी दिन राजा श्रीपाल की आयुधशाला में चक्ररत्न प्रगट हुआ। चक्ररत्न की प्राप्ति से वे राजा श्रीपाल, चक्रवर्ती सम्राट बन गये। चक्रवर्ती श्रीपाल के पुत्र गुणपाल के युवा होने पर जयसेना आदि अनेक गुणवान कन्याओं से उनका विवाह हुआ।

जिसका मोक्ष जाना अत्यन्त निकट रह गया है – ऐसे श्रीपाल के पुत्र राजकुमार गुणपाल काललब्धि आदि से प्रेरित होकर एक दिन आकाश की ओर देख रहे थे कि इतने में उनकी दृष्टि अकस्मात् अन्धकार से भरे हुए चन्द्रग्रहण की ओर पड़ी, उसे देखकर वे

www.vitragvani.com

सोचने लगे – 'इस संसार को धिक्कार है, जब इस चन्द्रमा की भी यह दशा है तब संसार के अन्य पापग्रसित जीवों की क्या दशा होगी ?' – इस प्रकार वैराग्य आते ही उन उत्कृष्ट बुद्धिवाले गुणपाल को जातिस्मरण उत्पन्न हो गया, जिससे उन्हें अपने पूर्व भव का स्मरण प्रत्यक्ष की तरह होने लगा।

उन्हें स्मरण हुआ – 'पुष्करार्ध द्वीप के पश्चिम विदेह में पद्म नामक एक प्रसिद्ध देश है, उसके कान्तपुर नगर का स्वामी राजा कनकरथ था, उसकी रानी का नाम कनकप्रभा था, उन दोनों के मैं अपनी प्रभा से सूर्य को तिरस्कृत करनेवाला कनकप्रभ नामक पुत्र हुआ था। एक दिन बगीचे में विद्युत्प्रभा नाम की मेरी पत्नी को साँप ने काट खाया, उसके वियोग से मैं विरक्त हुआ और अपने ऊपर अत्यन्त स्नेह रखनेवाले पिता-माता तथा भाईयों के साथ-साथ मैंने समाधिगुप्त मुनिराज के समीप उत्कृष्ट संयम धारण कर लिया। वहाँ मैं दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का भली प्रकार चिन्तवन करता हुआ आयु के अन्त में जयन्त नाम के विमान में अहमिन्द्र हुआ और आयु पूर्ण करके वहाँ से चयकर यहाँ श्रीपाल का पुत्र गुणपाल हुआ हूँ।'

वे इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि इतने में ही स्वर्गलोक से लौकान्तिक देवों ने आकर उनके वैराग्य की अनुमोदना की। इस प्रकार प्रबोध को प्राप्त हुए गुणपाल, मोहजाल को नष्ट कर तपश्चरण करने लगे और घातियाकर्मों को नष्ट कर सयोगिपद – तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त हुए। श्रीपाल की दूसरी रानी सुखावती का पुत्र यशपाल भी इन्हीं तीर्थङ्कर गुणपाल जिनेन्द्र के समीप दीक्षा धारण कर उनके पहले गणधर हुए।

उसी समय चक्रवर्ती सम्राट श्रीपाल ने बड़ी विभूति के साथ आकर गुणपाल तीर्थङ्कर की पूजा की और गृहस्था तथा मुनि सम्बन्धी दोनों प्रकार का धर्म सुना। तदनन्तर बड़ी विनय के साथ अपने पूर्वभवों का वृतान्त सुना।

पुण्यात्मा श्रीपाल जन्म, जरा और मृत्यु रोग का नाश करने के लिये बुद्धि स्थिर करके धर्मरूपी अमृत का पान कर विचार करने लगे – **यह चक्रवर्ती का चक्र कुम्हार**

www.vitragvani.com

के चाक समान है और साम्राज्य कुम्हार की सम्पत्ति के समान है क्योंकि जिस प्रकार कुम्हार अपना चक्र (चाक) चलाकर मिट्टी से घटादि बर्तनों को बनाकर उनसे अपनी आजीविका चलाता है, उसी प्रकार मैं चक्रवर्ती भी अपना चक्र (चक्ररत्न) चलाकर मिट्टी में से उत्पन्न हुए रत्नादि से अपनी भोगोपभोग की सामग्री एकत्रित करता हूँ। इसलिए इस चक्रवर्ती के साम्राज्य को धिक्कार है।

यह आयुष्य, वायु के समान है; भोग, मेघ के समान हैं; स्वजनों का संयोग नष्ट होनेवाला है; शरीर पापों का आयतन है और विभूतियाँ बिजली के समान चञ्चल हैं। यह युवावय, मार्ग से भ्रष्ट होने का कारण होने से गूढ़ वन के समान है, जो विषयों में प्रीति है, वह राग-द्वेष को बढ़ानेवाली है। इन वस्तुओं में से सुख वहाँ तक ही मिलता है, जहाँ तक बुद्धि में विपर्यास होता है और जब सुबुद्धि आती है, तब ऐसा मालूम पड़ता है कि ये सब विषय-कषाय तो दु:ख के ही साधन हैं, हमारे आत्मसुख के घात करनेवाले होने से छोड़ने योग्य हैं।

जब अभिलाषारूपी ज़हर के अंकुरों से इस चित्तरूपी वृक्ष की हमेशा वृद्धि होती है, तब सम्भोगरूपी डाली पर दु:खरूपी फल कैसे नहीं लगेंगे ? मैंने इच्छानुसार दीर्घकाल तक सभी प्रकार के भोग भोगे, परन्तु इस भव में तृष्णा को नाश करनेवाली तृप्ति मुझे रञ्चमात्र भी नहीं मिली। यदि अपनी इच्छानुसार समस्त ही पदार्थ एक साथ मिल जाएँ, तो भी उससे कुछ भी सुख नहीं मिलता, क्योंकि संयोग में आने पर तृप्ति नहीं होती और उन सभी को भोगने की इसकी क्षमता नहीं है; अत: जीव सदा दु:खी ही रहता है। इसलिए अब अपने आत्मा के सच्चे सुख को प्राप्त करके मैं शीघ्र ही पुरुष बन सकता हूँ - पुरुषत्व का स्वामी बन सकता हूँ, अर्थात् आत्मा को स्वीकार कर पर्याय में भी परमात्मा बन सकता हूँ।

इस प्रकार चक्रवर्ती सम्राट श्रीपाल ने चक्ररत्नसहित समस्त परिग्रहों को एक साथ छोड़ने का निर्णय किया और दीक्षा ग्रहण करके तप द्वारा कर्मों का नाश कर, केवलज्ञान प्रगट कर आयु के अन्त में मोक्ष प्राप्त किया।

- ऐसे तद्भव मोक्षगामी सभी भव्यात्माओं / परमात्माओं को हमारा नमस्कार हो। ●●

(महापुराण से)

44 भाव-परिवर्तन

कौशाम्बी नगरी में एक प्रसिद्ध कलाकार था, उसका नाम अङ्गारक था। वह अत्यन्त कुशल कलाकार होने के साथ ही धर्म का प्रेमी और उदार भी था। कला के साथ इन दो गुणों के कारण उसकी प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गये थे। उसका मुख्यत: कार्य आभूषणों में कीमती हीरा-माणिक-मोती जड़ना था और इस कार्य में वह अत्याधिक दक्ष था। कीमती रत्नों से तो वह अपने जीवन को अनेक बार अलंकृत कर चुका था परन्तु रत्नत्रयरूपी रत्नों से अपने आत्मा को अभी तक अलंकृत नहीं कर पाया था।

❖ ❖ ❖

आज कलाकार का निवास स्थान पद्मरागमणि की रक्तप्रभा (लाल किरणों) से जगमग-जगमग हो रहा था। उस पद्ममणि के सामने नजर जमाकर वह विचार कर रहा था-

'इस कीमती मणि को आभूषण में किस प्रकार जड़ना चाहिए? क्योंकि यह कोई साधारण रत्न नहीं है, यह तो कौशाम्बी के महाराजा गन्धर्वसेन के आभूषण में जड़ने के लिए आया हुआ महा मूल्यवान पद्मरागमणि है। मेरी कला पर विश्वास करके महाराज ने यह काम मुझे सौंपा है। अत: आभूषण में वह इस प्रकार जड़ा जाए कि उसकी शोभा एकदम खिल उठे।'

इस विचार से कलाकार उस पद्ममणि को क्षण में आभूषण के इस तरफ, क्षण में उस तरफ और क्षण में बीच में जोड़कर देखता; इस प्रकार घुमाते-घुमाते बहुत परिश्रम के बाद जब उसके मनपसन्द स्थान पर वह मणि शोभित हो गयी, तब उसकी शोभा देखकर उसका मन हर्ष से गद्गद् हो गया।

www.vitragvani.com

वह विचारने लगा – 'वाह! मेरी कला का यह एक सर्वोत्तम नमूना बनेगा और महाराज भी इसे देखकर अत्यन्त प्रसन्न होंगे।'

इस प्रकार सन्तोष की श्वाँस लेकर जब उसने अपना मस्तक ऊपर उठाया तो देखता है कि उसके घर के आँगन के सामने से एक नग्न दिगम्बर मुनिराज गमन कर रहे हैं।

'मानो उनकी आँखों से परम शान्तरस की वर्षा हो रही हो... मानो उनकी भव्य मुद्रा पर वीतरागता छा गयी हो... मानो उनके समस्त पाप गल गये हों... अहो! उनके आत्मा की पवित्रता की क्या बात कहना? अरे! उनके तो चरणों से स्पर्शित धूल भी इतनी पवित्र है कि असाध्य रोगों को दूर कर दे। उनके दर्शनमात्र से मानवों का मन पवित्र हो जाता है और उनके हृदय का पाप धुल जाता है। इन रत्नत्रयधारक योगीराज के आत्मतेज के सामने इस पद्मरागमणि का तेज भी फीका लग रहा है।'

– ऐसे चारणऋद्धिधारी महामुनिराज, गोचरीवृत्ति से आहारदान हेतु गमन कर रहे हैं... उन्हें देखकर अङ्गारक शीघ्र ही उनके समीप गया और उनके चरण कमलों पर झुक गया...तथा अनायास ही उसके मुख से उद्गार निकलने लगे –

'अहो! आज मेरे भाग्य खिल उठे...आज मैं कृतार्थ हो गया... हे प्रभु! हे मुनिराज! आपके चरण-कमलों की धूल से आज में पावन हो गया... मेरा घर भी पवित्र हो गया... मेरे भव-भव के पाप नष्ट हो गये। हे नाथ! पधारो... पधारो... पधारो...।'

इस प्रकार मुनिराज का पड़गाहन करके नवधा-भक्तिपूर्वक अङ्गारक ने आहारदान दिया। आहारदान के समय मुनिभक्ति में वह इतना तल्लीन था कि घर में इस बीच क्या घटना घटित हो गयी, उसे कुछ पता नहीं चला। आहार

www.vitragvani.com

के बाद महामुनिराज तो वापिस वन में चले गये और आत्मध्यान में लीन हो गये। ऐसे महान पवित्रात्मा शुद्धोपयोगी, साधु शिरोमणि को आहार देने से आज अङ्गारक कृतार्थ हो गया था... धन्य हो गया था... उसका चित्त अत्यन्त प्रसन्न था।

आहारदान के बाद वह कलाकार आभूषण में पद्मरागमणि को जड़ने हेतु जब वापस आया तो क्या देखता है...

'अरे! यह क्या हुआ? पद्मरागमणि गुम! नहीं...नहीं...ऐसा नहीं हो सकता।' उसने पूरा घर छान मारा परन्तु पद्मरागमणि नहीं मिली, अत: उसकी आँखों के सामने अन्धेरा छा गया... उसका दिमाग मानो चक्कर खाने लगा... 'अरे! परन्तु इतनी सी देर में यह पद्मरागमणि गयी कहाँ? क्या उसके पंख लग गये थे, जो वह उड़ गयी? क्या कोई उसे चोरी करके ले गया? नहीं... यहाँ घर में मुनिराज के अलावा तो कोई आया ही नहीं... फिर यह मणि गयी तो गयी कहाँ?' उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि यह मणि एकाएक कहाँ गुम हो गयी?

पद्ममणि के गुम हो जाने से अङ्गारक व्याकुल होकर घर में यहाँ-वहाँ घूमले लगा... कुछ समय पूर्व मणि के तेज से जगमगाते उसके घर में अब अन्धकार छा गया था... मानो पृथ्वी काँपने लगी थी... मणि के चले जाने से मानो उसकी अपनी प्रतिष्ठा भी चली गयी - ऐसा उसे लगा। उसे चिन्ता हो रही थी कि अब महाराज को क्या जबाब देगा? हे भगवान! अब क्या होगा? निराशा से घिरा हुआ वह एकाएक क्रोध से लाल-पीला हो गया। बस, चाहे जो हो जाए परन्तु वह मणि का पता लगाकर ही रहेगा। तब उसके मन में ऐसा दुर्विचार आया -

'अरे! अभी-अभी ज्ञानसागर मुनिराज को आहारदान देने के समय मणि को इस पेटी पर रखा था... और वे मुनिराज आहार करके वापस जाते हैं तो मणि गुम हो जाती है, इस बीच उनके अलावा अन्य कोई व्यक्ति मेरे घर आया ही नहीं... इसलिए... ? इसलिए... हो न हो, जरूर मुनिराज का ही इसमें हाथ होना चाहिए, बस! निर्णय हो गया!!'

उपरोक्त विचार आते ही जिन योगीराज के प्रति एक क्षण पहले अङ्गारक को अत्यन्त भक्ति और श्रद्धा का अगाध समुद्र उछल रहा था, अब उन्हीं मुनिराज के प्रति

www.vitragvani.com

भयङ्कर क्रोध से अङ्गारक अङ्गारे के समान बन गया... ।

'निश्चित ही वे मुनिराज नहीं थे; बल्कि मुनि के वेष में कोई चोर होंगे... उस ढ़ोगी का ही यह काम लगता है।'

फिर भी अभी-अभी देखी उन वीतरागी मुनिराज की भव्य मुद्रा और हृदय में विद्यमान जैनधर्म के प्रति अतिशय भक्ति, इन दोनों के कारण कलाकार के अन्तरङ्ग से आवाज आई -

'अरे अंगारक! यह क्या? क्या तू पागल हो गया है? जिन्होंने इन्द्रतुल्य वैभव को छोड़ दिया... और संसार को तृणतुल्य जानकर उसका त्याग कर दिया; जगत् के पदार्थों में इष्ट-अनिष्टबुद्धि को छोड़कर जो बहुत आगे बढ़ गये हों - क्या वे महामुनिराज तेरा पत्थर का टुकड़ा चुरायेंगे? सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र - ऐसे विश्व-वन्दनीय रत्नों से जिनका आत्मा शोभायमान है, क्या वे इस जड़रत्न में मोहित होंगे? अरे! जिन्होंने स्वात्मा में स्थित चैतन्यमणि प्राप्त कर लिया है, वे इस अचेतनमणि का क्या करेंगे?'

क्षणमात्र के लिए तो उसे विचार आया परन्तु जब मणि का ध्यान आया तो फिर उसके चित्त में प्रश्न उठा -

'यदि मुनिराज ने उसे नहीं चुराया तो वह गयी कहाँ?'

मणि के मोह में पागलवत् होकर उसने अन्त ही यह निश्चय किया -

'नहीं... नहीं... वे कोई मुनि नहीं, अपितु मायावी हैं और उनका ही यह काला काम है। इस ठग मायावी ने मन्त्रादिक के प्रभाव से मणि चुराकर कहीं छिपा दिया होगा... परन्तु मुझसे बचकर वह कहाँ जाएगा? मुनिवेष में रहकर ऐसे काम करता है - उसे तो मैं ऐसी शिक्षा दूँगा कि जिन्दगी भर याद रखेगा। चाहे जहाँ से मैं उसे पकड़कर लाऊँगा।'

- ऐसा दृढ़ निश्चय करके, क्रोध से अत्यन्त उत्तेजित होकर कलाकार अंगारक ने मुनि को खोजने के लिए उपवन की और तीव्र गति से गमन किया।

❖ ❖ ❖

उधर एकान्त शान्त उपवन में श्री ज्ञानसागर महाराज आत्मध्यान में निमग्न हैं। वे

www.vitragvani.com

जगत के मायाजाल से बहुत दूर, संसार के विषम वातावरण से पार और परम अनन्त सुखमय सिद्ध भगवन्तों के एकदम पास रह रहे हैं.... अनन्त सुखमय आत्मा के ध्यान में वे सम्पूर्णत: एकाग्र होते जा रहे हैं।

तभी क्रोध से आगबबूला होता हुआ अंगारक हाथ में लाठी लेकर मुनिराज को ढूँढने दौड़ता हुआ आ रहा है... ध्यानस्थ मुनिराज को दूर से देखते ही वह गरजा –

'अरे पाखण्डी! जल्दी बोल!! बता, मेरी मणि कहाँ है?'

परन्तु जवाब कौन दे? मुनिराज तो ध्यानस्थ हैं। यद्यपि वे मुनिराज अवधिज्ञानी थे, तथापि स्वरूप से बाहर आकर जब अवधिज्ञान का उपयोग करें, तब बतावें, लेकिन वे तो आत्मसाधना में लीन थे, उन्हें मौन देखकर अङ्गारक का क्रोध और अधिक बढ़ गया, उसने कहा –

'अरे धूर्त! दिन-दहाड़े चोरी करके अब ढोंग करता है! तू यह मत समझना कि मैं मुझे ऐसे ही छोड़ दूँगा। जल्दी बता! कहाँ है मेरा मणि?'

परन्तु यहाँ वीतरागी मुनिराज की क्षमारूपी ढाल के सामने क्रूरवचनरूपी बाण कोई असर नहीं कर सके... मुनिराज तो अडिगरूप से आत्मध्यानस्थ ही थे।

जब अंगारक ने देखा कि उसके क्रूर वचनों का भी मुनिराज पर कोई असर नहीं हो रहा है तो उसने सोचा कि अवश्य ही इसने मेरी मणि को कहीं छिपा दिया है... इसलिए तो यह मौन हैं।

'बोल! सीधे-सीधे मेरी मणि देता है या नहीं... या... इसका स्वाद चखाऊँ — ऐसा कहकर उसने मुनिराज पर वार करने के लिए लाठी उठाई।'

अरे! कुछ समय पूर्व ही जिनके पावन चरणों में जो श्रद्धापूर्वक अपना सिर झुका रहा था, उनके सिर पर अब प्रहार करने को वही तैयार हो गया है... हाय! जीव के परिणामों की कितनी विचित्रता है। भावों का कैसा परिवर्तन?

मुनिराज तो नहीं बोले... सो नहीं ही बोले... ध्यान से नहीं डिगे... तो नहीं ही डिगे। जब अङ्गारक ने ऊपर उठाई लकड़ी से वार करने के लिए उसे नीचे किया ही था कि...

www.vitragvani.com

वह लकड़ी उन तक पहुँचने से पहले ही डाल पर बैठे मोर के कण्ठ पर लगी और तभी करुण चीत्कार के साथ मोर के कण्ठ से कोई चमकीली-सी वस्तु जमीन पर गिर पड़ी... ।

अरे! यह क्या? यह तो वही पद्मरागमणि है, उसी के लाल-लाल प्रकाश से पृथ्वी जगमग-जगमग करने लगी है...मानों मुनिराज की रक्षा होने से...उनका उपसर्ग दूर होने की खुशी में आनन्द से हँस रही हो।

अंगारक तो इस मणि को देखकर आश्चर्यचकित ही रह गया... उसकी आँखों के सामने फिर से अन्धेरा छा गया... लकड़ी हाथ में ही रह गयी... और धड़ाम से उसका शरीर मुनिराज के चरणों में गिर पड़ा। पद्मरागमणि के गुम हो जाने का रहस्य अब एकदम स्पष्ट हो गया था और वह कलाकार अपने अविचारी कृत्य के कारण पश्चाताप के सागर में अचेत होकर पड़ा था... ध्यानस्थ मुनिराज को तो बाहर क्या हो रहा है? उसका कुछ पता ही नहीं था?

जब श्रीमुनिराज ने **णमो सिद्धाणं** कहकर ध्यान पूरा किया और आँखे खोली... तब देखा कि कुछ समय पूर्व (आहारदान के समय) का यह अङ्गारक यहाँ चरणों में पश्चाताप के कारण सिसक... सिसककर रो रहा है?...एक ओर पद्ममणि धूल में धूल-धूसरित पड़ा है... थोड़ी दूर पर लकड़ी पड़ी है... ऊपर डाल पर बैठा मोर मणि की ओर टकटकी लगाकर देख रहा है... श्रीमुनिराज को सारी स्थिति समझते देर नहीं लगी... उन्होंने अंगारक को आश्वासन देते हुए महा करुणार्द्र होकर कहा -

'हे वत्स अंगारक! दु:खी मत हो। सोच विचार छोड़ दे। इज्जत और लक्ष्मी का मोह ऐसा ही है, जो जीव को अविचारी बनाता है। भाई! जो होना था, हो गया...अब शोक करना छोड़ दे और...अपना आत्महित साधने के लिए तत्पर हो।'

पश्चाताप की अग्नि में जलते हुए अङ्गारक के हृदय में मुनिराज के वचनों ने अमृत का सिञ्चन किया... उसने हाथ जोड़कर मुनिराज से निवेदन किया -

'प्रभु! मुझे क्षमा करो। मोह से अन्ध होकर मैंने अत्यन्त घृणास्पद कार्य किया है... क्रोध से मैं अविचारी बन गया था... प्रभु! मुझे क्षमा करके इस भयङ्कर पाप से मेरा उद्धार करो। हे नाथ! आपश्री के आहारदान के समय मैंने इस मणि को पेटी के ऊपर रख दिया

www.vitragvani.com

था और उसी समय ऊपर बैठा यह मोर भी हमारे घर में घुस गया था, उस चमकती मणि को खाने की वस्तु समझकर घटक गया था... परन्तु वह मणि भाग्यवश उसके गले में ही अटक गई... लेकिन मैंने बिना देखे... बिना विचारे आप पर शङ्का की... आप पर प्रहार करने के लिए लकड़ी उठाई... परन्तु प्रभु! सद्भाग्य से... वह मोर आपके पीछे-पीछे ही यहाँ आकर इस वृक्ष पर बैठ गया था... और मेरे द्वारा आपको मारने के लिए लकड़ी ऊपर उठाने पर उसके गले पर लकड़ी लगी और गले में से वह मणि नीचे गिर पड़ी... इस प्रकार आपकी रक्षा हो गयी... मोर के भी प्राण बच गये... और मेरे इन पापी हाथों से एक वीतरागी योगी की हिंसा होते-होते बच गयी।'

यह सब बोलते-बोलते पश्चाताप का भाव होने से अंगारक के पाप मानो पानी-पानी होकर आँखों में से अश्रुधारा के रूप में बाहर निकल रहे थे। थोड़ी देर तक चुप बैठकर उसने पुनः मुनिराज से कहा -

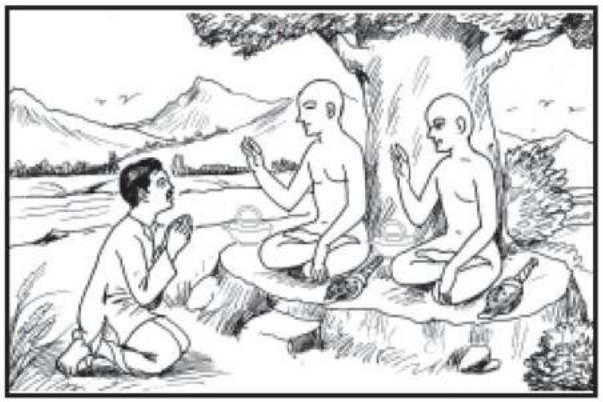

'प्रभो! हे प्रभो! आपकी अमृतमयी वचनों से आज मैंने नया जीवन प्राप्त किया है। नाथ! इस पापमय संसार से उद्धार करो...बस, अभी मुझे निर्ग्रन्थ मुनिदीक्षा प्रदान करो... और मेरा कल्याण करो।'

तब श्री मुनिराज ने कहा - 'हे बन्धु! तेरा भाव उत्तम है... परन्तु उसके पहले इस पद्ममणि को ले जाकर राजा को वापिस करकेआओ।'

'प्रभो! इस पद्ममणि को छूने में भी अब मेरा हाथ काँपता है।'

'वत्स! ऐसा समझ कि इस मणि के निमित्त से ही आज तेरे भावों में यह महान परिवर्तन हुआ है।'

अङ्गारक ने काँपते हाथों से मणि उठाया... और मुनिराज के चरणों में नमस्कार करके, राजदरबार की तरफ चला।

❖ ❖ ❖

www.vitragvani.com

राजदरबार में महाराजा अपनी मन्त्री परिषद् के साथ किसी विषय पर चर्चा कर रहे थे, इतने में ही कलाकार अंगारक ने वहाँ पहुँचकर कहा –

'लीजिये महाराज! आप यह पद्मरागमणि!!'

अंगारक ने काँपते हाथों से मणि महाराज को सौंप दिया। मणि को जैसा का तैसा वापिस पाकर महाराज ने विस्मय पूछा –

'क्यों कलाकार! इस मणि को वापस क्यों कर रहे हो?'

'राजन! इस मणि को आभूषण में जड़ने का काम मुझसे नहीं हो सकता।'

'अरे! क्या कहते हो अङ्गारक! यदि तुम्हारे जैसा कुशल कलाकार, यह काम नहीं कर सकता तो अन्य कौन कर सकेगा।'

'राजन्! ऐसे मणि-रत्नों को जड़-जड़कर अनेक आभूषणों को तो मैंने शोभा दिलायी... और इसी में सारी जिन्दगी समाप्त कर दी... परन्तु सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्ररूपी रत्नों से मैंने अपनी आत्मा को आज तक आभूषित नहीं किया... महाराज! अब तो जीवन में इन रत्नों को जड़कर उससे आत्मा की शोभा बढ़ाना है।'

'कलाकार को अचानक यह क्या हो गया?' – यह जब राजा को समझ में नहीं आया, तब राजा ने अंगारक से पूछा – 'लेकिन कलाकार! आखिर क्या बात हो गयी? यह तो बताओ?'

तब अंगारक बोला – 'राजन्! आपके इस मणि के निमित्त से आज एक ऐसी घटना घट गयी है कि जिसका वृतान्त कहना मेरे लिए सम्भव नहीं है परन्तु इतना अवश्य है कि इस मणि को आभूषण में जड़ने से मुझे जो पुरस्कार आपसे मिलता, उससे भी विशेष अनन्त पुरस्कार आज मुझे मिल गये हैं। राजन्! अब में रत्नत्रयमणि से अपने आत्मा को आभूषित करने के लिए श्रीगुरु के चरणों में जा रहा हूँ।'

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

'परन्तु मेरे इस मणि को जड़ने का काम तो पूरा करा दो....'

'नहीं राजन्! अब यह अङ्गारक पहले जैसा कलाकार नहीं रह गया है, अब तो यह अपने आत्मा में ही सम्यक्त्व आदि मणि जड़ने के लिए जा रहा है...' – ऐसा कहकर अङ्गारक राजभवन से बाहर निकल गया।

राजा तो दिग्भ्रमित होकर बाहर की तरफ देखते रह गये। बहुत विचार करने पर भी इस घटना के रहस्य को वे सुलझा नहीं सके।

❖ ❖ ❖

दूसरे दिन, जब नगरी के धर्म प्रेमी महिला-पुरुष श्री ज्ञानसागर मुनिराज के दर्शन करने आये... तब उनके साथ एक और नये मुनिराज को देखकर नगरजन विस्मित हो गये... और सबने भक्ति से उनके चरणों में शीश झुकाया, तभी...

'अरे! यह तो हमारा सोनी... कलाकार अङ्गारक!' अपनी नगरी के ही एक नागरिक को इस प्रकार मुनिदशा में देखकर सबको महान आश्चर्य हुआ... और शीघ्र ही यह बात सारी नगरी में बिजली की तरह फैल गयी।

राजा को भी जब यह ज्ञात हुआ तो वे भी शीघ्रता से वहाँ पहुँच गये... मुनिराज को वन्दना आदि करके राजा ने पूछा –

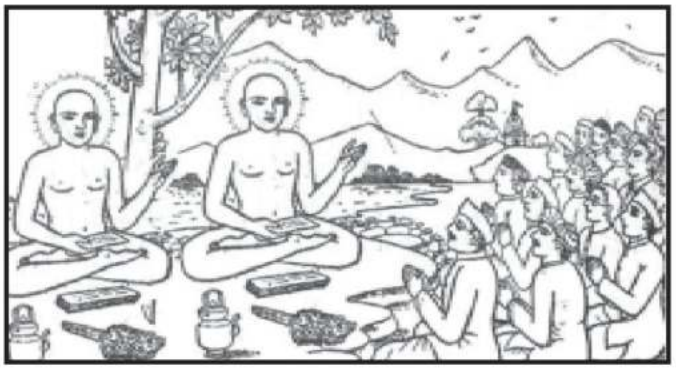

'प्रभो! कल का कलाकार आज अचानक अध्यात्मयोगी बन गया है, इसमें क्या रहस्य है? यह सब जानने के लिए हम अत्यन्त आतुर हो रहे हैं।'

श्री ज्ञानसागर मुनिराज ने मणि के गुमने और मिलने की कहानी विस्तार के साथ बताकर इस रहस्य का उद्घाटन किया और कहा –

'राजन्! अब इसने अपनी आत्मा में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी

www.vitragvani.com

तीन रत्नों को जड़ दिया है, इन तीनों चैतन्यमणियों के प्रकाश से इसका आत्मा जगमग-जगमग कर रहा है और इसका मोहान्धकार नष्ट हो गया है। अब वह जड़ पत्थरों का कलाकार न होकर चैतन्यमणियों का कलाकार बन गया है।'

कलाकार की रोमाञ्चक कथा सुनकर राजा और प्रजा अत्यन्त विस्मित और हर्षित हुए। सबने एक स्वर में 'रत्नत्रय कलाकार की जय'... 'अङ्गारक कलाकार की जय'....। 'श्री ज्ञानसागर मुनि महाराज की जय'... इत्यादि प्रकार से जय-जयकार करके आकाश गुञ्जायमान कर दिया...।

तत्पश्चात् राजा ने उसी पद्मरागमणि के द्वारा अङ्गारक मुनि के चरणों की पूजा-अर्चना की... कलाकार ने जिस मणि को वापिस कर दिया था, वही मणि फिर से उनके ही चरणों को जगमगा रही थी। यह अत्यन्त आनन्द का दृश्य देखकर मोर भी आनन्द की टंकार लगाने लगा और अपने पंखों को फैलाकर नाचने लगा। अहो, धन्य! अङ्गारक मुनिराज!!●●

हम भी उस ही पन्थ के पथिक

अहो! धन्य यह मुनिदशा!! मुनिराज फरमाते हैं कि हम तो चिदानन्दस्वभाव में झूलनेवाले हैं; हम इस संसार के भोग हेतु अवतरित नहीं हुए हैं। अब हम अपने आत्मस्वभाव में प्रवृत्त होते हैं। अब हमारे स्वरूप में विशेष लीन होने का अवसर आया है। अन्तर आनन्दकन्दस्वभाव की श्रद्धासहित उसमें रमणता हेतु जागृत हुए हमारे भाव में अब भङ्ग नहीं पड़ना है। अनन्त तीर्थङ्करों ने जिस पन्थ में विचरण किया, हम भी उस ही पन्थ के पथिक हैं।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, जिणसासणं सव्वं, ७५, पृष्ठ ४

45 अंजन बना निरंजन

भारत के मगध देश की राजगृही नगरी में एक धर्मात्मा सेठ रहता था। उसका नाम जिनदत्त था। वह जैन धर्म में बहुत विश्वास रखता था। वह श्रावकों के व्रत करता, गरीबों को दान देता तथा विषय-भोगों से दूर रहकर धार्मिक जीवन व्यतीत करता था। एक दिन की बात है कि वह सेठ चतुर्दशी के पुण्य दिवस को अर्द्धरात्रि में श्मशान में जाकर कायोत्सर्ग ध्यान में रहने का कार्य करने लगा। उस समय अमितप्रभ और विद्युतप्रभ नामक देव अपने धर्म की उत्कृष्टता की परीक्षा करने आये। उनमें पहला देव जैन धर्म को मानता था और दूसरा अन्यमत के धर्म को मानता था। परीक्षा करने से पंचाग्नि तपवाला एक तपस्वी ध्यान में विमुख हो गया। फिर दोनों ध्यानस्थ सेठ जिनदत्त के समीप पहुंचे। अमितप्रभ ने अपने साथी से कहा – हे मित्र! महान् तपस्वियों की परीक्षा तो एक तरफ, इस साधारण गृहस्थ को परीक्षा में असफल सिद्ध करो तो मैं तुम्हारी बात सत्य मानूँगा। अमित की बात सुनकर विद्युतप्रभ परीक्षा करने के लिये तैयार हो गया। उसने सेठ जिनदत्त के शरीर को भयंकर से भयंकर कष्ट देकर उसे तप से विचलित करने का लाख प्रयत्न किया; परन्तु-

'अटल रहे पर्वत सम तत्क्षण, तप में ध्यान लगाकर के।
कैसे थे वे अटल तपस्वी, योग अखण्ड जमाकर के॥'

तभी प्रात:काल का समय हो गया। दोनों देवों ने अपना असली रूप प्रगट करके भक्तिभाव से जिनदत्त की प्रशंसा की। उन देवों ने सेठ जिनदत्त को आकाशगामिनी विद्या देकर कहा – हे श्रेष्ठीवर! तुम नि:सन्देह विश्वास रखो कि आज यह विद्या तुम को सिद्ध हो गई है। यदि तुम पंच नमस्कार मन्त्रपूर्वक किसी अन्य को दोगे तो उसको भी यह सिद्धि

www.vitragvani.com

प्राप्त होगी। ऐसा कहकर दोनों देव चले गये।

विद्या प्राप्त कर जिनदत्त सेठ को प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। उसने मन में विचार किया कि कितना अच्छा होगा, यदि मैं इस विद्या की सिद्धि के बल से अक्रत्रिम चैत्यालयों के दर्शन करुँ। विद्या के प्रभाव से उसने उसी समय वहाँ जाकर जिनेन्द्र प्रभु की पूजा की और अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

अब सेठ जिनदत्त प्रतिदिन अक्रत्रिम चैत्यालयों में जाकर श्री जिनेन्द्रदेव की आराधना करने लगा।

एक दिन सोदत्त माली ने विनयपूर्वक सेठ जिनदत्त से पूछा कि– 'सेठजी! आप प्रतिदिन प्रात:काल कहाँ जाते हो?'

सेठ ने कहा – 'हे माली! मुझे दो देवों की कृपा से आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हुई है। जिसके प्रभाव से मैं प्रतिदिन अकृत्रिम जिनमन्दिर में जाकर भगवान की पूजा करता हूँ।'

सेठजी की यह आश्चर्यजनक बात सुनकर माली ने दोनों हाथ जोड़कर कहा – 'सेठजी! कृपा करके मुझे भी इस विद्या की सिद्धि करादो तो मैं भी प्रतिदिन सुगन्धित अष्ट द्रव्य लेकर भगवान के चरणों में अर्पण करके शुभकार्यों का भागी बनूँ! क्या आप मुझे विद्या दोगे, जिसके प्रभाव से मैं भी धर्म के कार्य में योगदान करुँ।'

माली की भक्ति देखकर सेठ ने उसे विद्या सिद्ध करने की विधि बतलाई। सोमदत्त कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन अर्द्धरात्रि के समय श्मशान में जाकर विद्या सिद्धि का प्रयत्न करने लगा। सेठ के कहे अनुसार पवित्र पंच नमस्कार मन्त्र का जप करने लगा। अब उसकी मन्त्र सिद्धि का अन्तिम समय आ गया। उसी समय छींका काटने के समय शस्त्र देखकर वह काँप उठा। माली ने मन में विचार किया कि सेठ ने मेरे साथ शत्रुता की है; इस प्रकार विचारकर वह वटवृक्ष से नीचे उतर आया, परन्तु थोड़ी देर के बाद उसने मन में विचार किया कि यह मैं भूल करता हूँ। सेठ जिनदत्त मेरे साथ किस भव का वैर लेंगे और मेरे प्राण लेने से उनको क्या लाभ होगा? इस प्रकार वह बारम्बार विचारता, परन्तु उसके मस्तिष्क में धर्मात्मा जिनदत्त के विषय में उसकी शत्रुता सम्बन्धी बातें नहीं टिक

www.vitragvani.com

सकी। सत्य तो यह है कि उसका हृदय कमजोर था; अत: अनेक बार प्रयत्न करने पर भी वह असफल रहा।

❖ ❖ ❖

जो लोग, स्वर्ग-मोक्ष देनेवाले जिनेन्द्र भगवान के पवित्र वचनों पर अपनी श्रद्धा नहीं रखते, वे संसार में अपनी कोई भी मनोभिलाषा पूर्ण नहीं कर सकते। यहाँ जिस समय अर्द्धरात्रि में सम्पन्न की घटना का वर्णन किया है, उसी समय नगर में एक नवीन घटना घटित हुई, जिसका सम्बन्ध पहली घटना के साथ है।

उसी नगर में आणिका नाम की एक वैश्या थी। रात्रि के समय वैश्या ने अपने प्रेमी अंजन चोर से जोर देकर कहा कि मैं तुमको अपना सच्चा प्रेमी तभी मानूँगी, जब तुम कनकवती महारानी के गले का सुन्दर कीमती हार लाकर मेरे गले में पहनाओगे - यह मेरी अटल प्रतिज्ञा है। उस हार पर ही अपना प्रेम सम्बन्ध रहेगा, अन्यथा विच्छेद हो जाएगा।

वह चोर क्या करता? उसने लाचार होकर रानी के महल में प्रवेश करके उसके गले में से हार निकालकर, शीघ्रता से महल से निकल गया परन्तु सौभाग्य या दुर्भाग्य से चौकीदार ने उसके हाथ में चमकते हार को देखकर उसका पीछा किया।

अंजन चोर तेजी से दौड़ने लगा। उसके पीछे चौकीदार उसे पकड़ने के लिये दौड़ने लगा। चोर दौड़ते-दौड़ते थक गया। पहरेदार उसको पकड़े उसके पूर्व ही उसने हार फेंक दिया; अत: सभी पहरेदार हार को लेने के लिये रुक गये, तब तक अंजन चोर बहुत दूर निकल गया परन्तु फिर भी पहरेदारों ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। चोर दौड़ता हुआ उसी श्मशान में पहुँच गया और वहाँ उसने उस माली को विद्या की सिद्धि के लिये उत्कण्ठित देखा।

www.vitragvani.com

माली के भयजनक साधन देखकर अंजन चोर के होश उड़ गये। उसने माली से पूछा – 'हे भाई! तुम क्या कर रहे हो?'

तब उस माली ने अपना वृतान्त कह सुनाया। अंजन चोर, माली की आश्चर्यजनक बात सुनकर प्रसन्न हो गया। वह विचार करने लगा – यह अवसर उत्तम है कि सिपाही के हाथ से मरने की अपेक्षा तो धर्म कार्य करते हुए प्राण तज दूँ, क्योंकि निर्दयी सिपाही के हाथ से प्राण-रक्षा असम्भव है; अत: क्यों नहीं पुण्यकार्य में अपने प्राणों का विसर्जन करूँ। इस प्रकार विचार करके वह माली से प्रार्थना करने लगा – 'हे भाई! कृपा करके अपनी तलवार मुझे दे दो, मैं भी अपने भाग्य को आजमाना चाहता हूँ।'

माली ने उसे तलवार दे दी। वह उसे लेकर वट वृक्ष पर चढ़ गया, परन्तु माली द्वारा दिये हुए मन्त्र को भूल गया, तथापि मन्त्र पर विश्वास रखकर निर्भय होकर उसने कहा कि मैं सेठ के मन्त्र को प्रमाण मानता हूँ। ऐसा कहकर उस अंजन चोर ने तलवार के एक ही वार से पूरा छींका काट दिया! उसी समय आकाशगामिनी देवी ने उपस्थित होकर कहा – 'प्रभो! मुझे आज्ञा दो, मैं उसके पालन के लिये तैयार हूँ।' अंजन चोर की प्रसन्नता का कोई पार नहीं रहा। उसने देवी से कहा – 'मेरुपर्वत पर सेठ जिनदत्त, भगवान जिनेन्द्र की पूजा कर रहे हैं, मैं उस स्थान पर जाना चाहता हूँ।'

देवी ने तुरन्त अंजन चोर को वहाँ पहुँचा दिया, जहाँ सेठ जिनदत्त पूजा में तल्लीन थे।

जिनधर्म के प्रभाव से असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं। अंजन चोर ने सेठ के पास जाकर भक्तिभाव से प्रमाण करके विनम्र शब्दों में प्रार्थना की – 'हे दयानिधी! आपकी कृपा से मुझे आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हुई है परन्तु हे दयामय! मुझे कृपा करके

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

कोई ऐसा मन्त्र प्रदान करें, जिससे मैं भवसागर पार करके सिद्धि प्राप्त कर सकूँ।'

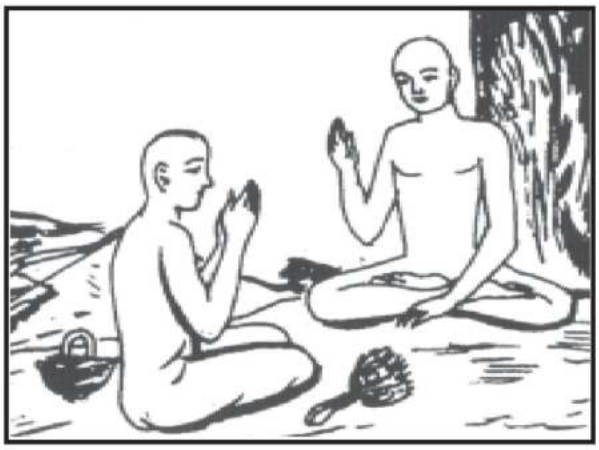

चोर की विनम्र वाणी सुनकर, अन्य की भलाई करनेवाले सेठ जिनदत्त ने उसको चारणऋद्धि धारक मुनि के समीप जिनदीक्षा दिलाई। अंजन चोर ने कैलाशपर्वत पर जाकर कठिन तपस्या से घातिकर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया। कुछ समय पश्चात् अघातिकर्मों का भी क्षय करके सिद्धपद प्राप्त किया। अहा! अंजन चोर अब अंजन से निरंजन हो गये।

पाठकगण! जिस प्रकार अंजन चोर सम्यग्दर्शन के नि:शंकित अंग का पालन करके अपने कर्मों का नाश करके निरंजन हुआ, उसी प्रकार श्रेष्ठ जनों को नि:शंकित अंग का पूर्णरूप से पालन करना चाहिए।●●

बाघ-सिंह तो हमारे मित्र हैं

'जहाँ सिंह और बाघ गरजते हुए विचरण करते हों - ऐसे जङ्गल में मैं अकेले आत्मस्वरूप का ध्यान करूँगा... सिंह और बाघ शरीर को खा जाएँगे तो भी उसका विकल्प न हो और मैं निर्भय होकर अडोल आसन में बैठकर स्वरूप का ध्यान करूँगा। अरे! मैं तो चैतन्यगुफा में विश्रान्त अरूपी आनन्दकन्द भगवान आत्मा हूँ... मुझे कौन खाएगा? यदि बाघ आकर शरीर को खा जाएँ तो भी हमें शरीर से ममत्व नहीं है; हम तो उसे छोड़ना ही चाहते हैं और उसे वह ले जा रहा है... इस प्रकार वह तो हमारा मित्र ही है।'

– यह मुनियों की वीतरागता समझाने के लिए किया गया कथन है, लेकिन मुनियों को ध्यान में ऐसे विकल्प नहीं होते, उन्हें तो चैतन्य की लीनता में देह -सम्बन्धी विकल्प भी नहीं होते। - *पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, महामहोत्सव प्रवचन, पृष्ठ ३४*

46 परिग्रह से भयभीत एक परिवार की कथा

जीवों को धन, धान्य, दास, दासी, सोना, चाँदी आदि जो तृष्णा के जाल में फंसाकर दु:ख का कारण होते हैं, उनके त्यागी ही साधु-मुनि हैं। इससे उत्कृष्ट त्याग की सीमा नहीं है। उन जिन भगवान को नमस्कार करके परिग्रह से भयभीत दो भाईयों की कथा लिखी जाती है।

दशर्ण देश के एकरथ नामक शहर में धनदत्त सेठ अपनी स्त्री धनदत्ता और कुछ सन्तानों के साथ रहता था। पुत्र का नाम धनदेव, धनमित्र और कन्या का नाम धनमित्रा था। धनदत्त की मृत्यु के पश्चात् दोनों भाईयों का धन नष्ट हो गया। वे बहुत ही दरिद्र हो गये। दोनों भाई सहायता की आशा से अपने मामा के घर कौशाम्बी गये और उनको पिता की मृत्यु आदि के समाचार कहे। मामा उनकी परिस्थिति सुनकर दु:खी हुआ और उनको आश्वासन देकर आठ कीमती रत्न दिये, जिससे वे दोनों भाई अपना संसार चला सकें। वह पुरुष धन्य है कि जो ऐसे याचकों की आशा ऐसी सहानुभूति के साथ अपना धन देकर पूरी करता है।

दोनों भाई रत्न लेकर अपने गाँव की तरफ रवाना हुए। रत्नों के लोभ से रास्ते में दोनों भाईयों की नीयत बिगड़ गयी और इस कारण उन दोनों को परस्पर एक-दूसरे को मारने की इच्छा उत्पन्न हो गई। इतने में वे दोनों गाँव के समीप आ गये

www.vitragvani.com

और उसकी सुबुद्धि जागृत हो गयी। दोनों भाई अपने नीच विचारों पर पश्चाताप करने लगे और परस्पर अपने विचार प्रकट करके अपनी दुर्भावना निकालने लगे। ऐसे घृणित विचारों का मूल इन रत्नों का लोभ ज्ञात हुआ; इस कारण रत्नों को वेगवती नदी में फेंककर घर आ गये। उन रत्नों को एक मछली निगल गई, जो मछुआरे के जाल में फँस गई। मछुआरे को मछली को चीरते हुए उसके पेट में से रत्न मिले जो उसने बाजार में बेच दिये।

कर्मयोग से वे रत्न माता धनदत्ता के हाथ में आ गये। माता को रत्नों के लोभ से अपने पुत्रों को मार डालने का विचार आया, परन्तु बाद में उसे भी अपने कुत्सित विचारों पर पश्चाताप हुआ और इस कारण ये रत्न अपनी पुत्री को दे दिये। उन रत्नों को पाकर पुत्री को भी खोटी भावना से अपनी माता और भाईयों को मार डालने के विचार आये, परन्तु वह विचार करते ही समझ गई कि संसार में धन का लाभ समस्त पापों का मूल है; इसलिए बहिन धनमित्रा ने उन रत्नों को अपने भाईयों को सौंप दिया।

भाईयों ने उन रत्नों को पहचान लिया। उन्हें रत्न प्राप्ति की सारी परिस्थिति जानकर बहुत वैराग्य हुआ। इस कारण समस्त दुखों का कारण सांसारिक ममत्व को छोड़कर उन दोनों भाईयों ने दमधरमुनि के समीप जिनदीक्षा अंगीकार कर ली। उन्हें साधु हुआ देख, उनकी माता और बहिन भी आर्यिका हुई। आगे चलकर वे दोनों भाई महातपस्वी, महामुनि हुए और जगत के जीवों का कल्याण करने लगे।

लोभ अकेले संसार दु:खों का मूल कारण ही नहीं, अपितु माता-पिता, भाई-बहन आदि को परस्पर ठगने के कुत्सित विचारों को उत्पन्न करने का घर है। बुद्धिमानों को अपने हित के लिये ऐसे लोभ को मन, वचन, कर्म से छोड़कर जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदेशित धर्म में अपने मन को दृढ़ करना चाहिये।●● *- आराधना कथाकोष भाग-2 में से*

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

47 क्षण भर में बदले परिणाम

जम्बूद्वीप स्थित मंगला देश के अलका नगर में एक धरणीजड़ नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम अग्निला था। उसके दो पुत्र थे। एक का नाम इन्द्रभूति दूसरे का नाम अग्निभूति था। वे दोनों भाई मिथ्याज्ञानी थे। उसी ब्राह्मण के अशुभकर्म के उदय से कपिल नाम का दासी पुत्र था, वह तीक्ष्ण बुद्धिवाला था। जब धरणीजड़ अपने दोनों पुत्रों को वेद पढ़ाता, तब उसे सुनकर कपिल भी सब याद कर लेता था। कपिल के वेद पढ़ने का रहस्य जानकर उस ब्राह्मण ने उसे घर से निकाल दिया परन्तु कपिल बाहर जाकर भी शीघ्र ही वेद-वेदान्त का पारगामी हो गया।

❖ ❖ ❖

इसी जम्बूद्वीप के मलय देश में रत्नसंचयपुर नाम का नगर था। वहाँ अपने पूर्वोपार्जित पुण्यकर्म के उदय से श्रीषेण नाम का राजा (भावी शान्तिनाथ) राज्य करता था। वह राजा कांतिवाला था, अत्यन्त रूपवान और नीतिमार्ग की प्रवृत्ति करानेवाला था, शूरवीर तथा धीरवीर था। राजाओं के द्वारा पूज्य और शत्रुओं को जीतनेवाला तथा गुणों का समुद्र था। वह जिनधर्म की आराधना में अपना मन लगाता था। शास्त्रों का ज्ञाता और सत्यनिष्ठ था। वह सुखसागर में निमग्न था। हमेशा पात्रदान करता रहता था। जिनेन्द्रदेव की पूजा करने के लिये हमेशा तैयार रहता था। गुरुओं में भक्ति भाव रखता था। सदाचारी, विवेकी, पुण्यवान, और उत्तम था। वह हार, कुण्डल, मुकुटादि आभूषणों से सुशोभित था और अपने रूप से कामदेव को भी जीतता था। इस प्रकार राज्य लक्ष्मी को वश में करनेवाला श्रीषेण राजा अपने शुभकर्म के उदय से न्यायपूर्वक अपनी प्रजा का पालन करता था। उस श्रीषेण के पुण्यकर्म के उदय से रूपवती, लावण्यवती तथा अनेक शुभ

www.vitragvani.com

लक्षणों से सुशोभित सिंहनिन्दिता और अनिन्दता नाम की दो रानियाँ थीं। सिंहनिन्दिता के चन्द्रमा के समान अत्यन्त रूपवान तथा शुभलक्षणों से सुशोभित इन्द्र नाम का पुत्र था और धर्म के प्रभाव से अनिन्दिता के रूपवान, गुणवान व ज्ञान-विज्ञान में पारगामी उपेन्द्र नाम का पुत्र था। जिस प्रकार पापों का नाश करनेवाले मुनिराज सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार शत्रुओं को जीतनेवाला वह राजा दोनों सुन्दर पुत्रों से शोभायमान होता था।

उसी नगर में सात्यकी नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी सहधर्मिणी का नाम जम्बू था। उनके गुणों से सुशोभित सत्यभामा नाम की पुत्री थी। धरनीजड़ का दासी पुत्र कपिल जनेऊ धारण करके ब्राह्मण के रूप में रत्नसंचयपुर नगर में आया। उसको रूपवान एवं वेदों का पारंगत जानकर सात्यकी अपने घर ले आया और उसके साथ अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह कर दिया। जब रात्रि में सत्यभामा को कपिल की नीच चेष्टाओं का पता लगा, तब उसको 'यह उच्च कुल का नहीं है' - यह चिन्ता होने लगी। वह विचारने लगी कि मनुष्यों को जहर पी लेना अच्छा है, सर्प की संगति अच्छी है, जलती हुई अग्नि में कूद पड़ना अथवा पानी में कूद पड़ना अच्छा है परन्तु नीच मनुष्यों की संगति करना अच्छा नहीं है - ऐसा जानकर वह पवित्र हृदयवाली धीर-वीर सती सत्यभामा, कपिल से विरक्त हो गई और अपने मन में हमेशा दु:खी रहने लगी।

इधर कर्म संयोग से धरणीजड़ गरीब हो गया। जब उसने कपिल के वैभव की बात सुनी तो वह धन की अभिलाषा से उसके पास आया। कपिल ने लोगों से कहा कि यह मेरे पिता है, अत: लोगों ने उसका आदर-सत्कार किया। वह ब्राह्मण सुखपूर्वक कपिल और सत्यभामा के साथ रहने लगा।

एक दिन सत्यभामा, धरणीजड़ ब्राह्मण को बहुत सारा धन देकर अत्यन्त विनय से कपिल के कुल के सम्बन्ध में पूछने लगी। ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि हे पुत्री! इस दुष्ट ने ब्राह्मण का कपटी वेश धारण किया है।

आचार्य कहते हैं कि देखो! कुटिलता से पैदा हुआ मूर्खों का महा पाप भी कुष्ट रोग के समान प्रगट हो जाता है।

www.vitragvani.com

यह सुनकर पुण्यशालिनी सत्यभामा ने अपने शीलभंग के डर से कपिल का त्याग कर दिया। उसने रणवास में जाकर राजा की शरण ग्रहण कर ली। कपिल ने इतने दिनों तक कपट करने का पाप किया था, इसलिए राजा ने उसे गधे पर बैठाकर अपने देश से बाहर निकाल दिया। दान, पुण्य आदि गुणों से शोभायमान और शीलव्रत से विभूषित सती सत्यभामा रणवास में सुखपूर्वक रहने लगी।

❖ ❖ ❖

पुण्योपार्जन करने में हमेशा तत्पर श्रीषेण राजा पात्रदान देने के लिये प्रतिदिन स्वयं भावना भाता था। एक दिन अभिगति और अरिंजय नामक दो आकाशगामी चारणमुनि उसके घर पधारे। वे दोनों मुनिराज समस्त प्रकार के परिग्रहों से तो रहित थे, परन्तु गुणरूपी सम्पदा से रहित नहीं थे। उनका सम्पूर्ण शरीर तपस्या से क्रश हो गया था। वे रागद्वेष से सर्वथा विमुक्त थे, वे सभी जीवों का हित करनेवाले थे और धीर-वीर सदा ज्ञान-ध्यान में उत्साहित रहते थे। वे मुनिराज स्त्रियों की वांछा से रहित थे, तथापि मुक्तिरूपी स्त्री में अत्यन्त मोहित थे। मनुष्य और देव सभी उनकी पूजा करते थे। वे तीनों काल सामायिक करते थे और रत्नत्रय से सुशोभित थे। वे इच्छा और अभिमान से रहित थे। मूलगुण और उत्तरगुणों की खान थे तथा भव्य जीवों को संसाररूपी समुद्र से पार करने के लिये जहाज के समान थे। वे ज्ञानरूपी महासागर के पारगामी थे। पृथ्वी के समान क्षमा के धारक थे तथा कर्मरूपी ईंधन को जलाने के लिये अग्नि के समान थे। वे जल के समान स्वच्छ हृदयवाले थे। वायु के समान सब देशों में विहार करनेवाले थे। अपने धर्म का उद्योत करनेवाले थे। दोनों मुनि चौरासी लाख उत्तरगुणों से विभूषित थे तथा शील के अट्ठारह हजार भेदों से सुशोभित थे। ऐसे दोनों मुनिराज आहर के लिये राजा के यहाँ पधारे।

जिस प्रकार अपरिमित खजाना देखकर गरीब मनुष्य प्रसन्न होता है; उसी प्रकार मनुष्यों को मोक्ष करानेवाले दो मुनिराजों को अपने आँगन में देखकर राजा श्रीषेण अत्यन्त आनन्दित हुआ। राजा ने मस्तक झुकाकर दोनों मुनिराजों के चरणों में नमस्कार किया तथा 'तिष्ठ-तिष्ठ' कहकर दोनों को विराजमान किया। उत्कृष्ट दान देने में तत्पर उस राजा के

www.vitragvani.com

श्रद्धा, शक्ति, निर्लोभपना, भक्ति, ज्ञान, दया और क्षमा – ये दाताओं के सात गुण प्रगट हुए थे। प्रतिगृह, उच्च स्थान, पादप्रक्षालन, अर्चन, प्रणाम, कायशुद्धि, वचनशुद्धि, मनशुद्धि और आहारशुद्धि – ये नौ प्रकार की भक्ति – नवधाभक्ति गुणों की खान कहलाती है। दान के समय राजा ने यह नवधाभक्ति की थी। जो विशुद्ध हो, प्रासुक हो, मिष्ट हो; कृत आदि दोषों से रहित हो, मनोज्ञ हो और छहों रसों से परिपूर्ण हो तथा ध्यान-अध्ययन आदि का वृद्धिकारक हो, उसे श्रेष्ठ आहार कहते हैं। उपरोक्त सातों गुणों से सुशोभित उस राजा ने मोक्ष प्राप्त करने के लिये उन दोनों चारण मुनियों को विधिपूर्वक तृप्त करनेवाला उत्तम भोजन दिया। राजा की दोनों रानियों ने श्रेष्ठ दान की अनुमोदना की और भक्तिपूर्वक सुश्रुषा, प्रणाम, विनयादि द्वारा बहुत पुण्य प्राप्त किया। सत्यभामा ब्राह्मणी ने भी अत्यन्त भक्ति और विनयभाव से मुनिराजों की आदर-सत्कार द्वारा सेवा की। अत: उसे भी रानियों के समान पुण्य प्राप्त हुआ। सत्य है कि अच्छे परिणामों से क्या-क्या नहीं मिलता।

दोनों मुनिराजों ने समभाव से आहार लिया और उस घर को पवित्र करके शुभाशीर्वाद देकर वे आकाशमार्ग से गमन कर गये। उस दान से उत्पन्न हुए आनन्दरस से जिसका मन अत्यन्त तृप्त हो रहा है – ऐसा वह राजा अपने को कृतकृत्य मानने लगा और अपने गृहस्थाश्रम को सफल मानने लगा।

❖ ❖ ❖

कौशाम्बी नगर में पुण्यकर्म के उदय से महाबल नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम श्रीमती था। उन दोनों के श्रीकान्ता नाम की पुत्री थी। रूप-लावण्य आदि गुणों से विभूषित श्रीकान्ता का विवाह राजा श्रीषेण के पुत्र इन्द्र के साथ विधिपूर्वक हुआ था। उसी राजा के अनन्तमती नाम की विलासिनी थी। जो रूपवती तथा गुणवती थी।

www.vitragvani.com

राजा ने स्नेह भेंट स्वरूप वह विलासिनी श्रीकान्ता को प्रदान की परन्तु अनन्तमती (विलासिनी) रूपवान उपेन्द्र में मोहित होकर उसके साथ कामभोग आदि करके भ्रष्ट हो गई। उस विलासिनी के लिये दोनों भाई इन्द्र और उपेन्द्र युद्ध करने लगे।

आचार्य कहते हैं कि देखो, मनुष्यों के ऐसे भोगादि सुखों को धिक्कार है कि जिनके लिये भाई-भाई में युद्ध हो।

यह बातें सुनकर राजा श्रीषेण को अपनी आज्ञा भंग होने का बहुत ही दु:ख हुआ। इस कारण वह विषफल सूंघकर मर गया। तत्पश्चात् घातकीखण्ड द्वीप में पूर्व मेरु की उत्तर दिशा में उत्तरकुरु नाम की सुख देनेवाली भोगभूमि में लावण्य आदि से सुशोभित आर्य हुआ। सिंहनिन्दिता रानी भी उसी विषफल को सूंघकर मर गई और प्रदत्त दान से पैदा हुए धर्म के प्रभाव से उसी भोगभूमि में उसी आर्य को आर्या हुई। दूसरी रानी अनिन्दिता भी ऐसे ही मरकर स्त्रीलिंग छेदकर महापुण्योदय से उसी भोगभूमी में आर्य हुई और सत्यभामा ब्राह्मणी भी उसी प्रकार से प्राणों का त्याग करके धर्म के प्रभाव से उस अनिन्दिता आर्य की आर्या हुई। इस प्रकार शान्तिनाथ भगवान का जीव उन्नति क्रम में आगे बढ़कर बलभद्र, चक्रवर्ती, कामदेव, तीर्थंकर आदि पद प्राप्त करके निज स्वरूप के साधन से मुक्ति प्राप्त करता है।

आचार्य कहते हैं कि देखो! अपमृत्यु तथा अपघात से मरकर भी केवल उस महादान के फलस्वरूप वे सब शुभगति को प्राप्त हुए; इसलिए कहते हैं कि दान देना उत्तम है।

❖ ❖ ❖

इधर दोनों भाई युद्ध कर रहे थे, परन्तु पूर्व भव के स्नेह के कारण मणिकुण्डल नामक विद्याधर ने आकर उनके युद्ध को रोक दिया और उनसे कहने लगा कि हे राजकुमारो! मैं एक कथा कहता हूँ, उसे तुम ईर्ष्याभाव छोड़कर, शान्तचित्त होकर सुनो! क्योंकि यह कथा तुम्हारा ही हित करनेवाली है।

❖ ❖ ❖

घातकीखण्ड द्वीप में पूर्व मेरु सम्बन्धी पूर्व विदेहक्षेत्र है। जो सद्धर्म और तीर्थंकरादि

www.vitragvani.com

से सुशोभित है। उस क्षेत्र के पुण्यकलावती नामक देश में एक रुपाचल नाम का पर्वत शोभायमान है, जो कि ऊँचा है, जिन चैत्यालयों से विभूषित है तथा मेरु के समान दिखता है। उस पर्वत की दक्षिण क्षेणी में आदित्याभ नाम का सुन्दर नगर है। उसमें पुण्यकर्म के उदय से कुण्डल से सुशोभित सुकुण्ड नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम अमिततेजसेना है। मैं उन दोनों का पुत्र बुद्धिमान मणिकुण्डल हूँ।

पुण्डरीकिणी नगरी में अतिप्रभ नामक केवली भगवान के पास जाकर, उनको नमस्कार करके मैंने अपने पूर्व भव की कथा पूछी थी। भगवान ने जो कथा मुझसे कही थी, वही कथा मैं तुम्हें कहना चाहता हूँ क्योंकि तीर्थंकर के मुख से पैदा हुई (कही हुई) वह कथा बहुत ही सुन्दर और तुम दोनों की हितकारक है।

देखो! पुष्कर द्वीप में जिन चैत्यालयों का आश्रयभूत पश्चिम मेरु पर्वत है, उसकी पूर्व तरफ त्रिवर्णाश्रम से सुशोभित विदेहक्षेत्र है। उसमें एक वितशोका नगरी है। उसमें चक्रायुध नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पुण्यशालिनी रानी का नाम कनकमाला था। कनकमाला की कनकलता तथा पद्मलता नाम की दो पुत्रियाँ थीं। उसी राजा की विदन्मती नाम की दूसरी पतिव्रता रानी थी। उसके पद्मावती नाम की पुत्री थी। सब मिलकर धर्म के प्रभाव से अनेक प्रकार के सुखों का उपभोग करते थे।

एक दिन रानी कमनमाला पुण्यकर्म के उदय से अपनी दोनों पुत्रियों के साथ अमितसेना आर्यिका के पास पहुँची और उनके समीप जाकर नमस्कार किया तथा काललब्धि प्राप्त हो जाने से सबने गृहस्थों के व्रत स्वीकार किये। वे सब व्रतों का पालन करके सम्यग्दर्शन के प्रभाव से स्त्रीलिंग को छेदकर सौधर्म स्वर्ग में महाऋद्धिधारी देव हुए। पद्मावती भी मरकर अपने पुण्योदय से सौधर्म स्वर्ग में एक अप्सरा हुई, जो कि अत्यन्त गुणवती थी। वे सभी देव, धर्म के प्रभाव से पैदा हुए इन्द्रियों को तृप्त करनेवाले उत्तम सुख, ऋद्धियों और देवियों आदि के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए सुख का अनुभव करने लगे। अपनी आयु पूर्ण होने के बाद उन सभी ने वहाँ से चयकर पुनर्जन्म धारण किया। उनमें से कनकमाला का जीव मैं मणिकुण्डल; कनकलता, पद्मलता दोनों पुत्रियों का जीव, स्वर्ग से देव पर्याय छोड़कर अवशेष, पुण्यकर्म के उदय से तुम दोनों इन्द्र तथा उपेन्द्र

www.vitragvani.com

नामक राजपुत्र हुए हो। पद्मावती का जीव, जो सौधर्म स्वर्ग में अप्सरा हुई थीं, वहाँ से चयकर यह रूपवती अनन्तमती विलासिनी बनी है।

मैं श्री अमितप्रभ तीर्थंकर के मुख से यह शुभ तथा उत्तम कथा सुनकर पूर्वजन्म के स्नेहवश तुमको समझाने आया हूँ।

इस कथा को सुनकर वे दोनों भाई अपनी निन्दा करके संसार से विरक्त होकर शुभकर्म के उदय से सुधर्म नामक मुनिराज के पास गये और मुनिराज को नमस्कार करके विरागी होकर बाह्य - अभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग करके उत्कृष्ट संयम धारण किया। उन दोनों मुनिराजों ने शुक्लध्यानरूपी अग्नि से कर्मरूपी ईंधन को शीघ्र ही जला दिया और तपस्या के फलस्वरूप केवलज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् वे दोनों शुक्लध्यानरूपी तलवार से समस्त कर्मों का नाश करके मोक्ष पधारे-अनन्त गुणों के पात्र बन गये। अनन्तमति ने भी श्रावक के सम्पूर्ण व्रत धारण किये और धर्म के प्रभाव से स्वर्ग में उत्पन्न हुई। सत्य है कि सज्जनों के अनुग्रह से क्या-क्या प्राप्त नहीं होता।

देखो! श्री शान्तिनाथ के पूर्व के एक भव में उनके दो पुत्र एक दासी के लिये अन्दर ही अन्दर लड़ते हैं और फिर उसी प्रसंग को निमित्त बनाकर वैराग्य प्राप्त करते हैं। 'मैं वर्तमान में परिपूर्ण भगवान ही हूँ' - ऐसी दिव्य दृष्टि करके वे दोनों भाई शिवसुन्दरी को वरते हैं। पूज्य गुरुदेवश्री फरमाते थे कि पापी जीव भी चैतन्य की अनन्त शक्तिरूप सामर्थ्य के विश्वास से भव सागर से पार हो जाता है।●●

-श्री शान्तिनाथ पुराण में से

48 धिक-धिक जग की स्वारथवृत्ति
(देवरति राजा और रक्ता रानी)

केवलज्ञान जिनका नेत्र है – ऐसे जगत प्रसिद्ध जिन भगवान को नमस्कार करके अयोध्या के राजा देवरति का उपाख्यान (जीवन वृतान्त) लिखा जाता है।

अयोध्या के राजा देवरति की रानी का नाम रक्ता था। वह बहुत ही सुन्दर थी। राजा विषय लम्पटी होने से सदा रानी के पास ही बैठा रहता था। राज्यकाज में कुछ भी ध्यान नहीं देता था। धर्म, अर्थ और मोक्ष पुरुषार्थ का परित्यागकर विषय-वासना का दास बने रहने से दुर्गति होती है, देवरति की भी ऐसी ही दशा हुई।

मंत्रियों को उसकी उदासीनता बहुत ही खराब लगने लगी। उन्होंने राजा से राज्य संभालने की प्रार्थना भी की, परन्तु फल कुछ भी नहीं निकला। इस कारण देवरति के पुत्र जयसेन को राजा नियुक्त करके, देवरति को रानी सहित देश से निष्कासित कर दिया।

ऐसी विषय-वासना से धिक्कार है कि जिससे मान-मर्यादा धूल में मिल जाती है और कष्ट भी सहन करना पड़ता है।

❖ ❖ ❖

राजा देवरति अयोध्या से निकलकर एक भयानक जंगल में आ गया। वहाँ रानी को तीव्र भूख लगी, इसलिए रानी को यमुना के किनारे एक वृक्ष के नीचे बिठाकर राजा भोजन के लिये समीप के गाँव में गया। यमुना के किनारे एक सुन्दर बगीचा था। उसमें कोई अपंग मधुर आवाज में गीत गा रहा था। उसके गाने की मधुर आवाज रक्तारानी के कान में पड़ी। रानी गानेवाले पर मोहित हो गई और वह लाज शर्म छोड़कर अपंग के पास

www.vitragvani.com

गई। उसके समक्ष अपनी काम वासना प्रगट की। यद्यपि वह अपंग कोई सुन्दर नहीं था, तथापि रानी उस पर मुग्ध हो गई। सत्य ही है, काम जात-पात नहीं देखता।

रानी की पाप वासना सुनकर अपंग घबरा गया और बोला हे देवी! मैं एक भिखारी हूँ और आप राज रानी हो। यदि राजा अपने को एकसाथ देखेगा तो जीवित नहीं रहने देगा। आपके तेजस्वी और शूरवीर पति की याद आते ही मेरा शरीर कांप उठता है; अत: मुझे क्षमा करो।

रानी ने उसे धैर्य बँधाकर कहा कि तुम चिन्ता मत करो, मैं अभी राजा को मार दूँगी।

अहो! कुलटा क्या-क्या अनर्थ नहीं कर सकती?

उसी समय राजा भोजन लेकर आ गया। उसे देखते ही रानी माया फैलाकर रोने लगी। राजा, रानी को रोते हुए देखकर, भोजन को एक तरफ रखकर रानी के पास गया और बोला कि हे प्रिय! तुम क्यों रोती हो? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है? अकस्मात् तुम्हारे रुदन से मेरा धीरज छूटा जा रहा है। अपने रोने का कारण शीघ्र ही मुझको बताओ।

रानी एक लम्बी श्वांस लेकर बोली - प्राणनाथ! आपके रहते कौन मुझे कष्ट दे सकता है, परन्तु मुझे इस बात का बड़ा दु:ख होता है कि आज आपका जन्मदिन है और मेरे पास एक फूटी कोड़ी भी नहीं है। मैं आज आपके जन्म का उत्सव किससे मनाऊँ?

रानी की प्रेम भरी बात सुनकर राजा का हृदय भी भर आया और आँख में से आँसू टपकने लगे। राजा ने रानी से प्यार भरे शब्दों में कहा कि प्रिये! उसके लिये क्या चिन्ता है? कभी वह दिन भी आ जायेगा, जब तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। तुम्हारे जैसी भाग्यशालिनी जिसकी प्रिया हो, जिसके लिये मैंने राज-पाट को तुच्छ समझा, उसे ऐसी छोटी-छोटी बातों से क्या दु:खी होना चाहिए?

राजा को यह स्वप्न में भी पता नहीं था कि यह कुलटा निष्कपट प्रेम का बदला प्राण लेकर लेगी।

देव की गति विचित्र है। राजा के ऐसे सच्चे प्रेम का उस पापिनी के पत्थर हृदय पर जरा भी असर नहीं हुआ। रानी ऊपर से प्रेम दर्शाते हुए बोली नाथ! जो बात नहीं हो सकती,

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है, तो भी मैं अपने चित्त की शान्ति के लिए इस पवित्र पुष्पमाला से आपके जन्मदिन का उत्सव मनाऊँगी।

ऐसा कहकर रानी ने फूल गूंथने की डोरी से राजा को बाँध दिया। राजा समझा कि रानी जन्मदिन की विधि पूर्ण कर रही है; अत: राजा एक भी शब्द नहीं बोला। राजा को अत्यन्त मजबूती से बाँधकर रानी ने ईशारे से अपंग को बुलाया और उसकी सहायता से यमुना के किनारे ले जाकर राजा को नदी में फेंक दिया और कुलटा अपंग के साथ वह अपनी कुत्सित मनोवृत्ति पूर्ण करने लगी। नीचता और कुलटापन की हद हो गई।

❖ ❖ ❖

जब पुण्य का उदय होता है तो मनुष्य भयंकर दु:खों से भी बच जाता है। राजा देवरति के भी कोई ऐसा पुण्य उदय हुआ कि जिससे वह नदी से बच गया। वह नदी से निकलकर मंगलपुर शहर के समीप पहुँचा। कितने ही दिनों से चलते रहने के कारण वह थक गया था; इस कारण अपनी थकावट दूर करने के लिए एक छायादार वृक्ष के नीचे सो गया। मानो कि जैनधर्म की छत्रछाया में नींद ले रहा हो।

मंगलपुर का राजा श्रीवर्धन नि:सन्तान था। उसकी उस समय मृत्यु हो गई, इसलिए मंत्रियों ने विचार-विमर्श करके एक हाथी को जल से भरा हुआ कलश देकर छोड़ा कि यह हाथी जिसका अभिषेक करेगा, वह राजा बनेगा। कर्म की लीला अपरम्पार है। कर्म, राजा को रंक और भिखारी को राजा बना देता है। जब देवरति का समय प्रतिकूल था, तब उसे रास्ते का भिखारी बना दिया और पुण्योदय होने पर उसे राजगद्दी पर बैठा दिया।

देवरति वृक्ष के नीचे सो रहा था। उसी समय हाथी ने आकर उसका अभिषेक किया। उसे धूमधामपूर्वक शहर में लाया गया और राज सिंहासन पर बिठाया।

पुण्य का उदय होने पर आपत्ति भी सुखरूप हो जाती है, इस कारण सुख की इच्छा करनेवालों को सदा धर्म पर विश्वास रखकर पूजा दान आदि शुभकार्य करना चाहिए।

देवरति फिर से राजा हो गया, परन्तु उसकी दशा पहले जैसी नहीं रही। वह स्वयं राजकाज सँभालने लगा। जिन बुराइयों के कारण राज्य से भ्रष्ट हुआ था, वह उनको अपने

www.vitragvani.com

पास फटकने भी नहीं देता था। स्त्री नाम से भी उसको घृणा थी। वह कुल कलंकी का बदला लेकर सभी स्त्रियों को कुल कलंकी कहने लगा। इसमें उसका दोष भी क्या था? दूध से जला हुआ मनुष्य छाछ को भी फूँक-फूँककर पीता है। वह दान देता था लेकिन एक भी लूले-लंगड़े को एक दाना भी देना पाप समझता था। वह एक अपंग के पाप का फल है।

❖ ❖ ❖

इधर रक्ता रानी ने कितने ही दिन अपंग के साथ रहकर मजा लिया। फिर अपंग को एक टोकरी में डालकर देश-विदेश घूमने लगी। वह जहाँ भी जाती, अपने को एक महासती प्रसिद्ध करती और कहती कि माता-पिता ने मुझे जिसके हाथ सौंपा, वही मेरा प्राणनाथ है। इस ठगाई में लोग बहुत धन देते थे। इस प्रकार भिक्षावृत्ति करते-करते वह मंगलपुर पहुँच गई। वहाँ भी लोगों को उसके सतीत्व पर अत्यन्त श्रद्धा हो गई। सत्य है, स्त्रियों ने जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश जैसे देवताओं को भी ठग लिया, तब उनके जाल में सामान्य मनुष्य ठगा जाये तो उसमें आश्चर्य ही क्या है?

एक दिन वे दोनों गाते-गाते राजमहल के सामने आये। द्वारपाल ने राजा से प्रार्थना की कि हे महाराज! एक स्त्री अपने अपंग पति को टोकरे में लेकर खड़ी है। वे दोनों बहुत ही सुन्दर गीत गाते हैं और महाराज के दर्शन करना चाहते हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो उनको अन्दर आने दें। सभासदों ने भी उनको देखने की इच्छा जाहिर की।

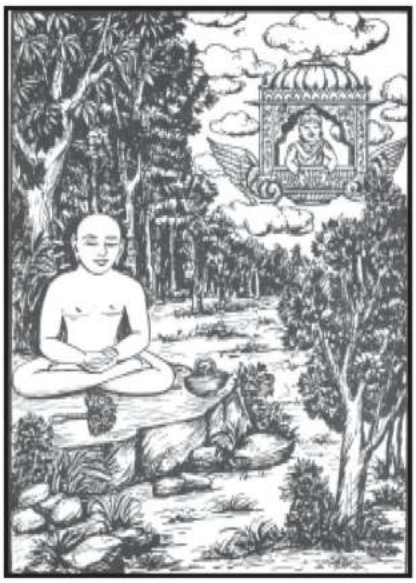

राजा ने परदा आड़े लगाकर उन दोनों को अन्दर आने की आज्ञा दी। तथाकथित सती सिर के ऊपर टोकरा लेकर अन्दर आई और उसने गीत गाया, जिससे सभी मुग्ध हो गये।

राजा ने आवाज सुनकर उस सती की सत्यता को पहचान लिया। परदा दूर करके कहा - अहा! यह

www.vitragvani.com

तो महासती हैं, इनका अतीत मैं अच्छी तरह जानता हूँ। तत्पश्चात राजा ने अपनी हकीकत (आत्मकथा) सभा को सुनाई। लोग इस हकीकत को सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और रक्ता को शहर से बाहर निकाल दिया गया।

स्त्रियों का चरित्र देखकर राजा देवरति को वैराग्य हो गया। उसने अपने पुत्र जयसेन को अयोध्या से बुलाकर इस राज्य का भार भी सौंप दिया और स्वयं यमधर आचार्य के समीप दीक्षा लेकर तपश्चर्या करने लगा। अन्त में समाधिपूर्वक शरीर त्यागकर स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ।

रक्ता रानी जैसी रानी का घृणित चरित्र देखकर, सांसारिक सुख को क्षणिक समझकर, जिस देवरति राजा ने मुनिपद ग्रहण किया, वे सर्वगुण सम्पन्न मुनिराज मुझे मोक्ष प्रदान करें। ●●

-आराधना कथाकोष में से

साक्षात् मोक्षतत्त्व! त्रिलोक के मुकुटमणि!!

जो श्रमण त्रिलोक के मुकुटमणि समान निर्मल विवेकरूपी दीपक के प्रकाश द्वारा, यथास्थित पदार्थ के निश्चय द्वारा, उत्सुकता छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो गये हैं, आनन्द की धारा में मस्त हो गये हैं, उपशमरस के साँचे में ढल गये हैं और उसमें से बाहर आने के लिए निरुद्यमी हो गये हैं; वन में बाघ, सिंह और भेड़िये चिंघाड़ते हों, तथापि निर्भय होकर स्वरूप के शान्तरस का / अतीन्द्रिय आनन्द का पान करते हैं-चूसते हैं, एक स्वरूप में ही अभिमुख होकर वर्तते हैं, उन श्रमण को साक्षात् मोक्षतत्त्व कहते हैं। अभी है तो साधकदशा, तथापि स्वरूप में ही अभिमुखरूप से वर्तते श्रमण को साक्षात् मोक्षतत्त्व कहते हैं।

अहाहा! पञ्चमकाल के सन्त मुनि, पञ्चमकाल के श्रोता से यह कहते हैं। स्वरूप में वर्तते सन्त को साक्षात् मोक्षतत्त्व कहा है, क्योंकि उन्हें अल्पकाल में मोक्ष होना है, इसलिए उस अल्पकाल को गौण करके साक्षात् मोक्षतत्त्व कहते हैं।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, बोल ४८४

49 महासती अंजना के पूर्वभव का प्रसंग

जिन-प्रतिमा के अनादर का भयंकर फल

विद्याधर राजा महेन्द्र की पुत्री अंजना को एक दिन गेंद से खेलती देखकर, उसके पिता को पुत्री की उम्र विवाह योग्य हुई जानकर चिन्ता होने लगी। उन्होंने राजकन्या के वर की शोध के लिये मंत्रियों के साथ विचार-विमर्श किया। विचार करके राजा प्रहलाद के पुत्र पवनकुमार के साथ विवाह करना निश्चित किया। पवनकुमार के पिता को सगाई का दस्तूर भेजा गया। राजा प्रहलाद ने भी उसे स्वीकार कर लिया और विवाह का दिन निश्चित कर लिया। पवनकुमार, अंजना के रूप का वर्णन सुनकर उसे देखने के लिये अतिव्याकुल हो गया। अंजना के रूप को देखकर वह अति प्रसन्न हुआ।

उस समय उसकी सखी बसन्तमाला पवनकुमार की प्रशंसा कर रही थी। तभी दूसरी सखी मिश्रकेशी मुँह बिगाड़कर बोली कि इसके बजाय विद्युतप्रभ के साथ अंजना का विवाह निश्चित होता तो अति उत्तम होता। इस प्रकार दोनों सखियाँ बोल रहीं थी परन्तु अंजना शर्म वश मौन थी। यह देखकर पवनकुमार को गुस्सा आया और उन्होंने अंजना के साथ विवाह तो किया; परन्तु बाईस वर्षों तक उसके सन्मुख देखा तक नहीं। इस कारण अंजना महा दुःखी रहती थी।

❖ ❖ ❖

एक बार पवनकुमार को रावण की सहायता के लिये जाना पड़ा। उस समय अंजना, पवनकुमार के दर्शन के लिये बाहर खड़ी रही परन्तु उस राजकुँवर ने उसकी तरफ नजर पड़ते ही उसका तिरस्कार किया, इससे अंजना अति दुःखी हुई।

www.vitragvani.com

पवनकुमार, रावण की सहायता के लिये चला गया। चलते हुए उसने रास्ते में मानसरोवर के पास पड़ाव डाला और वह वहाँ झरोखे में बैठा था। उस समय एक चकवी, चकवे के नहीं आने से इधर-उधर फिरती हुई व्याकुलित हो रही थी। यह दृश्य देखा तो पवनकुमार को अपनी प्रिया अंजना का विचार आया कि अरे! यह चकवी, चकवे के लिये व्याकुल होकर तड़फती रही है तो अंजना की क्या दशा होती होगी? अरे! मैंने उसे बहुत दु:ख दिया है। अंजना का तो कोई अपराध नहीं था। निन्दा के वचन तो उसकी सखी बोली थी और मैंने बिना विचारे अंजना का बाईस वर्षों तक त्याग कर दिया। अब उस सती से मिले बिना मुझको चैन नहीं मिलेगा। - ऐसा विचार कर उन्होंने अपने मित्र प्रहस्त से बात की और तुरन्त गुप्तरीति से विमान में बैठकर अंजना के महल में पहुँच गये।

अचानक पवनकुमार के आने से अंजना के हर्ष का पार नहीं रहा। पवनकुमार ने अपनी भूल के लिये सती से क्षमायाचना की। अंजना ने शर्माते हुए कहा कि हे नाथ! आपका कोई दोष नहीं है, मेरे पूर्व कर्मोदय से ही ऐसा हुआ है। अब आपने कृपा की है, इससे मैं धन्य हुई हूँ।

इस प्रकार प्रेम पूर्ण वार्तालाप करके पवनकुमार जिस गुप्त रीति से आये थे, उसी गुप्त रीति से वापस जाने हेतु तत्पर हुए। कुमार को जाने के लिए उद्यत देखकर अंजना कहने लगी कि हे नाथ! मेरा ऋतुकाल है; अत: यदि गर्भ रहेगा तो मेरी क्या दशा होगी? इस कारण आप माता-पिता से मिलकर जाओ परन्तु पवनकुमार को माता-पिता को मुख दिखाने में शर्म आती होने से उन्होंने अपना कड़ा और अंगूठी माता-पिता को बताने को कहा और अपने मित्र के साथ वापस सैन्य समूह के बीच पहुँच गये।

❖ ❖ ❖

इधर थोड़ा समय व्यतीत होने पर अंजना का गर्भ प्रगट हुआ। इस कारण अंजना की सास केकुमति ने उसका बहुत तिरस्कार किया और

www.vitragvani.com

अंगूठी बताने पर भी मान्य नहीं किया। उसने क्रूर सामन्त को बुलाकर अंजना को महिन्द्रनगर भिजवा दिया। अंजना महिन्द्रनगर पहुँचकर पिता के महल के द्वार पर खड़ी हुई।

द्वारपाल ने अंजना के आने की सारी हकीकत राजा से कही, जिसे सुनकर पिता महेन्द्र राजा ने कहा कि – इस कुल कलंकिनी को कोई भी मेरे राज्य में प्रवेश नहीं करने दे। इस प्रकार माता-पिता से भी तिरस्कार पकर अंजना वन-जंगल में जाती है। चलते-चलते एक गुफा आती है। वहाँ देखा तो मुनिराज ध्यान में बैठे थे। जब मुनिराज ने ध्यान पूर्ण किया तो अंजना पूछती हैं कि प्रभो! मैंने कैसे पाप किये हैं कि जिससे पति और माता-पिता से मैं तिरस्कार को प्राप्त हुई हूँ और जंगल में भटक रही हूँ। हे प्रभो! मेरे सन्देह के निवारण हेतु मेरे इस पापोदय का कारण बतलाने का अनुग्रह करें।

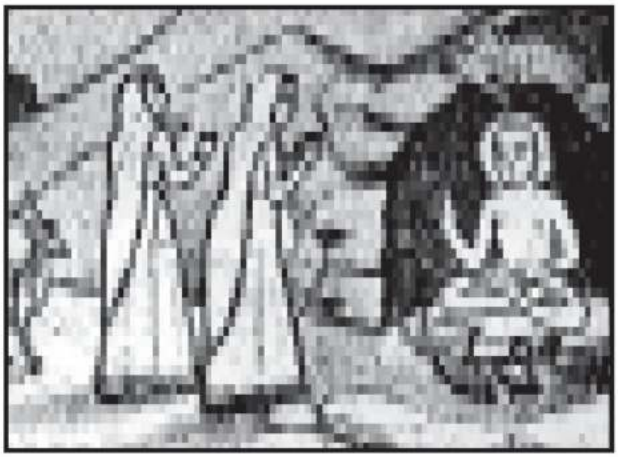

अवधिज्ञानी मुनिराज कहने लगे – हे पुत्री! पूर्व जन्म में तू अरुणपुर के राजा सुकंद की कनकोदरी नाम की रानी थी। तूने पटरानी पद के अभिमान से अपनी सौत पर क्रोध करके जिनेन्द्र-प्रतिमा को जिनमन्दिर में से बाहर निकाल दिया। उस समय संयमश्री नामक आर्यिका आहार के लिये आई परन्तु उन्होंने जिनप्रतिमा के अनादर के कारण पारणा नहीं किया और जाते-जाते तुम्हें समझाते गई कि हे भोली! तूने जिनप्रतिमा का अनादर करके महान पाप किया है। देव-शास्त्र-गुरु के अनादर का फल नरक में महान दु:ख भोगना है। इस प्रकार समझाने से तुमने नरक के दु:ख से डरकर बहुत पश्चाताप किया। जिनप्रतिमा को धूम-धाम से मन्दिर में पधराकर जिनेन्द्र की पूजा-भक्ति करके श्रावक के व्रत ग्रहण किये। यदि आर्यिकाजी ने नहीं समझाया होता तो तू अधोगति में चली जाती। जिनेन्द्र प्रतिमा का अनादर देखकर यदि आर्यिकाजी तुझे सम्बोधन नहीं करती तो उन्हें भी प्रमाद का दोष लगता। इस कारण उन्होंने तुझे धर्म का

www.vitragvani.com

उपदेश देकर पाप से पराङ्मुख किया। तत्पश्चात् तू धर्म का विशेष आराधन करके समाधिमरण करके स्वर्ग में गई और वहाँ से आकर राजा महेन्द्र के यहाँ जन्म लिया।

हे पुत्री! जिनप्रतिमाजी के अनादर के फल में पति द्वारा तेरा तिरस्कार हुआ, कुटुम्ब द्वारा तेरा अनादर हुआ। अब तेरा पापकर्म टल गया है। अब पुण्य के योग से तुझे पति का मिलाप होगा। इस प्रकार सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाकर, वे वीतरागी सन्त अन्यत्र गमन कर गये।

तत्पश्चात् उसी गुफा में हनुमानजी का जन्म होता है और अंजना के मामा जंगल में आ पहुँचते हैं। वे उसे अपने घर ले जाते हैं और पवनकुमार भी आकर मिलते हैं।

अंजना की यह कथा पद्म पुराण में विस्तार से है, यहाँ तो मात्र उसका संक्षिप्त सार दिया गया है कि देव-शास्त्र-गुरु की विराधना-अनादर-तिरस्कार के भाव से कैसे-कैसे नरकादि दु:ख भोगने पड़ते हैं।

यह कथा हमें बोध देती है कि देव-शास्त्र-गुरु की किसी भी प्रकार से मन-वचन-काया से अथवा कृत-कारित-अनुमोदन से की गई विराधना महान पाप का कारण है; अत: स्वप्न में अथवा मजाक में भी वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की विराधना के महापाप से बचना चाहिए।●●

- पद्मपुराण में से

दीक्षा के लिए तैयार भगवान शान्तिनाथ की भावना

'जिस मार्ग पर अनन्त तीर्थङ्कर चले, उसी पथ का मैं पथिक बनूँगा। हमारे पुरुषार्थ की धारा टूटेगी नहीं, हम अप्रतिहत पुरुषार्थवाले हैं; अब हम अपने स्वभाव में ही ढलते हैं। जिस निर्विकल्प स्वभाव के गीत हम गाते थे, उसे प्रगट करने को अब हम तैयार हैं, अब हमारे स्वरूप में ठहरने का समय आ गया है। अब स्वभाव में लीन होने का भाव जागा है, उसे हम शिथिल नहीं होने देंगे। अखण्डानन्द स्वभाव की भावना के सिवाय अब हमें पुण्य-पाप का भाव नहीं आयेगा।' – दीक्षा के लिए तैयार शान्तिनाथ भगवान ऐसी भावना भाते थे।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, महामहोत्सव प्रवचन, पृष्ठ ३१

50 नाटक में एक जीव के दो स्वाङ्ग

एक था राजकुमार..... उसका एक मित्र कलाकार बहुरूपी था। विविध स्वाङ्ग धारण करने में वह बहुत कुशल था। उसका नाम था ब्रह्मगुलाल।

एक बार राजकुमार के सामने विवाद उपस्थित हुआ, क्योंकि वह राजकुमार 'ब्रह्मगुलाल' कलाकार की बहुत प्रशंसा करता था परन्तु उसकी मित्र मण्डली को यह बात अच्छी नहीं लगती थी। मित्र कहते कि तुम उसकी अनुचित प्रशंसा करते हो, उसकी कला साधारण श्रेणी की है, उसमें भाव परिवर्तन की स्वाभाविक शक्ति नहीं है, जो कला के विद्वानों को सन्तुष्ट कर सके।

राजकुमार उसकी कला को सर्वश्रेष्ठ साबित करना चाहता था, उसे उसकी कला में एक विशेष आकर्षण दिखाई देता था परन्तु उसके गुणद्रोही दुर्जन मित्रों को एक जैन कलाकार की प्रशंसा असहनीय थी; अत: वे उससे बहुत द्वेष रखते थे।

एक दिन की बात है, जब राजकुमार का एक सगा-सम्बन्धी आया, राजकुमार ने मुक्तकण्ठ से कलाविद् ब्रह्मगुलाल के भाव परिवर्तन की प्रशंसा की, तब उसकी प्रशंसा सुनकर राजकुमार के अन्य मित्र उत्तेजित हो गये और एक मित्र ने कहा -

'इस प्रकार का स्वाङ्ग रच लेना यह तो एक साधारण का कार्य है। हाँ, यदि ब्रह्मगुलाल सचमुच में कलाकार है तो हम उसकी कला की परीक्षा की माँग करते हैं, जहाँ वह अपनी उच्च-कोटि की कला का परिचय दे।'

राजकुमार को तो ब्रह्मगुलाल की स्वाभाविक कला प्रदर्शन की शक्ति का पूरा विश्वास था, उसने तुरन्त कहा - 'मित्रों! तुम खुशी से उसकी परीक्षा कर सकते हो। तुम जो भी स्वाङ्ग उसे करने को कहोगे, वह तैयार है।'

www.vitragvani.com

मित्रों ने कहा – 'हम आज उसे सिंह के रूप में देखना चाहते हैं।'

'आप उसे जिस रूप में देखना चाहते हो, उस रूप में देख सकते हो।' दृढ़तापूर्वक राजकुमार ने स्वीकार किया।

'परन्तु' – दूसरे मित्र ने कहा – 'मात्र भेष धारण कर लेना तो साधारण बात है परन्तु इसमें सचमुच सिंह के समान पराक्रम और तेज होना चाहिए।'

'उसके लिए वह सब शक्य है।' राजकुमार ने जवाब दिया।

मित्र मण्डली अपने हृदय की भावना पूरी करना चाहती थी, जिसका उन्हें आज अवसर भी मिल गया था, उन्होंने कहा –

'अच्छा, तो आज हम सिंह का पराक्रम देखना चाहते हैं।'

ठीक है, आपकी इच्छा पूर्ण होगी। ऐसा कहकर राजकुमार ने उन सबको विश्वास दिलाया। (अरे रे! राजकुमार मित्र-मण्डली के प्रपञ्च में फँस गया।)

❖ ❖ ❖

नाट्यकला विशारद ब्रह्मगुलाल पद्मावती पोरवाल जाति का एक जैन युवक था, उसका जन्म विक्रम संवत् १६०० के लगभग टापा नगर में हुआ था, टापानगर की राजधानी सुदेश थी। ब्रह्मगुलाल को बाल्यकाल से ही नाट्यकला से प्रेम था और अब जवानी में उसकी नाट्यकला का पूर्ण विकास हो चुका था।

राजकुमार की सभा में वह बारम्बार अपनी कला का प्रदर्शन करता था, भाव-परिवर्तन की अद्भुत कला पर राजकुमार और उसके मित्र मुग्ध थे। दर्शकों का हृदय अपनी ओर आकर्षित करने की उसमें विचित्र शक्ति थी, जो स्वाङ्ग वह धारण करता, उसमें स्वाभाविकता का वास्तविक दर्शन होता था – ऐसा होने पर भी राजकुमार के कितने ही मित्र उससे प्रसन्न न थे, वे किसी भी प्रकार से उसे अपमानित करने का अवसर देख रहे थे। अब जब उन्हें यह अवसर मिल ही गया तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उपरोक्त प्रकार से परीक्षा लेना निश्चित किया।

❖ ❖ ❖

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

राजकुमार ने ब्रह्मगुलाल को बुलाकर कहा – 'कलाविद् बन्धु! आज तुम्हें अपनी कला को अच्छी तरह से दिखाना पड़ेगा, मेरी मित्र-मण्डली आज तुम्हारी परीक्षा करना चाहती है।'

ब्रह्मगुलाल यह रहस्यभरी बात सुनकर विचार में पड़ गये.... वे इस बात का रहस्य खोलना चाहते थे.... अत: उन्होंने कहा –

'कुमार! क्या अभी तक तुम्हारी मित्र-मण्डली हमारी परीक्षा नहीं कर पायी? हमारी कला का प्रदर्शन तो यहाँ बहुत समय से हो रहा है। फिर आज यह नया विचार कैसा?'

'कलाविद्! आज तुम्हें अपनी कला की परीक्षा देनी ही होगी, क्योंकि तुम्हारी प्रत्येक कला का प्रदर्शन महत्वशाली और आकर्षक होता है। आज तुम्हें पहले से अधिक अच्छा स्वाङ्ग करना पड़ेगा।' – राजकुमार ने यह माँग की।

ब्रह्मगुलाल ने कहा – 'आखिर यह तो बताओ.... कि मेरी यह परीक्षा क्यों करवाना चाहते हैं।'

'तुम सिंह का पराक्रम जानते हो, आज तुम्हें सिंह का पराक्रम बताना ही होगा।' – राजकुमार ने बात स्पष्ट की।

'यह सब कुछ हो सकता है, परन्तु...' ब्रह्मगुलाल ने कहा – 'तुम्हें भी कुछ करना होगा।'

राजकुमार ने कहा – 'मैं सब करुँगा, बताओ! ऐसा कौनसा कठिन कार्य है जो मेरे लिये असम्भव हो?'

'आपको महाराज से एक प्राणी के वध की मंजूरी लाना होगी, उसके बाद आप अपनी रङ्गशाला में सिंह का पराक्रम देख सकेंगे।' – ब्रह्मगुलाल ने गम्भीरता से कहा

'ठीक है, मैं तुम्हारी व्यवस्था करुँगा।' – राजकुमार ने स्वीकृति दी। (रे भवितव्य!)

❖ ❖ ❖

राजकुमार नाट्यशाला में आज विशेष शृङ्गार करके आया था। राजकुमार स्वयं

www.vitragvani.com

एक सुन्दर सिंहासन पर बैठा था, उसके आस-पास मित्र-मण्डली बैठी थी। नागरिक भी आज सभा मण्डप में सिंह का वास्तविक स्वाङ्ग देखने के लिये उत्सुकता-पूर्वक आ रहे थे। थोड़ी देर में सभा-मण्डप खचाखच भर गया। राजकुमार के मित्रों की सूचना से एक बकरा मँगाकर सिंहासन के बाजू में ही बाँध दिया गया था। उपस्थित जनता, सिंह के असली स्वाङ्ग को देखने के लिये आतुरता से प्रतीक्षा कर रही थी।

अचानक एक भयानक सिंह ने छलाँग मारकर सभा-मण्डप में प्रवेश किया। लोग उसे आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे। वैसा ही रूप, वैसा ही भाव, वैसा ही तेज, वैसा ही पराक्रम था। सिंह का भयानक रूप देखकर सभासद थोड़ी देर को स्तम्भित ही रह गये। बालक इस सिंह का विकरालरूप देख कर भयभीत होकर भागने लगे, जबकि यह तो सिंह का सारा बनावटी स्वाङ्ग था तो भी सिंह की सारी क्रूर चेष्टाएँ उसमें समाहित थी। सिंह आकर राजकुमार के सामने तीव्र गर्जना करके थोड़ी देर खड़ा रहा।

सिंह की तीव्र गर्जना और भयानकरूप देखकर राजकुमार डरा नहीं, बल्कि उसने सिंह को वैसा का वैसा खड़ा देखकर उग्र स्वर में कहा -

'अरे! तू कैसा सिंह है? सामने बकरा बँधा है और तू इस प्रकार गधे के समान चेष्टारहित खड़ा है। क्या यही सिंह का पराक्रम और शक्ति है? नहीं, सचमुच तू सिंह नहीं, यदि तू सिंह होता तो क्या यह बकरा तुम्हारे सामने इस प्रकार जीवित रह सकता था?'

राजकुमार के शब्दों को सुनते ही... सिंह की आँखें लाल हो गयी... और अपने पञ्जों को उठाकर वह कूदा....।

राजकुमार के मित्र इस दृश्य को देखकर प्रसन्न हुए। वे यह विचार करने लगे -

'यह ब्रह्मगुलाल अहिंसा पालक है, वह किसी प्रकार की हिंसा नहीं कर सकता, अत: सिंह का स्वाङ्ग निभाने में जरूर निष्फल होगा और हमारी विजय होगी। यदि वह हिंसा का कार्य करेगा तो जैन समाज से तिरष्कृत होगा। अपने धर्म के विरुद्ध जाकर वह इस प्रदर्शन को जीव-हिंसा से नहीं रङ्ग सकता।'

अभी वे इस प्रकार का विचार कर ही रहे थे कि वहाँ तो... सिंह अपने पञ्जे

www.vitragvani.com

उठाकर एक छलांग में राजकुमार के सिंहासन के पास पहुँच गया... और... एक झटके में उसने अपने पञ्जों से राजकुमार को सिंहासन से नीचे पछाड़ दिया। चारों ओर से करुण चित्कार के कारण नाटक का रङ्ग मण्डप गूँज उठा। दर्शकों का हृदय किसी भयानक घटना की आशङ्का से काँप उठा... और... दूसरे ही क्षण दर्शकों ने देखा कि राजकुमार का मरा शरीर सिंहासन के नीचे पड़ा है। सिंह के तीव्र पञ्जों का आघात वह सहन नहीं कर सका और उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी।

एक क्षण में नाटक मण्डप का दृश्य विषाद के रूप में बदल गया... आनन्द के स्थान पर शोक छा गया। सिंह का काम समाप्त हो गया था। सिंह का स्वाङ्ग पूरा करके ब्रह्मगुलाल अब अपने वास्तविकरूप में आ गया था।

इस प्रकार विषाद की घनघोर छाया के साथ नाट्य-विशारद का कार्य पूरा हुआ।

❖ ❖ ❖

महाराज ने राजकुमार की मृत्यु का समाचार सुना... परन्तु वे निरुपाय थे, क्योंकि ब्रह्मगुलाल को सिंह के स्वाङ्ग के लिये एक प्राणी के वध की मंजूरी उन्होंने स्वयं दी थी। शोक के अलावा अब उनके पास कोई दूसरा उपाय नहीं था। हाँ, एक उपाय था और वह था वैराग्य का उपाय।

राजकुमार की अपमृत्यु से राजा का हृदय अत्यन्त शोकमग्न था, प्रयत्न करने पर भी अपने दु:ख को भुला नहीं पा रहे थे। ब्रह्मगुलाल के इस कृत्य से राजा का हृदय एक भयङ्कर विद्वेष से भर गया था और वे किसी भी प्रकार उससे बदला लेना चाहते थे। बदला लेने के लिए उनका हृदय उत्तेजित हो रहा था और वह अवसर की राह देखने लगे, तभी एकाएक उनके मन में एक विचार आया।

एक दिन राजा ने ब्रह्मगुलाल को अपने पास बुलाकर कहा -

'कलाविद्! सिंह का स्वाङ्ग तो तुमने बहुत सफलतापूर्वक किया... तुम्हारे रौद्ररूप का दर्शन तो हो चुका। अब मैं तुम्हारे शान्तरूप का दर्शन करना चाहता हूँ... तुम दिगम्बर साधु का स्वाङ्ग धारण करके मुझे वैराग्य का उपदेश दो... जिससे पुत्र शोक से सन्तापित मेरे हृदय में शान्ति हो।'

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

महाराज की यह आज्ञा रहस्यपूर्ण थी। उसे सुनकर ब्रह्मगुलाल विचार में पड़ गया... परन्तु दूसरे ही क्षण निर्णय करके उसने कहा –

'महाराज! आपकी आज्ञा मान्य है परन्तु आपको थोड़ा समय देना होगा।'

अपने मन की इच्छा पूरी होती देख राजा प्रसन्न हुआ और उसने कहा –

'ठीक है, जितना समय तुम्हें चाहिये उतना ले सकते हो परन्तु साधु का अच्छे से अच्छा, ऊँचे से ऊँचा उपदेश देकर तुम्हें मेरे शोक-संतप्त हृदय को शान्त करना होगा।'

'अवश्य' – ऐसा कहकर ब्रह्मगुलाल अपने घर चला गया।

❖ ❖ ❖

महाराज की आज्ञानुसार साधुपने का स्वाङ्ग धारण करने के लिये ब्रह्मगुलाल ने निश्चय कर लिया था परन्तु कार्य कठिन था। इसमें पूरे जीवन की बाजी लगानी थी क्योंकि वह जानता था कि जैन साधुओं का पवित्र स्वाङ्ग, मात्र देखने के लिये नहीं होता। एक बार जिसने धारण किया, उसके बाद फिर गृहस्था नहीं होता। साधु का स्वाङ्ग धारण करना कोई मजाक नहीं है, उसके अन्दर एक महान आत्मभावना समाहित होती है।

ऐसे साधु का स्वाङ्ग धारण करने के लिये पहले उसने दृढ़ होकर वैराग्य भावनाओं का चिन्तन किया और अपने हृदय को संसार से विरक्त बना लिया। उसका पूरा समय आत्म-चिन्तन और आत्मभावनाओं में ही बीतने लगा। वे विरक्ति को वास्तविकरूप देना चाहते थे। स्व-पर के भेद-विज्ञानरूप तत्वाभ्याससहित उन्होंने संसार विरक्ति के जोरदार अभ्यास में प्रवीणता प्राप्त कर ली। उनके अन्तर में उत्साह तो था ही, **अहो! साधुदशा का सुन्दर अवसर आया है। संसार के पाप स्वाङ्ग तो बहुत धारण किये, अब धर्म का सच्चा स्वाङ्ग करने का धन्य अवसर आया है।**

ऐसी धर्मभावनापूर्वक थोड़े समय में उन्होंने अपने अन्तर में पूर्ण विरक्ति जागृत कर

www.vitragvani.com

ली और अब वे गृहजाल का बन्धन तोड़ने में समर्थ हो गये थे। सम्यक्त्व और आत्मज्ञान के प्रकाश से उनकी आत्मा जगमगा रही थी, वासना की बेड़ियाँ टूट गयी थी। हृदय शान्तरस से भर गया था। उनके जीवन में अचानक आये परिवर्तन को देखकर परिवारजन आश्चर्यचकित रह गये थे।

वैराग्य से भरपूर साधु स्वाङ्ग में प्रवेश करने की पूर्ण तैयारी के बाद ब्रह्मगुलाल ने अपने माता-पिता और पत्नी के पास जाकर सारा रहस्य प्रगट किया और साधु होने के लिये मंजूरी माँगी।

वे सभी तो बहुत मोहासक्त थे... ब्रह्मगुलाल के वैराग्य की बात सुनकर उनका मोह उमड़ पड़ा और उन्होंने एक बार तो ब्रह्मगुलाल को पुनः मोहसागर में ले जाने का प्रयत्न किया, परन्तु उन्होंने तो अपने आत्मा को मोहसागर से बहुत ऊँचा उठा लिया था, अब मोह की लहरें उन्हें स्पर्श नहीं कर सकती थी। अपने पवित्र उपदेश के द्वारा उन्होंने अपने माता-पिता और पत्नी के हृदय के मोहजाल को तोड़ दिया और उज्ज्वल भावनाओंसहित ब्रह्मगुलाल वन की ओर चले गये।

जंगल में जाकर उन्होंने अपने सभी वस्त्र उतार दिये और दिगम्बर होकर एक स्वच्छ शिला के ऊपर पद्मासन होकर बैठ गये, फिर उन्होंने अपने हृदय की उत्कृष्ट भावनापूर्वक श्री पञ्च परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार करके, स्वयं साधु दीक्षा ग्रहण की... और आत्मध्यान में लीन हो गये।

संसार नाटक के अनेक स्वाङ्गों को धारण करनेवाला कलाविद्, एक क्षण में आत्मकला का उपासक बन गया... अब उनका हृदय आत्मज्ञान और शान्तरस से भरपूर था, उन्हें न कोई इच्छा थी और न ही कोई कामना। संसार नाटक का स्वाङ्ग पूरा करके अब उन्होंने मुक्तिसाधक मुनिदशा का स्वाङ्ग शुरु किया था। रौद्ररूप से भाव-परिवर्तन करके आत्मा को शान्तरसरूप किया था। धन्य है! इनकी भाव-परिवर्तन की कला!!

❖ ❖ ❖

प्रभात का सुन्दर समय है। महाराज अपने सिंहासन पर विराजमान है... सभासद भी बैठे हैं... इसी समय जिन्होंने प्राणी मात्र के ऊपर समभाव धारण किया हे और जो

www.vitragvani.com

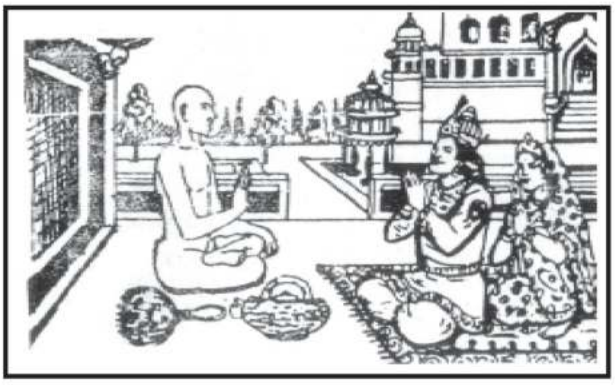

शान्तरस में मग्न हैं – ऐसे साधु ब्रह्मगुलालजी राजभवन में आते दिखे। राजा ने दूर से ही साधु के पवित्र वेष को देखा, तुरन्त ही उठकर साधु को आमन्त्रित किया। उन्हें उच्च आसन पर विराजमान किया और धर्मोपदेश सुनने की इच्छा व्यक्त की। मुनिराज ब्रह्मगुलालजी ने पवित्र आत्मतत्व का विवेचन किया।

'राजन! आत्मतत्व में अनन्त शक्तियाँ हैं, क्षणमात्र में अपने भावों का परिवर्तन करके पामर से परमात्मा बन जाने की तुममें ताकत है, इसलिए शोकभाव छोड़कर शान्तभाव प्रगट करो।'

मुनिराज ब्रह्मगुलालजी का ऐसा दिव्य उपदेश सुनकर महाराज के हृदय का शोक नष्ट हो गया, उनके मन का पाप धुल गया, अन्तर में से द्वेष की ज्वाला शान्त हो गयी। ब्रह्मगुलालजी के पवित्र व्यक्तित्व पर आज पहले ही दिन महाराज को अनन्य श्रद्धा हो गयी। हर्षित हृदय से उन्होंने कहा –

'ब्रह्मगुलालजी! आपने महात्मा के कार्य को जैसा का तैसा पालन किया है, साधु-स्वाङ्ग धारण करके आपने हमारे मन से शोक मिटा दिया है। मैं आपके इस साधु-स्वाङ्ग को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिए आप इच्छित वरदान माँगो; अब जो आप माँगोगे, वह मैं देने के लिये तैयार हूँ।'

ब्रह्मगुलालजी को साधु-स्वाङ्ग से भ्रष्ट करने के लिये प्रलोभन के रूप में यह एक जाल फेंका गया था, परन्तु वे इसमें नहीं फंसे, वे बोले –

'महाराज! आप एक दिगम्बर साधु के सामने ऐसे अनुचित शब्दों का प्रयोग क्यों कर रहे हैं? राजन्! क्या आप नहीं जानते कि जैन साधुओं को राज्यवैभव की इच्छा नहीं होती, उन्हें अपने आत्मवैभव के साम्राज्य के सामने संसार के वैभव की लेशमात्र इच्छा नहीं है।

www.vitragvani.com

'हे नरेश्वर! ममता के सभी बन्धनों को मैंने तोड़ दिया है, अब मैं निर्ग्रन्थ जैन साधु हूँ और मुझे आपसे किसी भी वस्तु की अभिलाषा नहीं है; मैं तो मुक्तिपथ का पथिक हूँ, पूर्ण स्वतन्त्रता हमारा ध्येय है, आत्मध्यान मेरी सम्पत्ति है, अपनी सम्पत्ति से मैं सन्तुष्ट हूँ; इसके अलावा मैं और कुछ नहीं चाहता।'

ब्रह्मगुलालजी की एक बार और परीक्षा करने के लिये राजा ने कहा –

'परन्तु आपने यह साधुवेष तो मात्र स्वाङ्ग के लिये ही ग्रहण किया है, और यह तो मेरी इच्छा पूरी करने के लिये ही किया था, जिससे उसमें कोई वास्तविकता नहीं होनी चाहिए। तुम्हारे स्वाङ्ग का कार्य पूरा हुआ, अब तुम्हें यह स्वाङ्ग बदल लेना चाहिए और इच्छित वैभव प्राप्त करके अपना जीवन सुखमय व्यतीत करना चाहिए।'

जिनके हृदय में समतारस का सिन्धु उछल रहा हो – ऐसे ब्रह्मगुलालजी ने हृदय की दृढ़ता व्यक्त करते हुए कहा –

'राजन्! साधु का वेष स्वाङ्ग के लिए नहीं लिया जाता, मुनि दीक्षा, मात्र स्वाङ्ग करने जैसी वस्तु नहीं है, इसमें तो जीवन पर्यन्त के ज्ञान और वैराग्य की साधना होती है। मैं सांसारिक वैभव का त्याग कर चुका हूँ, जिससे वे मेरे लिए उच्छिष्ट वस्तु के समान हैं; विवेकीजन उच्छिष्ट वस्तु का पुनः ग्रहण नहीं करते। मैं, अब मात्र स्वाङ्गधारी साधु नहीं, मेरी अन्तरात्मा वास्तविक साधु होकर आत्मसाधना में रम रही है, जिसमें अब राज्य वैभव के प्रलोभन के लिए कोई स्थान नहीं है। मेरी वासना मर गई है और अब मैं साधु पद के कर्तव्य में स्थिर हूँ। अब मैं अपने आत्मकल्याण के स्वतन्त्र मार्ग पर ही विचरण करूँगा और जगत् को दिव्य आत्मधर्म का सन्देश सुनाऊँगा। आप मेरे मन को विचलित करने का निष्फल प्रयत्न न करें।'

मुनिराज ब्रह्मगुलालजी की वैराग्य से ओतप्रोत वाणी सुनकर राजा आश्चर्यचकित होकर उन्हें देखता रहा... तभी ब्रह्मगुलाल मुनिराज खड़े हुए... और अपनी पीछी–कमण्डल लेकर मन्द –मन्द गति से जंगल की ओर चले गये। ●●

(बोधि-समाधि निधान से)

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

51 सुभोम चक्रवर्ती की कथा

समस्त देवताओं द्वारा पूजित जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके आठवें सुभोम चक्रवर्ती की कथा कहते हैं।

ईर्ण्यावान नगर के राजा का नाम कीतिवीर्य था। उसकी रानी का नाम रेवती था। सुभोम उनका इकलौता ही पुत्र था। उसके यहाँ एक जयसेन नाम का रसोईया था। एक दिन भोजन के समय रसोईया ने चक्रवर्ती को गरम-गरम स्वादिष्ट खीर परोसी। गरम खीर से चक्रवर्ती का मुँह जलने लगा। उसने गुस्से में आकर गरम खीर का बर्तन रसोईया के सिर पर पटक दिया, जिससे उसका सिर जल गया और वह कष्ट से मरकर लवण समुद्र में व्यन्तर देव हुआ।

जब उसे कुअवधिज्ञान से अपने पूर्व भव का ज्ञान हुआ तो उसे चक्रवर्ती पर बहुत गुस्सा आया। बदले की भावना से उसका शरीर जलने लगा। वह तपस्वी का वेश बनाकर चक्रवर्ती के पास पहुँचा। उसके हाथ में मधुर और सुन्दर फल थे। उसने चक्रवर्ती को वह फल दिये, जिन्हें खाकर चक्रवर्ती बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उस तापस से कहा – महाराज! यह फल तो बहुत मीठे हैं, तुम इनको कहाँ से लाये हो और अब कहाँ मिलेंगे?

तापस रूपधारी व्यन्तर देव ने कहा हे राजन्! समुद्र के मध्य में एक छोटा-सा टापू है, वहाँ मैं निवास करता हूँ। यदि आप इस गरीब पर दया करके मेरे घर को पवित्र करो तो ऐसे अनेक फल भेंट में प्रदान करुँगा।

www.vitragvani.com

चक्रवर्ती लोभ में आकर व्यन्तर के झांसे में आ गया और उसके साथ चल निकला। जब व्यन्तर समुद्र के बीच में पहुँचा तो उसने अपना असली रूप प्रगट करके कहा – हे दुष्ट! जानता है। मैं तुझे यहाँ किसलिए लाया हूँ? मैं तेरा रसोईया था। तूने मुझे निर्दयता से जलाया था। आज मैं उसका बदला लेने के लिए ही तुझे यहाँ लाया हूँ। बोल, तेरी गति कैसी होनी चाहिए? यदि तू मृत्यु से बचना चाहता है तो उसका एक ही उपाय है, जिससे तू बच सकता है।

अपने प्राणों की रक्षा के लिए मनुष्य अच्छे-बुरे का विचार नहीं करता। यही दशा उस चक्रवर्ती की हुई। उसने यह विचार नहीं किया कि मेरी क्या गति होगी। व्यन्तर देव के कहने से उसने नमस्कार मन्त्र लिखकर मिटा दिया और तुरन्त ही देव ने उसको मारकर समुद्र को अर्पण कर दिया। इस कृत्य के पूर्व व्यन्तर देव का साहस जगत पूज्य तीर्थंकर देव के भक्त को मारने का नहीं हुआ क्योंकि संभव है, उस समय कोई जिनशासन का भक्त अन्य देव भी उसकी रक्षा करे परन्तु नमस्कार मन्त्र लिखकर मिटा देने से व्यन्तर समझ गया कि यह जिनशासन का दोषी है; अत: उसको मार दिया।

चक्रवर्ती इस पाप के फल में सातवें नरक में गया। धिक्कार है ऐसी लंपटता को, जिससे संसार के सम्राट को दुर्गति भोगनी पड़ी। जो जिनधर्म में विश्वास नहीं करता, उसे सातवें नरक में जाना पड़े तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिनशासन की अश्रद्धारूप मिथ्यादर्शन संसार-परिभ्रमण का कारण है और सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण है; अत: सुख प्राप्त करने के लिए आठ अंगसहित सम्यग्दर्शन का पालन करना चाहिए। ●●

-आराधना कथाकोष में से संक्षिप्त सार

52 रात्रि भोजन-त्याग का प्रभाव

ज्ञानचक्षु द्वारा तीन लोक को जानने-देखनेवाले भगवान जिनेन्द्र को नमस्कार करके सागरदत्त की कथा लिखते हैं।

एक बार धनमित्र, धनदत्त आदि सेठ व्यापार के लिए कौशाम्बी से चलकर राजगृही की तरफ रवाना हुए। रास्ते में एक जंगल में उनको चोरों ने लूट लिया। पुण्यहीन पुरुष को हर कार्य में हानि ही होती है।

धन प्राप्त करके चोरों की नीयत खराब हो गई। वे सब विचारने लगे कि यह सारा धन मुझे ही प्राप्त हो। इस प्रकार लालच में आकर वे एक-दूसरे के प्राण लेने में तत्पर हो गये। रात्रि में जब सब भोजन करने बैठे तो उसमें से एक व्यक्ति ने भोजन में विष मिला दिया, जिसके खाने से सभी मृत्यु को प्राप्त हुए। विष मिलानेवाला भी भूल से वह भोजन खाकर मरण को प्राप्त हुआ। इन सब में से मात्र सागरदत्त नाम का एक वैश्य पुत्र बच गया; उसका कारण यह था कि उसके रात्रिभोजन-त्याग की प्रतिज्ञा थी। धन के लोभ में आकर सबको एक साथ मरा जानकर सागरदत्त को अत्यन्त वैराग्य हुआ।

रात्रिभोजन त्यागी सागरदत्त ने संसार की लीलाओं को दु:ख का कारण जानकर तथा बिजली की तरह क्षण में नाश होनेवाली समझकर समस्त धन का परित्याग करके वह एक उत्कृष्ट आचरणवाला साधु बन गया। वे सागरदत्त मुनि सबका कल्याण करें। ●●

-आराधना कथाकोष में से संक्षिप्त सार

53

ऋद्धि प्राप्त ऋषिवरों की.....

64 ऋद्धियों का स्वरूप

अनन्त गुणमय चैतन्य ऋद्धि से सम्पन्न वीतरागी मुनिराजों को बाह्य में अनेक प्रकार की असाधारण आश्चर्यजनक ऋद्धियाँ सहज ही प्रगट हो जाती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वे सन्त अपनी चैतन्य ऋद्धि के आनन्दमय दशा में झूलते हुए उन बाह्य ऋद्धियों के प्रति रञ्चमात्र भी आकर्षित नहीं होते।

अरे! जहाँ अखण्ड त्रिकाली ज्ञानभाव के समक्ष केवलज्ञान ऋद्धि भी उन्हें परद्रव्य-परभाव भासित होती हो, वहाँ अन्य ऋद्धियों की क्या बात!

जिनागम में वर्णित मुनिराजों की चौसठ ऋद्धियों का स्वरूप यहाँ प्रस्तुत करते हुए, उन वीतरागी सन्तों के चरणों में अपनी वन्दना समर्पित करते हैं। - सम्पादक

ऋद्धि के आठ प्रकार है -

1. बुद्धि, 2. क्रिया, 3. विक्रिया, 4. तप, 5. बल, 6. औषध, 7. रस, 8. क्षेत्र। इन आठ ऋद्धियों का स्वरूप इस प्रकार है -

(1) बुद्धि ऋद्धि का स्वरूप व प्रकार

बुद्धि ऋद्धि के अठारह प्रकार है - (1) केवलज्ञान, (2) अवधिज्ञान, (3) मन:पर्ययज्ञान, (4) बीजबुद्धि, (5) कोष्टबुद्धि, (6) पदानुसारिणी, (7) संभिन्न श्रोतृत्व, (8) दूरास्वादन समर्थता, (9) दूरदर्शन समर्थता, (10) दूरस्पर्शन समर्थता, (11) दूरघ्राण समर्थता, (12) दूरश्रोतृ समर्थता, (13) दश पूर्वित्व, (14) चतुर्दश पूर्वित्व, (15) अष्टाङ्ग निमित्तता, (16) प्रज्ञाश्रमणत्त्व, (17) प्रत्येक बुद्ध, (18) वादित्व।

इन सभी का स्वरूप निम्नानुसार है -

www.vitragvani.com

(1) **केवलज्ञान** – जो ज्ञान तीन काल, तीन लोक के समस्त पदार्थों को एक साथ प्रत्यक्ष जानता है।

(2) **अवधिज्ञान** – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादापूर्वक रूपी पदार्थों का स्पष्ट ज्ञान होना।

(3) **मनःपर्ययज्ञान** – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादासहित दूसरे के मन में स्थित रूपी पदार्थ का स्पष्ट ज्ञान होना।

(4) **बीजबुद्धि** – एक बीजपद, अर्थात् मूलपद को ग्रहण करने से अनेक पद और अनेक अर्थों को जानना, वह बीजबुद्धि है।

(5) **कोष्टबुद्धि** – जैसे, कोठार (भण्डार) में डाले हुए धान्य, बीज आदि बहुत काल तक ज्यों के त्यों रहते हैं, घटते-बढ़ते नहीं, परस्पर मिलते नहीं है; उसी प्रकार पर के उपदेश से ग्रहण किये हुए बहुत शब्द, अर्थ, बीज, जिस बुद्धि में ज्यों के त्यों रहें, एक अक्षर तथा अर्थ भी घटे-बढ़े नहीं, अक्षर आगे-पीछे न हो, वह कोष्टबुद्धि है।

(6) **पदानुसारिणी बुद्धि** – ग्रन्थ की शुरूआत, मध्य अथवा अन्त के एक पद का श्रवण करके समस्त ग्रन्थ और उसके अर्थ का निश्चय करना, पदानुसारिणी बुद्धि है।

(7) **संभिन्नश्रोतृत्व बुद्धि** – चक्रवर्ती की छावनी बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी होती है, उसमें हाथी, घोड़ा, ऊँट, मनुष्यादि के भिन्न-भिन्न प्रकार के अक्षर-अनाक्षरात्मक शब्द एक साथ युगपत् उपजते है; उन्हें तप विशेष के कारण (आत्मा के समस्त श्रोत्रेन्द्रियावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर) एक काल में जुदे-जुदे श्रवण करे, सुने, वह संभिन्नश्रोतृत्व बुद्धि है।

(8) **दूरास्वादनसमर्थता बुद्धि** – तप विशेष के कारण (प्रगट होते असाधारण रसेन्द्रिय श्रुत ज्ञानावरण, वीर्यान्तराय के क्षयोपशम और अङ्गोपाङ्ग नामकर्म के उदय से) मुनि को रस का जो विषय नौ योजन प्रमाण हो, उसके रसास्वादन की अर्थात् रस की जानने की सामर्थ्य होती है, वह दूरास्वानसमर्थता बुद्धि है।

(9 से 12) **दुरदर्शन-स्पर्शन-घ्राण-श्रोतृ समर्थता बुद्धि** – उपरोक्तानुसार

www.vitragvani.com

चक्षुरिन्द्रिय, स्पर्शेनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय के विषय के बाहर बहुत क्षेत्र के रूप, स्पर्श, गन्ध और शब्द को जानने का सामर्थ्य होना, वह इन-इन नाम की चार प्रकार की बुद्धि है।

(13) दशपूर्वित्त्व बुद्धि - महारोहिणी आदि विद्या देवता तीन बार आवे और प्रत्येक अपना-अपना स्वरूप सामर्थ्य प्रगट करे - ऐसे वेगवान विद्या देवता के लोभादि से जिसका चारित्र चलायमान न हो, वह दशपूर्वित्त्व बुद्धि है।

(14) चतुर्दशपूर्वित्त्व बुद्धि - सम्पूर्ण श्रुतकेवलीपना होना, वह चतुर्दशपूर्वित्त्व बुद्धि है।

(15) अष्टाङ्ग निमित्तता बुद्धि - अन्तरिक्ष, भोम, अङ्ग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न - यह आठ प्रकार का निमित्तज्ञान है।

उनका स्वरूप निम्न प्रकार है -

1. सूर्य और चन्द्र, नक्षत्र का उदय-अस्तादिक देखकर अतीत-अनागत फल का जानना, **अन्तरिक्ष निमित्तज्ञान** है।

2. पृथ्वी की कठोरता, कोमलता, चिकनाहट या रुखापन देखकर, विचार करके अथवा पूर्वादिक दिशा में सूत्र पड़ता देखकर हानि-वृद्धि, जय-पराजय आदि जानना तथा भूमि में स्थित सुवर्ण, चाँदी इत्यादि को प्रगट जानना, **भोम निमित्तज्ञान** है।

3. अङ्ग-उपाङ्ग के दर्शन - स्पर्शन आदि से त्रिकालभावी सुख-दु:खादि जानना, **अङ्ग निमित्तज्ञान** है।

4. अक्षर-अनाक्षररूप तथा शुभ-अशुभ को सुनकर इष्टानिष्ट फल जानना, **स्वर निमित्तज्ञान** है।

5. मस्तक, मुख, डोक आदि स्थानों पर तल, तुसल, लाख इत्यादि लक्षण देखकर त्रिकाल सम्बन्धी हिताहित जानना, **व्यञ्जन निमित्तज्ञान** है।

6. शरीर पर श्रीवृक्ष, स्वस्तिक, कलश आदि चिह्न देखकर त्रिकाल सम्बन्धी पुरुष के स्थान, मान, ऐश्वर्यादि विषयों का जानना, **लक्षण निमित्तज्ञान** है।

www.vitragvani.com

7. वस्त्र-शस्त्र-आसन-शयनादिक से देव, मनुष्य, राक्षसादि से तथा शस्त्र कंटेकादि से छेदित, उन्हें देखकर त्रिकाल सम्बन्धी लाभ-अलाभ, सुख-दु:ख का जानना, **वह छिन्न निमित्तज्ञान** है।

8. वात-पित्त-श्लेष्मरहित पुरुष के मुख में पिछली रात्रि को चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, पर्वत अथवा समुद्रादि का प्रवेशादि होना, ऐसा स्वप्न, वह शुभ स्वप्न है। घी-तेल से अपना देह लिपना और गधे, ऊँट पर चढ़कर दक्षिण दिशा में गमन इत्यादि करे - ऐसा स्वप्न, वह अशुभ स्वप्न है। इनके दर्शन से आगामी काल में जन्म-मरण, सुख-दु:खादि का ज्ञान होना, **स्वप्न निमित्तज्ञान** है।

जो इन आठ प्रकार के निमित्तज्ञानों का ज्ञाता है, उसे अष्टाङ्ग निमित्त बुद्धि ऋद्धि है।

(16) प्रज्ञाश्रमणत्व बुद्धि - कोई अतिसूक्ष्म अर्थ के स्वरूप का विचार जैसा हो, वैसा चौदह पूर्वधर ही निरूपण कर सकें, अन्य न कर सकें; ऐसे सूक्ष्म अर्थ का जो सन्देहरहित निरूपण करे - ऐसी प्रकट श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से प्रगट हुई प्रज्ञाशक्ति, वह प्रज्ञाश्रमण बुद्धि है।

(17) प्रत्येक बुद्धिता बुद्धि - पर के उपदेश बिना, जो अपनी शक्ति विशेष से ज्ञान-संयम के विधान में निपुण हो, वह प्रत्येक बुद्धिता बुद्धि है।

(18) वादित्व बुद्धि - इन्द्र आदि आकर वाद करे, उन्हें निरुत्तर कर दें, स्वयं रुके नहीं और सामनेवाले वादी के छिद्र को जान ले - ऐसी शक्ति, वह वादित्व बुद्धि है।

इस प्रकार आठ ऋद्धियों में से पहली बुद्धि ऋद्धि सम्यग्ज्ञान की महान महिमा बताती है।

(2) क्रिया ऋद्धि का स्वरूप व प्रकार -

क्रिया ऋद्धि के दो प्रकार - (1) आकाशगामित्व और (2) चारण

(1) आकाशगामित्व ऋद्धि - पर्यक आसन से बैठकर या कायोत्सर्ग आसन करके, पैरों को हिलाये-चलाये बिना आकाश में गमन करने में कुशल हो, वह आकाशगामित्व क्रियाधारक है।

www.vitragvani.com

(2) चारण ऋद्धि – चारण ऋद्धि अनेक प्रकार की है। जल के ऊपर पैर रखते-चलते हुए भी जलकायिक जीवों को बाधा (कष्ट) उत्पन्न न हो, वह जल चारण ऋद्धि है। भूमि से चार अङ्गुल ऊँचे आकाश में शीघ्रता से सैंकड़ों योजन गमन करने में समर्थता, वह जङ्घाचारण ऋद्धि है तथा तन्तुचारण, पुष्पचारण, श्रेणीचारण, अग्नि-शिखाचारण इत्यादि चारण ऋद्धि है। पुष्प-फल आदि के ऊपर गमन करने से उन पुष्प, फल इत्यादि के समस्त जीवों को कष्ट न हो, वह समस्त चारण ऋद्धि हैं।

(3) विक्रिया ऋद्धि का स्वरूप व प्रकार –

विक्रिया ऋद्धि के अनेक प्रकार है –

(1) अणिमा, (2) महिमा, (3) लधिमा, (4) गरिमा, (5) प्राप्ति, (6) प्राकाम्य, (7) ईशित्व, (8)वशित्व, (9) अप्रतिघात, (10) अन्तर्धान, (11) कामरूपीत्व इत्यादि अनेक हैं। उनका स्वरूप निम्न प्रकार है –

(1) अणुमात्र शरीर करने की सामर्थ्य **अणिमा ऋद्धि** है। वह कमल के छिड़ में प्रवेश करके वहाँ बैठकर चक्रवर्ती की विभूति रचे।

(2) मेरु से भी महान शरीर करने की सामर्थ्य, **महिमा ऋद्धि** है।

(3) पवन से भी हल्का शरीर करने की सामर्थ्य, **लधिमा ऋद्धि** है।

(4) वज्र से भी अति भारी शरीर करने की सामर्थ्य, **गरिमा ऋद्धि** है।

(5) भूमि में बैठकर अङ्गुली को अग्र करके मेरु पर्वत के शिखर तथा सूर्य विमानादि को स्पर्श करने की सामर्थ्य, **प्राप्ति ऋद्धि** है।

(6) जल में जमीन को उन्मज्जन (ऊपर लाना) तथा निमज्जन (बुहारना) ऐसी सामर्थ्य, **प्राकाम्य ऋद्धि** है।

(7) त्रिलोक का प्रभुपना रचने की सामर्थ्य, **ईशित्व ऋद्धि** है।

(8) देव-दानव, मनुष्य इत्यादि को वशीकरण करने की सामर्थ्य, **वशित्व ऋद्धि** है।

(9) पर्वतादि के अन्दर आकाश की तरह गमन-आगमन की सामर्थ्य, **अप्रतिघात ऋद्धि** है।

www.vitragvani.com

(10) अदृश्य होने की सामर्थ्य, **अन्तर्धान ऋद्धि** है।

(11) युगपत अनेक आकाररूप शरीर करने की सामर्थ्य, **कामरूपित्व ऋद्धि** है। इत्यादि अनेक प्रकार की विक्रिया ऋद्धि हैं।

(4) तप ऋद्धि का स्वरूप व प्रकार -

तप ऋद्धि सात प्रकार की है -

(1) उग्रतप, (2) दीप्ति तप, (3) निहारतप, (4) महानतप, (5) घोरतप, (6) घोर पराक्रमतप और (7) घोर ब्रह्मचर्यतप।

इनका स्वरूप निम्न प्रकार है -

(1) एक उपवास, दो, तीन, चार, पाँच इत्यादि उपवास के निमित्त से किसी योग का प्रारम्भ हुआ तो मरणपर्यन्त उस उपवास से कम दिनों में पारणा करें, किसी कारण से अधिक उपवास हो जाए तो मरणपर्यन्त उससे कम उपवास करके पारणा न करें - ऐसी सामर्थ्य प्रगट होना, वह उग्रतप ऋद्धि है।

(2) महान उपवासादि करते हुए मन-वचन-काया का बल बढ़ता ही रहता है, मुख दुर्गन्धरहित रहें, कमलादिक की सुगन्धी जैसी सुगन्धित श्वास निकले और शरीर की महान दीप्ति प्रगट हो, वह **दीप्ति ऋद्धि** है।

(3) जैसे, तप्त लोहे की कढ़ाई में पानी की बून्द सूख जाती है, उसी प्रकार आहार पच जाए, सूख जाए और मल-रूधिरादिरूप न परिणमे, इस कारण निहार न हो - ऐसा होना, वह **निहारतप ऋद्धि** है।

(4) सिंह कीड़ितादि महान तप करने में तत्पर होना, वह **महानतप ऋद्धि** है।

(5) वात्, पित्त, श्लेष्म आदि से उत्पन्न ज्वर, उधरस, श्वांस, शूल, कोढ़, प्रमेहादिक अनेक प्रकार के रोगवाला शरीर होने पर भी अनशन, कायक्लेशादि छूटे नहीं और भयानक श्मशान, पर्वत का शिखर, गुफा, खण्डहर, उज्जड़ गाँव आदि में दुष्ट राक्षस, पिशाचादि, प्रवर्ते और महान विकार धारण करे तथा शियाल के कठोर रुदन, सिंह, बाघ इत्यादि दुष्ट जीवों के भयानक शब्द वहाँ निरन्तर प्रवर्ते - ऐसे भयंकर स्थान में भी निर्भय होकर बसना, वह **घोरतप ऋद्धि** है।

www.vitragvani.com

(6) पूर्व कथित ऐसा रोगसहित शरीर होने पर भी, अति भयंकर स्थान में बसकर योग अर्थात् स्वरूप एकाग्रता बढ़ाने की तत्परता होना, वह **घोर पराक्रम ऋद्धि** है।

(7) बहुत काल से ब्रह्मचर्य के धारक मुनि को अतिशय चारित्र के जोर से (मोहनीयकर्म का क्षयोपशम होने पर) खोटे स्वप्नों का नाश होना, वह **घोर ब्रह्मचर्यतप ऋद्धि** है। इस प्रकार सात प्रकार की तप ऋद्धियाँ हैं।

(5) बल ऋद्धि का स्वरूप व प्रकार -

बल ऋद्धि के तीन प्रकार है - (1) मनोबल ऋद्धि, (2) वचनबल ऋद्धि, (3) कायबल ऋद्धि। इनका स्वरूप निम्न प्रकार है।

(1) प्रकर्ष पुरुषार्थ से मन:श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय का क्षयोपशम होने पर अन्तर्मुहूर्त में सम्पूर्ण श्रुत अर्थ के चिन्तन की सामर्थ्य, वह **मनोबल ऋद्धि** है।

(2) अतिशय पुरुषार्थ से मन-इन्द्रिय-श्रुतावरण तथा जिव्हा श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय का क्षयोपशम होने पर अन्तर्मुहूर्त में सकल श्रुत का उच्चारण करने की सामर्थ्य होना तथा निरन्तर उच्च स्वर में बोलने पर भी खेद नहीं उपजना, किञ्चित भी स्वर भङ्ग नहीं होना, वह **वचनबल ऋद्धि** है।

(3) वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से असाधारण कायबल प्रगटे और एक माह, चार माह अथवा बारह माह प्रतिमायोग धारण करने पर भी खेदरूप न हो, वह **कायबल ऋद्धि** है।

(6) औषध ऋद्धि का स्वरूप व प्रकार -

औषध ऋद्धि आठ प्रकार की है - (1) आमर्ष, (2) शेल, (3) जल, (4) मल, (5) विट, (6) सर्व, (7) आस्याविष, (8) दृष्टिविष। इनका स्वरूप निम्न प्रकार हैं -

(1) असाध्य रोग होवे तो भी जिनके हाथ-चरणादि का स्पर्श होते ही सर्व रोग मिट जाए, वह **आमर्ष औषध ऋद्धि** है।

(2) जिनके थूंक, लार, कफादिक का स्पर्श होते ही रोग मिट जाए, वह **शेल औषध ऋद्धि** है।

www.vitragvani.com

(3) जिनकी देह के पसीने का स्पर्श होते ही रोग मिट जाए, वह **जल औषध ऋद्धि** है।

(4) जिनके कान, दाँत, नाक और नेत्र का मल ही सर्व रोगों का निराकरण करने में समर्थ हो, वह **मल औषध ऋद्धि** हैं।

(5) जिनका वीट-झाड़ा तथा मूत्र ही औषधरूप हो, वह **विट औषध ऋद्धि** हैं।

(6) जिनके अङ्ग-उपाङ्ग नख, दाँत, केशादिक का स्पर्श होते ही समस्त रोग को हरता है, **वह सर्वोषध ऋद्धि** है।

(7) तीव्र जहर में मिला हुआ आहार भी जिनके मुँह में जाते ही वह जहररहित जो जाए तथा विष से व्याप्त जीव का विष जिनके वचन से ही उतर जाए, वह **आस्यविष औषध ऋद्धि** है।

(8) जिनको देखने से महान विषधारी जीव का विष भी जाता रहे तथा किसी को जहर होवे तो वह उतर जाए - ऐसी ऋद्धि, वह **दृष्टिविष औषध ऋद्धि** है।

(7) रस ऋद्धि का स्वरूप व प्रकार -

(1) आस्यविष, (2) दृष्टिविष, (3) क्षीर, (4) मधुस्रावी, (5) धृतस्रावी, (6) अमृतस्रावी - इनका स्वरूप निम्न प्रकार है।

(1) प्रकष्ट तपवाले योगी कदाचित् क्रोधी होकर कहे कि 'तू मर जा' तो तत्काल चिढ़कर मर जाए, वह **आस्यविष रस ऋद्धि** है।

(2) कदाचित् क्रोधरूपी दृष्टि देखकर मर जाए, वह **दृष्टिरविष रस ऋद्धि** है।

(3) वीतरागी मुनि के ऐसी सामर्थ्य होती है कि वे क्रोधादिक को प्राप्त नहीं होते और उनके हाथ में आया हुआ विरस भोजन क्षीररसरूप हो जाए तथा जिनका वचन दुर्बल को क्षीर की तरह पुष्ट करे, वह **क्षीर रस ऋद्धि** है।

(4) ऊपर के प्रसङ्ग में वह भोजन मिष्टरसरूप परिणम जाए, वह **मधुस्रावी रस ऋद्धि** है।

(5) भोजन घृतरसरूप परिणम जाए, वह **धृतस्रावी रस ऋद्धि** है।

www.vitragvani.com

(6) भोजन अमृरसरूप परिणम जाए, वह **अमृतस्रावी रस ऋद्धि** है।

(8) क्षेत्र ऋद्धि का स्वरूप व प्रकार -

क्षेत्र ऋद्धि दो प्रकार की है - (1) अक्षीण महान (2) अक्षीण महालय - इनका स्वरूप निम्न प्रकार है -

(1) लाभान्तराय के प्रकष्ट क्षयोपशम से अति संयमवान मुनि को जिस भाजन में से भोजन दे, उस भाजन में से चक्रवर्ती का समस्त सैन्य भोजन करे, तथापि उस दिन भोजन सामग्री नहीं घटे, वह **अक्षीणमहान क्षेत्र ऋद्धि** है।

(2) ऋद्धिसहित मुनि, जिस स्थान पर बैठे, वहाँ देव, राजा, मनुष्यादि बहुत आकर बैठे, तो भी क्षेत्र कम नहीं पड़े, एक-दूसरे को बाधा नहीं होवे, वह **अक्षीणमहालय क्षेत्र ऋद्धि** है। इस प्रकार दो प्रकार की क्षेत्र ऋद्धि है। ●● *(- तत्त्वार्थ सूत्र से साभार)*

भगवान को भी मुनिदशा के बिना मुक्ति नहीं

देखो! इन्द्र भी जिनका जन्मोत्सव मनाते हैं, ऐसे भगवान को भी अन्तर में ऐसी चारित्रदशा प्रगट हुए बिना केवलज्ञान नहीं होता – ऐसा वस्तु का स्वभाव है। अन्तर में जैसा रागरहित स्वभाव है, वैसी रागरहित दशा आत्मा की हो तो बाहर में जैसा माता ने जन्म दिया है, वैसी शरीर की दशा स्वयं हो जाती है – ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध मुनिदशा में होता है। अन्तर में वीतरागभाव प्रगट हो गया हो और बाह्य में बुद्धिपूर्वक वस्त्रादि का सम्बन्ध रहे – ऐसा तीन काल और तीन लोक में नहीं होता। भगवान ऐसी पवित्रदशा की भावना भाते थे और आज उन्होंने वह दशा अङ्गीकार की है।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, महामहोत्सव प्रवचन, पृष्ठ २४